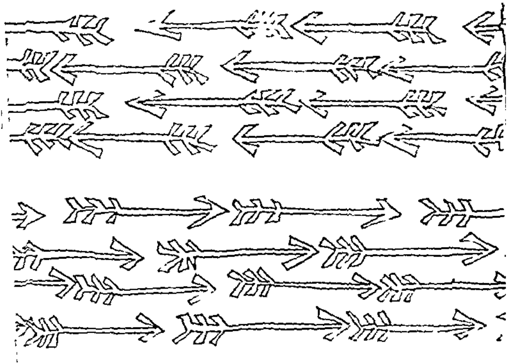
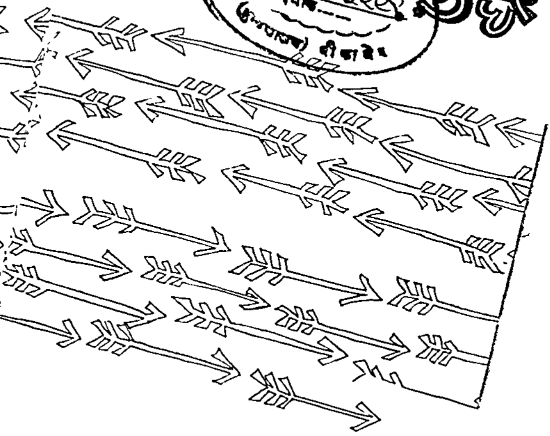


पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२

प्रथम भाग

युद्ध



नरेन्द्र कोहली

मूल्य : चालीस रुपये/प्रथम संस्करण, दीपावली १९७९/आवरण : अवधेशकुमार/
प्रकाशक : पराग प्रकाशन, ३/११४, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२/मुद्रक : भारती प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

YUDDHA (*Part I*) : Narendra Kohli Rs. 40.00

सोमदेव कोह्ली
सुदर्शन कोह्ली
कुलभूपण कोह्ली
तथा
रवीन्द्र कोह्ली
को सादर-सस्नेह

युद्ध

प्रथम खण्ड

१

वाली को समाचार मिला, और भीतर से कोई धक्के मार-मारकर उन्हें उठाने लगा। पर उठकर चल पड़ना अब उतना सरल नहीं था। अब वे वानरों के राजा थे—सम्राट्। अपनी मर्यादा को भूल, उठकर कैसे चल दें। उन्हें चाहिए कि आदेश दें कि दंडधरों की एक टोली तुरत नगरद्वार पर भेज दी जाए, और यदि वे भी इस भैंसे को अनुशासित न कर सकें, तो एक गदाधर टोली भी भेज दी जाए। यदि वे जीवित भैंसे को अनुशासित न कर सकें, तो उसे मार डालें...इसमें ऐसी कौन-सी समस्या है कि राजा स्वयं उठकर जाए, राजा भी वाली जैसा—वानरों का सम्राट्।

किंतु, शासक वाली के भीतर एक और वाली बैठा था—आखेटक वाली! वह जैसे सागर की लहरों के समान, शासक वाली के नियंत्रण में आ-आकर फिसल जाता था...कितने दिनों से वह सुन रहा था कि किष्किंधा के आस-पास के वनों में एक वन्य भैंसा मंडराया करता है। वह सामान्य भैंसा नहीं है। वह असाधारण रूप से वृहदाकार तथा बलशाली है। स्वभाव से हिंस्र है और सामने पड़ने वाले किसी भी जीव से भिड़ जाया करता है। उसके कंठ से निकला शब्द विकट भी था और विचित्र भी। क्रोध में जब वह डकराता था तो लगता था जैसे दुंदुभि पर आघात हुआ हो। इसीलिए लोगों में उसका नाम दुंदुभि ही प्रसिद्ध हो गया था...

...आज प्रातः से ही, उसके किष्किंधा के प्रवेशद्वार पर आ

समाचार नगर मे आ रहे थे। फिर सूचना मिली कि वह द्वार-रक्षको से भिड गया है, और यह भी ज्ञात हुआ कि द्वार पर उपस्थित दडधर रक्षक, उसके लिए अपर्याप्त सिद्ध हो रहे है...तथा नगर में पर्याप्त त्रास फैल गया है।

सैनिक अथवा दंडधर टुकड़ी नगरद्वार पर भेजकर वाली कैसे संतुष्ट हो सकते थे ? उनका मन उन्हें कोंच-कोंचकर कह रहा था कि नगरद्वार पर खडा वह भैंसा दुदुंभि, उन्हे ही चुनौती दे-देकर, अपनी दुदुभि बजा रहा है। कैसे आखेटक हैं वाली कि ऐसे में भी वे अपने महल मे बैठे-बैठे सैनिक टुकड़ियों को भेज रहे हैं ?

चुनौती की दुदुभि सुनते, वे कैसे शात बैठे रहें ?

और ऐसे वन्य भैंसे के आखेट की क्रीड़ा, वे कैसे छोड दें ?

शासक वाली कही विलीन हो गए, वहां केवल आखेटक वाली रह गए। उनका रुकना मुश्किल था...उन्होंने अपनी भारी गदा कधे पर रखी और नगरद्वार की ओर चल पड़े। महल तथा नगर मे यह सूचना तब प्रचारित हुई, जब वाली नगरद्वार पर पहुंच भी चुके थे।

वाली ने अपनी आखों ही आंखो में दुदुभि को तोला—वह साधारण भैंसा नही था, जिसे मारकर उन्हें अपयश मिलता कि वानरों का शूरवीर सम्राट भैंसों की हत्याएं करता फिरता है। दुदुभि वस्तुत. विराट वन्य भैंसा था—आखेटक के लिए चुनौती और कसौटी।

द्वार-रक्षक सैनिक सोचते ही रह गये और वाली अपनी गदा के साथ दुदुभि के सामने जम गये।

दुंदुभि ने अपनी रक्तिम हिंस्र आंखों से अपने सम्मुख उपस्थित बाधा को देखा और फूत्कार करता हुआ उस पर चढ़ दौडा। वाली ने अपनी गदा को घुमाकर, दुदुभि के मस्तक पर आघात किया। दुंदुभि ने फिर से रुककर वाली को देखा। वह सामान्य वन्य भैंसा नही था, जो वाली की गदा के आघात से भाग जाता। वह तो जैसे द्वद्व-युद्ध की तैयारी कर रहा था। आघात को सह, चोट से पीड़ित हो, उसने दौड़ लगायी और आक्रोश मे मत्त, प्रतिशोध की भावना से भरा हुआ, वह पूरे वेग के साथ लौटा और उसने वाली पर प्रहार किया।

वाली सुखी हुए। उन्हें युद्ध के लिए योग्य प्रतिद्वद्वी मिल गया था। उन्होंने घूमकर, दुदुभि के अगले पुट्ठे पर पूरी शक्ति से गदा दे मारी। किंतु दुदुभि इस बार भी नहीं भागा। दोनों जैसे ताक-ताककर लड रहे थे। लबे समय तक दोनों मे घात-प्रतिघात चलते रहे ..अत मे दुदुभि की पशु-बुद्धि भी समझ गयी कि वाली के वल, युद्ध-कौशल और गदा के भयंकर आघातों के सामने टिक पाना उसके लिए सभव नही है ..दुंदुभि के पैर उखड़ गये और वह भाग खडा हुआ।

वाली को जीत की प्रसन्नता तो हुई, किंतु दुदुभि को भागते देख, वे संतुष्ट नही हुए, जैसे उनके हाथ से उनका खिलौना छिना जा रहा हो। क्रीड़ा का रस उन्हें सूखता-सा लगा। उसे इस प्रकार भागने नहीं दिया जा सकता था...वाली दुदुभि के पीछे भागे। घायल दुंदुभि का वेग आश्चर्यजनक था। वाली न उसको रोक पा रहे थे, न उसके साथ भागने में सफलता पा रहे थे। वे दोनों आगे-पीछे भागते रहे। वाली यह देखने के लिए भी नही रुके कि कोई उनके साथ आ भी रहा है या नही। यह दौड़ मतंग वन तक चलती चली गयी...दुंदुभि वन मे जा घुसा, किंतु वाली ने उसका पीछा नही छोड़ा। दुंदुभि अपनी पीड़ा में पागल हो रहा था, और वाली अपने आक्रोश मे। दोनों ने ही बिना कुछ देखे-भाले वन में लंबी दौड़ लगायी। जिधर सीग समाये, दुंदुभि उधर ही भागा। और वाली जैसे किसी चुंबकीय शक्ति से बंधे हुए, उसके पीछे-पीछे भागते चले गये...

सामने ऋष्यमूक की चढाई आ गयी। दुंदुभि रुका। वह कदाचित् अपने रक्तस्राव के अतिरेक तथा इस लंबी दौड से थककर, जीवन से निराश हो चुका था।.. सहसा वह पलटकर खड़ा हो गया। उसकी आखों से चिनगारिया फूट रही थीं और उसके नथुनों से निरतर फूत्कार। उसने क्षण भर रुककर जैसे आंखों ही आंखों में वाली को तोला और फिर झपटा...वह बडा ही निर्णायक आघात था। वाली यदि उसे रोकने का प्रयत्न करते, तो अपनी असाधारण शारीरिक शक्ति के बावजूद, निश्चित रूप से मारे जाते। किंतु वाली ने उसे रोकने का प्रयत्न नहीं किया। वे एक ओर हट गये, और जैसे ही दुंदुभि अपने वेग में आगे बढा, वाली ने अपने शरीर के संपूर्ण बल से उसके पिछले पुट्ठे पर गदा का प्रहार किया। दुंदुभि की

हड्डिया कडकडा उठी। वह ऐसे बैठा कि उठ नही सका...वाली ने जब देखा कि दुदुभि अब उठ नही सकता, तो उन्होंने दूसरा आघात उसके मस्तक पर किया।

दुदुभि की डकराहट का शब्द वन के सहस्रों वृक्षों से जा टकराया और उसकी प्रतिध्वनिया, वन की प्रत्येक दिशा मे फैल गयी। दुदुभि ने अपना सिर पृथ्वी पर डाल दिया. .

वाली को जब पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि दुदुभि वस्तुतः मर चुका है और अब वह कभी नही उठेगा, तब जैसे उनका युद्ध-ज्वर उतरा और उन्होंने यह भी पहचाना कि वे किस जोखिम में पड़े लड रहे थे और मृत्यु उनके कितनी निकट खड़ी थी। यदि वे ठीक समय पर हट नहीं गये होते तो दुंदुभि की वह अतिम झपट, निश्चित रूप से उनके लिए यमपाश थी...वे जैसे मृत्यु की पकड़ से किसी प्रकार फिसलकर निकल आये थे...

वाली को लगा, उनके मस्तिष्क में से जितना स्थान आवेश ने खाली किया है, वह न केवल मृत्यु के भय से भरता जा रहा है,वरन् मृत्यु का भय जैसे उनके साहस और पौरुष को ही धकेलता जा रहा है...उनके माथे पर स्वेद-बिंदु उभर आये थे। उनके होंठ सूख रहे थे और भीतर ही भीतर जैसे वे बहुत थक गये थे...

सहसा उन्होंने अपने बहुत निकट कही मतगो की चिंघाड सुनी। एक नही अनेक मतग एक साथ चिंघाड़ रहे थे और उनके भागने की धमक, जैसे वाली के मस्तक पर बज रही थी...उन्होने दृष्टि उठाकर देखा, ऋष्यमूक की ढाल पर अनेक मतग भागते हुए, उनकी ही दिशा मे बढ रहे थे। उनकी दृष्टि अपने अनुचरो पर भी पड़ी, जो उनके पीछे-पीछे किसी प्रकार यहा तक आ गये थे—वे मतंगों की चिंघाड़ के पहले शब्द के साथ ही वहां से भाग खड़े हुए थे...

उन्होने गदा हाथ में ली। आखों से उसको तोला...किंतु उनका थका हुआ मन साफ़-साफ़ समझ रहा था कि वे अपने पिछले द्वंद्व-युद्ध से चूर शरीर की शक्ति से, मतंगों के पूरे झुंड को रोक नही पायेंगे...उनके सामने भी एक ही मार्ग था—पलायन।

वाली भागे। उनका अहंकार उन्हें धिक्कार रहा था, और उनका

विवेक उन्हें भगाये लिये जा रहा था। वे अनुभव कर रहे थे कि दुंदुभि के लिए लगायी गयी दौड, उसके साथ हुए युद्ध और अब वापसी की इस दौड से उनका शरीर निर्जीव हो रहा था—मन थका हुआ था, और अहंकार आहत होकर, उनके सपूर्ण अस्तित्व को छील रहा था...

नगरद्वार तक पहुंचते-पहुंचते वाली सर्वथा बेसुध हो चुके थे। नगरद्वार के रक्षकों ने शिविका का प्रबंध कर उन्हें महल में पहुंचाया। महल में हलचल मच गयी। तुरंत वैद्य को बुलाया गया, किंतु वाली ने वैद्य से अधिक महत्त्व अपने शगुन-विचारक को दिया। वैद्य को किसी प्रकार टालकर उन्होंने शगुन-विचारक की ओर देखा...

"प्रभु !" शगुन-विचारक ने बहुत गंभीर स्वर में कहा, "भैंसा यम का वाहन है। उससे युद्ध उचित नहीं था। युद्ध के लिए जाने से पूर्व, आपने लग्न-विचार भी नहीं करवाया। समय अच्छा नहीं था।...और प्रभु !..." शगुन-विचारक रुक गया।

"कहो !" वाली ने थके-से स्वर में आदेश दिया।

"मतंग वन की दिशा, युद्ध-अभियान के लिए सर्वथा अशुभ है। युद्ध के लिए उस दिशा में कभी न जाएं। उस दिशा में विजय नहीं, पराजय है...और..."

"और ?"

"मृत्यु की भी सभावना है।" शगुन-विचारक बहुत धीमे स्वर में बोला।

वाली चुप रहे।

"राजन ! कल प्रात. उपासना के लिए सागर-तट पर अवश्य जाएं और आज की इस अशुभ घटना मे, मृत्यु टालने के लिए, देवता के प्रति आभार प्रकट करें...।"

वाली स्थिर दृष्टि से उसे देखते रहे, बोले कुछ नहीं।

शगुन-विचारक चला गया, किंतु वाली के मन मे उसके शब्द निरंतर उथल-पुथल मचाते रहे—"उस दिशा मे कभी न जाएं...कभी न जाएं..."

उनकी आखों में क्रुद्ध दुंदुभि का अंतिम प्रहार, जीवन्त अनुभव के रूप में घूम गया...और फिर दौडते और चिंघाड़ते हुए मतंगों का झुंड...

अहकार के आदेश पर यदि वाली कहीं घड़ी भर को भी रुक गये होते

वाली को लगा, वे बहुत थक गये है और अब सोना चाहते है।

वाली के मन पर ऐसा विषाद छाया कि वे सहज ही नही हो पा रहे थे। प्रातः वे समुद्र-तट पर गये तो समुद्रोपासना मे मन नही लगा। लौटकर राज-परिषद मे आये तो न किसी की वात सुनने की इच्छा हुई, न कुछ कहने की। थोडी देर तक चुपचाप बैठे अपने मन्त्रियों-अमात्यों, सामतों, यूथपतियों तथा सेनापतियो की मुद्राए देखते रहे। जाने वे क्या कह रहे थे और क्या कर रहे थे। वे उनकी किसी भी क्रिया से तादात्म्य नही कर पा रहे थे...

अन्य लोगों का ध्यान भी उस ओर गया।

"क्या वात है, सम्राट् स्वस्थ नहीं है ?" सवसे पहले सुग्रीव ने पूछा।

"मन कुछ स्वस्थ नहो है।" वाली मुह-ही-मुह में वुदवुदाये।

"सारी किष्किधा सम्राट के कल के वीर-कृत्य पर उल्लसित है। एक-एक नागरिक अपने सम्राट पर गर्व कर रहा है, और सम्राट है कि इस प्रकार अनमने-से बैठे हैं।" प्रौढ तार ने हंसते हुए कहा।

"मुझे लगता है कि कल की भाग-दौड़ से थकावट हो गयी है।" सुग्रीव पुन बोले।

वाली के मन मे खीझ उठी। यह सुग्रीव अपने शैशव से ही ऐसी वातें करता रहा है। यह मुझे भी अपने ही समान कोमल समझता है। एक वन्य भैंसे के आखेट से थकावट हो गयी। मन मे आया, सुग्रीव की ग्रीवा पकड-कर कहे, "मैं सुग्रीव नही, वाली हू। कल की भाग-दौड़ के वाद भी, आज इतनी क्षमता है मुझमें कि फिर से मतग वन तक की दौड लगा आऊं।"

पर कुछ कहते नही वना। मतग वन के नाम से ही, मन जैसे और भी भारी हो गया।

"मैं आज विश्राम करूगा।" सहसा वाली बोले, और उठ खड़े हुए, "शेष कार्य कल के लिए स्थगित कर दिये जाएं।"

तारा को वाली के असमय लौट आने का पता चला, तो दौड़ी आयी। वाली को दिन के समय इस प्रकार विस्तर पर लेटे देखना ही बड़ा आश्चर्यजनक था और उनके चेहरे की उदासी तो अभूतपूर्व थी।

"क्या बात है, प्रियतम ?"

वाली चुपचाप, एकटक तारा को देखते रहे। इस तारा में जाने उन्हें पहले क्या इतना अच्छा लगता था। आज तो उसे देखकर मन में कहीं कोई स्फूर्ति नहीं जागती। वही प्रतिदिन का देखा हुआ साधारण चेहरा। क्या देखे कोई उसको ?

"कुछ नहीं ! बस, मन ठीक नहीं है।" वे भावशून्य स्वर में बोले।

तारा चिंतित-सी खड़ी, उन्हें देखती रही, फिर जैसे कुछ न समझकर अपने आप ही बोली, "किसी को भेजकर वैद्य को बुलवाऊं ? अंगद को भी संदेश भेजूं ?"

"वैद्य को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं।" वाली कुछ रूखे स्वर में बोले, "और अंगद इस समय कहां गया है ?"

"सुग्रीव ने ही कहीं भेजा है।" तारा ने उत्तर दिया, "आजकल बेटे को चाचा की देखा-देखी समाज-सुधार का दौरा पड़ा है।"

"क्या कर रहा है ?"

"लोगों को समझाया जा रहा है कि मदिरापान न करें, उससे स्वास्थ्य भी बिगड़ता है और धन का अपव्यय भी होता है।"

"ऊंह !" वाली का मुंह जैसे कड़वा गया, "जो पीता है अपने धन को व्यय कर पीता है और अपना स्वास्थ्य बिगाड़ता है; पर दूसरों के निजी मामलों में टांग न अड़ाई, तो सुग्रीव ही क्या !"

तारा ने परिचारिकाओं को जाने का संकेत किया और आकर वाली की शैया पर, उनके निकट बैठ गयी। थोड़ी देर उनके केशों में अंगुलियां फिराती रही और फिर पूछा, "क्या मन बहुत खराब है ?"

वाली को तारा के हाथ का स्पर्श अच्छा लगा था। मन में हलकी-सी ऊष्मा जागी। आंखें खोलीं। क्षण भर ही देखा होगा कि आंखों की भंगिमा फिर बदल गयी। पहले जैसे भावहीन स्वर में बोले, "मैं थोड़ी देर विश्राम करूंगा। तुम जाओ।"

वाली का मन स्वस्थ नहीं हुआ। कुछ भी ऐसा दिखायी नहीं पड़ रहा था, जो उनके मन में रंचमात्र भी उत्साह जगा सके। प्रत्येक वस्तु से वितृष्णा,

प्रत्येक बात से ऊब, प्रत्येक चेहरे से खीझ...उदास मन और स्फूर्तिहीन शरीर ..

कल के ही समान, अनमने वाली राजसभागार में आये और अनासक्त-से बैठे रहे। राजपरिषद का कार्य चलता रहा। वाली बैठे थे, क्योंकि बैठना था. .

अमात्य तथा मंत्री अपने-अपने विभाग-संबंधी आज्ञाएं ले चुके, तो अपराधियों के न्याय का कार्य आरंभ हुआ...

पहला अपराधी प्रस्तुत किया गया।

"सम्राट ! इस व्यक्ति को युवराज सुग्रीव तथा राजकुमार अंगद ने वदी किया है।"

वाली ने दृष्टि उठाकर देखा—ऐसा कौन-सा अपराधी है, जिसे बंदी करने के लिए सुग्रीव और अंगद को जाना पड़ा। वह व्यक्ति आकृति से विदेशी और विजातीय लगता था। निश्चित रूप से वह वानर नही था।

"क्या नाम है ?"

"मायावी।"

"जाति ?"

"राक्षस !"

"कहा के निवासी हो ?"

"लंका।"

'अपराध ?"

"थके हुए मन को विश्राम देना।"

वाली रुक गये। यह विदेशी क्या कह रहा है ? उनके भीतर कुछ-कुछ रुचि जाग रही थी, "यह तो कोई अपराध नही है, विदेशी !"

"मेरी भी यही विनती है, सम्राट !" मायावी बोला, "किंतु युवराज नही चाहते कि मैं किसी थके मन को विश्राम दू। वे इसे अपराध मानते है।"

वाली ने अपराधी को लाने वाले सैनिकों की ओर देखा, "क्या अपराध है इसका ?"

"सम्राट ! इस पर मदिरा बनाकर बेचने, वेश्यालय चलाने तथा

अनेक कन्याओं के अपहरण और उनके क्रय-विक्रय का आरोप है।"

"तुम लोग जाओ।"

सैनिक मायावी को छोड़कर चले गये।

इस बार वाली बोले, तो उनका स्वर कुछ धीमा था, "मायावी! यदि तुम मेरे थके मन को विश्राम दे पाओगे, तो समझूंगा कि तुम वैद्य का कार्य कर रहे हो, अन्यथा तुम अपराधी हो। तुम जानते ही होगे, मैं अपराधी को कठोर दंड देता हूं।"

"सम्राट एक बार सेवा का अवसर दें!" मायावी मुसकराया, "यदि आपके मन को विश्राम न मिले तो मुझे मृत्यु-दंड दें। और यदि सम्राट के मन को विश्राम मिले, सम्राट स्वस्थ हो तो सेवक को किष्किंधा मे अपना व्यापार फैलाने की खुली छूट दें।"

वाली ने उसे भरपूर दृष्टि से देखा और कहा, "स्वीकार है।"

दूसरे दिन राजसभा का वातावरण बदला हुआ था।

वाली आज अन्यमनस्क नहीं थे। उनके चेहरे पर हलकी-हलकी मुसकान थी, जैसे मन-ही-मन किसी मधुर रस का पान कर रहे हों। वे प्रत्येक बात रुचिपूर्वक सुन रहे थे। प्रत्येक बात के उत्तर में प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे...कभी-कभी तो वे पूरी तरह परिहास की मुद्रा में आ जाते थे।

उसके विपरीत, आज सुग्रीव का मन प्रसन्न नहीं लग रहा था। अंगद भी जैसे रूठे हुए-से अपने स्थान पर बैठे थे।

दैनिक कार्यक्रम की कुछ औपचारिकताएं पूरी हो चुकीं, तो सुग्रीव ने निवेदन किया, "मै सम्राट के एक निर्णय को सम्राट के पुनरावलोकन के लिए प्रस्तुत करना चाहता हूं।"

वाली की मुसकान विलीन हो गयी। वे सावधान होकर बैठ गये, "बोलो!"

"सम्राट! आपको स्मरण होगा, कल मायावी नाम का एक अपराधी न्याय के लिए आपके सम्मुख प्रस्तुत किया गया था।"

वाली ने स्वीकृति मे सिर हिला दिया।

"उसे मैंने तथा राजकुमार अंगद ने स्वयं जाकर वंदी किया था," सुग्रीव बोले, "उस पर अनेक गभीर आरोप थे।"

"मुझे उसका कोई अपराध समझ में नही आया।" वाली ने भ्रू-संकोच के साथ कहा, "वह व्यक्ति व्यापारी है। यदि वह किसी चीज़ का निर्माण करता है और उसे बेचता है, लोग अपनी इच्छा से उसे खरीदते है, और इस सारे व्यापार से, कर के रूप मे राज्य को पर्याप्त आय होती है, तो यह अपराध कैसे है, युवराज?" वाली का स्वर और भी ऊचा हो गया, "क्या यह नही माना जा सकता कि युवराज राज्य की आय की वृद्धि से प्रसन्न नही है। वे नही चाहते कि वानरो का यह राज्य सपन्न हो और जनता सुखी हो। मेरी समझ मे यह नही आया कि इस निर्धन समाज और राज्य की सपन्नता के मार्गों को युवराज क्यो वद कर देना चाहते है। मैं समझता हूं कि युवराज न केवल स्वयं राज्य-विरोधी गतिविधियो मे वहुत सक्रिय है, वरन राजकुमार अंगद को भी अपने प्रभाव से दिग्भ्रमित कर रहे है।"

सुग्रीव को जैसे काठ मार गया...कहा वे सोच रहे थे कि वे मायावी को अपराधी घोपित करवा, उसे दडित करवायेंगे और कहा वे स्वयं अपराधी ठहराये जा रहे हैं। अपराध भी कैसा? अपनी जाति, समाज तथा राज्य से द्रोह का। इन अपराधो को तनिक भी गंभीरता से लिया जाए, तो सुग्रीव को तुरत मृत्यु-दंड दे दिया जायेगा...

उनका मस्तिष्क कुछ इस जोर से झनझनाया कि कहने को कोई वात ही नही सूझी। मस्तिष्क मे तो जैसे खून चढ़ गया था, तर्क कैसे सूझता। उन्होने दृष्टि घुमाकर अंगद को देखा—अंगद का चेहरा भी क्रोध से तमतमाया हुआ था। लगता था, जैसे अभी फट पडेगा।

सुग्रीव ने स्वयं को सयत किया। जानते थे, क्रोध से कोई बात नही वनेगी। इस समय क्रोध दिखाने का अर्थ, अपने पक्ष को और भी दुर्बल वनाना होगा।

"यदि सम्राट की अनुमति हो, तो मैं भी अपना पक्ष प्रस्तुत करू।" सुग्रीव ने जैसे स्वय अपना गला घोंटकर अपनी आवाज़ धीमी की।

"वोलो।" वाली का स्वर अत्यंत औपचारिक था। स्पप्ट था कि वे सुग्रीव का पक्ष सुनने के लिए वहुत उत्सुक नहीं थे, किंतु यदि सुग्रीव कहना

ही चाहता है, तो कह ले।

"वानर जाति अत्यंत निर्धन है।" सुग्रीव ने कहना आरंभ किया, "हम प्रयत्न कर रहे है कि हम अपने परिश्रम से, अपने साधनों का विकास करें, ताकि हमारी स्थिति कुछ अच्छी हो सके। ऐसे में, यदि यहा कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाए, जिससे परिश्रम का मूल्य कम हो जाए और विलास का बाहुल्य हो जाए, तो हमारी जाति, किसी भी प्रकार आगे नही बढ पायेगी..."

"युवराज !" वाली का स्वर खीझ से ओत-प्रोत था, "बात मायावी के अपराध की थी, जाति की निर्धनता की नहीं।"

"वही कह रहा हूं।" सुग्रीव को अपने कानों की लोएं तमतमाती-सी लगी।

"तो सीधे-सीधे अपनी बात कहो।" वाली बोले, "तुम्हारी इन वायवीय बातों में मेरी कोई रुचि नही है।"

इस जड मस्तिष्क को कैसे समझाया जा सकता है—सुग्रीव सोच रहे थे—किंतु समझाना तो था ही।

"सम्राट !" सुग्रीव ने पुनः कहना आरंभ किया, "मधुपान का प्रचलन स्थानीय रूप से हमारी जाति मे भी है; किंतु यह विशेष अवसरो पर स्वयं तैयार कर, उत्सव मनाने की परिपाटी तक ही सीमित है। यदि लंका से मगाकर, अथवा लका की पद्धति पर तैयार करवा, सुगंधित मदिरा की धारा अबाध गति से हाटों मे बहेगी तो समाज के समर्थ सदस्यों को उसकी चाट लग जायेगी। वे उसे पाने के लिए अधिक धन बटोरना चाहेंगे। अधिक धन के लिए वे अपनी अधीनस्थ प्रजा पर अत्याचार करेंगे, उसका शोषण करेंगे। कम परिश्रम से अधिक धन कमाना चाहेगे...।" सुग्रीव क्षण-भर रुककर पुनः बोले, "विलास मदिरा तक ही नही थम जाता। आप जानते है कि मायावी मदिरा के साथ वेश्या-व्यापार भी करवाता है। ये विलासी लोग, इस जाति की कन्याओं को वेश्या बना देने के लिए अपने पास धन संचित करेंगे, और दूसरों की आर्थिक स्थिति इतनी हीन कर देंगे कि एक मुट्ठी अन्न के लिए कुलागनाओ को अपना शरीर बेचना पड़े।...क्या आप चाहेंगे कि सच्चरित्र श्रमिकों की यह जाति,"

लंपटों तथा गणिकाओं की जाति मे बदल जाए...!" सुग्रीव के लिए अपना आवेश रोकना कठिन हो रहा था, "और जहां तक राज्य की आय की बात है—मैं मानता हू कि इस व्यवसाय से भी राज्य की आय बढती है। किंतु यदि आप आज यह राजाज्ञा प्रचारित कर दें कि दस्यु-वृत्ति भी वैध व्यवसाय है, पर अपहृत धन का एक चौथाई राज्य को कर के रूप मे देना होगा, तो आप देखेंगे कि आपके राज्य की आय अल्पकाल में ही सौ-गुनी हो जायेगी। किंतु ऐसी आय का हम क्या करेंगे? राज्य को धन की आवश्यकता होती है, प्रजा के कल्याण के लिए। प्रजा के अकल्याण से, उसके कल्याण के लिए धन एकत्रित करने का तर्क कितना आत्मविरोधी है। धन की शक्ति के साथ, समाज मे शोपण की मात्रा भी बढेगी। यदि धनी और विलासी यूथपतियों तथा सामतो के द्वारा प्रजा का शोपण इतना बढ़ जाए कि दिन भर के श्रम से थका-हारा श्रमिक अपने अल्प पारिश्रमिक से, जब अपने परिवार का भोजन नही जुटा पायेगा, तो वह अपने पारिश्रमिक से मदिरा के दो चषक पीकर ही अपनी चिंताओ को भूल जाना चाहेगा। उस मदिरा से प्राप्त कर, धन नही प्रजा का रक्त है। क्या सम्राट अपने राज्य के लिए ऐसा धन चाहते हैं?"

सुग्रीव रुके तो आवेश से हाफ रहे थे।

एक क्षण के लिए तो लगा कि वाली भी विस्फोटक मुद्रा धारण कर रहे है, किंतु दूसरे ही क्षण, जैसे वे सब कुछ पी गये। आरोपित मुसकान के साथ बोले, "युवराज की आशकाए काल्पनिक तथा वायवीय हैं। इनसे मायावी का अपराध सिद्ध नही होता।"

वाली सिहासन से उठ खड़े हुए।

सुग्रीव की चिंता का कोई अंत नही था।

इस जाति का क्या होगा और इस राज्य का? जब राजा आंखों देखे तथ्यों को अनदेखा करने पर उतारू हो जाए, तो राज्य को रसातल में जाने से कौन रोक सकता है। एक तो वाली स्वयं अहंकारी है; और अब उन्हें एक-से-बढकर-एक संगी-साथी मिलते जा रहे हैं। हनुमान ने सूचना दी थी कि मायावी ने अपने वचन के अनुसार वाली के थके मन को

विश्राम दिया था। वाली के अपने मधुपान की ही मात्रा कम नहीं थी, अब मायावी ने उसे जो सुगंधित मदिरा पिलायी थी, वह वाली के लिए अभूतपूर्व थी। वैसी मदिरा वाली ने पहले कभी नहीं चखी थी. इतना ही नहीं, मायावी ने मदमस्त वाली के अक के लिए एक अनुपम सुंदरी— अलका, प्रस्तुत कर दी थी। वाली की आंखें चौंधिया गयीं। ऐसी सुंदरी की तो उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। यह यक्ष कन्या वाली को वानर जातीय स्त्रियों से बहुत भिन्न लगी थी। उसका रंग-रूप, उसके वस्त्र, उसके हावभाव, उसका हेला और भंगिमाएं...

और वाली ने स्वीकार किया कि मायावी से बढ़कर उसका कोई उपकारक नहीं है। वह मायावी को अपना परम मित्र मानता है। मायावी किष्किंधा में जो चाहे कर सकता है। वाली उसे कभी नहीं रोकेगा।

सुग्रीव की सारी कल्पनाएं, दुष्कल्पनाओं में बदलती जा रही थी...वाली के आस-पास, एक-एक कर, मायावी जैसे लोग ही एकत्र होते जा रहे थे। वाली को समझाना कठिन था कि वे उनके मित्र नहीं, शत्रु है...रावण कब से इस प्रयत्न में है कि वानरों को मादक पदार्थ उपलब्ध करा सके। उनके लिए विलास के साधन जुटा सकें। रावण के रथों के चक्रों के आगे-आगे, पहले मादक द्रव्य चलते हैं। उसके पश्चात दूत, फिर गणिकाएं, अपहरण, परस्पर कलह और अंत मे रावण की सेनाएं...मायावी के माध्यम से वाली, रावण को भी अपना मित्र मानने लगेंगे और फिर रावण से विभिन्न प्रकार की विलास सामग्रियों की अपेक्षा करेंगे।

वाली किस प्रकार क्रमशः दुश्चरित्रता की ओर बढ़ते जा रहे हैं—यह उन्हें कौन समझायेगा। वे प्रातः सागर-तट पर उपासना करते हैं। कभी-कभार उपवास भी रख लेते है, और थोड़ा-बहुत दान भी करते है। वे स्वयं को पूर्णतः धार्मिक व्यक्ति मानते हैं। धार्मिक व्यक्ति अपने-आपको दुश्चरित्र कैसे मान लेगा ! अपने दैनिक कर्म-कांड के पश्चात जैसे उन्हें संसार के प्रत्येक दुष्कर्म की अनुमति मिल जाती है।

तारा भाभी की स्थिति भी इन दिनों विचित्र है। वे देख रही हैं कि वाली किस मार्ग पर बढ़ते जा रहे हैं; किंतु उनके लिए जाति, समाज और राज्य संबंधी, वाली की नीतियों को ठीक करने के स्थान पर **अधिक**

महत्त्वपूर्ण, अपने जीवन से दूर होते हुए पति को वापस अपने जीवन में लौटा लाना है। वाली की नीतियों का विरोध कर, उन्हें उपदेश देकर अथवा फटकार कर, वे उन्हें वापस नहीं लौटा सकतीं। वाली ने इन दिनों उनके प्रति जो वितृष्णा दिखायी है, उससे तारा भाभी को सबसे अधिक चिंता अपनी स्थिति के प्रति हो गयी है.. कहीं ऐसा न हो कि वाली किसी अन्य रानी को पट्टमहिषी घोषित कर दें। अथवा, कोई नया विवाह कर, नया प्रासाद बनवा—वहीं जाकर रहने लगें...पति को प्रसन्न करने के तारा के सारे प्रयत्न निष्फल भी हैं और करुणाजनक भी...

अंगद का विरोध भीतर-ही-भीतर घुट रहा है। पिता के सम्मुख, वह कुछ बोल नहीं सकता, किंतु किष्किंधा में प्रतिदिन घटती घटनाएं देख-देखकर, उसका विरोध बढ़ता जाता है। जब घुटन बहुत बढ़ जाती है, तो सुग्रीव के पास आकर मन हलका कर जाता है। किंतु सुग्रीव भी तो कुछ नहीं कर सकते..

सुग्रीव ने जब-जब अपनी किष्किंधा पुरी को देखा था, उनको पीड़ा असह्य हो उठी थी...दो पर्वतों के बीच बसी किष्किंधा नगरी, कितनी सुंदर घाटी थी। नगर के मध्य में राज-प्रासाद था। आस-पास यूथपतियों, सामंतों, सेनापतियों और कुछ धनाढ्य व्यापारियों के आवास थे। उनके मध्य सुंदर मार्ग थे। स्थान-स्थान पर उपवन और उद्यान थे। जलाशय और नहरें थीं।. .और जहां ये प्रासाद समाप्त होते थे, वहीं से निर्धन श्रमिकों की घास-फूस और मिट्टी की बनी झुग्गियां आरंभ हो जाती थीं। न वहां पथ थे, न उद्यान, न जलाशय, न नहरें। कूड़े के ढेर जैसे कच्चे घरों में लोग रहते थे। किसी ने पर्वत की खोह का सहारा लेकर रहने के लिए ओट कर ली थी और किसी ने वृक्ष के तने को अपनी दीवार मान लिया था। न पीने के पानी का कोई प्रबंध था, न शौच-स्थान के लिए उचित व्यवस्था। किसी जोहड़ या गढ़े में संचित बरसाती पानी से वे अपना काम चलाते थे—उसी में नहाते थे, उसी को पीते थे, उसी में अपना खाद्य पदार्थ उबालते थे—यूथपतियों के पशुओं के लिए भी इससे कहीं अधिक साफ-सुथरे और व्यवस्थित आवासों का प्रबंध था। ये श्रमिक तो अपने रहन-सहन से

सचमुच वानर थे—मानवों की जाति नहीं, पशु वानर, शाखा-मृग।

वाली और उसके मंत्रियों का ध्यान मधुशालाओं और मदिरालयों के लिए स्थान का प्रबंध करने की ओर तो गया था, किंतु इन मनुष्यों के लिए भी उनका कोई कर्तव्य है—यह उन्होंने कभी नहीं सोचा .

जब कभी सुग्रीव ने अपने कुछ सामाजिक संगठनों की सहायता से उनकी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया, किसी-न-किसी मंत्री अथवा यूथपति ने वाली को सुझाव दिया कि यदि वह भूमि किसी सामंत के हाथ बेच दी जाए, तो उससे राज्य को पर्याप्त आय होगी। इन श्रमिकों का क्या है, वे तो कहीं भी रह लेंगे। राज्य की इतनी मूल्यवान भूमि इन श्रमिकों को देकर क्यों नष्ट की जाए।...और हर बार वाली ने श्रमिकों को खदेड़ कर वह भूमि सामंतों, यूथपतियों अथवा मंत्रियों को दे दी। धनिकों के नये प्रासाद बने और निर्धनों को अपनी झुग्गियों के लिए नया स्थान खोजना पड़ा। क्या करें सुग्रीव? वाली कुछ ऐसी संगति में पड़ गये हैं कि ठीक स्थिति समझाने वाले को वे अपना शत्रु समझने लगे हैं...

सुग्रीव का मन इतना भारी था कि कहीं जाने की इच्छा ही नहीं हुई। राजसभा का समय भी निकल गया तो रुमा ने टोका, "क्या हुआ है आपको? इस प्रकार मुंह-सिर लपेटे क्यों पड़े हैं? क्या आपको भी जेठजी वाला रोग लग गया है?"

सुग्रीव चौंके, "यह जेठजी वाला रोग कौन-सा है?"

"जैसे आपको मालूम ही नहीं।" रुमा मुसकराई, "राजप्रासाद में ही नहीं, सामंतों के घरों में भी चर्चा है कि जेठजी का रोग आजकल कुछ अधिक ही उग्र है।"

सुग्रीव उठकर बैठ गये, "पर यह रोग है कौन-सा—कुछ मालूम भी तो हो?"

रुमा ने उन्हें अपांग से देखा, "क्या सचमुच नहीं जानते?"

"नहीं!"

"चर्चा है कि जेठजी को नव-कन्या रोग हुआ है; अर्थात् कुछ दिनों के पश्चात्, नयी कन्या नहीं मिलती, तो सिर-मुंह लपेटे पड़े रहते हैं। किसी से बात नहीं करते, निकट आने वाले को काटने को दौड़ते हैं ..."

"तुमसे किसने कहा ?" सुग्रीव अत्यंत गंभीर थे।

"किसी एक ने नहीं कहा, प्रत्येक जिह्वा पर चर्चा है।" रुमा फिर मुसकराई, "आप राजसभा में क्या करने जाते हैं, जब आपको इतनी भी सूचना नहीं। इतनी सूचनाएं तो मुझे घर बैठे-बैठे ही मिल जाती हैं।"

सुग्रीव के लिए शैया पर पड़े रहना कठिन हो गया। वे उठकर खड़े हो गये, "और क्या-क्या सुना है तुमने ?"

"और।" इस बार रुमा का स्वर भी गंभीर था, "और यह कि इन दिनों जेठजी का निकटतम तथा प्रियतम मित्र मायावी नाम का राक्षस है। कुछ दिनों में वह किष्किंधापुरी का बहुत बड़ा व्यक्ति बन जायेगा। यदि महामंत्री न भी बनाया गया, तो भी मंत्री अथवा महासामंत तो बन ही जायेगा।"

सुग्रीव की अवस्था वैसी ही हो गयी, जैसी राजसभा में वाली के मुख से अपने लिए आरोप सुनकर हो गयी थी...निश्चित रूप से ये सूचनाएं राजप्रासाद के परिचारक-परिचारिकाओं द्वारा ही प्रचारित हुई होंगी... संभव है, भावी घटनाओं के विषय में ये किसी की निराधार कल्पना ही हों—यह भी संभव है कि भविष्य का यही रूप हो।

"भाभी से भेंट हुई ?" सुग्रीव ने पूछा।

"दीदी इन दिनों बहुत अव्यवस्थित है।" रुमा ने उदास स्वर में कहा, "वे इन चर्चाओं के विषय में कोई बात नहीं करतीं, किंतु लगता है कि उनसे भी कुछ छिपा नहीं है।"

सुग्रीव को लगा, अब घर में बैठना संभव नहीं था। उन्हें बाहर जाने की तैयारी करते देख, रुमा पुनः मुसकराई, "भूल हो गयी, जो तुमसे यह सब कह दिया।"

"इसमें भूल की क्या बात है ?" सुग्रीव समझ नहीं पा रहे थे।

"कुछ न कहती, तो घर पर तो रहते। मेरे निकट तो होते।"

सुग्रीव उदास हो गये, "यदि यही गति रही तो स्थायी रूप में तुम्हारे निकट, घर पर ही रहूंगा।"

अपने प्रासाद से निकल, सुग्रीव सीधे हनुमान के घर की ओर चले। उन्होंने

शिविका भी नहीं ली, पैदल ही चल पड़े। पिछले कुछ दिनों से उन्होंने समाज मे विभिन्न वर्गों के मानवीय संबंधों के विषय मे सोचा था। अब उनकी शिविका में चलने की इच्छा नही होती। अपने ही जैसे मनुष्यों के कंधो पर सवार होकर चलना, उन्हें पीडा देने लगा था। कभी-कभी बाध्य होकर जाना भी पड़ता था...बाध्यता भी कितनी विचित्र थी। वानरों के पास यातायात का अन्य कोई साधन ही नही था—सम्राट के पास भी नहीं। या तो शिविका में जाओ, या पैदल। जबकि सुग्रीव अच्छी प्रकार जानते थे कि राक्षसो ने अपने लिए अश्वों के साथ-साथ रथों का भी विकास किया है। उन्होने जल-मार्गों में भी अपनी परिवहन-व्यवस्था इतनी विकसित कर रखी है कि लंका से समुद्र पार कर जबुद्वीप में आना-जाना उनके लिए उतना ही सरल है, जितना वानरों के लिए पैदल चलना या शिविका में आना-जाना। किंतु, अभी सामान्य वानर इतना भी नही जानता कि परिवहन के अन्य साधन भी हो सकते हैं। कितनी बार सम्राट से चर्चा भी हुई, किंतु वे हर बार यह कहकर टाल जाते हैं कि वानरो का कार्य इन साधनों के बिना भी सुचारु रूप से चल रहा है...अब उन्होंने मायावी से मित्रता की है; किंतु इस मित्रता के फलस्वरूप या तो वे मदिरा चाहेंगे, अथवा अपने नव-कन्या-रोग की औषधि !...

कितनी पिछड़ी हुई है वानर-जाति ! पशु-धरातल से थोड़ी-सी ही उठ पायी है। भयंकर परिश्रम कर वानर खेती करते है, पशु-पालन करते है, अथवा वास्तु-कला का थोड़ा परिष्कृत ज्ञान उन्हे है। कुछ अच्छे प्रासाद बन गये हैं; किंतु नल तथा नील जैसे शिल्पी बंधुओं के होते हुए भी, वाली ने किसी नदी पर कभी सेतु बांधने की बात नही सोची, ताकि सुविधा से नदियों के ऊपर पथ प्रशस्त किये जा सकें...वाली के पास, इन बातों के लिए समय ही नही है...शस्त्रों के विषय में भी कितनी विचित्र स्थिति हैं वानरों की। उनके पास या तो दंडधर सैनिक है अथवा गदाधर। वे अन्य किसी शस्त्र को जानते ही नही। सारी वानर जाति के पास दस से अधिक खड्ग नही होंगे; और जो हैं भी, वे आर्य आश्रमों से प्राप्त किये हुए है... यदि हनुमान आर्य आश्रमों तक नही पहुंचते, तो कदाचित वानर कभी खड्ग के दर्शन भी नही कर पाते...शस्त्र राक्षसों के पास हैं, किंतु वे अपने

ज्ञान-विज्ञान से वानरो की सहायता नही करना चाहते, शस्त्र आर्यों के पास हैं, किंतु उन्हे राक्षसो ने दडकारण्य मे ही उलझा रखा है कि वे वानरों तक पहुंच ही न पायें। कभी-कभी सुनने मे आया है कि अगस्त्य नामक किसी आर्य ऋषि ने वानरो के कुछ यूथों को लाभान्वित किया है। किंतु इसके लिए उन्हें राक्षसो के साथ निरंतर और भयकर युद्ध करना पड़ा है...

राक्षस ! अपने ज्ञान से पिछडी जातियों की सहायता करने के स्थान पर उनका शोषण करने वाला संगठन। सबल द्वारा निर्बल को खा जाने वाले पशु-सिद्धात पर गर्व करने वाली जाति। हिंस्र शक्ति के दंभ और शस्त्रास्त्रों से सपन्न जाति। उनके पास गदा, मूसल, शक्ति, खड्ग जैसे सामान्य शस्त्रो के साथ-साथ धनुष-बाण जैसे विशिष्ट शस्त्र ही नही, अनेक दिव्यास्त्र भी हैं। उनके पास न धन की कमी है, न शस्त्रों की और न प्रशिक्षण के अवसरो की।

...पिता के शासन-काल में तो किसी ने इस दिशा में सोचा ही नहीं था। वानर राज्य के भीतर युद्ध होता नही था। सर्व-सम्मति से सारी प्रजा अपने सम्राट की आज्ञा मानती थी। यदि भूमि अथवा पशुओं को लेकर, किसी पडोसी गोत्र के साथ कोई सघर्ष हुआ भी, तो उसका निबटारा दोनों गोत्रों के मल्लयुद्ध से होता था; और मल्लयुद्ध में वानर वीरों को पराजित करना बहुत कठिन था।

.. किंतु होश संभालते ही, सुग्रीव ने राक्षसो को प्रबल होते देखा था। वानरो पर उनके भारी पडने का एकमात्र कारण उनके शस्त्र थे। तभी स्थान-स्थान से वानरो तथा ऋक्षों के पीडित होने के समाचार आने लगे थे। जहा कही अपना स्वार्थ सधता, राक्षस अन्य जातियों के साथ, मैत्रीपूर्ण ढग से रहने का नियम अनदेखा कर जाते थे। यदि स्थानीय यूथपति झगडा सुलझाने का प्रयत्न करता, तो राक्षस अपने शस्त्रों और दुष्टता के द्वारा उसे पराजित कर भगा देते। अनेक घटनाएं सुग्रीव के मन में बहुत ताजा और जीवन्त थी, जहा राक्षसों ने वानरो की बस्तियों में आग लगा दी थी, या अपने शस्त्रो से उन्हे काट डाला था। उनकी भूमि हथिया ली थी और उनके पशु छीन लिये थे। कई स्थानो पर उन्होने वानरो को दास बनाकर बेच डाला था। उनकी स्त्रियो का अपहरण कर ले गये थे...और वानरों

की ओर से कोई प्रतिवाद सभव नही था।

सुग्रीव की राजनीतिक समझ राक्षसों के इन्ही आक्रमणों ने निखारी थी। सुग्रीव साफ़-साफ़ देख रहे थे कि वानरो, ऋक्षों तथा अन्य जन-जातियों के क्षेत्रों मे राक्षसों के उपनिवेश बढते जा रहे थे। अपने रहने के लिए राक्षस नयी भूमि का संधान नही करते थे—वन नही काटते थे, नये खेत नहीं बनाते थे। उनके लिए अन्य जातियों के बने-बनाये खेत छीन लेना अधिक सरल था और उन्ही की देखा-देखी, प्रत्येक जाति मे राक्षस-वृत्ति पनप रही थी। प्रत्येक जाति में अपने राक्षस जन्म लेते थे, जो बाद में अन्य राक्षसों का सहयोग प्राप्त कर लेते थे...

इस आर्थिक लूट की रक्षा के लिए उन्हें राजनीतिक सत्ता और राजनीतिक विधि-विधान की आवश्यकता पड़ती थी। राजनीतिक सत्ता की रक्षा के लिए उन्होने सेनाओ का निर्माण किया था, और सेनाओं को शक्तिशाली बनाने के लिए अस्त्र-शस्त्रों का विकास किया था।

उन्हें रोकने का एक ही मार्ग था—उनके शस्त्रों का सामना। वैसे ही शस्त्रों और दिव्यास्त्रों का निर्माण ..किंतु वाली को न सेना मे रुचि थी, न शस्त्रो में। राज्याधिकार उन्हें मिल गया था। उनका अहंकार यह स्वीकार ही नही करता था कि अपने सारे शस्त्रास्त्रो के साथ भी कभी कोई राक्षस, युद्ध में उन्हें पराजित कर सकता है। अत: वे मानते थे कि बलिष्ठ व्यक्ति को न सेना की आवश्यकता थी, न कोई अन्य समस्या दिखायी पड़ती थी। रावण उनके लिए बहुत दूर की वस्तु था। निकट की समस्याए और थी—पहले तो तारा थी, अन्य सुदरी रानियां थी; और अनेक अन्य सुंदरिया थी, जो अभी उनकी रानिया बनी नही थी। पीने के लिए मधु था, खेलने के लिए आखेट था। बहुत मन ऊबा तो अखाडे मे जाकर मल्लयुद्ध कर अपने शरीर का आलस्य और मन का अवसाद दूर कर आये...

और अब आ जुटा था मायावी। जाने वह और क्या-क्या करवायेगा!...

सुग्रीव हनुमान के घर पहुंचे। हनुमान अकेले नही थे। उनके अनेक मित्र

वहां उपस्थित थे, जिनमे से कुछ को सुग्रीव पहचानते भी थे। शेष से हनुमान ने परिचय करा दिया। वे लोग किसी गभीर विवाद में जुटे हुए लगते थे, जिसने प्रायः सब लोगों में आवेश का संचार कर रखा था। सुग्रीव के आ पहुंचने से विवाद वहीं-का-वहीं छूट गया था। न उसका निर्णय हो पाया था, न वे लोग उससे मुक्त हो पाये थे।

"आप लोग अपनी बात चलाइये।" सुग्रीव बोले, "मैं किसी विशेष कार्य से नहीं आया। घर मे मन नही लग रहा था, इसलिए किसी साथी की खोज में यहां चला आया। मेरा सौभाग्य कि यहां इतने साथी मिल गये।"

"युवराज!" हनुमान बोले, "हम लोग किष्किधा राज्य—मात्र किष्किधा नगरी नही—सपूर्ण वानर-राज्य की शिक्षा-व्यवस्था के विषय मे बातचीत कर रहे थे। कितनी विचित्र बात है कि हमारा शासन अपनी अगली पीढ़ियों की शिक्षा-व्यवस्था के विषय मे सोचता ही नही है। या तो पुत्र अपने पिता से थोडा-बहुत ज्ञान अर्जित कर लेता है, या अखाड़ों में मल्लयुद्ध का अभ्यास कर लेता है। यहां जितने भी शिक्षित लोग हैं, सब वानरेतर संस्थाओं में शिक्षा पाकर आये है। मैं आर्यों के आश्रमों में पढ़कर आया हू, फिर भी इधर मुझे एक भी आश्रम ऐसा नही मिला, जहां मैं खड्ग अथवा धनुष-बाण का अच्छी प्रकार अभ्यास कर सकता। तैरने और छोटी-बडी ऊंचाइयों से कूदने का अभ्यास चाहे जितना कर लिया हो। ये नल-नील हैं, जो लंका में जाकर सेतु-निर्माण सीखकर आये है, उस विद्या का किष्किधा में सामंतों के प्रासादों मे नालियों के सेतु बनाने में उपयोग हो रहा है। हां, नील खड्ग-युद्ध अच्छा सीख आये है, जिसका लाभ कभी हमे भी मिल सकता है। कोई 'अलका' नगरी से विद्या प्राप्त करके आया है, कोई उरपुर से। प्रश्न है कि क्या गिने-चुने दो-चार व्यक्तियों के विदेशों मे जाकर विद्या-ज्ञान प्राप्त कर आने से कहीं कोई जाति आगे बढी है? ऐसे न हमारी कृषि में विकास हो रहा है, न उद्योग मे, न व्यापार मे, न परिवहन और संचार मे, न शस्त्र-विद्या और युद्ध-विज्ञान मे—किसी क्षेत्र में भी तो हम रच-मात्र आगे नही खिसके है।"

सुग्रीव मुसकराए, "तो यह कारण था आवेश का। मै भी सोच रहा

था कि आखिर विवाद क्या है..." सुग्रीव रुके और कुछ सोचकर बोले, "मुझे लगता है, मैं बड़े अच्छे अवसर पर आया हूं। इस विषय में मेरी रुचि भी है, और मैं आपको कुछ सूचनाएं भी दे सकता हूं..."

"कैसी सूचनाएं?"

"शासन की नीति-संबंधी।" सुग्रीव बोले, "सम्राट के अधिकाश मंत्रियों का विचार है कि यदि सारी वानर जाति के लिए शिक्षा की सुविधाएं सुलभ हुईं, तो यूथपति का पुत्र ही यूथपति नहीं बन पायेगा। जब एक साधारण वानरपुत्र भी सुशिक्षित हो जायेगा, तो अपनी योग्यता के बल पर, वह अपने लिए पद मांगेगा। अपने लिए राज्य से कार्य की माग करेगा। मंत्रि-पुत्रों, सामंत-पुत्रों, यूथपतियों और सेनापतियों के पुत्रों के आरक्षित पद स्थायी नहीं रह पायेंगे। इसलिए शिक्षा के प्रसार की कोई आवश्यकता नहीं है। राज्य के उच्चाधिकारियों के पुत्रों को चुन-चुनकर विद्याध्ययन के लिए अन्य जातियों के आश्रमों और गुरुकुलों में भेजा जा सकता है, ताकि यह कहकर इनके पदों को और भी दृढता से आरक्षित रखा जा सके कि वे विदेशों से उच्च शिक्षा प्राप्त करके आये है, अतः अधिक योग्य है।"

"युवराज! क्या आपको नहीं लगता कि यह स्थिति सारी जाति के लिए अत्यंत घातक है।" नल क्षुब्ध स्वर में बोले, "कुछ व्यक्तियों अथवा परिवारों के स्वार्थ को बनाये रखने के लिए एक संपूर्ण जाति को पशुओं के धरातल पर जीने को बाध्य करना कहा का न्याय है...!" वे रुक गये, जैसे शब्द खोज रहे हों, "शायद मैं ठीक शब्द खोज नहीं पा रहा हूं... मैं यह कहना चाहता हू कि यह अन्याय तो है ही, यह घोर मूर्खता भी है। इससे संपूर्ण जाति दुर्बल-की-दुर्बल रह जायेगी, और भविष्य में यदि किसी दूसरी जाति ने हम पर आक्रमण किया, तो ये उच्चाधिकारी अपने निजी स्वार्थों की भी रक्षा नहीं कर पायेंगे। इनके विदेशी शिक्षा प्राप्त पुत्र शत्रुओं के घरों में उनके जूठे बर्तन धोते दिखायी पड़ेंगे...!"

"ठीक बात है।" नील ने अपने भाई का समर्थन किया, "आज स्थिति यह है कि रावण पहले शक्तिशाली राष्ट्रों से निबट रहा है। वह शायद यह मानता है कि वानर राज्य उसकी मुट्ठी में है, जिस दिन

चाहेगा, हमें पीस डालेगा। इसीलिए वह इस बात का ध्यान भी रखे हुए है कि जब तक वह इधर पग नहीं बढ़ाता, जब तक वानर जाति भी ऐसी की ऐसी आदिम अवस्था में बनी रहे। वह न तो अपने राज्य का ज्ञान-विज्ञान इस ओर आने देगा और न आर्य ऋषियों को ही इस ओर आगे बढ़ने देगा। यदि वह मैत्री के नाम पर किष्किंधा की राजसभा में भेजेगा भी तो विद्वानों को नहीं, चतुर व्यापारियों को; जो हमें लूटें। वह भेजेगा विलास की सामग्री के उत्पादकों को, और भेजेगा राक्षस-संस्कृति के प्रचारकों को। और जिस दिन उसे अपने प्रबल विपक्षी आर्यों, यक्षों, देवों और गंधर्वों से अवकाश मिला, वह वानर-राज्य के सम्राट, युवराज, मन्त्रियों, सामंतों, श्रेष्ठियों, यूथपतियों और सेनापतियों को बांधकर ले जायेगा और अपनी अश्वशाला में उनसे लीद उठवाने का कार्य लेगा...।"

नील रुके तो इतने क्षुब्ध लग रहे थे, जैसे अपने क्रोध में ही रो पड़ेंगे।

"ठीक यही स्थिति है . पर मेरे मन में एक बात और भी है।" हनुमान बोले, "हम मान लें कि राक्षसों अथवा किसी भी इतर जाति का हम पर आक्रमण न भी हो, तो भी क्या यह स्थिति हमें भयंकर परिणामों की ओर नहीं ले जायेगी?" हनुमान ने रुककर अपने साथियों की ओर देखा—सब पूर्ण तन्मयता से उनकी बात सुन रहे थे, "यदि हम आपद्धर्म के रूप में यह स्थिति स्वीकार कर भी लें कि सामान्य वानर अशिक्षित ही रहेगा और हमारे शासक विदेशों से ही अध्ययन करके आयेंगे तो भी कुछ समस्याएं हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं।" हनुमान बोले, "आज विदेशों से पढ़कर आये वानर स्वयं को अपनी जाति से जोड़ते हैं और उसकी हीन दशा देखकर पीड़ित होते हैं। इनकी संख्या जब तक कम है, एक प्रकार की दुखद स्थिति है; और जब यह संख्या बढ़ जायेगी, एक दूसरे प्रकार की दुखद स्थिति उत्पन्न होगी। जैसे-जैसे इन विदेश-शिक्षित लोगों की संख्या बढ़ती जायेगी, उनका अपना एक पृथक् उच्च वर्ग बनता चला जायेगा और उनकी सहानुभूति अपनी निर्धन और पिछड़ी हुई जाति से कम, अपने वर्ग से अधिक होती जायेगी। न केवल अपनी जाति के लिए वे विदेशी होते जायेंगे, वरन् उसके लिए अपने मन में अधिक-से-अधिक घृणा संचित करते जायेंगे और अवसर पाते ही स्वयं को अपनी जाति के

हत्यारे प्रमाणित करेंगे। सुदूर भविष्य में कोई ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि जब किन्हीं कारणों से शासन, सामान्य जन के हाथ मे आयेगा, तो सामान्य जन अपने इस घृणा भरे शत्रु—विशिष्ट वर्ग—की हत्या कर देगा। वानरो के लिए ये दोनो ही स्थितिया अत्यन्त दुखद होंगी...।"

एक वार फिर से चुप्पी छा गयी। सब लोग अपनी-अपनी सोच मे डूब गये।

थोडी देर के पश्चात सुग्रीव ही बोले, "मेरा विचार है कि आप सब लोग स्थिति को बहुत अच्छी प्रकार समझ रहे है। पर एक पक्ष और भी है। इस सारे सवाद के पश्चात यदि हम केवल इस निष्कर्ष पर पहुचे कि हमारी जाति के लिए शिक्षा तो आवश्यक है, और इस बात पर एकदम ध्यान न दें कि हमारी जाति को कैसी शिक्षा चाहिए, तो भी समस्या नही सुलझेगी।" वे क्षण-भर रुककर पुन: बोले, "यह बात मैं इसलिए कह रहा हू कि कही ऐसा न हो कि सम्राट पर दबाव पड़े और वे किष्किंधा में पाठशालाएं, गुरुकुल अथवा आश्रम जैसे शिक्षा-संस्थान स्थापित करने के लिए तैयार हो जाएं तो हमारे मंत्रिगण ऐसे शिक्षा-संस्थान स्थापित करें, जिनमे अध्ययन-अध्यापन विदेशी भाषाओ मे हो; तथा विदेशी ज्ञान को विदेशी पद्धतियों से हमारी संतानों में प्रचारित किया जाए। ऐसे विषय पढाए जाएं, जिनका हमारी समस्याओं से कोई संबंध न हो और जो हमारी जाति का आत्मवल बढ़ाने के स्थान पर, उसमें हीन भावना को गहरे तक उतारते जाएं। परिणामत: एक ओर तो हमारा सामान्य जन युगों के लिए शिक्षा से दूर फेंक दिया जाए और दूसरी ओर अपनी जाति को हीन मानने वाला, अपनी जाति का शत्रु, एक संभ्रांत वर्ग पैदा हो जाए।"

"ठीक कहते हैं युवराज !" नील ने सहमति प्रकट की।

"मेरा विचार है कि अब समय नही खोना चाहिए।" हनुमान बोले, "युवराज ! आप राजकुमार अंगद से भी बात कर लें और इस विषय को कल राजपरिषद मे सम्राट के सम्मुख अवश्य प्रस्तुत करें।"

मार्ग में ही सुग्रीव को ज्ञात हो गया कि राजसभागार में आज कोई विशेष उत्सव है। सारे मार्ग में स्थान-स्थान पर तोरण बने हुए थे। पथ को

विशेष रूप से स्वच्छ कर पानी का छिड़काव किया गया था। अनेक राज-कर्मचारी अब मार्ग की शोभा के लिए प्रयत्नशील दिखायी पड़ रहे थे...

सुग्रीव के मन में आया कि वे किसी कर्मचारी से पूछें कि यह सारी व्यवस्था किसके लिए हो रही है? परसों तक तो ऐसी कोई सूचना नहीं थी। बस, कल एक दिन ही वे राजसभा में उपस्थित नही हुए थे। कल-ही-कल में ऐसी कौन-सी राजाज्ञा प्रचारित हो गयी, जिसके कारण इतनी हलचल मची हुई है। ऐसा तो वर्ष-भर में कुछ विशेष उत्सवों पर ही होता है...किंतु अपनी जिज्ञासा को उन्होंने संयत किया। इतनी भी क्या उत्कंठा कि सभागार तक पहुंचने तक की प्रतीक्षा नहीं कर सकते। वहां जाते ही ज्ञात हो जायेगा।

सभा में पहुंचते ही उन्हें बता दिया गया कि एक दिन पूर्व, उनकी अनुपस्थिति में सम्राट ने आज महासामंत-उपाधि-वितरण समारोह की घोषणा की थी...सुग्रीव चकित रह गये। इतने महत्त्वपूर्ण समारोह भी क्या इस प्रकार घोषित किये जाते हैं, जैसे हाट से कोई वस्तु क्रय कर लानी हो...अकस्मात् ही सुग्रीव का ध्यान दूसरी ओर चला गया। ऐसा क्या हुआ है कि सम्राट किसी से ऐसे प्रसन्न हो गये हैं कि उन्होंने तुरंत उसे उच्चतम उपाधि देने का निश्चय कर डाला है...कौन है वह व्यक्ति? कहीं सुषेण तो नहीं? सुषेण सम्राट के श्वसुर है। किष्किंधा के सबसे बड़े युद्ध-वैद्य हैं। ...तारा भाभी को प्रसन्न करने के लिए, यह सबसे सरल उपाय है, और वैसे भी सम्राट के श्वसुर को महासामंत तो होना ही चाहिए। आश्चर्य तो यह है कि सम्राट ने उन्हें सम्मानित करने में इतना विलंब कैसे कर दिया। निश्चित रूप से यह समारोह सुषेण के सम्मान के लिए ही होगा—और कोई व्यक्ति तो इतना महत्त्वपूर्ण लगता ही नहीं है। फिर इतनी त्वरा और किसी के लिए होगी भी क्यों?

यदि यह प्रयास तारा भाभी को प्रसन्न करने के लिए है, तो बड़ा सुखद अवसर है। पिछले कितने ही दिनों से ऐसे ही समाचार आ रहे थे, जिससे साम्राज्ञी के प्रति, सम्राट की निरंतर वर्धमान अरुचि के प्रमाण मिलते थे। यदि अब ऐसा कोई परिवर्तन सम्राट मे आया है कि वे अपनी साम्राज्ञी को प्रसन्न करना चाहते हैं, तो यह उनके दाम्पत्य जीवन के लिए

अत्यन्त शुभ घटना होगी।

दूसरे ही क्षण सुग्रीव के विचार, वाली के दाम्पत्य जीवन से हटकर, अपने कौटुंबिक जीवन की ओर मुड़ गये...कहां तो दोनों भाइयों में इतना स्नेह था...सुग्रीव को अपना शैशव आज भी याद आता है, तो आंखें भर आती हैं। शैशव से ही वाली, सुग्रीव से कहीं अधिक सबल और भोले थे। सुग्रीव बार-बार विभिन्न प्रकार से हठ करते थे और वाली उनका प्रत्येक हठ मान लेते थे। पिता सदा हंसते हुए कहा करते थे कि यह छोटा, बड़े को नचायेगा। और वाली प्रसन्न होकर कहते थे, "यह मुझे जितना नचाता है, उतना ही मुझे अच्छा लगता है।" कितना प्यार था वाली में और कितना तेज! राजनीति से अधिक उनका ध्यान पूजा-पाठ में था। पूजा-पाठ में तो आज भी उनका उतना ही ध्यान है, किंतु वह सात्विकता समाप्त हो गयी है। कुछ निरंकुश राज्याधिकार, कुछ शारीरिक बल का अहंकार, कुछ चिंतन का अभाव, और कुछ कामुकता तथा विलास की प्रवृत्तियां—क्या से क्या हो गये हैं वाली! बात-बात में दोनों भाइयों में मतभेद होता है—जैसे भाई न हों, विपक्षी हों, या विरोधी हों...विरोध भी क्रमशः उग्र होता जा रहा है। राजनीतिक मतभेद से कभी-कभी वह व्यक्तिगत संबंधों की सीमा में आ पहुंचता है। पता नहीं, उसका अंत क्या होगा...

सम्राट के आ जाने पर सभा का वातावरण बदल गया। सभासद अपने-अपने नियत स्थान पर आ बैठे। समस्त औपचारिक गतिविधियों का पालन किया गया और कार्यवाही आरंभ हुई।

सम्राट की ओर से घोषणा की गयी कि यह अत्यंत हर्ष और उल्लास का अवसर है कि वानर साम्राज्य ने अपने एक वास्तविक मित्र को पाया है और अत्यल्प समय में ही साम्राज्य को इतना लाभ हुआ है कि स्वयं सम्राट चकित हैं...

सुग्रीव ने सिर उठाकर इधर-उधर देखा, किंतु सुषेण तो कहीं दिखायी ही नहीं पड़ रहे थे। अभी क्षण-भर में उनके नाम की घोषणा होगी, तो वे कहां से प्रकट होंगे—धरती फोड़कर निकलेंगे कि आकाश छेद

कर और सभासदों के चेहरों से तैरती हुई सुग्रीव की दृष्टि सहसा थम गयी। यह मायावी यहां क्या कर रहा है? यह इतना प्रसन्न दिखायी पड़ रहा है और इतना शृंगार करके आया है, जैसे इसी को महासामंत की उपाधि मिलने वाली है.. इसको सभागार में प्रवेश करने की अनुमति किसने दी !

वाली कह रहे थे—"और हम न केवल अपने साम्राज्य के उस मित्र को अपना सभासद नियुक्त करते हैं, वरन उसे महासामंत की उपाधि प्रदान करते हैं। आओ, मित्र मायावी !..."

सुग्रीव का मस्तक जैसे किसी वृहद् चक्र के साथ बंधा घूमने लगा था। उनकी स्थिति अत्यंत विचित्र हो गयी। शिराओं में सारा रक्त जैसे एक बार ही सनसनाने लगा था। भुजाएं फड़कने लगी थीं और उनके शरीर के भीतर की कोई ठोस वस्तु जैसे वक्ष फोड़ बाहर निकल आना चाहती थी...

सुग्रीव की दृष्टि अनायास ही अंगद पर जा टिकी। अंगद जाने क्या सोचकर, अपने स्थान पर खड़े हो गये थे। उनका चेहरा असाधारण रूप से रक्तिम हो उठा था। उनकी आंखों में जड़-शून्यता का ऐसा भाव था, जैसे वे उन आंखों से सम्राट और सभासदों को न देख, किसी भूत को देख रहे हों। प्राय अचेतावस्था में उन्होंने अपने होंठों पर जिह्वा फेर उन्हें गीला किया। कुछ कहने के लिए उनके होंठ फड़फड़ाये, पर उनसे शब्द नहीं फूटे। फिर उनकी आखें जैसे कांप गयीं और वे भहराकर अपने आसन पर बैठ गये।

सुग्रीव ने अपनी आखें सिंहासन की ओर फेरीं—वाली ने अपने हाथों से मायावी के कंठ में माला पहनाकर, उसे महासामंत की प्रतिष्ठा प्रदान की।

सुग्रीव का मुंह कसैला हो गया। मन वितृष्णा से आप्लावित हो उठा। जी में आया, अपने आसन से उठें और तुरंत बाहर चले जाएं। क्या करेंगे वे युवराज की उपाधि धारण करके, जब उनको शासन की नीतियों और कृत्यों के संबंध में बोलने का तनिक-सा भी अधिकार नहीं है। क्या करेंगे वानर-सम्राट की राजसभा में उपस्थित रहकर, जब उनकी आखों के सम्मुख अपराधी को महासामंत की पवित्र उपाधि से विभूषित कर,

उसके कंठ मे मालाए पहनाकर उसका अभिनन्दन किया जायेगा।

किंतु, दूसरे ही क्षण मन ने कहा, वे सब बाद की बातें हैं। इस समय तो वे शासन का अंग है, युवराज पद के अधिकार और कर्तव्य—दोनों को ही वे धारण करते हैं। शासन के प्रत्येक निश्चय और कृत्य में वे भागी हैं। उसका दायित्व उन पर भी है। अत: अपना विरोध प्रकट करने का यही क्षण है। समय पर मौन रहकर, बाद में आलोचना करते फिरना मूर्खता भी है और कायरता भी।

मायावी ने लौटकर अपना आसन भी ग्रहण नही किया था कि सुग्रीव उठकर खड़े हो गये।

वाली की दृष्टि सहसा खड़े हो गये सुग्रीव पर पडी—सुग्रीव के चेहरे पर जो भाव थे, वे उनके मन की स्थिति की स्पष्ट घोषणा कर रहे थे। और वाली समझ रहे थे कि सुग्रीव के मन के भाव मधुर नही थे। वाली का चेहरा भी तमतमा गया, किंतु स्वयं को मर्यादित रखने की वाली ने अद्‌भुत क्षमता दिखायी।

"युवराज महासामंत को बधाई देना चाहते है ?" वाली ने मुसकान का मुखौटा पहन लिया, "किंतु उसके लिए अभी समय नही आया। सबसे पहले हम स्वयं बधाई देंगे।"

"नहीं, सम्राट !" सुग्रीव के कंठ से चीखता हुआ स्वर निकला, "मैं सम्राट के विचारार्थ अपनी आपत्ति प्रस्तुत करना चाहता हूं; और सम्राट द्वारा बधाई दी जा चुकने के बाद आपत्ति के लिए कोई अवकाश ही नहीं रहता।"

"कैसी आपत्ति ?" वाली का क्रोध अपना आभास देने लगा था।

"महासामंत अथवा ऐसी कोई भी महत्त्वपूर्ण उपाधि देने से पूर्व सम्राट, युवराज, राजकुमार तथा मंत्रियों मे विधिवत इस पर विचार होना चाहिए था, किंतु मायावी को यह उपाधि प्रदान करने से पूर्व सम्राट ने किसी से कोई विचार-विमर्श नही किया। यह नीति-विरुद्ध है...!"

वाली का स्वर मुखर क्रोध लिये हुए था, "और युवराज का इस प्रकार राजसभा के उत्सवों मे बाधाएं प्रस्तुत कर, सम्राट का अ. करना नीति के भी विरुद्ध है और मर्यादा के भी।"

"सम्राट !" सुग्रीव जैसे अपने आपको भूल गये, "एक अपराधी को महासामत की पवित्र उपाधि देकर, आपने मर्यादा का जो हनन किया है, वह अपने-आप मे अपराध है .."

"युवराज !" वाली दहाड़कर बोले, "अपनी सीमा का ध्यान रखो। सम्राट को पूर्ण अधिकार है कि वह युवराज को पदच्युत कर, नये युवराज का अभिषेक कर दे। हमें बाध्य मत करो कि हम तुम्हे सम्राट का अपमान करने के अपराध में युवराज के पद से च्युत कर, कारागार में प्रतिष्ठित कर दें।"

अपने आवेश मे भी सुग्रीव को यह समझने मे विलब नही हुआ कि इस बार उनका मुख खुलते ही वाली अपनी धमकी को कार्यरूप में परिणत कर देंगे...वाली को ऐसी चुनौती देने का निश्चय वे तब ही कर सकते हैं—जब वे पहले *यह निर्णय कर लें कि अब उन्हें शासन मे नही रहना है और* शासन के क्रोध का जोखिम भी उठाना है...किंतु क्या उसका समय आ पहुचा है?...अभी तो वे युवराज के सम्मानित तथा अधिकारपूर्ण पद पर है। शासन की कोई बात उनसे गुप्त नही रहती। पग-पग पर वे सम्राट को रोकते हैं, उनकी नीतियों को सुधारने का प्रयत्न करते है, तब यदि वे शासन को सामान्य-जन के कल्याण की ओर प्रवृत्त नही कर पाते; तो यदि वे शासन छोड़कर अलग हो जाए, तब वे सामान्य वानरों के लिए क्या कर पायेंगे?...शासन के भीतर रहते हुए, यदि वे शासन की नीति का विरोध करते हैं, तो उसे विचार-विमर्श या वाद-विवाद कहा जा सकता है। शासन के बाहर से वे उसका विरोध करेंगे तो उसे विद्रोह माना जायेगा। उससे वे किसी का कोई लाभ कर पायेंगे या नही, कहना कठिन है, किंतु अपनी हानि वे अवश्य कर लेगे...

सुग्रीव अपने स्थान पर बैठे रहे। उनकी खुली आखो के सम्मुख जैसे कोई छाया-नृत्य हो रहा था। वे उसे देखते हुए भी नही देख रहे थे। लगता था, जैसे कुछ छायाए उठती हों, कुछ करती हो, और अपने स्थान पर बैठ जाती हों। सुग्रीव उनकी आकृतियो को देखते हुए भी पहचान नही रहे थे, उनके शब्दों को सुनते हुए भी समझ नही रहे थे।

यह प्रतिभासित छाया-नृत्य सुग्रीव की आंखों के सम्मुख से तब विलीन हुआ, जब उपाधि-वितरण-समारोह संबंधी कार्यवाही समाप्त हो जाने के पश्चात सम्राट के विचारार्थ अन्य विषय रखे गये।

पहला समाचार नगर कोटपाल की ओर से था कि कल, एक दिन के भीतर, नगर में से अलग-अलग स्थानों से चार कन्याओं के अपहरण के परिवाद प्राप्त हुए है। नगर के प्रवेश-द्वार के रक्षकों के नायक का कहना है कि कल एक भी कन्या नगर से बाहर नही गयी है, सयोग से कल दिन भर में कोई पालकी भी द्वार से बाहर नही गयी, जिससे संदेह किया जा सके कि उसमे कोई कन्या छिपाकर ले जायी गयी होगी। नियमतः नगरद्वार से आने-जाने वाली पालकियो को वे भली प्रकार देखते है, किंतु कल कोई पालकी बाहर गयी ही नही...

सुग्रीव के कान खड़े हो गये। उन्होने मायावी को देखा, वह बड़ा तटस्थ-सा बैठा उस समाचार को सुन रहा था। सुग्रीव की दृष्टि अंगद की ओर गयी। अंगद क्रुद्ध दृष्टि से मायावी को घूर रहा था...तो अंगद को भी मायावी पर ही सदेह था...बहुत संभव है कि एक ओर मायावी, वाली का विश्वासपात्र बनकर महासामत की उपाधि का गौरव प्राप्त कर रहा हो और दूसरी ओर अपनी दस्यु-वृत्ति का विस्तार कर रहा हो। उधर कोटपाल, अपराधी की खोज में आकाश-पाताल एक कर रहा होगा, और इधर यह महासामंत की उपाधि से मंडित, कितना सुरक्षित बैठा है यहां। कोई इसकी ओर अंगुली भी नही उठा सकता...

"यदि द्वार-रक्षक कहते हैं कि कन्याएं नगर से बाहर नही गयी, तो वे नगर में ही होंगी।" वाली कह रहे थे, "उन्हें खोजो।"

"सम्राट! कल दिन भर हम नगर में खोजते रहे हैं।" कोटपाल ने सिर झुकाकर निवेदन किया, "जहां-जहां हमें खोज करने का अधिकार है, वहा वे नही हैं। यदि वे नगर के भीतर ही हैं, तो संभवतः उन भवनों में होंगी, जहा खोज करने का अधिकार हमें नहीं..."

"ठीक है। ठीक है।" सम्राट ने कोटपाल की बात बीच में ही काट दी, "खोज होती रहनी चाहिए।"

सम्राट दूसरे कामों की ओर उन्मुख हो गये।

सुग्रीव का मन हुआ, एक बार गला खोलकर हँसें—न्याय के इस नाटक का अर्थ क्या है ? कोटपाल स्पष्ट शब्दों में कह रहा है कि अपहृत कन्याएं कुछ उन शक्तिशाली और महासम्पन्न लोगों के भवनों में छिपाई गयी है, जहां खोज करने का अधिकार कोटपाल को नहीं है, और सम्राट कहते है कि खोज होती रहनी चाहिए...सुग्रीव के मन की विचित्र अवस्था थी—वे समझ नहीं पा रहे थे कि हँसें या रोयें, वाली पर क्रुद्ध हों, या उन पर दया करें।

"कोई नया प्रस्ताव अथवा निवेदन ?" सुग्रीव के आत्म-चिंतन से वाली का स्वर टकराया।

सुग्रीव खड़े हो गये।

"युवराज को फिर कोई आपत्ति करनी है क्या ?" वाली ने कटाक्ष किया।

सुग्रीव के मन मे आया कि गदा उठायें और वाली के सिर पर दे मारें। ऐसा अपमान ! किस स्तर पर उतर आया है यह व्यक्ति !

"नहीं !" सुग्रीव भारी प्रयत्न कर कह पाये, "एक नया प्रस्ताव है।"

"व्यापार-संबंधी ?" वाली पूछ रहे थे—अर्थात प्रस्ताव के विषय मे जाने बिना, वे उसे प्रस्तुत भी नहीं होने देंगे।

"नहीं ! शिक्षा-संबंधी।"

"प्रस्तुत करो।"

अर्थात् वाली मानते थे कि ऐसा प्रस्ताव उनके लिए हानिकारक नहीं होगा।

सुग्रीव ने स्वयं को संयत किया। उनका प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण था। यदि उनकी किसी भंगिमा के कारण सम्राट ने उसका विरोध किया, तो संपूर्ण वानर-जाति का अहित होगा।...सुग्रीव को सावधान रहना होगा।

एक निरीह-सी दृष्टि सुग्रीव ने सभासदों पर डाली और बोले, "हम सब जानते हैं कि बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। उससे अगली पीढ़ी का निर्माण होता है, और किसी जाति, समाज या राष्ट्र के भविष्य का निर्माण उसकी अगली पीढ़ी ही करती है।" सुग्रीव ने क्षण भर के लिए रुककर वाली की ओर देखा। वाली के चेहरे पर स्पष्ट अरुचि

थी। किंतु, उससे क्या ? बोलना तो था ही, "हम सब यह भी जानते हैं कि संपूर्ण वानर-जाति ने अपनी अगली पीढ़ी की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की है। सम्राट से निवेदन है कि वे राज्य में एक स्वतंत्र शिक्षा-विभाग की स्थापना करें, जिस पर संपूर्ण जाति की शिक्षा-व्यवस्था का दायित्व हो।"

सुग्रीव चुप हो गये। सभा में मौन छा गया।

वाली ने अपनी दृष्टि इधर-उधर घुमायी और पूछा, "और कोई मत ?"

सम्राट का मुंहलगा मंत्री कटाक्ष उठकर खड़ा हो गया, "सम्राट ! इस विषय में मेरी भी कुछ रुचि है, इसलिए मैं भी इस विषय में सोचता रहा हूं। राजकुमारों, मंत्रियों, सामंतों, यूथपतियों, सेनानायकों इत्यादि कुलीन लोगों की संतानों की शिक्षा-दीक्षा की बात तो मेरी समझ में आती है। संभव हो तो उनके लिए किष्किंधा में कोई पाठशाला खुलवा दी जानी चाहिए। किंतु कृषक, श्रमिक और सामान्य-जन का पुत्र शिक्षा पाकर क्या करेगा ? पा भी गया तो वह मंत्री बनेगा क्या ?"

कटाक्ष उपहासपूर्ण भद्दी हंसी हंसा। सुग्रीव कुछ कहते, उसके पूर्व ही तमतमाये हुए अंगद उठ खड़े हुए, "सम्राट से निवेदन है कि मुझे भी अपना पक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति मिले।"

"बोलो।"

"यदि मंत्री कटाक्ष यह समझते हैं कि केवल मंत्री बनने के लिए ही शिक्षा आवश्यक है और अन्य लोगों के लिए अनावश्यक, तो मेरा उनसे स्पष्ट मतभेद है।" अंगद अपना आवेश छिपा नहीं पा रहे थे, "किसी भी जाति की उन्नति के लिए आवश्यक है कि उसका एक-एक सदस्य सुशिक्षित हो। यदि वे समझते हैं कि साधारण वानर का, पशु के समान ही जीना उचित है, तो वे भूल जाते हैं कि पशुपालन के लिए भी शिक्षा से अधिक उपयोगी लाठी होती है। ऐसी स्थिति में हमारे मंत्रियों की शिक्षा की भी कोई आवश्यकता नहीं है।" अंगद ने बाली की ओर देखा, "सम्राट से मेरा निवेदन है कि वे प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा की नीति को राजकीय पर मान्यता दें और उसके लिए व्यवस्था करें। आज हमारी जाति देवों, आर्यों, राक्षसों, यक्षों आदि से पिछड़ी हुई है, तो उसका

कारण हम में शिक्षा का अभाव है। अन्य जातियों का सामान्य व्यक्ति भी हमारे विद्वान मंत्रियों से अधिक, अपनी जाति का हित समझता है।" अंगद का स्वर ऊंचा उठा, "मेरा निवेदन है कि सम्राट यह दायित्व युवराज को सौंपें कि वे समुचित शिक्षा की विस्तृत व्यवस्था की योजना बनाएं और सम्राट के विचारार्थ प्रस्तुत करें।" अंगद ने अपना स्थान ग्रहण किया।

"कोई और विचार ?" वाली ने पुनः पूछा।

"यदि सम्राट तथा अन्य सभासदों को कोई आपत्ति न हो, तो मैं भी कुछ कहना चाहूंगा।" मायावी अपने स्थान पर उठकर खड़ा हो गया।

वाली के चेहरे पर उल्लास प्रकट हुआ, जैसे किसी गंभीर समस्या का समाधान मिल गया हो, "महासामंत मायावी अपना मत प्रस्तुत करें। सम्राट और सभासद उनके विचारों की उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

मायावी मुसकराया और अत्यन्त सहज स्वर में बोला, "सम्राट ! मैं युवराज सुग्रीव और राजकुमार अंगद, दोनों से ही सहमत हूं कि किसी भी जाति या राष्ट्र की उन्नति के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है।" वह रुका और, चेहरे पर हलकी-सी घबराहट लाकर बोला, "सम्राट ! मुझे क्षमा करें। मैं जाति से वानर नहीं हूं। इसलिए अपनी बात कहने से थोड़ा डरता हूं। कहीं यह न समझा जाए कि वानर न होने के कारण, मैं वानरों का हित नहीं चाहता। किंतु, आपने मुझे अपना सभासद नियुक्त कर जो प्रेम और सम्मान दिया है, उससे मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वानरों के हित की बात कहूं।"

"महासामंत निर्भय होकर कहें।" वाली बोले, "हमें आपके विचार जानकर प्रसन्नता होगी।"

"सम्राट !" मायावी बोला, "शिक्षा से मेरा कोई विरोध नहीं है, किंतु आप जानते हैं कि वानर-राज्य निर्धन राज्य है। वह संपन्न राज्यों के विलासों को अंगीकार नहीं कर सकता। आप जानते हैं कि शिक्षा कोई व्यापार नहीं है, जिससे राज्य की आय बढ़े। यह एक ऐसा विभाग है, जिसमें व्यय ही व्यय है। और अनेक बार ऐसा भी होता है कि जिन आचार्यों को, राज्य अपना धन व्यय कर नियुक्त करता है तथा जिनकी आजीविका का प्रबंध करता है, वे आचार्य विश्वासघात करते हैं और शासन का साथ नहीं

देते। अनेक बार शासन की निन्दा कर वे अपने विद्यार्थियों को भी विद्रोह का पाठ पढ़ा देते है। ऐसी स्थिति मे शासन बड़ी विकट स्थिति मे फस जाता है। वह अपने ही धन से अपने काल का पोषण करता है—जिसे न वह उगल सकता है, न निगल सकता है।" एक क्षण के लिए रुककर मायावी श्रोताओं पर अपनी बात की प्रतिक्रिया देखता रहा और पुनः बोला, "सम्राट से मेरा निवेदन है कि जब तक वानर-राज्य सपन्न नही हो जाता, तब तक ऐसे व्यय-साध्य विलासों का बोझ अपनी निर्धन जाति पर न डालें। हां, प्रशासन चलाने के लिए कुछ सुशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी। उतने लोगो की शिक्षा का प्रबंध लंका में सुविधा से किया जा सकता है। मुझे आशा है कि लंका के राजाधिराज अपनी सद्भावना के कारण, इतने थोड़े-से लोगों की शिक्षा का नि.शुल्क प्रबध कर देंगे।"

मायावी के बैठने की देर थी कि अंगद पुन. खड़े हो गये, "सम्राट ! यदि प्रजा के कल्याण-कार्यों पर राज्य का धन व्यय नहीं किया जाना है, तो प्रजा पर कर लगाने का शासन को कोई अधिकार नही है। राज्य की समस्त आय इसलिए है कि उससे जन-कल्याण का कार्य हो सके। वह किसी श्रेष्ठि की पूंजी नही है, जो केवल लाभार्जन के लिए ही लगायी जायेगी। यदि हमारे चिंतन की यही दिशा रही कि प्रजा पर व्यय नही होना चाहिए, तो सम्राट मुझे यह कहने की अनुमति दें कि फिर शासन की कोई आवश्यकता नही है। शासन का मूल ध्येय प्रजा का कल्याण है, यदि वह यह नही कर सकता, तो फिर शासन की भी कोई आवश्यकता नही है।"

"सम्राट ! यह राजद्रोह है।" मंत्री कटाक्ष अंगद की बात के बीच में ही उठ खड़ा हुआ, "मेरा निवेदन है कि ध्यान दिया जाए कि राजकुमार को ऐसी शिक्षा कौन दे रहा है, अन्यथा अनर्थ हो जाएगा।"

अब सुग्रीव को उठना ही पड़ा, "सम्राट ! मैं राजकुमार से सहमत हू, और यदि मंत्री कटाक्ष का संकेत मेरी ओर था कि मैं राजकुमार मे राजद्रोह की भावना भर रहा हूं, तो निवेदन है कि यदि राजकुमार ऐसी बातें मुझसे सीख रहे हैं, तो मैं स्वयं पर गर्व का अनुभव करूंगा। यह राजद्रोह नही, शासन का सत्य है। सत्य बोलना गौरव का विषय है।

अपराध का नही। सम्राट को उचित परामर्श देना प्रत्येक सभासद का कर्तव्य है। उचित परामर्श न देने वाले सभासद या तो अयोग्य हैं अथवा छली..."

"युवराज अपने विषय पर आयें !" वाली का स्वर शुष्क था।

"मेरा मतव्य यह है सम्राट !" सुग्रीव सभले, "कि राजकीय आय का सदुपयोग प्रजा के कल्याण मे व्यय हो जाने मे है, और दूसरी बात यह है कि प्रजा की बौद्धिक जागरूकता और बुद्धिवादियो की स्वतत्रता को राजद्रोह का पर्याय मान, उनसे शत्रुता पालना अत्यन्त विर्वंली चिंतन-पद्धति है। अपने स्वार्थ के लिए शासन की अनुचित नीतियों की प्रशंसा और प्रचार बौद्धिक अपराध है। बिका हुआ बुद्धिजीवी अत्यन्त घातक जंतु है। अत. सम्राट का कर्तव्य है कि निर्भीक तथा स्वतंत्र चिंतन करने वाले बुद्धिजीवियो को न केवल किष्किंधा मे आश्रय दें, वरन् उनका पूर्ण सम्मान करें। आर्यों की उन्नति का मूल कारण उनके ऋषि हैं, सम्राट नही। बुद्धिजीवियों से भयभीत हो, उन्हें क्रय करने का प्रयत्न भी उतना ही राक्षसी है, जितना उनकी हत्याएं करने का। रावण की बुद्धिजीवियों के दमन की नीति न राक्षसों का उत्थान है, न संसार का कल्याण। उस नीति को अंगीकार करना किसी भी जाति के लिए आत्मघाती होगा...।"

"युवराज यदि अपनी बात कह चुके हो, तो अपना व्याख्यान समाप्त करें।" वाली ने सुग्रीव को टोक दिया, "रावण की निन्दा सुनने मे हमारी कोई रुचि नही है।"

पूरी शक्ति से आत्मनियंत्रण का प्रयत्न करने पर भी सुग्रीव स्वय को हत्प्रभ होने से रोक नही सके। बड़ी कठिनाई से कह पाये, "अपनी बात मै कह चुका।"

"अब सम्राट का निर्णय !..." मायावी मुसकरा रहा था।

"शिक्षा आवश्यक है।" वाली बोले, "इसलिए भावी प्रशासकों को चुनकर शिक्षा के लिए लंका भेज दिया जाए। किष्किंधा का वानर-राज्य शिक्षा-सस्थानो का व्यय उठाने तथा बुद्धिजीवियो की स्वतंत्रता की चुनौतियां स्वीकार करने में अभी असमर्थ है।"

वाली सिंहासन से उठ खड़े हुए।

वाली को स्वयं अपने-आप पर आश्चर्य हो रहा था कि राजसभा में उन्होंने स्वयं को इतना संयमित कैसे रखा। संयम उनके स्वभाव में नहीं था। इन दिनों तो अपने मन में आयी बात का विरोध वे सह ही नहीं पाते थे। प्रत्येक मत-वैभिन्न्य उन्हें अपना विरोध लगता था, और प्रत्येक विरोध अपना अपमान। वाली अपना अपमान नहीं सह सकते, इसलिए वे मतभेद भी नहीं सह सकते। मतभेद की गंध पाते ही शरीर का सारा रक्त जैसे उनके मस्तिष्क की ओर दौड़ने लगता है, सोचने-समझने की शक्ति समाप्त हो जाती है। मन में आवेश उबलने लगता है, और हाथ गदा पर चला जाता है। फिर तो आंखों को ध्वस-ही-ध्वस दीखता है—विनाश-लीला। और वाली के मन में आता है कि अपनी गदा तथा पैरों के आघात से सारी पृथ्वी को चूर्ण के एक ढेर में बदल दें...

आजकल उनका सबसे अधिक विरोध सुग्रीव ही करने लगा है। कोई भी तो ऐसी बात नहीं होती, जिस पर वे दोनों भाई सहमत हो सकें। मतभेद भी सैद्धांतिक—उससे व्यक्तिगत विरोध भी उभर ही आता है।... और वाली को उससे भी अधिक पीडामय आश्चर्य होता है, अंगद को लेकर। दिन-प्रतिदिन अंगद उनसे दूर होता जा रहा है। पुत्र अपने ही पिता से दूर होता जा रहा है। दूरी भी कैसी—असंपर्क की नहीं, विरोधी दिशा की।

वाली को लगता है, कि यह सारा विरोध मायावी के कारण है। सुग्रीव और अंगद, दोनों ही चाहते थे—और कदाचित आज भी चाहते हैं कि मायावी को बंदी कर, उसे दंडित किया जाये : और मायावी है कि वाली के थके हुए मन को विश्राम देता है।...सहसा वाली के लिए सारी सृष्टि विलीन हो गयी। मस्तिष्क में एक ही बात बार-बार ध्वनित हो रही थी—थके मन का विश्राम। आंखों के सम्मुख एक ही रूप था—अलका। वाली का शरीर तपने लगा। मन में बार-बार ऐंठन होने लगी।...उन्हें लगा, जैसे वे असीम शून्य में खड़े हैं। दसों दिशाओं में कुछ भी नहीं है, बस शून्य-ही-शून्य। और वाली का शरीर साधारण शरीर न हो—शिराओं में जैसे आग-ही-आग भरी है और कोई उनकी शिराओं को, दो छोरों से पकड़कर खींच रहा है—शिराएं हैं कि न स्वयं को ढील पाती हैं, न टूट ही

पाती है। ..और सामने खड़ी है अलका—दो हाथों की दूरी पर। वाली हाथ बढ़ाये तो यह यक्ष-कन्या उनकी भुजाओं में आ जाए। वह शीतल जल का रूप है। वाली जानते हैं कि उसे अपनी भुजाओं मे पाते ही, शिराओं में बहती हुई आग, मद मे बदल जायेगी। तनी, खिंची, टूटी हुई शिराएं—वाद्य-यंत्रों के तारो के समान झंकारने लगेंगी। मन की जलन अमृत हो जायेगी।.. पर वाली जैसे ही अलका की ओर हाथ बढ़ाना चाहते है, सुग्रीव और अंगद कही से प्रकट हो उन्हे टोकने लगते है...

वाली का मस्तिष्क झनझनाने लगा...उनकी भृकुटियां तन गयी और हाथ ने सचमुच गदा उठा ली—इस सुग्रीव को मार्ग से हटाना ही होगा, और स्वय न सुधरा तो अंगद को भी।...वाली का मन बार-बार कहता है कि सब उनके सुख के शत्रु हैं। कोई नहीं चाहता कि वे सुखी हों। उनके सुख के लिए तो कोई कुछ करना ही नही चाहता। जो सुख उन्होने स्वयं अपने लिए प्राप्त किया था, वे लोग उसे भी छीन लेना चाहते है। कोई उनका अपना नही है—न भाई, न पुत्र। न पत्नी...तारा भी नही।...वाली के मन मे वितृष्णा जागी। तारा! कब तक वे तारा से ही बंधे रहें। तारा चाहती है कि वाली उससे पहले के ही समान प्यार करें—और वाली तारा का स्पर्श भी करते हैं, तो कोई उनके मन को शूलोयुक्त गदा से कूटना-पीटना आरंभ कर देता है...तारा की आकृति देखते ही उनका हृदय एक विराट शिला के समान भारी हो जाता है...

सहसा वाली को लगा, सोचते-सोचते जैसे उनका दम घुट रहा है। वायु अपनी वायवीयता छोड़कर जैसे ठोस हो गयी है।...अब वे रुक नहीं सकते। उन्हें दो मे से एक काम करना ही होगा—या तो वे सुग्रीव और अंगद की हत्या कर देंगे या फिर वे अलका को अपनी भुजाओ में बाधकर सारे संसार को भूल जायेंगे।

वाली उठ खड़े हुए।

"क्या हुआ, प्रिय?"

तारा अभी तक सोयी नही थी। वाली के जबड़े भिंच गये—यह चुड़ैल भी बैठी चौकसी करती रहती है।...उन्हें लगा, यदि वे तत्काल ही वहा से हट न गये, तो आज यहां कुछ अघटनीय घट जाएगा।

वे तारा की बात का उत्तर दिये बिना ही द्वार की ओर बढ़े।

"कहां जा रहे हैं, स्वामी?" तारा ने पुन: पूछा।

"तुम सो रहो।"

बहुत चाहने पर भी वाली अपनी खीझ छिपा नहीं पाये। अपने स्वर की कठोरता से वे स्वयं घबरा गये। रुकना असंभव था। द्वार खोलकर वे बाहर निकल गये।

रात चांदनी थी, किंतु पथ सूने थे। एकाकी वाली चुपचाप उन्मत्त व्यक्ति के समान बढ़ते जा रहे थे। परिचारकों, द्वारपालों तथा दंडधरों को रोषपूर्वक, साथ आने का निषेध कर, वाली अकेले ही प्रासाद की सीमाओं से बाहर निकल आये थे।...थोड़ी ही दूर चलने पर वाली को लगा, रात की शीतलता, चांदनी तथा खुली हवा ने उनके उत्तप्त मस्तिष्क पर जैसे चंदन का लेप कर दिया था। उनका मस्तिष्क, जो किसी हिंस्र पशु के समान अब तक केवल चिंघाड़ रहा था, और सामने आयी प्रत्येक वस्तु पर झपट पड़ना चाहता था, अब जैसे उस जड़ावस्था से निकलकर कुछ अनुभूति-प्रवण भी हो गया था। वह समझ रहा था कि सुख की भी एक अनुभूति होती है। आंखों को कोई दृश्य अच्छा लग सकता है, कानों को कोई शब्द और हाथों को कोई स्पर्श...जैसे-जैसे वाली के पग अलका के घर के निकट पहुंच रहे थे, सुख की वायवीय अनुभूति वाली के मन में आकार ग्रहण करती जा रही थी। वाली की आंखें केवल अलका को देखना चाहती थीं। कान केवल अलका का स्वर सुनना चाहते थे और शरीर केवल अलका का स्पर्श।

और उसका अभिप्राय क्या है, एक बार फिर से उनके शरीर का सारा रक्त उनके मस्तिष्क मे समा गया। मति वश मे नहीं रही। वे आविष्टावस्था मे थे। उनके हाथ बढ़े—एक हाथ ने परिचारक की गरदन को पीछे से पकड़ा और दूसरे हाथ ने उसकी कटि को थामा। एक ही झटके मे परिचारक के पैर भूमि से उठ गये। वाली ने उसे अपने सिर से ऊपर उठाकर, हवा मे तीन-चार चक्कर दिये और फिर पूरी शक्ति से दूर फेंक दिया। पलटकर यह भी नही देखा कि वह कहा गिरा है।

वाली ने घर के भीतर प्रवेश किया और सीधे अलका के द्वार पर पदाघात किया। द्वार भीतर से बंद था, किंतु प्रकाश की किरणें बाहर से भी भासित हो रही थी।

"कौन है?" भीतर से अलका का स्वर सुनाई पड़ा।

"मैं हू वाली। द्वार खोलो।" और बिना प्रतीक्षा किये वाली निरतर द्वार धड़धड़ाते चले गये, "द्वार बंद क्यो कर रखा है? खोलो।"

प्रत्येक निमिप के साथ वाली का क्रोध बढ़ता जा रहा था।...वाली को रोका गया, एक साधारण परिचारक के द्वारा—"भीतर जाने की अनुमति नही है।" ऊह! एक तो वाली का अपमान! और दूसरे अलका और वाली के बीच की बाधा। वाली यह सहन नही कर सकते।...ऐसे समय में वाली के वक्ष में जो पीड़ा, और रक्त मे जो उन्माद उठता है, वह वाली के अपने ही वश मे नहीं रहता। पीडा की ऐंठन पर ऐंठन, क्रोध की लहर पर लहर, रक्त का रेले पर रेला ..

वाली कपाट पर ठोकरें जमाते जा रहे थे। कभी हथेली से मारते, कभी मुक्के से, कभी पैर के पजे से आघात करते, कभी एडी से..."खोलो! द्वार खोलो!"

भीतर से अलका के पहले प्रश्न के बाद कोई शब्द नहीं हुआ था। न कोई जिज्ञासा, न रुकने की प्रार्थना, न द्वार खोलने का आश्वासन। जैसे भीतर कोई हो ही नहीं।.. किंतु अलका भीतर थी—परिचारक ने भी कहा था और अलका ने भी पहली खटखटाहट के उत्तर में पूछा था कि बाहर कौन है...फिर वह बोल क्यो नही रही? क्या उसे सुनायी नही पड़ता? द्वार की चूलें हिल रही है और अलका को सुनायी नहीं पड़ता...

वह बहरी हो गयी है या मर गयी है? वाली के मन में जैसे ज्वालामुखी फूटा—वे द्वार ही उखाड़ फेंकेंगे, फिर न उसे खोलने की आवश्यकता होगी और न ही उसे कभी बंद किया जा सकेगा।. .वाली मुड़े और पांच पग लौटकर पलटे.. तभी द्वार भीतर से खुल गया।

वाली लपककर कमरे के भीतर घुसे। सामने अलका खड़ी थी—अस्त-व्यस्त केशों और वस्त्रों में। चेहरे का रंग उड़ा हुआ था और सारा शरीर थर-थर काप रहा था...

"परिचारक ने मुझे भीतर आने से क्यों रोका?" वाली चिंघाड़ भरे स्वर में बोले; और उन्होंने अलका को दोनो कंधों से पकडकर झंझोड़ा, "द्वार खोलने में इतना विलंब क्यों हुआ?"

अलका ने एक बार दृष्टि उठाकर वाली की ओर देखा और सिर झुका लिया।

"बोलो!" वाली ने उसे फिर से झंझोड़ा।

"मायावी के कारण।" अलका फुसफुसाहट में बोली, जैसे कंठ से स्वर ही न फूट रहा हो।

"मायावी!" वाली के मस्तिष्क में ज्वाला धधक उठी, "मायावी यहा था? तुम्हारे पास?"

अलका ने सिर नही उठाया।

वाली को लगा, किसी ने वृहदाकार गदा से उनके वक्ष पर भरपूर वार किया है। वे लडखड़ा गये...मायावी ने मदिरा में धुत्त वाली के सम्मुख अलका प्रस्तुत की थी—"सम्राट! देवताओं के नन्दनवन मे भी ऐसा अम्लान कुसुम नही है। स्पर्श तो दूर, आज तक किसी ने इसको सूंघा भी नही है।...यह अलका आपकी है।"...और अब वाली को बताया जा रहा है कि मायावी स्वयं यहां था। दुष्ट मायावी। सुग्रीव प्रतिदिन कहता था—मायावी दुष्ट और अपराधी था। वह वानर कन्याओं का अपहरण कर, उन्हें राक्षसों के शृंगार हाटों में बेच रहा था।...किंतु वाली ने मायावी का विश्वास किया, सुग्रीव का नहीं। और तो और, उन्होंने अपने पुत्र अंगद की बात की भी उपेक्षा की...और मायावी स्वयं वाली की प्रिया

के सतीत्व का हरण करता रहा...धिक्कार है वाली के पौरुष पर, धिक्कार. .!

वाली की इच्छा हुई, अलका का गला घोंटकर उसे मार डालें अथवा उसे भी परिचारक के समान उठाकर बाहर फेंक दें। उनकी भुजाएं उठी भी, किंतु भुजाओं से पूर्व जिह्वा चली, "वह पहले भी तुम्हारे पास आता रहा है ?"

"नियमित !"

"तुम्हारी इच्छा से ?"

अलका का भय कुछ कम हुआ। उसने दृष्टि उठायी। कंठ के स्वर का अवरोध भी जैसे कम हुआ।

"मेरी इच्छा ?" उसके चेहरे पर विद्रूप की मुसकान उभरी, "मेरा हरण मेरी इच्छा से हुआ है, या मायावी की संगति मुझे अपनी इच्छा से झेलनी पड़ी है, या आपकी भोग्या मैं अपनी इच्छा से बनी हूं...!"

"तुम्हारा हरण हुआ है ?" अचकचाकर वाली ने पूछा।

"उसके बिना भी कोई स्त्री सर्वभोग्या बनी है क्या ?"

"हरण किसने किया ?"

"उन्हें नहीं पहचानती, किंतु हरण करवाने वाला मायावी है।"

सहसा वाली चौंके, मानो किसी निद्रा से जागे हों, "मायावी कहां गया ?"

"सम्राट को बड़ी देर से ध्यान आया।" अलका ने उपहास की दृष्टि से वाली को देखा, "वह उस खुले गवाक्ष से कूदकर भाग गया था। अब तक कदाचित कोस भर निकल गया होगा।"

वाली हतप्रभ हो गये। कितने आहत और अपमानित हुए थे वे। अब तक शत्रु से प्रतिशोध न लेकर इधर-उधर के प्रश्न पूछते रहे और शत्रु कोस भर निकल भी गया। वे कहां पायेंगे उसे ? कैसे अपने अपमान का प्रतिशोध लेंगे ?

वे जाने के लिए मुड़े, किंतु दो-चार डग चलकर, थमकर बोले, "जब तक कोई अन्य आदेश न दिया जाए, तुम यहीं रहोगी। तुम्हारे भरण-पोषण का दायित्व राज्य पर होगा।"

वे जिस गति से आये थे, उसी गति से लौट गये।

वही पथ था और वैसा ही अंधकार; किंतु वाली बहुत बदले हुए थे। इतने हतप्रभ तो वे कभी नहीं हुए थे—थके-टूटे, अपमानित और निराश!...क्या परख है वाली को मनुष्य की? उन्होंने आज तक किसी को इतनी मैत्री, प्रेम और सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा था—और क्या निकला मायावी! विश्वासघाती, मित्रद्रोही, लंपट और दुष्ट...और वाली ने उसे महासामंत बना दिया था। वह राजसभा में किसी का भी अपमान कर सकता था...युवराज सुग्रीव का भी! सुग्रीव! वाली का अपना सगा भाई—समझदार, जागरूक और वीर। किंतु वाली ने सुग्रीव की एक भी नहीं सुनी...सुग्रीव जैसे भाई का भी उन्होंने अपमान किया...सहसा वाली की आंखों के सामने अलका का मुखमंडल घूम गया। अलका! संसार का पुंजीभूत सौंदर्य। उसके कारण तो वाली संसार में किसी का भी अपमान कर सकते हैं...सुग्रीव का भी...किंतु अलका के कारण ही मायावी, वाली को अपमानित कर गया...अपमानित! वाली को लगा, अपमानित शब्द तो बहुत हलका है, वाली उससे कहीं अधिक आहत और पीड़ित हुए हैं। उनका हृदय जैसे किसी ने परत-परत कर छील दिया है, उसमें से निरंतर रक्त बह रहा है...ज्वाला धधक रही है।...यह ज्वाला तो तभी शांत होगी, जब वाली मायावी के शरीर को उसी प्रकार रक्त-स्नात कर देंगे, जैसा कि आज उनका अपना मन हुआ है।

...वाली के लिए, आसपास का सारा संसार विलीन हो गया। उनकी आंखों के सम्मुख एक अज्ञात युद्ध-क्षेत्र था, जिसमें मायावी का क्षत-विक्षत, रक्त-स्नात मृत शरीर भूमि पर पड़ा था और उसके वक्ष पर वाली अपना पैर रखे, कंधे पर अपनी भारी गदा उठाये, विजयी मुसकान में आवेष्टित, गर्व से सिर ऊंचा उठाये खड़े थे।...

मायावी की हत्या के बिना अब वाली किसी भी प्रकार शांति नहीं पा सकते थे...मायावी को मरना ही होगा...अलका का प्रत्येक स्पर्श, मायावी को उनके मध्य लाकर खड़ा कर देगा...और अलका के बिना वाली जीवित नहीं रह पायेंगे...

२

सुग्रीव अभी सोकर उठे ही थे कि परिचारक ने सूचना दी कि बाहर सम्राट का दडधर नायक खड़ा है। वह सम्राट के आदेश से उन्हे लिवा ले जाने के लिए आया है।

कोई और समय होता तो सुग्रीव यही सोचते कि वाली को उनकी याद आ गयी होगी या फिर उनसे मिलना चाहते होंगे। भाई के प्यार मे बधे, बिना कुछ सोचे-समझे ही चल पड़ते। किंतु अब परिस्थितियां वैसी नही रही थी। वाली के द्वारा बुलाया जाना, भेंट अथवा विचार-विमर्श के लिए न होकर उनकी रुष्टता के कारण भी हो सकता था। इन दिनों कोई दिन ऐसा नही बीतता, जिसमें वाली के रुष्ट होने के लिए कोई-न-कोई नया कारण उठ न खड़ा होता हो। वाली कई बार अपना रोष प्रकट कर, दड की संभावनाओ का भी सकेत कर चुके हैं। ..कही ऐसा तो नही कि पिछली रात को फिर किसी आपानक गोष्ठी अथवा किसी सुंदरी के अक में बैठे वाली को कोई नया मायावी मिल गया हो। उसने उन्हे सुग्रीव के विरुद्ध भड़का दिया हो और वाली ने उन्हे बुला भेजा हो...बुलाने के लिए भी प्रासाद का कोई परिचारक नही आया, दंडधर नायक आया है। वह भी किस समय? यदि सुग्रीव इतने सवेरे न उठ गये होते, तो अभी अपनी शैया पर सोये हुए मिलते। तो क्या वाली ने सुग्रीव को सोये-सोये बंदी किये जाने का आदेश दिया है ?. .वाली जैसे भाई के लिए, सामान्य स्थिति में यह सभव नही है, किंतु उनके मस्तिष्क पर मायावी आरूढ़ हो तो प्रथम सभावना यही है।...यही होगा...यही होगा...किंतु प्रमाण पाये बिना सुग्रीव को कोई निश्चय नहीं करना चाहिए।

सुग्रीव चलने लगे तो अपना खड्ग और गदा लेना नही भूले। यदि दंडधर उन्हे बंदी कर ले जाने के लिए ही आये हैं, तो सुग्रीव को उनका सामना करना होगा। वे बंदी के रूप में अपमानित होने के लिए वाली के सम्मुख नहीं जायेंगे...

रुमा के पति को खड्ग और गदा से सज्जित होते देखा तो मुसकराईं, "द्वंद्व-युद्ध का निमंत्रण आया है क्या?"

"नहीं।" सुग्रीव हंस नहीं सके, "आया तो मात्र निमंत्रण है, किंतु द्वंद्व-युद्ध भी हो सकता है, रुमा !"...सुग्रीव का स्वर और भी गंभीर हो गया, "यदि कभी मेरे बंदी होने, किष्किंधा से बाहर चले जाने अथवा मारे जाने का समाचार..."

"प्रिय !" रुमा ने बीच में ही बात काट दी।

"मेरी बात तो सुनो।" सुग्रीव वैसे ही गंभीर रहे, "यदि ऐसा कोई भी समाचार आये तो अपनी रक्षा करना। तुम्हारे सहायक होंगे हनुमान। अंगद, नल और नील भी तुम्हारे सहायक हो सकते हैं। मंद और द्विविद भी हैं ही। किंतु वाली पर तनिक भी विश्वास मत करना..."

रुमा अवाक् खड़ी रह गयी और सुग्रीव बाहर निकल गये।

दंडधर नायक को देखते ही सुग्रीव की आशंकाएं विलीन हो गयीं। अकेला दंडधर नायक सुग्रीव को बंद नहीं कर सकता—इतनी बात तो वाली भी समझते हैं। यदि नायक अकेला ही आया है, तो स्थिति अभी इतनी भीषण नहीं हुई है, जितनी कि सुग्रीव समझ बैठे थे।

"कैसे आये, नायक ?" सुग्रीव का मन कुछ हलका हुआ।

"युवराज !" नायक ने अभिवादन किया, "सम्राट बड़ी व्याकुलता से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"क्रुद्ध हैं ?"

"क्रुद्ध भी हैं और पीड़ित भी।" नायक मुसकराकर बोला, "किंतु क्रोध आपके प्रति नहीं है।"

"चलो।"

सुग्रीव का मन जिज्ञासाओं की अनेक तीखी आरियों से उलझा हुआ था।

वाली सचमुच अत्यंत व्यग्रता से सुग्रीव की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने न सुग्रीव के अभिवादन की चिंता की, न परिचारकों के हटने की। लपककर सुग्रीव को उनके कंधों से इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे वे सम्राट बनने से पूर्व पकड़ा करते थे। मानो पुराने वाली ही लौट आये थे—जो न

थे, न कुछ और। वे केवल सुग्रीव के भाई थे। उनकी भंगिमा मे ऐसा कोई चिह्न नही था, जो यह बताता कि वे सुग्रीव से कभी रुष्ट भी रहे है... सर्वथा सीधी और पारदर्शी आखें, जिनमें न मद था, न अहंकार, न सत्ता का भाव, न शक्ति का दंभ .

"क्या बात है, सम्राट ?"

"सम्राट नही, भाई कहो।" वाली बोले, "सम्राट बनकर मैं तुमसे बहुत दूर हो गया था।"

सुग्रीव का कंठ कुछ भर आया, "क्या बात है, भैया ?"

"बात क्या है, मेरी वही पुरानी मूर्खता !" वाली सरल भाव से बोले, "किसी को भी देखा और उस पर विश्वास कर लिया, फिर चाहे कोई कितना कहे कि वह झूठा है। कहा मानता हूं मैं। तुमने कितना कहा कि वह दुष्ट है, अपराधी है, किंतु मैंने उसकी बात मान ली कि वह थके मन को विश्राम देने वाला वैद्य है।..."

"अब क्या हुआ, भैया ?"

"अब !" वाली के स्वर में पीड़ा और आवेश, दोनों उभर आये, "अब मैं जान गया हूं कि वह लंपट है, परस्त्रीगामी है, कन्याओं का अपहरणकर्ता है .."

"आप जान गये है तो उसे बंदी कीजिये। उस पर आरोप लगाइये। उसका स्पष्टीकरण सुनिये। और यदि वह अपराधी प्रमाणित हो जाए तो उसे दंड दीजिये।"

"तुम ठीक कहते हो। मैं यही करूंगा।" वाली अपने आवेश पर नियंत्रण नही रख पा रहे थे, "तुम्हें मैंने इसीलिए बुलाया है। कल रात वह अलका के घर से भागा है। मैंने अभी नगरद्वार तथा अन्य स्थानों पर नियुक्त रक्षकों को आदेश दे दिया है कि जहा कही वह दिखायी पड़े, मुझे सूचित किया जाए।...अभी नगर में उसकी खोज नही की गयी है, पर मेरा विचार है कि वह नगर मे नहीं मिलेगा। इतना मूर्ख वह नही है कि वाली की शत्रुता मोल लेकर भी वह किष्किधा नगरी में रुका रहे। इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया है..." वाली ने रुककर उन्हे देखा, "मैं चाहता हूं कि तुम अपने साथियों के साथ मिलकर उसकी खोज करो। जहा कही उसका

पता चले, तत्काल मुझे सूचित करो। तुम लोग न तो उसका वध करोगे और न उसे बंदी बनाओगे। मुझे सूचित करना। यह मेरा और उसका द्वंद्व-युद्ध है..."

"इसमें द्वंद्व-युद्ध की क्या बात है?" सुग्रीव बोले, "वह अपराधी है। किसी भी राजकर्मचारी को अधिकार है कि वह उसे बंदी करे।"

"वे अपराध बाद में देखे जायेंगे।" बाली का चेहरा तमतमा गया, "पहले हम दोनों अलका का झगड़ा निबटा लें।" उन्होंने रुककर सुग्रीव को देखा, "जब तक मैं द्वंद्व-युद्ध में उसका वध नहीं कर लूंगा, मुझे शांति नहीं मिलेगी।"

"इसका अर्थ क्या हुआ?" लम्बे मौन को तोड़ते हुए नील बोले, "इसमें न न्याय की बात है, न सिद्धांत की। दो कामुक और लंपट व्यक्ति कल तक मित्र थे और मिलकर हमें अपमानित करते थे। आज उनमें झगड़ा हो गया है, इसलिए हम एक की सहायता करने के लिए दूसरे का वध करवाते फिरें। मुझे क्षमा करना, राजकुमार!" नील ने अंगद की ओर देखा, "किंतु मेरे विचार में सम्राट भी उतने ही कामुक और लंपट हैं, जितना कि वह राक्षस मायावी...!"

"यद्यपि सम्राट मेरे पिता हैं, किंतु मैं नील से तनिक भी असहमत नहीं हूं।" अंगद धीमे स्वर में बोले, "चाचाजी, क्या आपको यह नहीं लगता कि यह दो लंपटों का आपसी झगड़ा है, जिसका कोई राजनीतिक महत्त्व नहीं है। इसमें हम किसी का भी पक्ष क्यों लें?"

"इसका अर्थ यह हुआ कि इस झगड़े में हम किसी का भी साथ न दें और सम्राट तथा मायावी दोनों को ही अपनी मनमानी करने दें, चाहे सामान्य-जन की जितनी भी क्षति हो?" हनुमान बोले।

"नहीं। मेरा अभिप्राय यह नहीं है।" नील बोले, "सम्राट से मतभेद होते हुए भी समय-समय पर हम उनके साथ सहयोग करते ही रहे हैं। अब भी हम उनकी सहायता करना चाहते हैं, पर उसमें कहीं तो कोई जनहित की बात हो।..."

"जनहित की बात तो है।" नल ने नील की बात काटी, "वे एक

अपराधी को दंड देना चाहते हैं। क्या मायावी का अपराधी होना कोई अस्वीकार कर सकता है ?"

"मायावी तो अपराधी है ही।" नील ने स्पष्ट किया, "किन्तु सम्राट यह कहा मान रहे हैं ? क्या उन्होंने आदेश दिया है कि मायावी को पकड़-कर हम उसे दड दें या दडित करने के लिए राजसभा ले आयें।...वे कह रहे है कि हम उसे खोजकर उन्हें सूचित करें, ताकि अपनी प्रिया के अन्य जार का वध कर, वे अलका की दृष्टि मे स्वय को वीर प्रमाणित करें तथा अपने प्रतिस्पर्धा के रक्त से अपने मन की ईर्ष्याग्नि बुझायें। ऐसे घृणित झगडों में, बीच मे पड़ने का क्या अर्थ ? क्या आप लोगों को नही लगता कि यह सपूर्ण प्रसंग ही दुराचरण प्रसंग है ?"

एक बार फिर से मौन छा गया और सब अपने-अपने चिंतन मे लीन हो गये।

मौन लंबा हो गया तो रुमा ने पहली बार मुख खोला, "अब यदि आप लोगों के पास कहने को कुछ न रह गया हो, तो मैं भी कुछ कहूं।"

"बोलो।" सुग्रीव बोले, "यद्यपि मैं इस बात से सहमत नही हूं कि अब हमारे पास कहने को कुछ रह ही नही गया। मैंने तो अभी कुछ कहा ही नही है।"

"तो पहले आप ही बोल लीजिये।" रुमा बोली।

"नहीं, पहले तुम अपनी बात कह लो।" सुग्रीव मुसकराये, "थोड़ा-सा धैर्य मुझमे भी है।"

"हम में से कोई भी इस बात से असहमत नही है कि यह मायावी और सम्राट का एक घृणित झगडा है। हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम अलका को इन दोनों के चंगुल से मुक्त करें।" रुमा बोली, "किन्तु यह अभी संभव नही दीखता। तब ऐसी स्थिति में हम यह स्वीकार कर लेते है कि सम्राट और मायावी—दोनो ही समान अहितकारी तत्त्व हैं। जब तक वे संगठित थे, दोनों मिलकर मनमाना अत्याचार कर रहे थे—और आप जानते है कि राजसभा मे तथा बाहर भी, आप लोगों का प्रत्यक्ष अपमान हो रहा था। अब स्थिति यह है कि वे दोनों समाज अहितकारी तत्त्व परस्पर लड़ना चाहते हैं, तो हमें तटस्थ खड़े रहना चाहिए अथवा किसी एक का पक्ष

ग्रहण कर, दूसरे को नष्ट करना चाहिए।" रुमा क्षण भर रुककर पुनः बोली, "यदि किसी एक का पक्ष लेना है, तो किसका—मायावी का अथवा सम्राट का?"

"मैं रुमा से पूर्णत सहमत हूं।" सुग्रीव ने बात का सूत्र उठा लिया, "आदर्श स्थिति यही होगी कि हम सम्राट और मायावी—दोनो का विरोध करें और उनसे संघर्ष करें। मायावी को बंदी कर दंड दें और सम्राट को अपदस्थ कर, उनके विरुद्ध आरोप प्रमाणित कर उन्हें भी दडित करें..."

"यह कैसे सभव है?" अंगद बोले।

"मैं जानता हूं, संभव नहीं है।" सुग्रीव मुसकराए, "वाली तुम्हारे पिता हैं, मेरे भाई हैं; हमारे अपने रक्त के, भूमि के, यूथ और गोत्र के अंग है। और वैसे भी हम उनसे इतने निराश नही हुए है कि उनके विषय में ऐसी बात सोचें..."

"सबसे बड़ी बात यह है कि हम अभी उन्हें अपदस्थ करने में समर्थ ही नही है।" हनुमान ने उनकी बात काटी, "ऐसा प्रस्ताव अव्यावहारिक है। इस प्रकार का अव्यावहारिक सघर्ष आत्महत्या है। आप इन दोनों का एक साथ विरोध करेंगे तो वे दोनो फिर से मिल बैठेंगे और आप पर घातक आक्रमण करेंगे।"

"ठीक है।" सुग्रीव पुनः बोले, "इसीलिए मैंने आरंभ मे ही कहा कि यह आदर्श स्थिति है। ..दूसरी स्थिति यह है कि हम यह मान लें कि दोनों पक्ष भ्रष्ट और जन-अहितकारी हैं, अत. हम तटस्थ होकर बैठे रहें, इससे न तो उन दोनों मे किसी की शक्ति कम होगी और न हम जनहित की ओर बढ़ पायेंगे। उससे भी बडी बात यह है कि ऐसी धारणाएं प्रजा मे दावाग्नि के समान फैलती हैं। सामान्य जन मान लेता है कि राजनीति तो है ही दुष्ट लोगो का काम। इनमे से कोई सापनाथ है तो कोई नागनाथ। हमें इनसे क्या लेना-देना। परिणामत. प्रजा स्वय को क्रमशः राजनीति से काटती चलती है। सत्ता शक्तिशाली होती जाती है और दमन बढ़ता आता है। यह अत्यन्त घातक स्थिति है। सामान्य जन की राजनीति से असपृक्तता शासक के लिए सुगम स्थिति है और जन-सामान्य के लिए घोर

दमनकारी। इसलिए ..." सांस लेने के लिए सुग्रीव रुके और पुन. बोले, "जब दो समाज-अहितकारी तत्त्वों में संघर्ष की संभावना हो, तो क्या हमारे लिए उचित नहीं है कि हम उस संघर्ष को उग्र कर, अत्याचारियों की संख्या कम करें?" सुग्रीव पुनः रुककर बोले, "यदि हम तटस्थ रहकर चुपचाप खड़े देखते रहेंगे तो मायावी और सम्राट—दोनों ही अपने-अपने ढंग से मनमानी करते रहेंगे—यह जनहित में नहीं है। और यदि सम्राट को संदेह हो गया कि हम उनकी सहायता नहीं करना चाहते हैं, तो हमारे लिए उनके मन में विरोध बढ़ेगा। हमें अपने जन-समर्थक प्रस्तावों के लिए उनकी सहमति प्राप्त करना और भी कठिन हो जायेगा।...यहां तक तो ठीक है न?"

"हां। ठीक है।" हनुमान बोले।

"अब हमारे पास एक ही विकल्प है," सुग्रीव बोले, "कि हम सम्राट के साथ सहयोग करें और मायावी का अनाचार समाप्त करें। इससे हम सम्राट को प्रभावित कर, उनको अपने प्रति सहानुभूतियुक्त बना सकते हैं। अपना पक्ष उन्हें समझाकर, उनकी नीतियों में परिवर्तन भी कर सकते हैं।"

सुग्रीव चुप हो गये। शेष लोग भी चुप ही रहे। फिर से वहां मौन छा गया।

"क्यों, भाई! ठीक है?" सुग्रीव ने पूछा।

"यही ठीक रहेगा।" नील बोले।

"एक बात और भी है।" सहसा सुग्रीव को कुछ स्मरण हो आया, "हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि सम्राट ने मायावी को खोज निकालने का आदेश अपने दंडधरों अथवा गुप्तचरों को क्यों नहीं दिया। विशेष रूप से मुझे ही बुलाकर क्यों कहा कि मैं अपने साथियों की सहायता से यह काम करूं?"

"आपकी योग्यता पर सम्राट का विश्वास लौट आया है।" रुमा मुसकरायी।

"चाचीजी शायद परिहास कर रही हैं।" अंगद बोले, "पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिस समय पिताजी के मन में चाचाजी के प्रति विरोध

फुफकार नहीं रहा होता, उस समय उन्हे अपने निकटतम और विश्वसनीय सहयोगी चाचाजी ही लगते है।"

"मैं अपनी प्रशसा के लिए नही कह रहा हूं।" सुग्रीव बोले, "किन्तु इस बात मे तथ्य है कि सम्राट मुझे और मेरे सहयोगियों को अपने मत्रियो से कहीं अधिक योग्य मानते है। पर मेरे सहयोगियों को वे अपने मत्रियों के स्थान पर नियुक्त नही कर सकते, क्योंकि मेरे सहयोगी न उनके दंभ और अहंकार को स्फीत करेंगे और न उनके विलास की सामग्री प्रस्तुत करेंगे। यह सब समझते हुए उन्होंने यदि हमें यह काम सौंपा है और अपने शासन-तंत्र की अयोग्यता स्वीकार की है, तो हमे इस अवसर का लाभ उठाकर उन्हे अपने प्रभाव में लेना चाहिए।"

"ठीक है। हम प्रायः सहमत हैं कि हमे सम्राट से सहयोग करना चाहिए।" हनुमान बोले, "अब आगे का कार्यक्रम निश्चित कर लीजिये।"

"नील ! तुम सहमत हो न ?" सुग्रीव ने पूछा।

"जब हनुमान सहमत है, तो मुझे क्या आपत्ति है।" नील हसे।

"इस प्रकार नहीं।" सुग्रीव बोले, "हनुमान की आड़ मत लो। कोई आपत्ति हो तो अब भी बोलो।"

"नही। ठीक है।" नील बोले, "कार्य की योजना बनाइये।"

"योजना यह है कि हम एक-एक दिशा चुन लें और अपनी टोली के लिए सहयोगी चुन लें।" सुग्रीव बोले, "अपनी टोली के सदस्य चुनने मे तनिक सावधानी बरतें। इस काम में मानसिक और शारीरिक तत्परता—दोनों की ही आवश्यकता है।"

"तो दिशा चुन लें।" हनुमान बोले, "यदि आप लोगों को आपत्ति न हो तो नगर-द्वारों की चार दिशायें आप पकड़ लें और नगर प्राचीर के भग्न भाग वाले गहन वन मे मैं जाता हूं। आप जानते हैं प्राचीरों की कूद-फाद का काम मैं सहज ही कर सकता हूं।"

"ठीक है।" नल ने कहा, "हनुमान प्राचीरो को कूदें-फादें। उत्तर की ओर मैं जा रहा हूं।"

"अगद, तुम ?" सुग्रीव ने पूछा।

"पूर्व।"

"नील, तुम ?"

"दक्षिण।"

"तो पश्चिम की ओर मैं।" सुग्रीव बोले, "रुमा घर पर रहेंगी और सूचनाएं प्राप्त करने तथा तत्काल किसी विशेष दिशा में आवश्यक सूचनाएं भिजवाने का कार्य करेंगी। हनुमान ! रुमा के पास अच्छे और दृढ धावकों की एक टोली नियुक्त कर देना।"

"ऐसा ही होगा।" हनुमान ने कहा और उठ खड़े हुए।

सुग्रीव के जाते ही वाली ने कोटपाल को बुलाया। यथासंभव अधिक-से-अधिक दंडधरों को मायावी की खोज में लगाने का आदेश देकर उसे विदा किया। उनके मन में आया कि वे स्वय भी कंधे पर गदा रखकर नगर में निकल जाएं और मायावी को खोजने का प्रयत्न करें। मन इतना व्याकुल हो रहा था कि नगर के भीतर और बाहर, मायावी की खोज की व्यवस्था कर देने पर भी, उन्हें तनिक भी शाति नही मिली थी। इच्छा हो रही थी कि सारे राज्य मे फैले वानर यूथों को बुलाकर, प्रत्येक व्यक्ति को मायावी की खोज में लगा दे और तब तक स्वय भी निश्चल न बैठें, जब तक मायावी के शव को वे पैरों से न ठुकरा लें।...किंतु साथ ही उनका तर्क कहता था कि इतनी विस्तृत खोज की आवश्यकता नही है। मायावी या तो नगर के भीतर ही कहीं छिपा बैठा होगा, या फिर नगर-प्राचीर से लगे किसी वन में होगा।...वह दूर नही जायेगा। नगर में उसकी पानशालाए हैं, भवन हैं, और है अलका। क्या वह अलका को भूल किष्किंधा को छोड़कर चला जायेगा ? संभव ही नहीं है. .

वाली के मन ने उसी क्षण से मायावी विपयक सूचना की प्रतीक्षा आरंभ कर दी थी।...नगर के भीतर उसके होने की कम ही आशा थी, किंतु होगा नगर के आस-पास ही। इसीलिए उन्होंने सुग्रीव को बुलाकर यह काम सौंपा था। सुग्रीव को काम सौंपने का अर्थ था कि उसके सारे सहयोगी जी-जान से मायावी की खोज मे जुट जायेंगे।...और फिर सुग्रीव और अंगद हैं भी मायावी के शत्रु। उनका वश चला होता तो मायावी कब का या तो लंबी अवधि के लिए कारावद्ध हुआ होता या अधकूप में पड़ा होता।

वह अब तक सकुशल रहा, तो स्वयं वाली के ही कारण। अब जब उन्हें मालूम हो गया है कि वाली मायावी को दंडित करना चाहता है, तो वे यह अवसर कभी नहीं चूकेंगे—कभी नहीं ! और सुग्रीव तथा हनुमान से बढ़कर इन वनों का जानकार किष्किंधा में कोई नहीं हो सकता। अपने सामाजिक आंदोलनों और संगठनों को लेकर इन वनों और पहाड़ों की जितनी छानबीन उन्होंने की है, उतनी किसी और ने शायद ही कभी की हो...पता नहीं सुग्रीव में कौन-सा गुण है, जिससे वह इतने संगठन खड़े कर लेता है।...वाली सोचते है, तो उन्हें लगता है कि उनके पास हनुमान जैसा एक सचिव, सहायक और अनुचर नहीं है। इतनी ऊर्जा, इतनी स्फूर्ति, गति तथा कार्य-तत्परता को देखकर, लोगों ने इस केसरीपुत्र का नाम पवनपुत्र रख दिया है—जैसे मानव न होकर, साक्षात् पवन का ही पुत्र हो...

सहसा वाली का ध्यान अपनी ओर चला गया। उन्होंने सुन रखा था कि किष्किंधा के जन-सामान्य ने उनका भी ऐसा ही एक नाम रखा था—इंद्रपुत्र। स्त्रियों के प्रति उनके आकर्षण के कारण, जनता ने उन्हें विलासी देवराज इंद्र का पुत्र घोषित कर दिया था।...या फिर लोग उनकी तुलना इंद्रपुत्र जयंत से करते होंगे—कामुक और लंपट जयंत के साथ। तो क्या सचमुच ही वाली इतनी दूर निकल गये हैं ?...पर इस प्रश्न पर वाली का मन अधिक देर नहीं टिका। वे इस प्रश्न का सामना नहीं करना चाहते...

सुग्रीव को लोग सूर्यपुत्र कहते है। आरंभ में कदाचित् किसी ने उससे चिढ़कर, उसे कलंकित करने के लिए सूर्यपुत्र कहा था। सूर्यपुत्र अर्थात् निरंतर जलने वाला—किसी का सुख और विलास देखकर जो प्रसन्न न हो—ईर्ष्या में दग्ध होता हुआ...किंतु सुग्रीव और उनके मित्रों ने इस संज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया—सूर्यपुत्र अर्थात् तेजस्वी। जिसके तेज में समस्त सांसारिक मल भस्म हो जाए, जिसका तेज कभी मंद न पड़े !

क्या सत्य ही सुग्रीव का तेज कभी मंद नहीं पड़ता? पिछले दिनों वाली ने राजसभा में उसे कितनी बार अपमानित किया है; दंड की धमकी तक दी; उसके घोर शत्रु को अपना मित्र माना। किंतु क्या उससे सुग्रीव कभी हतप्रभ हुआ ? कभी थक-हारकर हताश हुआ ? नहीं ! तो अब भी सुग्रीव हतप्रभ नहीं होगा। वह अवश्य ही मायावी को खोज निकालेगा।...और वाली

उसकी गंध पाते ही अपनी गदा लेकर निकल पड़ेंगे। जब तक मायावी का वध नहीं होगा, वाली का मन शांत नहीं हो सकता।

"क्या बात है, प्रिय?" तारा आकर उनके सम्मुख खड़ी हो गयी, "परिचारिका भोजन कर लेने का निवेदन कर दो बार लौट चुकी है, और आप यहां युद्धवेश सजाये बैठे हैं।"

वाली अटपटा गये। सचमुच परिचारिका दो बार उन्हें बुला गयी है? उन्हें तो तनिक भी आभास नहीं हुआ। क्या वे इतने आत्मलीन थे?

उन्होंने सकुचित हो तारा की ओर देखा। किंतु तारा का चेहरा देखते ही जाने उन्हें क्या हो जाता था—मन पत्थर जैसा भारी हो जाता था, आखें उसे देखना नहीं चाहती थीं, कान उसकी बात सुनना नहीं चाहते थे; और मन जैसे बार-बार पुकारने लगता था—'तारा नहीं, अलका!'

इच्छा हुई, कह दें, "भूख नहीं है। मैं सुग्रीव की प्रतीक्षा कर रहा हूं। उसके आने पर, मुझे एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना है।"

पर कुछ कह नहीं सके। जानते थे, सुग्रीव के आने का समय निश्चित नहीं था। संभव था, वह घड़ी भर के भीतर आ जाए, और यह भी संभव था कि सप्ताह भर उसका कोई पता न लगे।...और फिर सामने तारा खड़ी थी। वे भोजन का तिरस्कार करेंगे, तो वह उन्हें मनाने का प्रयत्न करेगी।.. जाने क्या हो गया है उन्हें। तारा उन्हें जितना मनाना चाहती है, अपने प्रेम का प्रदर्शन करती है, उतना ही वाली का मन खीझ उठता है।...इससे तो अच्छा है कि तारा उनसे झगड़ ले, रुष्ट हो जाए और उनका मुख न देखे। उससे उन्हें तनिक भी कष्ट नहीं होगा। किंतु वह अपना सारा विरोध छिपाकर, उन्हें मनाती है, तो वाली को वह अत्यन्त जुगुप्सापूर्ण और बीभत्स लगता है।

वाली भोजन के लिए उठ आये, किंतु अपनी गदा उन्होंने एक क्षण के लिए भी स्वयं से दूर नहीं की।

सारा दिन वाली प्रतीक्षा करते रहे, किंतु सुग्रीव की ओर से कोई सूचना नहीं आयी। अंधकार घिर आया और प्रतीक्षा असह्य हो गयी तो वाली ने सुग्रीव को बुला भेजा। किंतु उनका चर उलटे पैरों लौट आया—सुग्रीव घर पर नहीं थे। कहां गये हैं, किसी को मालूम नहीं था। उनकी

पत्नी रुमा स्वयं बड़ी व्यग्रता से उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं।...वाली ने अंगद के विषय में पुछवाया। वह भी अभी तक प्रासाद में नहीं लौटा था और किसी को भी ज्ञात नहीं था कि वह कहां गया है। वाली समझ गये— वे सब मायावी को खोजने में लगे होंगे। यदि वाली, हनुमान, नील और नल का पता लगवायेंगे, तो वे भी अपने घरों पर नहीं मिलेंगे। अब सिवाय प्रतीक्षा के और कोई मार्ग नहीं था। प्रतीक्षा चाहे कितनी ही असह्य और पीड़ादायक क्यों न हो।

अगले दिन सुग्रीव स्वयं आये।

वाली ने उनके अभिवादन की भी प्रतीक्षा नहीं की, "पता चला?"

"चल गया।" सुग्रीव मुसकरा रहे थे।

"मायावी मिल गया?"

"जी।"

"कहां है?" वाली ने अपनी गदा उठाकर कंधे पर रख ली, "चलो।"

"वह मतंग वन में ऋष्यमूक की कंदराओं में से एक में छिपा हुआ है।" सुग्रीव बोले, "उसके साथ कुछ अन्य राक्षस भी हैं। कितने हैं, यह कहना कठिन है। उनके पास कितने और कैसे शस्त्र हैं—यह हमें मालूम नहीं। संभव है, उनके पास धनुष-बाण भी हों। आप जानते हैं कि राक्षसों के पास प्रायः ये आयुध होते हैं और उनकी भयंकरता से भी आप परिचित हैं।"

अपनी बात समाप्त कर सुग्रीव ने वाली को देखा। वाली का उत्साह ढीला पड़ चुका था। उनमें वह तत्परता लक्षित नहीं हो रही थी। वे जैसे किसी सोच में पड़ गये थे।

सुग्रीव को आश्चर्य हुआ। वे वाली का स्वभाव अच्छी प्रकार जानते थे। वे जानते थे कि वाली की शत्रुता कितनी उग्र होती है, और शत्रु का समाचार पाते ही वे किस व्यग्रता से झपटते हैं।...और उनके सम्मुख बैठे थे वाली, जो समाचार पाने से पहले कितने तत्पर थे और [illegible] जैसे उत्साह की ज्वाला पर ठंडा सागर उमड़ पड़ा हो। उनकी [illegible] खो गयी थी और वे किसी आतंरिक द्वन्द्व से ही क्षीण हो [illegible]

"सम्राट !" सुग्रीव बोले, "निवेदन है कि ऐसे धूर्त शत्रु से भिड़ने के लिए न तो अकेले जाए, न साधनहीनता की स्थिति में सम्मुख युद्ध करें।"

"मैं तुम्हारी बात याद रखूंगा।"

सुग्रीव ने वाली को जीवन में पहली बार युद्ध के लिए निरुत्साहित देखा।

इधर सुग्रीव गये और उधर वाली ने शगुन-विचारक को बुला भेजा। शगुन-विचारक अब भी अपने मत पर दृढ था, "उस दिशा में काल है, सम्राट ! मतग-वन की ओर न जाए।"

वाली के अपने मन में ही एक हिंस्र द्वन्द्व-युद्ध आरंभ हो गया। एक फुर्तीला, हिंस और उग्र तेंदुआ बार-बार मतंग वन की ओर लपकना चाहता था, और उससे कहीं अधिक शक्तिशाली किंतु धीर सिंह उसके मार्ग में खड़ा था। तेंदुआ अपनी घुमडती पीड़ा से व्याकुल होकर झपटता तो सिंह अपने पंजे का एक भरपूर वार उसके जबड़े पर कर देता। तेंदुआ उलटकर *गिरता और पुन. झपटने की तैयारी करता. .वाली को लगा, मायावी तो* वहा दूर, मतग वन मे सुरक्षित बैठा है, और वे शत्रु को बिना चुनौती दिये ही बुरी तरह घायल हो चुके हैं।...सहसा वाली के भीतर का तेंदुआ दहाड़ा—इससे अच्छा तो शत्रु को ललकारकर उसके हाथों वीरगति पाना है। अपने घर मे सुरक्षित बैठे, अपने मन से लड़ते-लड़ते घुट-घुटकर मर जाना तो बहुत अपमानजनक है।

वाली उठकर खड़े हो गये। कधे पर गदा रखी और प्रासाद से निकल आये।

आगे-आगे वाली थे और पीछे-पीछे दडधरों की एक टोली। घर से निकलते ही वाली के मन में फिर से उथल-पुथल आरंभ हो गयी थी—जाए या न जाए ? चुनौती की उपेक्षा कर कायर बनें ? या शगुन-विचारक की बात की उपेक्षा कर काल के मुख मे जा कूदें और मूर्ख बनें ? मूर्ख बनना अच्छा है या कायर बनना ?...प्रत्येक बढ़ते हुए पग के साथ वाली के मन में एक पुकार उन्हें लौट चलने के लिए कहती थी। मानो एक पग आगे बढ़ता था तो दूसरा पीछे की ओर लपकना चाहता था। वे शरीर से आगे

बढ़ते हुए भी मन से वही के वही थे...

सहसा वाली ने पहचाना—यह वही पथ था, जिससे होकर उस रात ज्योत्स्ना में नहाते हुए वे अलका के घर पहुंचे थे। अलका...वाली के घाव को जैसे किसी ने बड़ी क्रूरता से पुनः छील दिया था। उनके मन मे काम की मादक भावना के साथ-साथ क्रोध का हिंस्र भाव उठ खड़ा हुआ।... मायावी यहां से भागकर मतंग वन में क्यों छिपा बैठा है? वह भागकर लंका क्यों नही चला गया? क्या वह वाली पर आघात करने के अवसर की प्रतीक्षा में छिपा बैठा है? नही! वह अलका के अपहरण की प्रतीक्षा मे बैठा होगा...अलका! वाली का मन पुनः कसक उठा, किंतु साथ ही वाली की आंखो मे समाधान की ज्योति चमकी। अलका ने ही वाली को पीड़ा दी है तो अलका ही उनके घाव पर औषधि का लेप भी करेगी। मायावी ने अलका के जाल मे वाली को फासा था, अब वाली मायावी को अलका की फास में बाधेंगे। अच्छा आखेट होगा...अलका उस आखेट के लिए चारा बनेगी...

अलका के भवन के सम्मुख आकर वाली रुक गये। पलटकर उन्होंने दंडधर टोली के नायक को देखा, "इस भवन के चारों ओर फैलकर छिप जाओ। सावधान! क्षणभर के लिए भी प्रमाद न हो। मायावी को पहचानते हो?"

"जी! महासामंत को कौन नही पहचानता!" नायक शालीनता से बोला।

"महासामंत नहीं।" वाली का स्वर फुफकार उठा, "दुष्ट और नीच राक्षस—मायावी।"

"जी!" नायक सहम गया।

"वह छिपकर इस भवन में प्रवेश करने का प्रयत्न करेगा। उसे देखते हीमुझे सूचित करो। यदि किसी प्रकार भवन के भीतर चला जाए, तो उसे तब तक भीतर ही बंद रखो, जब तक मैं यहां न आ जाऊं।"

"जो आज्ञा, सम्राट!"

"स्मरण रहे। प्रमाद का दंड मृत्यु है।"

"स्मरण रहेगा, सम्राट!"

वाली के शरीर का सपूर्ण रक्त, उन्हे भवन के भीतर धकेल रहा था। भवन मे स्वय अलका थी। द्वार खटखटाने की देर थी—अलका उनके सामने होगी। वे चाहेंगे तो वह उनके आलिगन...किंतु वाली का मस्तिष्क सनसनाता जा रहा था। जब तक मायावी जीवित है, वे अलका को अपनी भुजाओं मे नही ले पायेंगे। अलका के स्पर्श से ही उनकी आखों के सम्मुख मायावी आ खड़ा होता है।...पहले मायावी को मारना होगा, तभी अलका उन्हें मिल सकेगी।

वाली भवन के भीतर नही गये। वापस अपने प्रासाद में लौट आये।... प्रासाद मे प्रवेश करते ही उन्हें सूचना मिली कि राजकुमार अगद लौट आये हैं। रात भर के जगे हुए है, अतः थककर सो गये हैं।...तो इसका अर्थ है कि सुग्रीव को मायावी के सबंध मे निश्चित सूचनाएं निरतर मिल रही है। तभी तो अंगद निश्चित होकर सो गया है। वाली को भी सुग्रीव के साथ निरतर संपर्क बनाये रखना होगा ताकि जैसे ही मायावी, मतंग वन मे निकलकर नगर की ओर आये, वाली को सूचना मिल जाए...

वाली प्रतीक्षा करते रहे।...उनका मन किसी काम में नही लग रहा था। वे राजसभा में भी नही गये। राज-काज उन्होंने पूर्णतः स्थगित कर रखा था। वे मात्र प्रतीक्षा कर रहे थे।

भोजन के समय तारा ने पूछा, "प्रिय कुछ अनमने हैं। कोई विशेष बात ?"

"नही, कुछ विशेष नही।" तारा की ओर देखने की भी उनकी इच्छा नहीं हुई।

"मैंने सुना है, मायावी भाग गया है ?" तारा पुनः बोली, "और आप उसकी खोज कर रहे हैं।"

"तो क्या हुआ ?" वाली खीझ उठे।

क्षणभर के लिए सहमकर तारा चुप हो गयी। किंतु पिछले कितने ही दिनों से पति इतना शुष्क ही नही, अभद्र हो गया था और वे स्वयं उससे इतनी खीझ चुकी थी कि अधिक देर तक मौन नही रह सकी, "मेरी जिज्ञासा भी आपको बुरी लगती है ?"

वाली ने स्वयं को सयत किया, "जिज्ञासा बुरी नहीं लगती, किंतु

अनावश्यक प्रश्नोत्तर मेरी चिंता को बढ़ाते है।"

वाली ने अब भी तारा की ओर नहीं देखा।

"मैंने इसलिए पूछा, क्योंकि वह आपका मित्र था।"

"मित्र था।" वाली ने ऊंचे स्वर में कहा, "अब नहीं है।"

"क्यों?"

"मैं सारे प्रश्नों का उत्तर देने को बाध्य नहीं हूं।"

वाली उठकर अपने कक्ष में चले गये।

रात आधी बीत चुकी थी, किंतु वाली को नींद नहीं आ रही थी। थोड़ी देर के लिए आंख लगती थी तो फिर नींद उचट जाती। उद्विग्नता की स्थिति में वे उठ बैठे। टहलते-टहलते आकर वे गवाक्ष के पास खड़े हो गये। ...सहसा उन्होंने सुग्रीव को आते देखा। रक्षकों ने उन्हें मार्ग दे दिया। थोड़ी ही देर में सुग्रीव उनके कक्ष में पहुंच गये। निश्चित रूप से वे भागते हुए आये थे। उनकी सांस धौंकनी के समान चल रही थी और शरीर पसीना-पसीना हो रहा था।

"भैया!"

वाली ने प्रश्नपूर्वक उन्हें देखा।

"मायावी नगर में प्रवेश कर चुका है। अनुमान है कि वह अलका के भवन की ओर जा रहा है।" वे जल्दी-जल्दी बोले, "हमने उसे बंदी कर लिया होता, किंतु आपका आदेश नहीं था।"

वाली की आंखें चमकीं। हाथ ने लपककर गदा उठाई और मन ने कहा, "सुग्रीव सब कुछ जानता है। अलका के विषय में भी।"

"आओ!" वाली तत्काल बाहर निकल गये।

गंतव्य पर पहुंचते ही वाली ने दंडधरों से पूछा। मायावी अभी तक नहीं आया था। वाली ने धीरे से द्वार खटखटाया। एक सोयी हुई-सी परिचारिका ने आकर गवाक्ष खोलकर पूछा, "कौन है?"

"मैं हूं वाली।"

द्वार खुल गया और वाली भीतर चले गये।

दंडधरों के साथ ही सुग्रीव भी बाहर ही छिप गये। निश्चित रूप से आज मायावी अवश्य मारा जायेगा—सुग्रीव सोच रहे थे—किंतु कितनी विचित्र बात थी कि मायावी के नगर-प्रवेश की तनिक भी सूचना द्वार-रक्षकों को नहीं हुई। स्वयं सुग्रीव के चरों ने इतनी सूचना तो दी थी कि अकेला मायावी मतंग वन से निकलकर नगर की ओर बढ़ रहा है; किंतु उसके नगर-प्रवेश की सूचना वे भी नहीं दे पाये। नगर में घूमते हनुमान के चरों ने यह सूचना न दी होती, तो सुग्रीव को भी पता न चलता।... मायावी ने किष्किंधा में प्रवेश कैसे किया? सुग्रीव का मन निरंतर इस प्रश्न से मल्ल-युद्ध कर रहा था।

तभी अंधकार में एक छाया उधर बढ़ती दिखायी दी।...निश्चित रूप से यह मायावी ही होगा...सुग्रीव ने दंडधरों को संकेत किया और स्वयं भी सावधान होकर बैठ गये।

मायावी दबे पांव भवन की ओर बढ़ रहा था, फिर भी उसकी गति चमत्कारिक रूप से तीव्र थी। वह अत्यन्त सावधानी से भवन के द्वार तक आया और धीरे से किसी विशेष सांकेतिक ढंग से उसने कपाट खटखटाया।

भीतर से द्वार खोल दिया गया। किंतु न मायावी ने भीतर प्रवेश किया और न भीतर से ही कोई बाहर आया। मायावी खड़ा-खड़ा जाने किस बात की टोह ले रहा था। वह अतिरिक्त रूप से सावधान था और भवन में प्रवेश करने से पूर्व भली प्रकार पुष्टि कर लेना चाहता था कि उसके लिए कोई जोखिम तो नहीं है...

मायावी बहुत विलंब कर रहा था...

सहसा भीतर से कूदकर बाली बाहर आये। चंद्रमा के धीमे प्रकाश में उनका उफनता क्रोध, उनके चेहरे पर देखा जा सकता था। उनकी आंखें जल रही थीं, नथुने फड़क रहे थे और भारी गदा थामे हुए भुजाएं प्रहारक मुद्रा में थीं...

"कौन? बाली?" मायावी बोला।

"हां! तेरा काल!"

मायावी घबराया नहीं। अगले ही क्षण उसके हाथ में नग्न खड्ग चमक रहा था।

"आ, देख कौन किसका काल है। न तेरा वध कर, अलका ही नहीं, तारा का भी हरण कर ले गया, तो मेरा नाम भी मायावी राक्षस नहीं।"

वाली ने घुमाकर गदा का प्रहार किया। मायावी पीछे हटकर वार बचा गया। उसने खड्ग उठाया . .

सुग्रीव ने दंडधरों को संकेत किया और अपना खड्ग कोष से निकाल-कर झपटे।

मायावी को काठ मार गया। उसकी दृष्टि निमिष-भर के लिए वाली की गदा को देखती थी और अगले ही क्षण सुग्रीव के खड्ग पर टिक जाती थी। चेहरे पर असमंजस के भाव उभर आये, जैसे कोई निश्चय कर रहा हो; और अगले ही क्षण वह पलटा और दंडधरों को अपने खड्ग से धमकाता हुआ, उनका घेरा तोड भाग खड़ा हुआ...

"आओ!" हाथ उठाकर वाली ने संकेत किया और उसके पीछे भागे।

दंडधरों की ओर देखने का अवकाश नहीं था। ..सुग्रीव ने भी शक्ति-भर दौड़ लगायी।...आगे-आगे मायावी भाग रहा था और पीछे-पीछे वाली तथा सुग्रीव। मायावी या तो अच्छा धावक था, या अपना पीछा करने वालों से वह इतना भयभीत था कि उसके पगों मे पंख लग गये थे। वह बडी सरलता से अपना पीछा करने वालों से अपनी दूरी बनाये हुए था। वाली अपने भारी-भरकम शरीर के कारण अपनी गति बढ़ा नही पा रहे थे और सुग्रीव कभी भी बहुत अच्छे धावक नही रहे।...

सहसा मायावी ने पथ छोड़ दिया और नगर-प्राचीर की ओर लपका। सुग्रीव की दृष्टि नगर-प्राचीर के उस भाग पर टिक गयी।...उस स्थान से प्राचीर कुछ इस प्रकार टूटी हुई थी कि उसकी ऊंचाई अनुल्लंघनीय नही रह गयी थी।...कदाचित मायावी इस स्थान से परिचित था। संभव है कि उसने इसी स्थान से नगर में प्रवेश किया हो, तभी तो न नगरद्वार के रक्षकों को उसकी भनक पड़ी और न सुग्रीव के चरों को ही उसकी कोई टोह मिली...

वाली और सुग्रीव के देखते-ही-देखते मायावी प्राचीर के भग्नांश चढ़, प्राचीर की दूसरी ओर सघन वन में उतर गया।

वाली और सुग्रीव, दोनों ही भौचक खड़े रह गये। कहां वे आशा कर रहे थे कि नगर-प्राचीर की अगली चौकी तक जाते-जाते, यह दौड़ समाप्त हो जायेगी और मायावी पकड़ा जायेगा—कहां वह उनके हाथों से ऐसे निकल गया था, जैसे असावधान हाथों से टकराकर, अपने ही वेग में गेंद लौट जाती है।

'काश ! ऐसे समय में हनुमान यहां होते !' सुग्रीव सोच रहे थे, 'भूमि से उछलकर प्राचीर पर चढ़ जाना और प्राचीर से कूदकर वन में जा धसना तो उनके लिए क्रीडा-मात्र थी।'

"सियार अपनी खोह में घुस गया।" वाली ने दांत पीसते हुए कहा।

"गदाधरों की एक टोली को उसे घेरने के लिए भेजिये, सम्राट !" सुग्रीव ने सुझाव दिया।

"गदाधर सैनिक उसका क्या कर लेंगे।" वाली का चेहरा क्रोध से विकृत हो रहा था, "मैं स्वयं उसके पीछे जाऊंगा और उसका वध करके ही लौटूंगा।"

"आप स्वयं जायेंगे?" सुग्रीव हतप्रभ थे.. मतंग वन में उसे अच्छी प्रकार घेरा जा सकता था, वाली वहां नहीं गये और यहां .."प्राचीर के बाहर सघन वन है। जाने वह कहां छिपा होगा। संभव है, आस-पास उसके साथी भी हों। गदाधर टोली नहीं भेजना चाहते तो नगर के बाहर छावनियों में स्थित यूथपतियों को आदेश दीजिये, वे अपने यूथों से इस क्षेत्र को घेर लें। फिर चाहे आप स्वयं ही उसे दंडित करें...।"

"नहीं !" वाली ने सुग्रीव की पूरी बात भी नहीं सुनी, "यह मेरा व्यक्तिगत मामला है। इसे मैं अकेला ही निबटाऊंगा। मैं जा रहा हूं। सियार यदि खोह में घुसा है, तो उसका वध उसकी खोह में ही करूंगा..."

"पर भैया ! आप सम्राट हैं। आपका अपने प्राणों को इस प्रकार संकट में डालना उचित है क्या?" सुग्रीव ने विवाद किया, "अच्छा ! मैं भी आपके साथ चलता हूं।"

"नहीं !" वाली का स्वर कठोर था, "मुझे अधिक देर नहीं लगेगी। तुम यहीं रुको, इस गुफा के द्वार पर। कहीं वह दुष्ट अपनी खोह से निकल कर फिर से नगर में प्रवेश न कर जाए। मैं लौटकर अभी आया...।"

कंधे पर अपनी गदा रखे वाली अकेले प्राचीर के उस भग्नांश पर पहुंचे और मायावी के ही समान प्राचीर के पार कूद गये।

सुग्रीव असहाय-से खड़े देखते रहे। क्या कर सकते थे वे? वे वाली के स्वभाव को जानते थे—क्रुद्ध वाली को मनमानी करने से रोकना असंभव था। और यहां तो उनके मर्म पर आघात हुआ था।...प्रतीक्षा करने के सिवाय, सुग्रीव और कर भी क्या सकते थे?...वाली के आदेश से हटकर कुछ भी करने पर वे उन्हें संदेह की दृष्टि से देखेंगे। उन पर कोई-न-कोई आरोप लगायेंगे...

भावी घटनाओं का रूप क्या होगा—सुग्रीव समझ नहीं पा रहे थे—अभी थोड़ी देर में वाली मायावी का शव घसीटते हुए लौट आयेंगे, अथवा मायावी ही वाली को चक्कर देकर, किसी अन्य मार्ग से या प्राचीर के इसी टूटे अंश से किष्किंधा में प्रवेश कर, अलका को प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा...यदि वाली को बहकाकर, मायावी वन में विलीन हो जाने में सफल हो गया, तो क्या वाली खाली हाथ लौट आयेंगे?...जिस गुफा में वे गये थे, उसमें तो खाली हाथ लौटने का प्रश्न ही नहीं उठता।...मायावी भी कम हठी नहीं लगता। यदि वे दोनों ही किसी दीर्घकालीन लुका-छिपी में व्यस्त हो गये तो?...या कहीं मायावी ने वाली का वध कर दिया?...वाली निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है, किंतु मायावी के पास खड्ग है और वह विकट धूर्त है।...यह दौड़ लंबी भी हो सकती है और उसके अंत का स्वरूप भी निश्चित नहीं है। सुग्रीव कब तक स्तंभित खड़े रहेंगे? उन्हें प्रत्येक संभावित स्थिति के लिए तत्पर रहना चाहिए।

उनके पीछे-पीछे आनेवाला दंडधरों का दल आ पहुंचा था। सुग्रीव ने उन्हीं से चरों का कार्य लिया। एक सैनिक टुकड़ी को वाली के पीछे भेजा, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे वाली की सहायता करें। उन्हें आदेश दिया कि वे आस-पास स्थित, समस्त वानर-यूथों को सचेत कर दें, ताकि वे मायावी की खोज कर, उसे घेरने का प्रयत्न करें। नगर-प्राचीर की सैनि[illegible] चौकियों में अतिरिक्त सैनिक भेज उन्हें दृढ़ किया। नगर-द्वारों की [illegible] व्यवस्था भी दृढ़ कर दी। उन्हें सचेत कर दिया कि संभवतः उन्हें [illegible] अथवा उसकी सहायक किसी सशस्त्र राक्षस-टोली से [illegible]

सैनिको की दो टुकड़िया अपने लिए भी मगवा ली—जाने कब उनकी आवश्यकता पड जाए।

पूर्व से उषा का उजाला फूटने लगा, किंतु न वाली लौटे, न उनके पीछे गयी हुई सैनिक टुकडी। अब सुग्रीव के लिए चिंता स्वाभाविक थी। यह वाली के आखेट के लिए जाने जैसी साधारण घटना नही थी। सुग्रीव को यह पहले ही सोचना चाहिए था। क्या वे मायावी को जानते नही थे? वह जन्मजात अपराधी, सारा जीवन धूर्ततापूर्वक षड्यंत्र रचता रहा...और वाली केवल प्रत्यक्ष युद्ध के मल्ल थे। वे न षड्यंत्र रच सकते थे, न उसे परख सकते थे। मायावी जैसे षड्यंत्रकारी से सामना हो, तो वाली की-सी शक्ति और वीरता के होते हुए भी कुछ अघटनीय घट सकता था। कुछ ऐसा ही तो नही हो गया?...किंतु, तब सैनिक क्यों नही लौटे?...संभव है वे शोक, हताशा अथवा दड के भय से न लौटे हों...

सुग्रीव को स्वय जाना होगा। अब वाली चाहे आज्ञोल्लघन का आरोप लगायें, अथवा वहा से हटकर मायावी के नगर-प्रवेश के लिए मार्ग छोडने का संदेह करें, सुग्रीव को कुछ करना ही होगा। खड़े-खड़े चिंता करते रहकर, अपने भाई की मृत्यु के लिए पथ प्रशस्त करने की कापुरुषता वे नहीं कर सकते...

उन्होने पुनः नगर में चर दौडा दिये। थोड़े ही समय में हनुमान, अंगद, नल, नील, तार, सुषेण, मैंद, द्विविद तथा जाम्बवान अपने-अपने विश्वसनीय साथियों के साथ आ उपस्थित हुए। जितने नेता थे, वन को उतने ही भागों में बांट खोज आरंभ करने की योजना बनी। संपूर्ण नगर-प्राचीर की रक्षा-व्यवस्था कोटपाल पर छोड़, सुग्रीव तथा अन्य लोगों की टुकड़ियां वन मे उतर गयीं। एक-एक वृक्ष और झाडी को देखा गया, वन का चप्पा-चप्पा खोजा गया। पिछली टुकड़ी के सैनिक तो मिल गये, किंतु न वाली का कोई चिह्न मिला, न मायावी का...

दिन-भर खोज चलती रही—न किसी ने भोजन किया, न विश्राम। जिसे भूख ने अधिक सताया, उसने किसी वृक्ष से तोड़कर कोई फल खा लिया, स्रोत से जल पी लिया, किंतु खोज न शिथिल हुई, न स्थगित। रात

का अंधकार घिरते-घिरते सैनिकों की तो बात ही क्या, स्वय सुग्रीव और अंगद तक हताश हो चुके थे...कुछ बहुत ही असाधारण घटित हुआ था, नहीं तो कोई कारण नहीं था कि इतने लोग उन्हें जीवित अथवा मृत खोज न पाते। जाते-जाते वाली कह गये थे, सियार अपनी खोह मे घुस गया है।...उन्हीं की बात सच होने जा रही थी। वे दोनों ही किसी ऐसी गुफा में जा घुसे थे, जिसका द्वार खोजने वाले सैंकड़ों व्यक्ति भी ढूंढ नहीं पा रहे थे।

सुग्रीव ने पुन: अपने साथियों के साथ विचार-विमर्श किया। सब ही सहमत थे कि इस खोज को स्थगित कर, इन सैनिकों को वापस जाने दिया जाए ताकि उन्हें भोजन और विश्राम मिल सके; किंतु उसके साथ ही एक दीर्घकालीन खोज-योजना बनायी जाए। उसके अनुसार वानरों का एक पूरा यूथ स्थायी रूप से इस वन में रह, छोटी टुकडियों में बंट, बारी-बारी यह अन्वेषण तब तक अनवरत चलाता रहे, जब तक सम्राट वाली और मायावी के विषय में कोई निश्चित सूचना नहीं मिल जाती।

वन से लौटने पर, युवराज के अधिकार से, सुग्रीव ने पहला आदेश दिया कि प्राचीर के इस अंश की तत्काल मरम्मत कर दी जाए; और दूसरा आदेश सम्राट वाली की खोज के लिए गुप्तचर विभाग मे एक स्वतंत्र अनुभाग स्थापित करने के विषय मे था।

विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओ से कुछ अवकाश मिला, तो सुग्रीव का ध्यान तारा की ओर गया—'भाभी की क्या स्थिति होगी?' यद्यपि अंगद उनके पास था, किन्तु अगद अभी इतना प्रौढ़ नहीं है कि यह सारी स्थिति अकेले उस पर छोड़ दी जाए।

रुमा के साथ सुग्रीव वाली के प्रासाद में पहुंचे तो देखा, तारा के पास अंगद के साथ-साथ सुषेण और तार भी बैठे हुए है। सुग्रीव को सन्तोष हुआ। पिता और भाई मिलकर भाभी को सात्वना दे लेंगे। भाभी को इस समय सांत्वना की ही आवश्यकता थी। सुषेण युद्ध वैद्य हैं। तन के घावों का उपचार तो कर लेते हैं, मन के घावों का कुछ कर पायेंगे क्या?

रुमा जाकर तारा के पास बैठ गयी और सुग्रीव अंगद के पास बैठे।

"भाभी ! आप मन छोटा न करें।" सुग्रीव अत्यन्त मृदु स्वर मे बोले, "या तो भैया स्वय ही मायावी का वध कर लौट आयेंगे या फिर हम उन्हे खोज निकालेंगे और मायावी के वध मे उनकी सहायता करेंगे।"

तारा ने आखें ऊची कर सुग्रीव को देखा। सुग्रीव समझ नही पाये कि वे आखें हस रही थीं, या रो रही थीं। किन्तु मुख से वे कुछ नही बोली।

"भैया पहली बार तो गये नही हैं, भाभी।" सुग्रीव पुनः बोले, "आखेट के लिए वे अनेक बार जाया करते थे। अनेक बार बिना बताये भी गये हैं, और कई-कई दिन हमे उनकी सूचना भी नही मिली है।"

इस बार तारा ने मुसकराने का प्रयत्न किया, किन्तु सुग्रीव को वह मुसकान रोने से भी अधिक करुण लगी।

"तुमने अलका के विषय मे क्या सोचा है ?" तारा बोली।

"इस लडकी को देखो।" वृद्ध सुषेण किंचित् उत्तेजित स्वर में बोले, "जब इससे कोई बात छेड़ो तो बात को टालने के लिए यह अलका का प्रसग बीच मे ले आती है।"

"आप ठीक कहते है।" सुग्रीव ने बात सभाली, "शायद भाभी नही चाहती कि वे अपना दुख हमारे साथ बांटें। इसलिए ये दूसरे-तीसरे व्यक्ति की बात करने लगती है।" सुग्रीव कुछ रुके और पुनः बोले, "पर यदि भाभी चाहती ही है कि अलका की बात की जाए, तो वही हो। अन्ततः इस सारे झगड़े का मूल कारण तो अलका ही है। उसी के कारण भैया इस प्रकार गये। उसके विषय मे तो कुछ सोचना ही होगा...।"

"आप क्या उसे दडित करने की बात सोच रहे है ?" बीच मे ही रुमा बोली।

"मेरा आशय यह नहीं है।" तारा किंचित् ठहरे हुए स्वर में बोलीं, "मैं उसे दडित करवाने के लिए नही कह रही।" तारा का कंठ रुध गया और वे रुक गयीं। किन्तु स्वय को सयत कर बोलीं, "मायावी के पीछे सम्राट कल रात गये है, किन्तु मुझसे तो वे उसी दिन छिन गये थे, जिस दिन वे दुंदुभि को मारकर लौटे थे। अलका तो मात्र बहाना है।"

"क्या कह रही है, जीजी !"

"सच कह रही हू, रुमा !" तारा का स्वर और भी करुण हो गया, "अन्तर केवल इतना है कि तब वे इसी प्रासाद मे रहते थे, आज वे यहा नही है। किंतु मेरा मुख देखते ही वितृष्णा से भर उठना, मेरे स्वर को सुनते ही खीझ उठना, आधी-आधी रात को उठकर प्रासाद से बाहर चले जाना—क्या इन सबको देखतें हुए, मैं मानूं कि वे मेरे पास थे, वे मेरे थे..." तारा नें सुग्रीव को देखा, "तुम कहते हो, देवर ! कि मैं अपना दुख तुम लोगों के साथ बांटना नहीं चाहती। तुम मुझे बताओ, कौन-कौन-से दुख तुम लोगों के साथ बांटू ? कभी किसी ने जाना है कि तारा स्वयं कितनी बंट चुकी है..."

"तारा !" तार बीच में बोले।

"हां, भैया !" तारा रो पड़ी, "सोचो। मैं उससे प्रेम करती थी, जो प्रत्येक महीने-पखवारे मे किसी नयी कन्या के प्रेम में पागल हो जाता था। वे जब नया प्रेम पालते थे, मुझे अपने मार्ग की बाधा मान दुत्कारने लगते थे।" तारा रुक गयी, "मैं क्या-क्या बताऊं तुम लोगों को। अपने मुख से कहती अच्छी लगती हूं क्या ? मेरा इतना बड़ा बेटा अंगद यहां बैठा है, पूछो इससे कि इसने आज तक किसी राजनीतिक मामले में अपने पिता का साथ क्यो नही दिया। यह सदा अपने पिता के प्रतिकूल चाचा का साथ देता रहा।"

"मां !..." अंगद ने कहना चाहा।

"मैं तुमसे स्पष्टीकरण नही मांग रही, पुत्र।" तारा बोली, "मैं तुम्हारे मन की अवस्था समझती हूं। पर तुम लोग भी तो मेरी अवस्था को समझो। मैंने आज तक तुममें से किसी से कुछ नही कहा। आज मेरा मन आप्लावित है और सुग्रीव ने उपालंभ दिया है कि मैं अपना दुख नही बांटती..." तारा ने दातों से होंठों को काटकर स्वयं को रोका।

"भाभी !..." सुग्रीव समझ नही पा रहे थे कि वे क्या कहें।

"कुछ मत कहो, सुग्रीव।" तारा फिर बोलीं, "आज मुझे अपना दुख बांट ही लेने दो। मेरे पिता, भाई, पुत्र, देवर, देवरानी—सारे हितू बैठे हैं। मुझे बताओ, तारा किसके लिए रोये—अपने पति के लिए, जो प्रत्येक सुन्दरी कन्या को देखते ही लोलुप और कामुक हो उठता था या उन निरीह

कन्याओं के लिए, जो उनके पति के द्वारा अपमानित और पीड़ित हुईं।... मैंने अपने सौभाग्य के लिए सदा ईश्वर से अपने पति के जीवन की भिक्षा मांगी और अलका जैसी अनेक अभागिनों की रक्षा के लिए, उनको अपमानित करने वालों के लिए मृत्यु..."

"तारा !" सुषेण बोले।

"हां, पिताजी !" तारा का स्वर दृढ़ हो आया, "आपकी तारा और कर भी क्या सकती थी। मैंने एक ओर अपने पति के राजनीतिक विरोधियों के नाश की कामना की और दूसरी ओर मेरा मन प्रजा की रक्षा के लिए—सुग्रीव तथा अंगद के लिए शक्ति, सत्ता और दीर्घ जीवन मांगता रहा। पुत्र को पिता के विरुद्ध ले चलने के लिए मैंने सुग्रीव को सैकड़ों शाप दिये, और अंगद को प्रजा-हित के मार्ग पर ले चलने वाले गुरु सुग्रीव को मैंने अपनी समस्त सद्भावनाएं भेंट कीं।" तारा के कंठ से हिचकियां फूट आयीं, "अब मुझे कोई बताये, मेरे पति को मृत्यु के मुख में धकेलने वाली अलका के लिए तुम लोगों से मृत्यु-दंड की प्रार्थना करूं अथवा उसे अपमानित जीवन से उबारने के लिए, सम्राट और मायावी को विलुप्त करने के लिए ईश्वर का धन्यवाद करूं...।"

तारा चुप हो गयीं, किन्तु न उनके आंसू रुके, न हिचकियां।

असमंजस की स्थिति में चुपचाप बैठे, सब लोग उन्हें देखते रहे। अन्ततः रुमा ने उन्हें अपनी बाहों में भर, अपने वक्ष से लगाकर कहा, "शांत हो जाओ, जीजी! सच ही, हम में से किसी को आपकी विकट स्थिति का आभास नहीं था।"

"अब मुझे बताओ कि तुम लोगों ने अलका के विषय में क्या सोचा है?" तारा बोलीं, तो पर्याप्त सन्तुलित लग रही थीं, जैसे मन में उठा बवंडर निकल गया हो और वे स्थिर हो गयी हों।

"उसे वापस उसके पिता के घर पहुंचा देना चाहिए।" अंगद बोले, "मेरा विचार है कि वह भी यही चाहेगी।"

"और यदि वह वापस लौटना न चाहे?" तारा ने पूछा, "अथवा उसके पिता उसे स्वीकार करना न चाहें?"

"तो वह सुविधापूर्वक किष्किंधा में भी रह सकती है।" सुग्रीव बोले,

"किन्तु वह यहा रही तो भैया के लौटने पर घटनाओं का रूप क्या होगा—कहना कठिन है।"

"और यदि वह किष्किधा में न रही, तो तुम्हारे भैया के लौटने पर घटनाओं का रूप क्या होगा, यह कहना भी कठिन है।" तारा ने कहा, "फिर भी मैं चाहती हूं कि समय रहते उसे किसी सुरक्षित स्थान पर भिजवा दो। यदि वह अपने पिता के घर जाना चाहे तो ठीक है, नही तो किसी सुरक्षित स्थान पर " तारा कुछ रुककर बोली, "यह मैं ईर्ष्यावश नही, उसकी सुरक्षा के लिए कह रही हू।"

"हम समझते है।" वृद्ध सुषेण ने सिर हिलाया, "यही करो, युवराज!"

दिन बीतते जा रहे थे और वाली का कोई समाचार नही मिल रहा था। गुप्तचर विभाग भी सर्वथा असफल सिद्ध हो रहा था। वानर-यूथों की खोज का भी कोई फल नही निकला था। वाली ने स्वय भी कोई सन्देश नहीं भिजवाया था। सामान्य जन में यह विश्वास बढता जा रहा था कि या तो वाली और मायावी दोनों ही किसी दुर्घटना में फसकर नदी, समुद्र, गुफा अथवा किसी गहरे खड्ड मे जा गिरे है, जहां उन्हें खोजा नहीं जा सकता; अथवा वाली का वध कर मायावी उनके शव को कही छिपा, वानरों के प्रतिशोध से भयभीत होकर भाग गया है। सम्भव है, वह लंका मे जा पहुंचा हो—वहीं वह सबसे अधिक सुरक्षित था।

सुग्रीव को भाई सम्बन्धी आशकाओं के साथ-साथ किष्किधा की राजनीतिक हलचलें भी चिन्तित कर रही थी। उनके अपने सहयोगियों में से सिवाय अंगद के कोई भी राज-परिषद् का सदस्य नही था। वाली के अनेक मत्री और महासामंत, उनकी कितनी ही नीतियों को लेकर सुग्रीव मे सहमत नही थे। उनका सीधा तर्क था—सुग्रीव की स्थिति युवराज की थी। नीतिया सम्राट निर्धारित करते हैं। यदि युवराज द्वारा नयी नीतियां निर्धारित करने का अधिकार स्वीकार कर लिया जाए, तो सम्राट के लौटने पर उनको क्या उत्तर दिया जाएगा।...राजसभा मे सुग्रीव प्राय: अकेले पड़ जाया करते थे। अगद भी बहुत सहायता नही कर पाते थे। और सुग्रीव की आंखों के सम्मुख ही किष्किधा मे जन-विरोधी नीतियां

और आज्ञाएं न केवल प्रचारित होती जा रही थी—वरन् शत्रुओं का पक्ष शक्तिशाली होता जा रहा था...

कई दिनों तक सुग्रीव सोचते रहे, अपने मित्रों से परामर्श करते रहे, किंतु कोई निश्चित समाधान नहीं मिल रहा था। इस स्थिति का अंत तभी सभव था, जब सम्राट अनुपस्थित होने के स्थान पर उपस्थित हों। या तो वाली ही लौट आएं, या उनके स्थान पर नया सम्राट सत्ता संभाले। युवराज के रूप में यह अधिकार स्वयं सुग्रीव का था; और वाली का पुत्र होने के नाते राजकुमार अगद का। ..या फिर स्वय साम्राज्ञी सम्राट की अनुपस्थिति में समस्त अधिकारों को अपने हाथों में लें। नहीं तो यह डावाडोल स्थिति सभल नही सकती।...और ऐसी अनिश्चित स्थिति न शासन के लिए शुभ थी, न जन-सामान्य के लिए हितकर।

जब कोई समाधान नहीं सूझा तो सुग्रीव विचार-विमर्श के लिए तारा के पास पहुंचे। तारा ने सारी बात धैर्यपूर्वक सुनी और बोली, "इधर मुझे भी इस प्रकार की अनेक सूचनाएं मिली है। अगद भी एकाधिक बार कह चुका है—सम्राट की अनुपस्थिति के कारण शासन मे अनिश्चितता और अस्थिरता है।"

"मैं इसीलिए आपके पास आया हूं, भाभी!" सुग्रीव बोले, "कि या तो शासन की बागडोर आप अपने हाथ में ले लें अथवा अंगद का अस्थायी राज्याभिषेक कर दें, ताकि भैया के लौटते ही शासन उन्हें लौटाया जा सके।"

"सम्राट के लौटने की कोई संभावना मुझे तो दिखायी नहीं पड़ती।" तारा कुछ उदास हो गयी, "फिर भी यदि तुम कहते ही हो, तो अभिषेक अस्थायी ही हो—किंतु अंगद का नहीं, तुम्हारा।"

"क्यों?"

"युवराज होने के नाते सम्राट के पश्चात राज्य पर तुम्हारा ही अधिकार है।" तारा बोली, "स्त्री होने के नाते राजकाज में आज तक मुझे कोई भाग नहीं लेने दिया गया। न मेरी कोई इच्छा ही है। रह गया अंगद। तो वह अभी बच्चा है और तुम्हारा शिष्य है। उसे तुमसे अभी बहुत कुछ

सीखना है।...वैसे भी यह अस्थायी अभिषेक है। सम्राट के लौटते ही, शासन फिर उन्हें सौंप दिया जायेगा।"

सुग्रीव, कुछ सोचते हुए, चुपचाप बैठे उन्हें देखते रहे।

"सहमत नही हो ?"

"आप शासन संभालना नही चाहती।" सुग्रीव बोले, "आपके कहने से मैं शासन संभाल नही सकता...राजसभा मे मेरा विपक्षी दल एक स्वर में कहेगा कि मैंने अबोध साम्राज्ञी को बहका लिया है। अंगद बालक है, अतः उसका समर्थन भी मेरी सहायता नही कर सकता। ऐसी स्थिति में मेरे अस्थायी राज्याभिषेक..."

"तुम ठीक कहते हो।" तारा गंभीर हो गयी, "तुम्हारे शासन का प्रस्ताव रखने वाला कोई अन्य प्रौढ़ पुरुष होना चाहिए।" सहसा उनका स्वर धीमा और आश्वस्त हो गया, "तुम्हारे अभिषेक का प्रस्ताव भैया तार करेंगे। मैं उनसे बात कर लूगी। पिताजी उनका समर्थन करेंगे। तुम निश्चित रहो।..."

३

भूमि पर पड़े मारीच के शव को राम बडी देर तक देखते रहे—मारीच का शरीर पीडा में ऐंठ-ऐंठकर निस्पंद हो चुका था। उसके हाथो ने अपनी यातना में अपनी कृत्रिम दाढ़ी को नोच डाला था और उसके लोमरहित चेहरे पर पीडा के भावों के साथ-साथ अपने नखों की खरोंचो से निकला रक्त भी जम गया था...

राम की श्वास-प्रक्रिया भी अब कुछ सहज हो गयी थी। हाफना प्रायः रुक गया था और सांस नियमित हो गयी थी। धूप अपने जोर पर थी और हवा भी विशेष नहीं चल रही थी। राम एक पेड की छाया में जा [illegible] किंतु न तो उन्होंने अपने कंधे मे तूणीर उतारा और न ही हाथ से [illegible]

छोड़ा। कटि मे बधा खड्ग भी यथास्थान ही रहने दिया...

प्राय. सोलह-सत्रह वर्षों के अतराल के पश्चात मारीच किस नाटकीय आकस्मिकता के साथ उनके सामने आ खड़ा हुआ था और उतनी ही नाटकीय औचकता के साथ वह मारा भी गया था। सिद्धाश्रम में जब मारीच से मुठभेड हुई थी, तो राम जानते थे कि वे किसके साथ लड रहे हैं और क्यों लड रहे है, किंतु आज मारीच के वध के पश्चात भी उनके लिए यह समझना कठिन हो रहा था कि मारीच पुनः उनके मार्ग में क्यों आया।... वैसे इस बार उसने युद्ध का प्रयत्न भी नही किया था...वह तो अपनी जान लिये भागा ही चला जा रहा था।

किंतु, क्यों ?

राम के मन मे अनेक बातें एक साथ उठकर वात्याचक्र के समान उमड-घुमड़ रही थी...

मारीच की निश्चित ही युद्ध करने की इच्छा नही थी, अन्यथा वह भीत कुकुरवत् इस प्रकार भागा न फिरता।...तो क्या वह किसी अन्य व्यक्ति की प्रेरणा से उन्हे किसी विशेष स्थान तक ले जाना चाहता था ? किंतु कहा ? ..जहां राक्षसो की कोई सेना हो, पूर्वरचित व्यूह हो ?...

राम के मन मे कोई भी विचार टिक नही रहा था।

...इस क्षेत्र मे कही भी राक्षसो का सैनिक जमाव होता तो उन्हे उसकी पूर्व-सूचना अवश्य मिलती।...यदि राम को ले जाकर किसी सैनिक व्यूह में ही फसाना था, तो राम के स्वर में लक्ष्मण को पुकारने की क्या आवश्यकता थी ? क्या वह नही जानता था कि राम और लक्ष्मण मिलकर युद्ध करेंगे तो व्यूह मे फसने के स्थान पर उसे नष्ट कर देंगे।...मारीच की दिशाहीन दौड़, किसी स्थान-विशेष तक पहुचने का नहीं, राम के हाथों से निकल भागने मात्र का अंधा प्रयत्न था। ऐसे में लक्ष्मण को भी पुकार लेने का एक ही अर्थ हो सकता है कि वह राम और लक्ष्मण दोनों को ही आश्रम से दूर हटा ले जाना चाहता था...

राम का हृदय धक्-सा रह गया।...इसका अर्थ यह हुआ कि षड्यत्रकारियो की दृष्टि आश्रम पर थी। आश्रम में सीता थी, शस्त्रागार था, मुखर था...और थे लक्ष्मण। इन तीनों के होते हुए शस्त्रागार सबंधी

कोई आशंका नहीं होनी चाहिए। जटायु भी पास ही थे। एक बार सूचना भेज देने पर आदित्य, उल्लास, मणि, वज्रा तथा ग्रामवाहिनी के युवक भी पहुंच ही जायेंगे...नहीं! आश्रम के लिए कोई सकट नहीं था। यदि राक्षसों ने यह सोचा है कि मात्र राम को हटा देने से...पर मात्र राम ही क्यों, मारीच ने तो लक्ष्मण को भी पुकारा था। यह और बात है कि लक्ष्मण ऐसी पुकार पर ध्यान नही देंगे। प्रथम तो वे स्वर का भेद कर ही लेंगे; दूसरे वे जानते है कि राम इस प्रकार दीन होकर कभी नही पुकारेंगे... मारीच ने उनके स्वर का तो अनुकरण कर लिया; किंतु वह उनकी प्रकृति से परिचित नही था...

पर इतने वर्षों पश्चात धरती फोड़कर यह मारीच निकल कहा से आया?...कोई समाधान नही.. यदि कोई स्थानीय राक्षस होता, कोई साधारण राक्षस सेनानी होता, तो कदाचित राम को इतनी माथापच्ची की आवश्यकता न पड़ती; किंतु मारीच...रावण का विशिष्ट व्यक्ति...वह इस क्षेत्र में कभी नही देखा गया...राम ने उसके विषय में कभी कुछ नहीं सुना...क्या मारीच का प्रकट होना किसी विशिष्ट षड्यंत्र...

राम का ध्यान अपनी ओर बढ़ते हुए ग्रामवासियों की ओर चला गया। वे सशस्त्र थे। निश्चय ही वे ग्रामवाहिनी के सदस्य थे...संभवतः उन्हें इस घटना की सूचना मिल गयी हो।

पास आकर उन्होंने प्रणाम किया तो राम उनके नायक को पहचान गये।

"यह तुम्हारा क्षेत्र है, भिड़े?" राम बोले, "मैं साईखेड़ा के आसपास हू?"

"आप साईखेड़ा में ही हैं।" भिड़े बोला, "क्या हुआ?...हमें तो सूचना भी नहीं मिली कि यह राक्षस...और आप यहां पहुंच भी गये।"

"तुम्हे सूचना कैसे होती?" राम मुसकराये, "यह मुझे आश्रम से ही भगाता लाया है।...इस शव को संभालो। मैं लौटकर देखूं, आश्रम की क्या स्थिति है।"

"तनिक विश्राम कर, कुछ खा लें।" भिड़े बोला, "लौटते हुए तो संध्या हो जायेगी।"

"विश्राम करने लगा तो लौटने मे रात हो जायेगी।" राम बोले, "नही, भिड़े ! रुकने का समय नही है।"

"किंतु भद्र ! यह राक्षस अकेला ही आया था क्या ?"

"यहां तक तो यह अकेला ही आया था।" राम बोले, "इसके सहयोगी हुए तो आश्रम के निकट होंगे। संभवतः उन्हें सौमित्र ने संभाल लिया हो। फिर भी तुम लोग सतर्क रहो। कोई आशंका हो तो तत्काल आश्रम को सूचित करो।"

राम चले तो उनका मन प्रायः शांत था। खर-दूषण की पराजय के पश्चात राक्षसों ने पुनः आक्रमण का प्रयत्न अभी तक नहीं किया था। मारीच के इस अभियान के लक्ष्य के विषय में सोचकर वे कुछ विचलित अवश्य हुए थे, किंतु न मारीच सफल हुआ था, न उसके सहयोगी सफल होंगे। उनके इस दुस्साहसी प्रयत्न का परिणाम तो आश्रम में जाकर ही *ज्ञात हो सकेगा।...इस अभियान का लक्ष्य कुछ भी क्यों न रहा हो,* पर इतना स्पष्ट था कि राक्षसों मे अब सम्मुख युद्ध का साहस नही रह गया था, तभी तो षड्यंत्रों पर उतर आये थे...

यह भी संभव है कि यह मारीच का कोई निजी अभियान हो। राक्षस साम्राज्य और सेना का इसके साथ कोई संबंध ही न हो। सिद्धाश्रम से भागने के पश्चात, आज तक के इतने लंबे अंतराल मे रावण के आक्रमणों, युद्धों, अभियानों तथा षड्यंत्रों के संदर्भ में मारीच का नाम कभी नही सुना गया।...किंतु अकेला मारीच, राम और लक्ष्मण को शत्रु-भाव से अपने पीछे दौड़ने की चुनौती देकर क्या पायेगा ?...

शायद वे बहुत संकुचित दृष्टि से सोच रहे थे, और रावण की शक्ति को बहुत कम आंक रहे थे। दंडक वन मे पंचवटी तक के आश्रमों और ग्रामों के संगठन से उन्हें रावण के साम्राज्य की गतिविधियों की सूचनाएं कैसे मिल सकती हैं। जनस्थान से आगे तो उनका कोई भी संपर्क नही है। उस सारे क्षेत्र में क्या हो रहा है, इसका उन्हें तनिक भी ज्ञान नही है। रावण का साम्राज्य कहां-कहां तक फैला है, कहां-कहां उसके सैनिक स्कधावार हैं—उन्हें तो यह भी ज्ञात नही है। उसके सामरिक महत्त्व के ठिकाने कहां-कहा हैं, उसके प्रमुख शस्त्रागार कहां हैं, किस युद्ध के लिए

वह अपने किस स्कंधावार को प्रेरित करेगा—क्या इन बातों का ज्ञान उन्हें है ? उसके अधीनस्थ राजाओं के राज्यों में क्या-क्या योजनाएं बन रही हैं—राम को क्या मालूम !...दंडक वन के जिस क्षेत्र के अपने संगठन पर राम को इतना भरोसा है, वहां से वे मात्र दस सहस्र सैनिकों की सेना ले जाकर लंका में युद्ध करना चाहें, तो पीछे सारा दंडक वन—उसके समस्त आश्रम, समस्त ग्राम, समस्त जनसंख्या असुरक्षित हो जायेगी; और इसके विपरीत, जनस्थान में रावण के चौदह सहस्र सैनिक खेत रहे और रावण के कान पर जूं तक नहीं रेंगी। वह लंका से अपनी सेनाएं लेकर चलता है और देवलोक तक धावा मार आता है...और राम की स्थिति यह है कि ऋषि अगस्त्य के समान, अपने स्थान पर जमकर बैठे हैं। अपनी जनसेना को वे उसके क्षेत्र से बाहर, किसी भी स्थान पर ले जाकर, किसी भी व्यूह के साथ जा टकराने और अपना मनमाना युद्ध करवाने की कल्पना भी वे नहीं कर सकते। जनसेना अपने स्थान पर रहकर, रक्षात्मक युद्ध में अद्वितीय सिद्ध हुई है; किंतु प्रहारक सेना के रूप मे उसका कितना उपयोग हो सकता है...इसका कोई अनुमान राम को नहीं है।...राम ने जब भी अपना स्थान परिवर्तित किया है—नये स्थानों के लिए उन्हें नयी सेनाओं का निर्माण करना पड़ा है...ऐसे में राम कैसे यह कल्पना कर सकते हैं कि वे रावण से सम-धरातल पर शक्ति-परीक्षण कर सकते हैं, उसकी प्रत्येक योजना की सूचना पा सकते हैं, उसके अभियानों का पूर्व-ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, उसके विषय में सामरिक महत्त्व के तथ्यों से अवगत रह सकते हैं।...

राम के चिंतन मे बाधा पड़ी...कोई बड़े वेग से उनकी ओर आ रहा था...

राम रुक गये। उन्होंने धनुप संभाला और चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। ...वृक्षों की ओट होने के कारण, आने वाला व्यक्ति दिखायी नहीं पड़ रहा था, किंतु कितना विचित्र संयोग था...उसकी चाल सौमित्र से कितनी मिलती थी...

वे सचमुच ही सौमित्र थे।...

"सौमित्र, तुम !" राम चकित रह गये।

"हां, भैया !" लक्ष्मण त्वरित स्वर में बोले, "वह कौन था ?..."

"सीता को अकेला छोड़कर चले आये ?" राम ने लक्ष्मण की बात पूरी नहीं होने दी।

लक्ष्मण ने संक्षेप में उन्हें सारी बात बतायी।

"सर्वनाश !" राम चिंतित हो उठे, "...और मैं यह माने बैठा था कि तुम किसी भी स्थिति में आश्रम नहीं छोड़ोगे।"

"मैं स्वयं कभी नहीं आता, भैया..." लक्ष्मण का स्वर बुझा हुआ था।

"हमें शीघ्र वापस पहुंचना चाहिए।" राम की गति तेज हो गयी।

लक्ष्मण उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

मार्ग-भर राम के मन में ऊहापोह चलता रहा। विभिन्न संभावनाएं और आशंकाएं मन में जन्म लेतीं और अन्य प्रकार की आशंकाओं की लहर में बह जातीं। वे तनिक भी निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि पीछे क्या घटित हुआ होगा। वे कौन लोग थे ?...उनका लक्ष्य क्या था ? ...जानकी अथवा शस्त्र ?...सामरिक दृष्टि से शस्त्र महत्त्वपूर्ण थे; किंतु जानकी भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं थीं...जानकी सुरक्षित तो होंगी ? और राम का सहज स्थिर मन बार-बार आशंकाओं से त्रस्त हो उठता था...

लक्ष्मण ने बताया था कि किस प्रकार वे ध्वनियों, भग्न शाखाओं, रौंदी हुई घास और पद-चिह्नों के सहारे उन तक पहुंचने का प्रयत्न करते रहे थे। फिर ध्वनियां लुप्त हो गयी थीं और मार्ग-संधान और भी कठिन हो गया था। कितनी ही बार लक्ष्मण दिग्भ्रष्ट हुए। कितने ही स्थानों पर भ्रम में पड़े ..निरंतर द्वंद्व में फंसे रहे। किंतु किसी-न-किसी प्रकार वे आगे बढ़ते ही रहे...शत्रु के शब्दभेदी बाण के भय से वे पुकार भी नहीं सके...

लक्ष्मण चतुर और सावधान थे; राम उनकी प्रशंसा कर सकते थे... किंतु वे सीता को अकेली छोड़कर क्यों चले आये ?...राम का क्षोभ बार-बार जाग रहा था...यह क्या असावधानी नहीं है ?...आश्रम में कुछ अघटनीय घट गया तो उसके लिए उत्तरदायी कौन होगा ?...फिर किसी पर दायित्व डाल देने भर से तो क्षतिपूर्ति नहीं हो जायेगी...लक्ष्मण बार-बार स्पष्टीकरण देना चाह रहे थे, और राम संतुष्ट होने के स्थान पर

क्षुब्ध होते जा रहे थे।...कारण कुछ भी हो . सीता को अकेली, असुरक्षित छोड़ देना...यदि आवेशमय, अस्थिर, आशंकित तथा असंतुलित मन:स्थिति मे जानकी ने कुछ कह ही दिया था, तो क्या सौमित्र को भी चचल हो उठना चाहिए था ? आक्रोश, उत्तेजना, चपलता की भी कोई मर्यादा होती है। सकट मे ठीक निर्णय के लिए धैर्य रखना चाहिए—किसी ने उकसा दिया और आप छिटक पड़े। .निर्णय सदा दूसरे व्यक्ति के हाथ में रहेगा। अन्य व्यक्ति द्वारा सायास अथवा अपनी नासमझी में लगाये गये आरोपों का प्रतिकार ही तो विश्व का सबसे बड़ा धर्म नही है; अपने विवेक का भी तो कोई निर्णय होता है। यह-बचपना कब तक .

पर सीता ! क्या सूझी उसे ! सौमित्र को उकसाकर भगा दिया। इतने वर्षों के साहचर्य से सीता ने राम और लक्ष्मण को कितना जाना ?... राम को इतना दीन समझा, और सौमित्र को इतना भीरु ?...सौमित्र का राम के प्रति प्रेम...? फिर भी सीता ने सौमित्र पर आरोप लगाया। सौमित्र ने राम के आदेश का पालन करने के लिए पंचवटी के युद्ध मे भाग नहीं लिया था...सौमित्र ने स्वर्णमृग के पीछे जाने का भी आग्रह किया था...भीरुता और पलायन के आरोप कोई तेजस्वी पुरुष कैसे सहेगा... कैसा मन है सीता का ? पति पर आये सकट की आशंका से अपने परम हितैषियों पर ही संदेह करने लगीं...

कहीं कुछ और तो नही था जानकी के मन में ?

वर्षों से राक्षसों की कामुकता की कथाएं सुन-सुनकर, असुरक्षा के प्रति निरंतर सजग रह-रहकर, इस तनाव में जानकी को पुरुष मात्र के प्रति अविश्वास तो नही हो उठा ? वे सौमित्र के प्रति भी शंकालु हो उठी ?... या कहीं यह तो नहीं सोचा कि सौमित्र को भाई से अधिक अपनी सुरक्षा प्रिय है...या भाभी की सुरक्षा ?...भाभी के प्रति अतिरिक्त मोह अनुचित लगा जानकी को ?....

या यह सब राम के प्रति प्रेममात्र था...प्रेमी हृदय भीरु भी होता है और शंकालु भी।...प्रिय पर संकट की आशका मात्र से जानकी के विवेक के समस्त सूत्र छिन्न-भिन्न हो गये और वे अविवेकी मनुष्य के समान सौमित्र को वाग्बाणों से आहत कर अपना ही अहित कर बैठी।...प्रेमी

मन अविवेकी भी होता है।...राम का मन भीग उठा...

आश्रम के पर्याप्त इधर ही जन-सैनिकों की एक सन्नद्ध टोली मिली।

"क्या हो रहा है, नायक ?"

नायक ने अभिवादन किया, "डेढ़ प्रहर पूर्व कुछ लोगों ने वन में लक्ष्मण को सहायतार्थ पुकारे जाने का स्वर सुना था। अनुमान से वह आपका स्वर माना गया। तब से अनेक टोलियां वन में छान-बीन कर रही है, किंतु पुकारने वाले का अभी तक कोई पता नही मिला है।"

"आश्रम का कोई समाचार ?"

"मैं वहां जा नही पाया हूं।" नायक बोला, "आर्य आदित्य आश्रम में हैं। उन्होंने बिना कारण बताये अनेक निर्देश भेजे हैं। आश्रम में सब कुछ सकुशल नही लगता... ।"

"खोज स्थगित कर दो।" राम बोले, "वह राक्षसों का षड्यंत्र था।"

राम के मन में असाधारण उथल-पुथल मच गयी। आदेश के निदेश ...कुछ असहज हुआ है...सब कुछ सकुशल नही लगता...

राम के पैरों को जैसे पंख लग गये।

आश्रम के दृष्टि-सीमा मे आते ही राम प्राय. दौड़ने लगे। लक्ष्मण उनके साथ थे। टीले के ऊपर चढ़ते ही उन्हें अनेक व्यक्ति दिखायी देने लगे। आश्रम जनशून्य नही था; और लोग प्रसन्न नही थे। सैनिक टोली के नायक का अनुमान ठीक था। आश्रम मे कुछ-न-कुछ असहज था...राम की गति कुछ शिथिल हुई; किंतु अब भी वे सधे हुए पगों से आगे बढ़ते जा रहे थे।...

"भद्र राम ! बिना सूचना के आश्रम छोड़कर आप कहां चले गये थे ?" सहसा आदित्य आकर उनके सामने खड़ा हो गया।

अन्वेषक दृष्टि से राम ने उसे देखा—उसकी भंगिमा सामान्य जिज्ञासा की-सी नहीं थी। उसके प्रश्न मे से अनर्थ की जो ध्वनि फूट रही थी—वह भयंकर रूप से त्रासद थी।

"क्या हुआ, आदित्य ?" राम इतने अधीर कभी नही हुए थे।

"भाई मुखर ने वीरगति पायी है।"

"क्या ?" लक्ष्मण के चेहरे पर आवेश का भभूका झलका।

राम को लगा, उनकी शिराओं का रक्त ठंडा होकर जम गया है।

"और जानकी ?" उन्होंने बड़ी कठिनाई से पूछा।

"वे आपके साथ नहीं थी ?"

"सर्वनाश !" राम के मस्तिष्क में दूसरा कोई शब्द नहीं आया। वन में सौमित्र को आया देखने के क्षण से अब तक, उनके मन में उठी हुई आशंकाएं मूर्तिमान होने जा रही थीं।...

"तुमने आश्रम की भली-भांति खोज की है ?" राम के जबड़े भिंचे हुए थे।

"आर्य जटायु से पता किया है ?" लक्ष्मण अधीरता से बोले।

"वे अपनी कुटिया में नहीं हैं।" आदित्य बोला, "जानकारी पाने के लिए हमने उनकी बहुत खोज की है।"

"अघटनीय घट गया..." लक्ष्मण का स्वर भर्राकर टूट गया। वे अत्यंत कातर दिखायी पड़ रहे थे।

"जन-सैनिकों की अधिकाधिक टोलियां वन में भेजो और सीता तथा तात जटायु की सघन खोज करवाओ।" राम का स्वर बहुत धीमा था, "वन, गोदावरी-तट, पास के ग्राम, खेड़े, आश्रम—सब स्थानों पर फैलो... छोटी-से-छोटी सूचना भी तत्काल भेजो।..." और राम को [illegible] के लिए जैसे प्रयत्न करना पड़ा, "...मुखर का शव कहां है ?"

आदित्य आगे-आगे चला। राम ने देखा—[illegible], अनेक ग्रामों की जन-वाहिनियों के नायक...और भी बहुत सारे लोग... उदास चेहरे, भीगी हुई आंखें...जैसे सामूहिक शोक मना रहे हों।... व्यवस्था कदाचित आदित्य के हाथ में थी।...

मुखर का शव, श्वेत उत्तरीय में लपेटकर, सम्मानपूर्वक उसकी अपनी कुटीर में रखा हुआ था। दो जन-सैनिक प्रहरी कुटीर के द्वार पर उपस्थित थे।

राम ने उत्तरीय हटाया।

...मुखर के अधरों पर हल्की-सी मुसकान थी और आंखों में ...

और उत्साह . जैसे मृत्यु से पूर्व उसने अपने शत्रु को देखा और पहचाना हो। उसकी मुद्रा मे कही भय अथवा आतक का लेश भी नही था। वहा तो विजयी योद्धा की मुसकान थी..

लक्ष्मण, मुखर के पैरों के पास खडे, एकटक उसके चेहरे को देख रहे थे, मानो उसकी आखो में से पढना चाहते हों कि वह अपनी मृत्यु के लिए, उन्हे तो दोषी नही मानता. .

राम उसके निकट भूमि पर बैठ गये। मुखर का शरीर नि.स्पंद पड़ा था.. दोनों कंधों के घावों से बहा हुआ रक्त शरीर पर जम गया था। बाएं कंधे पर, पिछले युद्ध मे लगा पुराना घाव था—जो सीता की चिकित्सा से कुछ भर-सा गया था—आज वह पुनः खुला पड़ा था। ..दाए कधे पर बड़ा और घातक घाव था, जो उसके वक्ष तक खिंच आया था. .यह घाव किसी विकट खड्ग से अत्यन्त शक्तिशाली तथा निपुण योद्धा द्वारा किया गया था...यह किसी साधारण राक्षस का कार्य नहीं था...

राम के मस्तिष्क की शिराएं पुनः तन गयी—कौन आया था यहां? वह विकट षड्यंत्रकारी, श्रेष्ठ शस्त्रों से युक्त, असाधारण योद्धा तथा अत्यन्त शक्तिशाली पुरुष था...वह अत्यल्प समय मे मुखर की हत्या कर सीता का अपहरण कर ले गया.. किसी को कानोंकान खबर भी नही हुई। उसे धरती लील गयी या आकाश खा गया। चारों ओर जन-सैनिको की सगठित टोलियां फैली हुई सावधानी से खोज रही है; किंतु उस पर किसी की भी दृष्टि नही पडी...कौन बतायेगा कि मारीच अपने साथ किसे लाया था...

राम की दृष्टि पुन. मुखर के उल्लसित चेहरे पर टिक गयी...उनके मन में कितनी ही घटनाए और कितने ही विचार बवंडर मचाये हुए थे।... यह मुखर था...अपने परिवार पर हुए अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिए, शस्त्र-शिक्षा पाने के लिए, यह कहा-कहा भटका था। ऋषि वाल्मीकि के आश्रम मे वह उन्हें मिला था। कैसा अभिभूत हुआ था, वह उनके शस्त्रों को देखकर! *और जब वह उनके आश्रम में आया था, तो कैसी उत्कठा से* पूछा था उसने, कि क्या उसे राम शस्त्र-शिक्षा देंगे? कितनी लगन से उसने *शस्त्र-परिचालन सीखा था, और खर-दूषण के साथ हुए युद्ध मे किस*

उत्साह और आवेश से वह लडा था—जैसे अपने परिवार के हत्यारो से अपना प्रतिशोध ले रहा हो...वे सचमुच उसके परिवार के हत्यारे ही तो थे। किसी भी परिवार का क्या प्रश्न...वे तो शुद्ध हत्यारे थे ..जिनकी आजीविका ही नही, जीवन का विलास भी निरीह हत्याए हैं ..मुखर ने वस्तुतः अपने परिवार की हत्या का प्रतिशोध लिया था...वह राम के अपने परिवार का अग हो गया था...उसके अस्तित्व के बिना आश्रम की कल्पना नही की जा सकती थी...और आज उनके सम्मुख उसका शव पड़ा है। कैसी विजयिनी मुसकान है उसके अधरो पर! कौन आया था मारीच के साथ? कौन था जो मुखर का वध कर गया...और वैदेही? *वैदेही का हरण ही हुआ है क्या?...या हत्या?...*

राम का मस्तिष्क जड हो गया।

उन्होने धीरे-से दाहिना हाथ बढ़ाया और मुखर की खुली पलकें बंद कर दी। अब उन आखो को कुछ नही देखना था.. उनके खुले रहने का कोई प्रयोजन नहीं था।...अब राम की आखे खोजेंगी हत्यारे को...राम की भुजाएं मुखर का प्रतिशोध लेंगी...यह दायित्व मुखर सौंप गया है राम को...मारे पीडितों का प्रतिशोध ...

बाएं हाथ से उन्होंने श्वेत उत्तरीय को आगे खिसकाया और मुखर का चेहरा ढाप दिया।

"सौमित्र!" राम उठकर खड़े हो गये, "अंत्येष्टि का प्रबंध करो।"

अत्यन्त मथर गति से राम अपने कुटीर मे आये।

वे स्वयं ही समझ नही पा रहे थे कि उनके भीतर क्या-क्या घटित हो रहा था। कभी लगता था कि मस्तिष्क एकदम जड हो गया है; सारी संवेदनाएं मर गयी हैं। वे देख रहे हैं, सुन रहे है—और उन पर किसी बात का कोई प्रभाव ही नही हो रहा है। मुखर की हत्या हो गयी है, सीता का कदाचित अपहरण हो गया है, आर्य जटायु का कोई पता नही है...और सब-कुछ देखते-सुनते हुए भी राम अलिप्त-अप्रभावित खडे है, सवेदनशून्य, प्रतिक्रियाविहीन—जैसे मनुष्य न हो, यत्र हो। क्या हो गया है उनको...अतिमानव हो गये है, जिसे कोई विषाद नही छूता; या जड़ हो

गये हैं, जिनकी चिंतन-मनन शक्ति समाप्त हो गयी है...

थोड़ी देर तक वे चुपचाप बैठे रहे निष्क्रिय! जैसे स्वयं को ही न पहचानते हों और निश्चय न कर पा रहे हों कि अपने इस शरीर का क्या करें...

सहसा उन्हें लगा, उनका मन और शरीर, दोनों ही अवश होते जा रहे हैं। उन पर अब राम का कोई नियंत्रण नहीं है। पेट के तल में कहीं हलकी-हलकी पीड़ा होने लगी है और अनायास ही आंखों से अश्रु बहने लगे हैं. अश्रुओं को रोकने के प्रयत्न में सारा शरीर हिल उठता है; और शरीर को संभालने के प्रयत्न में अश्रु-प्रवाह पुनः आरंभ हो जाता है...

थोड़ी देर में अश्रु-प्रवाह नियमित हो गया...रह-रहकर मन भर आता था, हृदय में एक टीस-सी उठती थी और आंखों से अश्रु बहने लगते थे. जाने कहां थी वैदेही! जीवित भी थी, या उसका भी वध हो गया था.. कैसा हृदय होगा उस पशु का, जो वैदेही जैसी नारी पर भी शस्त्र से प्रहार कर सका होगा...आज कैकेयी की इच्छा पूरी हो गयी। यही चाहा होगा उसने!...नोच-नोचकर राम का शरीर राक्षस खा जाएं, राम की आत्मा घायल पक्षी के समान विवशता में अपने पंख फड़फड़ाती रहे; किंतु राम अपना धनुष न उठा सकें, खड्ग से प्रहार न कर सकें।...सीता का अपहरण हो गया था और राम अपने कुटीर में बैठे अश्रु बहा रहे हैं... लक्ष्मण अपने हाथ बांधे आश्रम में इधर-उधर मंडरा रहे हैं...इसीलिए तो कैकेयी ने वन में भेजा था उनको?...इतनी चतुर है कैकेयी...इतनी दूर तक देखती है वह? अपने ऊपर कोई दोष भी नहीं आने देती और हत्याएं तथा अपहरण भी करा देती है...साम्राज्य के राजकुमारों को निरीह वनवासी बना देती है, न सेनाएं साथ दे पाती हैं, न भाई ही भाई के काम आ सकता है...कैकेयी के मंत्र से मनुष्य कबंध में बदल जाता है...

पर कैकेयी का भी क्या दोष?

वैदेही और सौमित्र, देवर-भाभी-संबंध के कारण, अथवा अपनी जिह्वा की वक्रता का अभ्यास बनाये रखने के लिए, सदा वाग्युद्ध करते रहे। विनोद कब उग्र हो जायेगा, वक्रता कब धारदार हो जायेगी, मनोरंजन कब क्षोभकारी हो जायेगा—यह सब उन्होंने कभी नहीं सोचा। अंततः

वैदेही की जिह्वा का कशा, लक्ष्मण की चेतना के लिए भारी पड़ा और वे अपने विवेक का संतुलन छोडकर, आश्रम से हट गये...न वैदेही की जिह्वा रुकी, न सौमित्र का आवेश !...राम किसको दोष दें ?...

किसी का भी क्या दोष ? यदि राम यहा सामान्य तापस के समान चुपचाप एक किनारे मे पड़े रहते, वनस्पति सदृश्य निष्क्रिय रहकर चौदह वर्ष काट देते, तो कोई क्यों उनका शत्रु बनता ? क्यो उनके विरुद्ध यह षड्यंत्र रचा जाता ? क्यो सीताहरण होता ? क्यों मुखर का वध होता ?... क्या आवश्यकता थी उन्हें इन पचडों मे पडने की ? क्यो बढ-बढकर उन्होंने राक्षसों पर प्रहार किये ?...तब तो उन्हें न्याय-अन्याय का संघर्ष सूझ रहा था। मानवता का शोपण वे देख नही सके थे, उनका तेज जाग उठा था।... अन्य लोग भी तो इन्ही वनो में वर्षो से आखें मूदे पड़े है। किसी ने अध्यात्म की आड़ ले रखी है, किसी ने अहिंसा की। इंद्र तक तो राक्षसों से समझौता किये बैठे हैं; और राम जातियों तथा राष्ट्रों के उद्धार मे जुट गये। क्या समझा था उन्होंने स्वयं को ? क्या समझते थे कि वे न्याय और अन्याय के झगड़े निबटाते रहेगे, राक्षसो को दडित करते रहेगे, उनकी सेनाओ का नाश करते रहेगे और राक्षस उन्हें कुछ नही कहेंगे ? उन्होने राक्षसो को सर्वथा निरीह मान लिया था, अथवा स्वय को इतना सुरक्षित कि उनको क्षति पहुंचाई ही नही जा सकती ?...जिस दिन उन्होंने राक्षसो के विरुद्ध शस्त्र उठाया था, यह तो उसी दिन सोचना चाहिए था कि इस विरोध का मूल्य उन्हें भी चुकाना पड़ सकता है...बिना मूल्य चुकाये तो जीवन में कोई लक्ष्य प्राप्त नही किया जा सकता। या तो मनुष्य मूल्य चुकाने को तैयार रहे, अन्यथा लक्ष्य-प्राप्ति के स्वप्न देखना छोड़ दे। युद्ध एकतरफा संहारक नही होता। युद्ध तो दोनों ओर प्रहार करने वाला यंत्र है।... कैकेयी को दोष देने का क्या अर्थ ? वैदेही अथवा सौमित्र को अपराधी ठहराने का क्या महत्त्व ? और अपहरणकर्ता को भी कोसने का क्या लाभ?...यह तो युद्ध है। जो राम से हो सका, वह उन्होंने किया—जो उनके विरोधियों के वश मे था, वे भी कर गये...

आज मे यह युद्ध एक नया मोड ले रहा था...राम की अश्रु-धुली आंखों के सम्मुख ऋषि वाल्मीकि का आश्रम जीवंत हो उठा...मुखर ने राक्षसो

के प्रति अपनी घृणा की बात कही थी, तो उत्तर मे उन्होने कहा था कि परिवेश मे होने वाले अत्याचारो को सुनकर, सामान्य व्यक्ति के मन में असहमति ही जन्म सकती है, उसके विरुद्ध तीव्र, ज्वलत, उग्र विरोध उत्पन्न नही होता। सूचनात्मक धरातल पर जुड़ना, सवेदनात्मक धरातल पर जुडने से भिन्न है। दुर्भाग्य या सौभाग्य से मुखर उन अत्याचारों से, निजी रूप से पीड़ित हुआ था। इस प्रक्रिया ने उसके मन को इतना निर्मल और सवेदनशील बना दिया था कि उसके मन मे सवेदनात्मक धरातल पर, अत्याचार के विरुद्ध घृणा जन्म लेती थी।...वस्तुतः कोई समुदाय अन्याय के विरुद्ध कम उठता है, व्यक्ति ही उसका अनुभव अधिक करता है। व्यक्ति समुदाय को संगठित करता है, और समुदाय व्यक्ति का अनुसरण करता है।...ऋषि ने कहा था, "पुत्र! अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति सबसे अधिक दुखी होता है, पर वही दुख उसे अत्याचार के विरुद्ध लडने की शक्ति भी देता है। अतः अत्याचार का नाश करने के लिए उसका ग्रास बनना भी आवश्यक है। जो जितना अधिक पीडित और शोषित होगा, उसके मन में अत्याचार और शोषण के विरुद्ध उतनी ही उग्र, ज्वलत अग्नि धधक उठेगी; वह न्याय का भी उतना ही बड़ा समर्थक होगा।"...ये बातें मुखर के सदर्भ में हुई थी; पर क्या स्वयं राम पर आज ये शत-प्रतिशत लागू नही होती...राम के मन में राक्षसों के विरुद्ध आज तक जो आक्रोश था—वह मात्र परदुखकातरता के कारण था। उसमें द्रवणशीलता तो थी, किंतु दाहकता नही थी। मरने-मारने की ऐसी आग नहीं थी, जो व्यक्ति को भस्मीभूत कर दे।...किंतु आज सीता के अपहरण मे राम व्यक्तिगत रूप मे पीड़ित, आहत तथा अपमानित हुए थे। लगता था, मन का समस्त भावरूपी विरोध घनीभूत होकर कर्म में परिणत होने को अकुला उठा था।...अब राम पंचवटी मे बैठे नहीं रह सकते। वे विभिन्न लोगों का सगठन करते नही घूम सकते। वे आश्रमों तथा ग्रामों के जीवन की समस्याओं पर विचार करते, उन्हें सुलझाते हुए इधर-उधर नही भटक सकते...यदि सीता को खोजने मे विलंब हुआ तो राम अपने आक्रोश की ज्वाला मे स्वयं नष्ट हो जायेंगे। उन्हें सीता को खोजना होगा...वह जहां भी हो—जीवित अथवा मृत! सीता का पता लगाना होगा। यदि वे

जीवित हैं तो उनकी रक्षा करनी होगी, और यदि जीवित नहीं है, तो उनके हत्यारों को दंडित कर प्रतिशोध तो लेना ही होगा—साथ-ही-साथ अब इन अत्याचारों की केंद्रीय शक्ति को भी भस्मीभूत करना होगा।... अब राम सीधे रावण से ही जा टकरायेंगे। वे पंचवटी में, रावण के आक्रमण की प्रतीक्षा में बैठे नहीं रह सकते...अब वे किसी के भी द्वारा किसी भी मुखर का वध नहीं होने देंगे, किसी भी सीता का अपहरण नहीं होने देंगे...

"भैया !" लक्ष्मण ने कुटीर में प्रवेश किया, "मुखर की चिता तैयार है। अग्नि दें..।"

लक्ष्मण के चेहरे पर आक्रोश नहीं था। राम ने लक्ष्मण का यह रूप पहली बार देखा था। आंसुओं से भीगा हुआ चेहरा मुरझा गया था। होंठ सूखे हुए थे। स्वर भर्राया हुआ था। लगता था, मुखर की चिता चुनते हुए बहुत रोये थे...लक्ष्मण और रुदन...लक्ष्मण में ऐसा परिवर्तन...

राम उठ खड़े हुए।

अब तक उन्होंने अपने ही दुख को जाना था। लक्ष्मण की ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। राम की अपेक्षा लक्ष्मण ही मुखर के अधिक निकट थे। पिछले दस वर्षों से वे दोनों अभिन्न मित्र थे। मुखर के वध से सौमित्र को जो पीड़ा हुई होगी, वह अपनी तीव्रता में राम की पीड़ा से बढ़कर ही होगी। सीता का अपहरण भी लक्ष्मण के लिए उतना ही पीड़ादायक तथा अपमानजनक होगा।...संभवतः इस दुर्घटना के लिए वे स्वयं को दोषी भी मान रहे होंगे...और फिर अपने वय, अनुभव तथा प्रकृति की दृष्टि से सौमित्र, राम के समान सहनशील भी नहीं थे। ..उन्हें भी सांत्वना की आवश्यकता होगी...राम जैसे बड़े भाई के होते हुए भी वे ऐसे व्याकुल थे, जैसे उनका अपना कोई न हो।

"चलो।" राम बोले।

उन्होंने लक्ष्मण के कंधे पर हाथ रखा। कुछ कहने के लिए होंठ खोले, किंतु शब्द नहीं मिले। और इतने में ही लक्ष्मण के हृदय में जैसे कोई हूक उठी और वे भाई के वक्ष से लग गये। राम की भुजाएं लक्ष्मण को समेटते

हुए कस गयी। सारा परिवेश विलीन हो गया। उनकी चेतना मे, अपनी आखो से नि शब्द बहते अश्रु थे और स्वय को सतुलित करने की प्रक्रिया मे उठती हुई, लक्ष्मण की हल्की हल्की सुबकियां...

सहसा राम सचेत हुए, "धैर्य धारण करो, सौमित्र ! आओ, मुखर के प्रति अपने अतिम कर्तव्य का भी पालन करें।" राम का स्वर आवेशपूर्ण हो उठा, "आज से हमारा युद्ध प्रतिरक्षात्मक न होकर, प्रहारक होगा। सौमित्र ! अब राक्षसों द्वारा खेला जाने वाला अपहरण और हत्याओं का खेल और नहीं चल सकेगा।"

सध्या के विदा होते-होते मुखर का दाह-सस्कार हो गया। किसी ने भी अधिक बात नही की। लक्ष्मण तो एकदम ही नही बोले। सब ओर जैसे एक ठंडी व्यावहारिकता का वातावरण छा गया था, जिसने प्रत्येक व्यक्ति की भावनाओं की उष्णता को दबोच लिया था।

आदित्य ने राम के सम्मुख, जन-सैनिकों की विभिन्न टोलियों के खोज-प्रयत्नों के समाचार प्रस्तुत किये थे; किंतु अभी तक कोई भी सार्थक बात ज्ञात नहीं हो पायी थी। राम ने खोज के संबंध में कुछ और सुझाव दिये और अपनी कुटिया की ओर बढ़ गये। रात्रि का अधकार गहरा रहा था। इस समय बहुत कुछ हो पाने की संभावना भी नही थी।

कुटिया के एकात में स्थिर होते ही राम का धैर्य जैसे पुनः टूट गया। आखो से धाराप्रवाह अश्रु बहने लगे। राम ने भी स्वय को ढीला छोड दिया। जब रोना ही है तो फिर घुटने का क्या लाभ !...अश्रुओं के साथ-साथ विचारो का भी अबाध प्रवाह चलने लगा...

बार-बार आंखों के सम्मुख सीता और मुखर के चित्र आते थे; बार-बार कानों में उनके स्वर गूजने लगते थे। मन कभी मुखर की अंतिम भगिमा पर टिक जाता; और कभी आंखो के सामने उसके कधों से बहकर, वक्ष पर जम गया रक्त प्रत्यक्ष हो उठता। आश्रम की एकमात्र शल्य-चिकित्सक—सीता भी तो जाने कहां थीं, जो रक्त पोंछ, घाव साफ़ कर, कोई औषधि लगाती...मन सहसा सीता की ओर भटक जाता...कहां होगी वैदेही ? जीवित भी है या...जाने किसने, कहा और किन परिस्थितियो में

उनकी हत्या की होगी.. उनके शव का ससम्मान संस्कार किया होगा, या यू ही कही फेंक दिया होगा—शरभंग आश्रम के निकट के अस्थि-समूह जैसे किसी समूह में मिला दिया होगा; अथवा राक्षस उनका मास खा गये होंगे. .

राम के वक्ष में सहस्रों चिताएं एक साथ जल उठी, रोम-रोम में बिच्छू दंश मार गये...किसी असह्नीय पीडा से वक्ष फटने-फटने को हो आया...यदि हत्या नही हुई, सीता का अपहरण हुआ है, तो कहां होंगी सीता इस समय ? किस अवस्था में होंगी ? कौन ले गया होगा ? राक्षसों के प्रति वैर-भाव का प्रतिशोध लेने के लिए उस बेचारी भीरु, कोमलांगी अबला को शारीरिक तथा मानसिक यातनाएं दी जा रही होंगी; अथवा उसके सुंदर शरीर का, उसके अपार्थिव यौवन का भोग करने के लिए उसे पीड़ित किया जा रहा होगा...

राम उठकर बैठ गये। वे अपनी कुटिया में निष्क्रिय सोने की बात कैसे सोच सकते है। उनके वक्ष में हृदय नही है; सीता के प्रति कोई प्रेम तथा कर्तव्य नही है; उनका स्वाभिमान मर गया है अथवा उन्होंने अन्याय को सहना सीख लिया है...

अगले ही क्षण उनका सारा आक्रोश, असहायता के समुद्र में डूबकर निष्प्राण हो गया...जब तक कोई निश्चित सूचना न मिल जाए, वे कर भी क्या सकते है।...वे अपना धनुष लेकर वन के वृक्षो से तो नही लड़ सकते; पर्वत की शिलाओं पर सिर पटककर क्या मिलेगा उन्हे ?...उन्हे हताश नही होना है, किंतु मूर्ख आक्रोश भी किस कार्य का ? विपत्तियों का सामना तो धैर्य और विवेक से ही किया जा सकता है...सीता को खोजने का निश्चित तथा योजनाबद्ध प्रयत्न करना होगा...पंचवटी को छोड़कर सीता के लिए वन-वन भटकना होगा...सीता का अपहरणकर्ता ही मुखर का हत्यारा है...

द्वार पर किसी के हाथ की थाप पड़ी।

राम तत्काल उठ खड़े हुए। आज कुछ भी असहज नही था। किसी भी क्षण कोई भी सूचना आ सकती थी।...

राम ने द्वार खोला। दीपक के प्रकाश में सामने सौमित्र खड़े थे। उनका चेहरा पत्थर से भी अधिक निर्जीव लग रहा था। एक ही संध्या में [illegible] सौमित्र ?

"अभी [illegible] सोए नहीं ?" राम स्वयं को सामान्य रख [illegible] सौमित्र [illegible] समाचार आया है क्या ?"

लक्ष्मण ने नयी दृष्टि से राम को देखा, जैसे उनकी [illegible] के विरुद्ध विरोध [illegible] कर रहे हों। फिर आगे झुककर धीमे स्वर में बोले, "थोड़ी देर आपके पास बैठ सकता हूं ?"

राम हतप्रभ रह गए [illegible] एक के पश्चात् एक भूल करते जा रहे हैं [illegible] भी उन्होंने सौमित्र की भावनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया था, अब फिर वे उनकी ओर से आंखें मूंद, अपने कुटीर में अकेले बंद हो गये थे। अपने दुःख को कलेजे से लगाए, लोगों की दृष्टि से बचकर, एकांत में रोने का प्रयत्न कर रहे थे—उन्होंने क्या नहीं सोचा कि इस दुःख का बहुत बड़ा अंश उनके और सौमित्र के बीच सामान्य भी था। सीता उनकी पत्नी हैं तो सौमित्र की सम्मानित भाभी [illegible] सुग्रीव उनसे बढ़कर सौमित्र का मित्र था [illegible] फिर अन्याय के विरुद्ध यह युद्ध, जीवन का यह लक्ष्य, अकेले राम का नहीं था। वनवास में, लक्ष्य के लिए संघर्ष में सौमित्र कभी पीछे नहीं रहे थे [illegible] फिर सौमित्र से अलग उनका दुःख अपना कैसे हो सकता है...दोनों का दुःख था, दोनों को सहना था...इसको तो भाई के वक्ष से लगकर ही, साथ रोकर ही सहन किया जा सकता था, और भाई के कंधे से कंधा मिलाकर ही इसका प्रतिकार किया जा सकता था।

"आओ, सौमित्र !" राम का स्वर विह्वल हो उठा। वे लक्ष्मण को उनके कंधों से घेर भीतर ले आये।

लक्ष्मण को आसन पर बैठा, राम सम्मुख बैठ गये। सहज होने का प्रयत्न करते हुए धीरे से बोले, "बहुत दुःखी हो, सौमित्र ?"

लक्ष्मण तुरंत नहीं बोले। कुछ देर शून्य में देखते रहे, जैसे बोलने के लिए शक्ति बटोर रहे हों, "दुःखी...क्षुब्ध...अपमानित...सबसे अधिक अपराध-बोध से पीड़ित हूं...!"

"सौमित्र !"

"मुझे दड दें, भैया ! मै अपराधी...विश्वासघाती..."

राम चौंके, "क्या है तुम्हारे मन में, सौमित्र !"...

"आपकी अनुपस्थिति में रक्षा का दायित्व मेरा था।" लक्ष्मण का स्वर अत्यन्त उदास था, "भाभी के अपहरण, मुखर के वध के लिए अपराधी मैं हूं। उन्हें अकेले, असुरक्षित छोडकर जाने का औचित्य..."

"सौमित्र ! सीता और मुखर 'वस्तु' नही थे, जिनकी रक्षा का दायित्व तुम पर था।" राम बोले, "वे सचेतन प्राणी थे। तुम्हारे संरक्षित थे, किंतु तुम्हारे साथी भी थे। वे सैनिक थे और शत्रु से युद्ध कर रहे थे।" राम ने रुककर लक्ष्मण को देखा, "इस दीर्घकालीन युद्ध मे अनेक छोटी-बड़ी झड़पों मे हम विजयी हुए है, किंतु इस झड़प में शत्रु विजयी हो गया है। इस पराजय को उसके वास्तविक रूप में ग्रहण कर, हमें आगामी व्यूह के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए। अपनी भूलो से कुछ सीख आगे बढ़ना चाहिए।... तुम्हें दड किस बात का दूं ?..."

"मैं अपनी ग्लानि और अपराध-बोध का क्या करूं?..." अपनी व्याकुलता मे लक्ष्मण ने अपने सिर को अनेक झटके दिये।

"यह तर्क नही, भावना है—जो निजी क्षति से उत्पन्न हुई है।" राम का स्वर भर्रा आया, "निजी रूप से मैं भी बहुत पीड़ित हूं, सौमित्र !... व्यक्तिगत क्षति के लिए बहुत रो चुका हूं। अब सैनिक-धर्म समझने का प्रयत्न कर रहा हूं।"

लक्ष्मण की दृष्टि में राम के लिए सम्मान और स्नेह दोनों थे, "आपके जैसा ठडा कलेजा कहा से लाऊं?" लक्ष्मण की आंखो से अश्रु चू पड़े, "इस धधकती ज्वाला का क्या करूं? इच्छा होती है इस सृष्टि को नष्ट कर दू, यहा न्याय कभी विजयी नही होगा।"

राम स्नेहसिक्त आखों से लक्ष्मण को निहारते रहे, जैसे उनकी भावना की प्रशस्ति गा रहे हों; और फिर धीरे से बोले, "आग तो मेरे वक्ष में भी ऐसी लगी है कि स्वयं ही भस्मीभूत होने की आशंका जगती है। विनाश का उन्माद मेरे मन मे भी ववंडर के समान उठा था; किन्तु सौमित्र ! ससार के कुछ नियम हैं। उनके विरुद्ध आचरण करने से कभी सफलता नही

मिलती। हमें धैर्य तथा विवेक से योजनाबद्ध रूप में सीता की खोज करनी होगी। सीता का अपहरणकर्ता ही मुखर का हत्यारा भी है। उसकी शक्ति के अनुरूप अपना संगठन करना होगा। ऐसा न हो कि अपनी असावधानी में हम अपना अहित कर बैठें और वैदेही के लिए और अधिक कष्ट के कारण बन जाएं. ।"

"मैं क्या करूं, भैया ? .."

"अपने शोक को ऊर्जा में बदलो।" राम की शांति में उनका संकल्प बोल रहा था, "व्यक्ति के रूप में नहीं, सैनिक के रूप में सोचो।"

लक्ष्मण ने अपने सिर को झटका दिया, "शोक मना चुका। अब स्वयं को युद्ध के लिए तैयार करूंगा।"

जाने के लिए लक्ष्मण उठ खड़े हुए।

"आज रात यहीं सो रहो, सौमित्र !" राम के स्वर में अथाह प्यार था।

"नहीं, भैया !" लक्ष्मण के शोक में से उनका ओज झांक उठा, "शोक का काल समाप्त हुआ। शस्त्रागार के प्रहरी के रूप में, अपने ही कुटीर में सोऊंगा।"

राम स्तब्ध खड़े रह गये। कैसा है उनका विवेक, जो भावना से मुक्त होकर कुछ सोच लेता है, उसे शब्दों में व्यक्त भी कर देता है, दूसरों को सहमत भी कर लेता है; किन्तु स्वयं राम का अपना मन उस विवेक से सर्वथा अप्रभावित अपना शोक मना रहा है। उनके शब्दों से सौमित्र का ओज जाग उठा, और राम का मन किसी आहत पक्षी के समान फड़फड़ा रहा है। इच्छा होती है कि पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ें, या कुटीर की दीवारों से सिर मारें...हा सीते ! कहां हो तुम ! मुखर ने तुम्हारी रक्षा करते हुए अपने प्राण दे दिये। राम का वह भाग्य भी न हुआ।...राम ! यह अभागा निर्वासित अपनी कांता का, अपनी प्राण-सखी का वियोग सहने को जीवित रह गया। प्रिया वैदेही का वियोग एक ओर; और अपमान तथा प्रतिशोध की ज्वाला दूसरी ओर...सौमित्र को तो राम समझा लेंगे, किन्तु राम के मन को कौन समझायेगा...अपनी प्राण-सखी के कष्टों का

निवारण कैसे करे राम...इस अत्याचार का प्रतिकार कैसे करें...अपने अपमान का प्रतिशोध कैसे लें, मुखर के उपकार से उऋण कैसे हों...

सहसा उनके मन में आशंका का एक कलुषित बिन्दु जन्मा और क्रमश: फैलता चला गया...उन्हें लगा वह उनके मस्तिष्क को ही नहीं, उनकी आत्मा को भी निगल गया है...सब ओर अंधकार-ही-अंधकार छा गया। जीवन में आशा की कोई उजली किरण नहीं ..राक्षसों ने युद्ध छोड़, अब राम के साथियों को एक-एक कर घेरने की योजना बनायी है...आज मुखर का वध, सीता का अपहरण हुआ है. .कल राम को कहीं हटाकर सौमित्र का अपहरण अथवा वध...

राम का मन हताशा में डूबने लगा—नहीं ! राम ऐसा युद्ध नहीं लड़ सकते। उन्होंने सीता खोयी है, अब वे सौमित्र को नहीं गंवा सकते।...उन्हें लक्ष्मण की रक्षा करनी ही होगी।...इतनी बड़ी क्षति के पश्चात भी वे कुछ नहीं सीख रहे हैं। इन परिस्थितियों में भी उन्होंने सौमित्र को अलग कुटीर में अकेला सोने के लिए भेज दिया है...अब तो मुखर भी जीवित नहीं है। पता नहीं उसकी संचार-व्यवस्था किस स्थिति में है। कोई अपने कार्य में सन्नद्ध है भी या नहीं...राक्षसों के आने की सूचना भी कोई उन्हें देगा या नहीं...

राम ने अपनी कुटिया का कपाट खोला।

बाहर निकलने के लिए उनके पग नहीं उठे। चन्द्रमा के प्रकाश में वे देख रहे थे, आश्रम न सो रहा था, न निष्क्रिय था। जन-सैनिकों की टुकड़ियां अपने ढंग से सन्नद्ध बैठी थीं। चर आ और जा रहे थे। लगता था कोई भी नायक विश्राम करने नहीं गया। कदाचित् आदित्य भी यहीं कहीं बैठा व्यवस्था देख रहा होगा...नहीं ! राम इतने बंधुविहीन, असहाय और अकेले नहीं है। सौमित्र के लिए उनका मोह अपने स्थान पर ठीक है; किन्तु यह उनका मोह ही है। यहां तो प्रत्येक सैनिक, सौमित्र के समान उनका अंगरक्षक बन गया है। आज किसी ने राम से आदेश नहीं मांगा। राम ने कोई योजना-विशेष भी उनके सामने नहीं रखी...पर कार्य हो रहा है। प्रत्येक सैनिक राम के दुख को समझता है। उनमें से कोई भी उनका एकांत भंग करने नहीं आया; किन्तु वे लोग अपने दायित्व में दत्तचित्त हैं...

फिर क्यों चिंतित है राम ! जब घर-घर से निकलकर असंख्य सौमित्र उनके चारों ओर घिर आये है, तो राम हताश क्यों हैं ?

उनके मन मे ऋषि अगस्त्य आ बैठे—"तो राम ! पंचवटी जाने के लिए मैं तुम्हे नियुक्त करता हूं और इस सारे भू-खड की जन-शक्ति तुम्हारे हाथ मे देता हू। लोपामुद्रा ने तुम्हें समर्थ कहा है, मैं तुम्हें सफल होने का आशीर्वाद देता हू। ..न्याय का पक्ष कभी न छोडना, और जन-विश्वास को अपनी एकमात्र शक्ति मानना।"

कैसे भूल गये राम अगस्त्य की वाणी को...उनका जन-विश्वास कहा खो गया था .

राम ने कपाट भिड़ा दिया और अपने स्थान पर लौट आये। शैया पर लेटे और पलकें मूदने का प्रयत्न किया...किन्तु आखें जैसे जल रही थीं, पलकें मुद नहीं रही थी...आंखो के सम्मुख सीता का रूप उभरा...भयभीत और चीत्कार करती हुई वैदेही...किसी दीर्घकाय बलिष्ठ और भयकर पुरुष आकृति की पकड से छूटने के लिए छटपटाती हुई वैदेही...राम और सौमित्र को अपनी सहायता के लिए पुकारती हुई वैदेही...

राम लेट नहीं सके। उठकर बैठ गये।

.. दूसरे ही क्षण उन्हे लगा, जैसे सामने अधकार में मुखर किसी से युद्ध कर रहा हो; और उनके देखते-ही-देखते उस पुरुष ने अपना खड्ग मुखर के कधे पर दे मारा...

राम उठकर कुटिया मे टहलने लगे...

...*जन-विश्वास तो अपने स्थान पर ठीक है, किन्तु अपने मित्रों, सुहृदों,* अपने परिवार के सगे-सम्बन्धियों की क्षति।...ऐसी ही घटनाएं होती रही तो राक्षसों के विरुद्ध लडने का अपना संकल्प निभा पायेंगे क्या ? विश्वामित्र को दिया अपना वचन पूरा कर पायेंगे ?

सहसा उनकी कल्पना में विश्वामित्र जाग उठे...ऋषि मुसकरा रहे थे..."घबरा गया, राम ! अपने सपनो को साकार करना चाहता है और उनका मूल्य नही चुकाना चाहता। प्रतिबद्धता सुखी मनुष्यो का मनोरजन है क्या ? क्या समझकर तू वन में चला आया था ? तू क्या अपनी पत्नी और भाई के साथ वन-विहार करने आया था ?.. तू युद्ध करना चाहता है,

और आघात नहीं सह सकता ! रक्त बहाए बिना भी कभी युद्ध हुआ है, पुत्र ! चोट खाकर घबरा जाने वाले लोग संघर्षों में विजयी नहीं होते। यदि ऐसा ही मन पाया है, तो राक्षसों से समझौता कर ले और अपनी तथा लक्ष्मण की सुरक्षा की भीख माग; वापस अयोध्या लौट जा...दलित मानवता के त्राण का कार्य तू किसी और के लिए छोड़ दे।..."

राम के वक्ष पर जैसे किसी ने घूंसा मार दिया। उनका मन और शरीर तिलमिला उठे—"ठीक कहा गुरुवर ! ठीक कहा। राम तो एक ही चोट से घबरा गया. ऐसे ही हताश होता रहा तो सचमुच किसी दिन राक्षसो से समझौता कर लेगा .दलित मानवता का त्राण तो दूर, वह तो सीता और मुखर का प्रतिशोध भी नहीं लेगा..."

राम का मन स्थिर होने लगा...अब पीछे हटना सम्भव नहीं था... और युद्ध में अपना रक्त भी अनिवार्यत. बहता ही है, घाव लगते ही हैं—तन पर भी, मन पर भी...

कपाट पर किसी ने हल्के हाथ से थाप दी।

राम ने द्वार खोला। सामने आदित्य खड़ा था। आकाश पर अंधकार की चादर में दरक पड़ गयी थी, अंधेरे का रंग सलेटी-सा हो गया था !

"कोई नयी सूचना ?"

"हां, आर्य।" आदित्य का स्वर बहुत कोमल तथा सम्मानपूर्ण था। उस स्वर में सावधानी थी, "आर्य जटायु का पता मिल गया है।"

"वे आये है क्या ?" राम का उत्साह जाग उठा।

"नहीं, भद्र ! वे आ सकने की स्थिति में नहीं हैं।"

राम का उत्साह झाग के समान बैठ गया, "क्या हुआ है उनको ?"

"वे गम्भीर रूप से घायल है और इस समय अचेत हैं।" आदित्य धीरे से बोला, "जो वैद्य उनकी चिकित्सा कर रहे है, उनका विचार है कि उनके शरीर से इतना रक्त बह चुका है कि अब उनके जीवित अधिक आशा नहीं है।"

"उनसे कोई बातचीत..."

"उनकी चेतना क्षण-भर के लिए भी नहीं लौटी।" आ

"वैद्य प्रयत्न कर रहे हैं।"

"वे कहां हैं?" राम अपनी चिन्ता से जागे।

"टाकेद नामक ग्राम के निकट के वन की घनी झाड़ियों में से जन-सैनिकों ने उन्हें खोजकर निकाला है। इस समय वे टाकेद ग्राम में हैं।"

"मुझे शीघ्र आर्य जटायु के पास जाना होगा।" राम के स्वर में त्वरा जाग उठी।

राम ने आगे बढ़कर लक्ष्मण के कुटीर का द्वार खटखटा दिया।

जटायु को ग्राम के बाहर एक छोटी-सी कुटिया में लेटाया गया था। उनकी अवस्था ऐसी नहीं थी कि उन्हें ग्राम तक ले जाया जा सकता। जिस समय राम और लक्ष्मण वहां पहुंचे, जटायु तब भी अचेत थे। वैद्य और उनके सहयोगी दत्तचित्त होकर उनकी संज्ञा लौटाने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके घावों पर लेप लगाकर पट्टियां बांधी जा चुकी थीं। घावों से रक्त-स्राव बन्द हो चुका था। या तो यह औषधियों का प्रभाव था, या रक्त अधिक बह जाने का...उनके चेहरे का वर्ण एकदम पीला हो चला था। खर-दूषण-युद्ध में लगे घाव अभी नहीं भरे थे कि ये घाव लग गये।...वैद्य ने बताया, उनके शरीर पर अनेक घाव थे, कुछ खड्ग जैसे बृहद् और धारदार शस्त्र के, और कुछ घर्षण मात्र के...कदाचित् आर्य जटायु को दूर तक भूमि पर घसीटा गया था और उनका शरीर धरती, वृक्षों तथा शिलाओं से रगड़ खाकर छिलता गया था...

आश्रम की दुर्घटना के समय से ही जटायु भी लुप्त हुए लगते हैं...राम सोच रहे थे..उनके घाव किसी द्वन्द्व-युद्ध का परिणाम हैं क्या?...प्रतिद्वन्द्वी साधारण योद्धा नहीं रहा होगा, नहीं तो जटायु इस प्रकार मरणासन्न न पड़े होते...क्या यह सब कुछ एक ही व्यक्ति अथवा एक ही टोली का काम है?...

"राम!" वृद्ध वैद्य ने जटायु की ओर संकेत किया।

राम और लक्ष्मण निकट आ गये। जटायु के चेहरे की जड़ता कुछ कम हुई लगती थी, जैसे जीवन लौट रहा हो। उनकी आंखें अभी बन्द थीं, किन्तु होंठ बिना शब्द किये कभी-कभी हिल जाते थे...

"सज्ञा लौटेगी ?" राम उत्कंठित थे।

"कुछ क्षणो के लिए लौट भी सकती है।" वैद्य बोले, "किन्तु निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।"

राम जटायु के एकदम निकट आ गये। उनकी आखें वृद्ध जटायु के चेहरे पर आये प्रत्येक भाव को देख लेना चाहती थी, कान जटायु के अधरो से निकले प्रत्येक शब्द को सुन लेना चाहते थे।...क्या सीता का अपहरण-कर्ता, मुखर का हत्यारा तथा जटायु का आक्राता एक ही व्यक्ति है ?... मृत्यु से पूर्व जटायु यदि एक बार सचेत हो जाए ..नाम-भर उच्चरित कर दें, तो राम इस बलिदान को निरर्थक नही जाने देंगे...और कुछ कर सकें, न कर सकें; किन्तु राम उस दुष्ट हत्यारे से इन हत्याओ तथा सीता के अपहरण का प्रतिशोध अवश्य लेंगे...

सहसा जटायु ने अपनी पलकें झपकीं ..

राम उनके और भी निकट सरक आये।...किन्तु जटायु पलकें झपक-कर ही रह गये। उन्होंने आखें नहीं खोली। उनके शरीर की निस्पदता को देखते हुए, आंखें खोलने की कोई संभावना भी नही लग रही थी।

राम ने पीडित आंखों से वैद्य की ओर देखा, किन्तु वैद्य कुछ आश्वस्त लग रहे थे। उन्होंने तत्काल कोई आसव जटायु के अधखुले अधरों पर टपकाना आरंभ कर दिया...जटायु के होंठ हिले, जैसे उस आसव को पीने का प्रयत्न कर रहे हों...लगा, जैसे आसव उनके कठ तक पहुंचा है।...

वैद्य रुक गये।

जटायु के होंठ पुनः हिले। अस्पष्ट-सा शब्द भी हुआ। राम अपने कान उनके अधरों के पास ले गये...किन्तु शब्द स्पष्ट नही हुए। जटायु कदाचित अचेतावस्था मे बड़बडा रहे थे...

राम सीधे हो गये।

किन्तु सहसा जटायु के शब्द स्पष्ट हो गये..."बहुत पीड़ा है, राम !... मैं उठ नही सकता...रावण। दुष्ट रावण। मैं उसे रोक नही पाया। हाय बेचारी वैदेही..."

"रावण !" राम के वक्ष पर जैसे घूसा लगा, "रावण आया था यहा, तात जटायु ?"

किन्तु जटायु चुप हो गये।. सहसा उनकी आखें खुलीं...आंखों में थोड़ी-सी पहचान भी उभरी।...वैद्य ने उनकी नाडी पर अपनी अंगुलियां रखी. .किन्तु जटायु की आखो की ज्योति जैसे मद पड़ती जा रही थी, प्राण उनका साथ छोड़ रहे थे ..उनकी आंखे मुदती चली गयीं...

वैद्य ने उनकी कलाई छोड़ दी, "अब कोई आशा नही है।"

राम पछाड खाकर जटायु के शव पर गिरे, "तात जटायु ! आपने भी प्राण दे दिये। अभागा राम ही उस समय यहा क्यो न हुआ...?"

लक्ष्मण ने बढकर राम की पीठ पर धीरे से हाथ रखा, "उठिये, भैया ! यह एक और निरीह हत्या है, जो लक्ष्मण के अपराध के कारण हुई।"

राम ने पलटकर लक्ष्मण की ओर देखा और उठ खड़े हुए, "यह तुम्हारा अपराध नही, रावण का पाप है। उस पापी को मैं अवश्य दडित करूगा।.. प्रतिशोध लिये बिना राम के प्राण भी नही निकलेंगे। .."

सहसा राम चुप हो गये।

.रावण ! रावण का साम्राज्य ! कितना विस्तार है उसके साम्राज्य का।...कहा ले गया होगा रावण वैदेही को ? कहा छिपा रखा होगा ?... राम को लगा, उनके सम्मुख अनन्त आकाश फैला है—सीमाहीन, मर्यादाहीन...उसमें करोड़ो ब्रह्मांड फैले है, असख्य नक्षत्रमालाएं फैली हुई हैं...और उनमें से ढूढना है सीता को। जाने किस ग्रह में जा छिपायी है सीता रावण ने...

राम देर तक खड़े-खड़े अपनी कल्पना के उस असीम आकाश की नीलिमा को घूरते रहे। उनकी कल्पना में एक चीटी, सागर-तट पर खड़ी उसका विस्तार नापने के लिए पंख फड़फड़ा रही थी...

राम की आखों मे अश्रु आ गये.

"भैया !" लक्ष्मण ने उनकी भुजा पकडकर उन्हे हिलाया।

"भद्र राम !" वैद्य कह रहे थे, "जटायु की अंत्येष्टि की व्यवस्था का आदेश दो।"

राम ने अपने आस-पास बैठे सब लोगों को बारी-बारी देखा।...मुखर का कार्य आदित्य ने बहुत अच्छी प्रकार संभाल लिया था। पिछले दो दिनों

ने राम को अपना ही होश नही था। विषाद जैसे उनकी चेतना मे चिपक गया था। बार-बार उनकी तेजस्विता उभरती थी, आक्रोश जागता था, किन्तु विषाद उसे पुनः छा लेता था।

राम का ध्यान तनिक भी इस ओर नहीं था कि इस अवधि मे किसने क्या किया, कौन कहां रहा। सौमित्र के निकट बने रहने का आभास उन्हे था। उनके दुखी चेहरे को देख-देखकर बीच-बीच मे वे विह्वल भी हो उठते थे...किन्तु फिर भी अपने विषाद को झटक, उससे सर्वथा मुक्त हो, किसी अन्य विषय की ओर ध्यान देने की चेतना लौटी ही नही।...

...उन्होंने एक सध्या मुखर की चिता मे अग्नि दी थी, अगली प्रातः जटायु के वृद्ध शरीर को चिता में लेटाना पड़ा। चिताओं की ज्वाला शात हुई तो उनकी अस्थियां चुनकर गोदावरी मे प्रवाहित की...कैसा लगता है कि कल जो व्यक्ति जीवित प्राणी था, अपना आत्मीय था... आज वह या तो भस्म की मुट्ठी में परिणत हो गया है; या जली हुई हड्डियों में उसका अस्तित्व ढूढ़ना पड़े. .

किन्तु इसी अवधि मे आदित्य ने दंडक वन के सारे आश्रमों, प्रमुख ग्रामों तथा जन-सैनिकों की मुख्य टुकड़ियों को पचवटी की समस्त घटनाओं की सूचना भिजवा दी और जन-सेना के सारे ही प्रमुख जन एक-एक कर आश्रम मे एकत्रित हो गये थे।...आज जैसे युद्ध-परिषद ही जुट आयी थी... सैनिक अधिक नही थे, किन्तु सेनानायक प्राय. सारे ही थे।

"भद्र राम !" सबसे पहले ज्ञानभृत्य ही बोला, "मेरी वाचालता क्षमा करें। इस विकट शोक की स्थिति मे भी आपको सहज होने के लिए हम पर्याप्त समय नहीं दे रहे है। यहां उपस्थित अनेक लोगों का मत है कि हमारी ओर से जितनी शिथिलता अथवा विलंब होगा, रावण को उतनी ही सुविधा होगी। देवी वैदेही का कष्ट उतना ही विकराल होता जायेगा और लका की सुरक्षा उतनी ही दृढ़ होती जायेगी। इसलिए हमे अब विलंब नही करना चाहिए।"

अपनी आखों में शून्य भरे, क्षण भर राम उसे देखते रहे, जैसे समझ ही न पा रहे हों कि ज्ञानभृत्य क्या कह रहा है। फिर जैसे स्वयं को संभालते हुए बोले, "क्या करना है, इसका निश्चय हो चुका क्या ?"

"निश्चय करने को क्या शेष है।" ओगरू उग्र स्वर में बोला, "हम सीधे लंका पर सैनिक अभियान क्यों नहीं करते ? हम किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं ? .."

"हमें वर्षा ऋतु से पूर्व लंका पहुंच जाना चाहिए।" उल्लास बोला।

"हमें विलंब नहीं करना चाहिए।" मणि ने पति का संक्षिप्त समर्थन किया।

"आपके उत्साह से मुझे बल मिलता है।" राम के चेहरे पर एक उदास-सी मुसकान उभरी, "अपना राक्षस-विरोधी संघर्ष हमें उसकी चरम परिणति तक चलाना है, अन्यथा इतने प्रयत्नों से प्राप्त स्वतंत्रता, राक्षसों के एक आक्रमण से नष्ट हो जायेगी।" राम ने एक लंबी सांस ली, "किन्तु लंका पर हमें सैनिक अभियान करना चाहिए—इसके पक्ष में हमारा एक भी अनुभवी सेनानायक अपना मत नहीं दे रहा।"

"भद्र राम !"

"बोलो, अनिन्द्य !"

"यदि मैंने तत्काल सैनिक अभियान का व्यग्र समर्थन किया, तो इसका कारण यह नहीं है कि इन दुखद घटनाओं से प्रभावित नहीं हूं, अथवा मैं उनका प्रतिशोध लेना नहीं चाहता।"

"तो क्या कारण है ?" आदित्य ने पूछा।

"व्यावहारिक कठिनाइयां।" अनिन्द्य ने उत्तर दिया, "हमारी सेना जन-सेना है। यह साम्राज्यों की प्रशिक्षित, आक्रामक सेना नहीं है, जिसे विश्व में कहीं भी ले जाकर युद्ध में झोंका जा सके। हमारे सैनिक अपने घरों में रहते हैं, अपने खेतों में हल चलाते हैं, अपनी खानों में काम करते हैं, अपनी भट्ठियों में धातु पीटते हैं, और आवश्यकता पड़ने पर अपने शस्त्र उठाकर अपने परिचित ठिकानों से प्रहार करते हैं...।"

"अनिन्द्य ठीक कह रहे हैं।" सिंहनाद ने पहली बार मुख खोला, "जन-सेनाएं अपने क्षेत्र में ही प्रभावकारी होती हैं। क्षेत्र से बाहर निकलते ही उनकी जड़ें कट जाती हैं। उनका आश्रयदाता, उस क्षेत्र का साधारण जन, उनसे दूर हो जाता है। उनकी, अपने परिचित भूगोल की सुविधाएं समाप्त हो जाती है।" सिंहनाद का स्वर ऊंचा हुआ, "यही कारण है कि

ऋषि अगस्त्य अपना स्थान छोड़कर आगे नहीं बढे...।"

"एक बात और है।" भीखन बोला, "यदि वर्षाकाल में हम लंका में हुए, तो हमारे खेतों की बुवाई कौन करेगा? हमारे खेत परती पड़े रह जायेंगे। अन्न बोयेंगे नहीं, तो काटेंगे क्या? अन्न नहीं होगा तो लंका हम चाहे जीत लें, अगले वर्ष इस सारे क्षेत्र में अकाल पड़ जायेगा। पराजित हुए तो लंका में मर जायेंगे; अन्यथा लका के विजेता भूख से तड़प-तड़पकर मर जायेंगे।"

भीखन चुप हो गया। और भी कोई कुछ नहीं बोला।

"सौमित्र कुछ नहीं कह रहे।" आनन्दसागर ने उस संक्षिप्त नि.स्तब्धता को तोड़ा।

लक्ष्मण ने आनन्दसागर की ओर देखा। उनकी आखों में अब भी गहरा विषाद था, "निर्णय आप लोग करें। सौमित्र आज्ञा-पालन करेगा।"

"सौमित्र!" राम के स्वर में हल्की-सी ताड़ना थी, "अपने प्रति इतने कठोर न बनो। तुम्हारे एक निर्णय से कोई दुर्घटना हो गयी तो तुम अगले किसी निर्णय में भागी ही नहीं बनोगे?"

"अपनी भूल का मैंने कोई प्रतिकार नहीं किया है।" लक्ष्मण धीरे-से बोले, "अभी तक मेरा आत्मविश्वास नहीं लौटा है।"

"भावी कार्यक्रम संबंधी निर्णय में हमारी सहायता करो। समय आने पर भूल का प्रतिकार भी हो जायेगा।" राम के स्वर में आदेश का बल था, "उसी से तुम्हारा आत्मविश्वास भी लौटेगा और सहज पराक्रम भी। सैनिक अभियान सम्बन्धी अपना मत दो।"

"लंका की विजय से भी आवश्यक भाभी की खोज है।" लक्ष्मण धीरे से बोले, "ऐसा न हो कि लंका के विजेताओं को विजय के उपहार-स्वरूप देवी वैदेही का शव मिले...या वह भी न मिले...। आवश्यक नहीं कि रावण भाभी को लंका में ही ले गया हो।"

सभा में आक्रोश से अधिक विषाद और असहायता का वातावरण छा गया।

"तात जटायु और मुखर को लौटाया नहीं जा सकता; [illegible] को लौटाने की संभावना है। वैदेही की खोज करनी होगी। वे जी[illegible]

तो उनकी तथा उनके मनोबल की रक्षा का प्रबन्ध करना होगा; और तब उन्हे लौटाने के लिए युद्ध ..'' राम अन्तर्मुखी होते हुए-से बोले, ''जन-सेना को साथ ले एक अतहीन खोज के लिए चल पड़ना व्यावहारिक नही है। खोज ही नही, एक निश्चित अभियान के लिए यहा से जन-सेना लेकर जाना मुझे तर्क-सगत नही लगता।'' वे पुनः रुके, ''यदि रावण की यह योजना हो कि मैं जन-सेना को लेकर एक अंधी खोज में जगह-जगह भटकता फिरू, तो मैं उसकी इच्छा पूरी नही होने दूगा। जन-सेना मेरे साथ चली तो यह सम्पूर्ण क्षेत्र पूर्णतः रक्षा-विहीन हो जायेगा। हम सीता की खोज में भटकेंगे और दडकारण्य राक्षसो के पेट में समा जायेगा। जन-सैनिक अनिश्चित काल के लिए अपने स्थान से हट जायेंगे। न खेतों से कुछ उपजेगा, न खानो से। एक अविकसित तथा निर्धन प्रदेश, अनुत्पादन की स्थिति मे अपनी निर्धनता से पराजित होकर, किसी धनाढ्य जाति के हाथ बिक जायेगा।...''

''यह नही होना चाहिए...।'' अनेक स्वर उभरे।

''और सबसे महत्त्वपूर्ण बात, जिसकी ओर सेनानायक सिंहनाद ने सकेत किया है,'' राम बोले, ''अपना क्षेत्र छोड़ते ही जन-सेना की प्रहारक शक्ति समाप्त हो जायेगी। नये और अपरिचित प्रदेशो में अनिश्चित काल तक उस जन-सेना के भरण-पोषण का दायित्व कौन संभालेगा? अन्न? आश्रय? अन्य आवश्यकताएं? अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह जन-सामान्य को लूटेगी और साम्राज्यो की सेनाओं के समान जन-विरोधी हो जायेगी। सारा जनपद उस जन-भक्षी सेना का विरोधी हो जायेगा। तब राम और रावण मे अतर ही क्या रह जायेगा?''

सब ओर एक सन्नाटा छा गया।

''हम यहीं से वैदेही की खोज के लिए विभिन्न दिशाओ में टोलिया नही भेज सकते क्या?'' मौन लंबा होते देख, प्रभा ने धीरे से कहा।

''निरापद स्थानो में तो सभव है।'' धर्मभृत्य बोला, ''किन्तु संकटपूर्ण स्थानो मे खोज-टोलियां क्या कर पायेंगी?''

''प्रत्येक दिशा में अनेक खोज-टोलिया भेजी जाए तो न उनकी रक्षा की जा सकेगी और न उनसे सपर्क ही रखा जा सकेगा।'' अनिन्द्य बोला।

"रावण ने भाभी को जहां रखा होगा, वहां दृढ रक्षा-व्यवस्था होगी। मार्ग मे राक्षसो का प्रतिरोध भी हो सकता है। खोज-टोलियों को भ्रमित अथवा नष्ट करने का भी प्रबध किया गया होगा।" लक्ष्मण ने अपना मत दिया।

"सौमित्र ठीक कहते है।" मणि ने अपनी सहमति प्रकट की।

"एक बात मैं भी कहूं।" वज्रा बहुत भीत स्वर में बोली।

"बोलो ! बोलो !" राम ने उत्साहवर्धक स्वर में कहा।

"शूर्पणखा कहा करती थी कि लका समुद्र के पार है। वहां तक जाना बहुत कठिन है। जो समुद्र को पार कर सकता है, वही लंका मे पहुच सकता है।"

"वज्रा ठीक कहती है, हमें लंका तक भी जाना पड़ सकता है।" राम बोले, "वहां जाने के लिए ऐसे व्यक्ति होने चाहिए, जो समुद्र के स्वरूप और प्रकृति से परिचित हों। उनके पास सागर-संतरण का कोई साधन हो। लका के निषिद्ध क्षेत्रों में जाकर, राक्षसो से बचकर लौट आने की क्षमता हो; अन्यथा ऐसी खोज का क्या लाभ, जिसकी सूचना भी हम तक न पहुंचे।"

"हम मे से कोई भी समुद्र से परिचित नही है।" आनन्दसागर बोले।

"शायद अगस्त्य-आश्रम के कुछ लोग आपके सहायक हो सकें।" सिंहनाद ने कहा।

"वह बात मेरे मन मे है।" राम धीरे से बोले, "किंतु अभी मैं अगस्त्य आश्रम की विपरीत दिशा में बढ़ने की बात सोच रहा हूं।"

"आपके मन में क्या है, भद्र ?" सारे वार्तालाप में मुधा पहली बार बोली, "आपने कर्तव्य निश्चित कर लिया ?"

"कुछ निश्चित है, कुछ अनिश्चित भी।" राम के अधरों पर मुसकान की एक क्षीण-सी रेखा उभर आयी।

"निश्चित क्या है, राम ?" अनिन्द्य का स्वर आशंकित-सा था।

"निश्चित इतना ही है कि मैं अब रुक नही सकता..." राम का स्वर कुछ भारी हो उठा, "सीता के अन्वेषण का कार्य किसी अन्य व्यक्ति पर डाल, मैं यहा शांति से नही बैठ सकता।"

"किधर जायेंगे ?" धर्मभृत्य ने पूछा।

"जटायु-वधस्थल से रावण का रथ दक्षिण-पश्चिम की ओर गया है।" राम बोले, "उसी दिशा में जाऊंगा। निश्चित प्रमाण मिलने पर आगे बढ़ूंगा।..

"अकेले ?" आदित्य के स्वर में कंपन था, "आप अकेले रावण से लड़ने जायेंगे ?"

"अकेला क्यों ?" राम के अधरों पर विषाद-मिश्रित मुसकान उभरी, "न्याय के समस्त पक्षधर मेरी ओर होंगे।"

सहसा अनिन्द्य उठकर खड़ा हो गया। उसके खड़े होने में कुछ असाधारणता थी।

"मैं कुछ बातें स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूं, राम !" और बिना रुके अनिन्द्य बोलता गया, "अन्य लोगों के विषय में मैं नहीं जानता, किंतु अपने विषय में निश्चित रूप से जानता हूं। आप जहां भी जाएं, जिधर भी जाएं—मैं आपके साथ जाऊंगा।"

जिस आकस्मिकता से अनिन्द्य ने बोलना आरंभ किया था, उसी आकस्मिकता से वह मौन हो गया; और विचित्र बात यह थी कि वह राम की ओर देखने के स्थान पर, सुधा की ओर देख रहा था।

राम मुसकरा पड़े, "हां ! सुधा से पूछ लो। उसकी इच्छा के विरुद्ध बच्चों और घर का दायित्व उस पर लादकर तुम नहीं जा सकते।"

"मेरी सहमति ही नहीं, सद्भावना भी तुम्हारे साथ है।" सुधा ने अपने स्थान से ही उच्च स्वर में कहा, "हम दोनों में से एक को तो बच्चों के पास रहना ही होगा। मैं पीछे रहूंगी। यह दायित्व न होता, तो मैं भी साथ चलती।"

अनिन्द्य की आंखों में कृतज्ञता के आंसू आ गये। उसके होंठ आभार प्रकट करने के लिए जैसे कुछ कांपे, पर उनसे कोई शब्द नहीं फूट सका।

"मेरा एक प्रस्ताव है।" इस बार धर्मभृत्य ने अपना मौन तोड़ा, "प्रत्येक क्षेत्र से दो-दो व्यक्ति चुनकर, जन-सैनिकों की एक टुकड़ी राम के साथ जाए। वैसे भी शस्त्र-परिवहन के लिए उन्हें कुछ सहायकों की आवश्यकता होगी।...साथ जाने वाले लोग कम-से-कम तब तक राम के

साथ रहे, जब तक उनका भावी कार्यक्रम निश्चित नही हो जाता, उनका नया स्थान और नये साथी निश्चित नही हो जाते। जब यह निश्चित हो जाए कि उनसे कहा संपर्क किया जा सकता है, तब जन-सैनिकों की यह टुकड़ी लौट सकती है ...!"

"यदि अन्य लोगो को आपत्ति न हो तो ऐसा ही हो, मित्र!" राम का स्वर सहज था, "हम प्रस्थान की तैयारी करें। शस्त्रागार का भी वितरण कर लें—कौन-से शस्त्र हमारे साथ जायेंगे, कौन-से पंचवटी मे रहेंगे और कौन-से अन्य आश्रमों में चले जायेंगे...मेरा प्रस्ताव है कि पचवटी के इस आश्रम की व्यवस्था आदित्य को सौंप दी जाए।"

सब लोगों ने अपनी सहमति प्रकट कर दी।

"तो ठीक है।" राम का स्वर निश्चयात्मक था, "अब अपनी तैयारी कर लो।"

राम ने अपनी खोज जटायु की कुटिया से ही आरभ की। दक्षिण-पश्चिम दिशा में कुछ दूर तक उन्हें रावण के रथ के चलने के प्रमाण भी मिले थे। जहा तक घोड़ों के सुमों के चिह्न, रथ के पहिये के चिह्न अथवा वृक्ष-लताओं के टूटे अथवा उखड़े होने के प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते रहे, वहा तक उनकी यात्रा निर्द्वन्द्व चलती रही। किंतु ये चिह्न बहुत दूर तक नही मिले। बीच-बीच मे कहीं भूमि कठोर हो गयी थी, कही वन सघन हो गया था। कहीं वायु ने सूखे पत्ते उड़ाकर भूमि पर बिछा दिये थे और कही-कही वन-पशुओं ने वनस्पतियो को खाकर, रथ के घर्षण के चिह्न मिटा दिये थे। यह निर्णय करना बड़ा कठिन था कि रावण का रथ कहा से होकर गया होगा।...किंतु सबसे बडा आश्चर्य यह था कि इतने वेगशाली रथ के लिए रावण ने इस गहन वन में से मार्ग कैसे खोजा होगा।...अवश्य ही उसे इस वन का सूक्ष्म और विस्तृत ज्ञान था, तभी तो वह बिना किसी विघ्न-बाधा के शीघ्रातिशीघ्र वन से निकल गया...

राम के मन मे बार-बार आ रहा था कि रथी रावण किसी लंबे मार्ग से भी गया हो सकता है। संभव है कि उसने अपने लिए कोई अधिक सुरक्षित मार्ग चुना हो, जो अधिक सुरक्षित प्रदेशों से होकर जाता है।

जिस मार्ग में उसके अपने मित्र हों, विरोधियों की संभावना कम हो...राम का भी उसी मार्ग से जाना आवश्यक नहीं था। वे किसी छोटे और कम कष्टकर मार्ग से भी जा सकते थे। शत्रु-पक्ष के मध्य से होकर जाना उनके लिए श्रेयस्कर भी नहीं था। किंतु इसके लिए मानव-साध्य की आवश्यकता थी .

वैसे भी अपनी इस मनःस्थिति में, राम के लिए यह यात्रा सुखकर नहीं हो सकती थी। जहां कहीं वैदेही से संबंधित कोई प्रमाण मिल जाता था, उनका हृदय द्रवित हो जाता था। कुछ देर तक प्रमाण नहीं मिलता, तो वे वैसे परेशान हो उठते थे। ..भूमि पर गिरा कोई भी पुष्प दिख जाता तो उन्हें लगता कि वह सीता की वेणी से ही गिरा होगा...रावण ने सीता को उनके केशों से पकड़कर खींचा होगा...तभी यह फूल इस प्रकार गिरा होगा. .कितना कष्ट हुआ होगा सीता को. .और वे कितनी अपमानित हुई होंगी .स्वयं को इस प्रकार असुरक्षित छोड़ जाने के लिए उन्होंने राम को कितना कोसा होगा...राम के विरुद्ध क्या कुछ नहीं आया होगा उनके मन में। क्षण-क्षण में सहस्रों शाप उनके मन में जन्मे होंगे...

वृक्षों की हिलती टहनियों के नव-किसलयों को देखकर उन्हें सीता की भुजाओं तथा हथेलियों का स्मरण हो जाता।...क्षण भर को मन आह्लादित हो उठता और दूसरे ही क्षण मन में दुष्कल्पनाएं जागने लगतीं. .सीता का भक्षण करने के लिए रावण के साथी राक्षसों ने उनकी भुजाओं को काट डाला होगा।...ऐसे ही कांपी होंगी उनकी कटी भुजाओं की अंगुलियां, जैसे नव-किसलय वायु के स्पर्श से कंपित हो उठते हैं...

ऐसे समय में राम का आवेश सर्वनाशक हो उठता था। मन में आता था, वन में आग लगा दें। दावाग्नि में सारा वन नष्ट हो जाए। सारे पशु-पक्षी झुलसकर मर जाएं। सरोवर और नदियां सूख जाएं और आकाश के नक्षत्र पर्वतों पर गिरकर उन्हें चूर-चूर कर दें। कभी-कभी तो ऐसा आक्रोश उठता कि हाथ में धनुष-बाण लें, अंधाधुंध अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग करें—जहां तक दृष्टि जाती है, वहां तक सब कुछ क्षार कर दें।

राम की मनःस्थिति देखकर, लक्ष्मण अपना शोक छोड़, चिंतित हो

उठते...कहीं भैया का मानसिक संतुलन ही न बिगड़ जाए...कहीं अपने उग्र आक्रोश में कोई अनर्थ ही न कर बैठें...

राम की विभिन्न मन:स्थितियों के साथ-साथ चलते हुए भी लक्ष्मण अपनी ग्लानि को पूर्णतः दूर नहीं कर पा रहे थे। वे एक क्षण के लिए भी भूल नहीं पाते थे कि राम आश्रम का भार उन पर ही छोड़कर गये थे। वे जानते थे कि वह पुकार उनके भाई की नहीं थी। वे यह भी जानते थे कि उन्हें आश्रम छोड़कर नहीं जाना चाहिए था; किंतु भाभी की भीत, आशंकित, अस्थिर मनःस्थिति में उनके मुख से निकले एक ही वाक्य ने लक्ष्मण के धैर्य की परीक्षा ले डाली, और अनर्थ हो गया...आज पग-पग पर वे भैया को धैर्य धारण करने के लिए कहते हैं। इतने बड़े आघात के पश्चात भी, राम ने विलाप और प्रलाप चाहे जितना भी किया हो—न तो इस घटना के लिए उन्होंने किसी को दोषी ठहराया है, न अपने व्यवहार में वे अमर्यादित हुए हैं, और न उन्होंने कहीं कोई गलत निर्णय लिया है।...इस धैर्य का एक कण भी होता लक्ष्मण में, तो भाभी का ऐसा क्लेशकारी, अपमानजनक अपहरण क्यों होता, मित्र मुखर की ऐसी क्रूर हत्या क्यों होती, तात जटायु ऐसा असम द्वन्द्व-युद्ध लड़ने को बाध्य क्यों होते...सब कुछ लक्ष्मण के ही कारण हुआ।...अपने जिस अधैर्य को वे उग्रता और तेजस्विता समझकर अपना गुण मान बैठे थे, यह सब उसी का तो परिणाम है... लक्ष्मण की उग्रता किस काम आयी?...मां ने साथ भेजा था कि भाई और भाभी की रक्षा करना...और यहां वे भाभी के हरण और भाई के दग्धकारी कष्ट का कारण बन बैठे...इस क्षति की पूर्ति कैसे करेंगे लक्ष्मण? मां सुनेंगी तो क्या कहेंगी—जिस सौमित्र में घोर शैशव से ही मां ने कूट-कूटकर कर्तव्य-भावना भरी थी, ठीक समय पर वही सौमित्र अपने कर्तव्य से चूक गया।...अब लक्ष्मण का मन हंसना नहीं चाहता। उनकी आत्मा में विनोद और चपलता का जो स्रोत उबलता रहता था, वह अपनी अंतिम बूंद तक सूख गया है। लक्ष्मण पूर्णतः रुक्ष हो गये हैं—रसहीन। उनमें अब मात्र शुष्कता रह गयी है—उग्रता, तीव्रता—अपने प्राण देकर भैया के किसी काम आ जाने की भावना...और कुछ नहीं रह गया है अब लक्ष्मण के जीवन में...

उन्हें लगता है, अपनी युवावस्था में भी अपने जिस शैशव को वे बलात् अपने साथ घसीट रहे थे, इस दुर्घटना ने खड्ग के एक करारे वार के समान, उसे काटकर उनके जीवन से अलग कर दिया है। उनकी चपलता, अब अतीत की बात बन गयी है...इस एक घटना ने सहसा ही उन्हें बहुत प्रौढ़ बना दिया है। दुख की एक घटना, मनुष्य को कितना परिपक्व कर जाती है—व्यक्तित्व को ही बदल जाती है। लक्ष्मण की आत्मा से चिपका अपराध भावना और ग्लानि का ताप, उन्हें कुछ-का-कुछ किये दे रहा है। आत्मा के जिस मद ने उनसे प्रमाद करवाया था, वह मद सूख गया है, या वह गया है.. अब केवल दायित्व-बोध है, जाग्रत विवेक है—अपने बलिदान की भावना है...न्याय के पक्ष मे, भैया के कार्य मे उन्होंने अपने प्राण नहीं दिये तो फिर क्या किया...

जनस्थान की सीमाओं को पार करने पर क्रौंचारण्य आरंभ हो गया था। गोदावरी के उस पार शूर्पणखा का स्कधावार होने के कारण यह सारा क्षेत्र, राम तथा उनके साथियों के लिए सर्वथा वर्जित प्रदेश था। न कभी वे इधर आये थे, न इधर का कोई व्यक्ति उनसे आकर मिला था। क्रौंचारण्य क्षेत्रफल मे छोटा, किंतु अत्यन्त सघन वन था। उसमें तपस्वियों के आश्रम और वनवासियों के ग्राम भी बहुत कम थे। जो लोग मिले भी, वे सीता के विषय में कोई सूचना नहीं दे सके। उन्होंने कोई रथ नहीं देखा था। अनेक लोग तो यह भी नहीं समझते थे कि रथ किस वस्तु को कहते हैं। रावण के विषय में भी उन्हें कोई ज्ञान नहीं था; और किसी स्त्री का अपहरण होते हुए भी उन्होंने नहीं देखा था...हां ! राक्षस शब्द के उत्तर में कुछ वनवासियों ने अयोमुखी राक्षसी तथा कुछ ने कबंध राक्षस का नाम अवश्य लिया था...

क्रौंच वन की सीमा तक पहुंचते-पहुंचते शाम का झुटपुटा घिर आया था। एक छोटे-से सरोवर के तट पर राम ने रात व्यतीत करने का निश्चय किया।

अपेक्षाकृत ऊंचे और सूखे स्थान पर शस्त्र रख दिये गये और भोजन तथा शय्याओं का प्रबंध कर लेने के पश्चात वे लोग विचार-विमर्श के लिए आग जलाकर उसके चारों ओर बैठ गये।

"अभी तक हमें कोई सार्थक सूचना नही मिली है। कबंध राक्षस की चर्चा अवश्य हुई है। यदि वह राक्षस है तो रावण के पक्ष का व्यक्ति है। संभवत: उसे इस क्षेत्र मे रावण की गतिविधियों की सूचना हो। हमे उसके पास जाकर पता लगाना चाहिए।" राम बोले, "किंतु इसी बात का एक दूसरा पक्ष भी है। वह रावण का व्यक्ति है। अतः हमें सूचना नहीं देगा। उलटे हमारे लिए कोई विघ्न अवश्य खड़ा कर सकता है।"

"ऐसी स्थिति में हमें उसकी दिशा मे नही बढ़ना चाहिए।" अनिन्द्य बोला, "उससे अनावश्यक विलंब होगा। भद्र राम! क्या हमें नीति के रूप में यह स्वीकार नही कर लेना चाहिए कि हम अनावश्यक विलंब नही करेंगे और विघ्नों से यथासंभव बचते हुए, शीघ्रातिशीघ्र देवी वैदेही तक पहुंचने का प्रत्यन्न करेंगे।"

"करना तो यही चाहिए।" लक्ष्मण बोले, "किंतु मालूम तो हो कि भाभी कहां हैं। शीघ्रातिशीघ्र कहां पहुंचें? अतः जहां से उनका पता लगने की संभावना हो, वहा तो जाना ही पड़ेगा चाहे वहा विघ्न-बाधाएं, जोखिम और संकट ही क्यों न हों।"

"तुम क्या कहते हो, भूलर?" राम ने पूछा।

"सौमित्र ठीक कह रहे हैं।"

"अब तो मुझे भी यही लग रहा है।" अनिन्द्य बोला, "संकट तो हमे उठाना ही होगा।"

"किसी का मतभेद तो नही है? राम ने पूछा।

किसी ने विरोध प्रकट नही किया।

"तो कल प्रात: कबंध की दिशा मे चलना निश्चित रहा।"

प्रात: उन लोगों ने क्रौंच वन पार कर मतंग वन में प्रवेश किया। मतंग वन भी वैसा ही सघन था, किंतु फलों के वृक्ष उसमें अपेक्षाकृत अधिक थे। इसी से पशु-पक्षी भी अधिक संख्या मे दिखायी पड रहे थे। स्थान-स्थान पर थोड़ा-बहुत जल भी उपलब्ध था; किंतु मनुष्यों की कोई बस्ती उन्हें यहा नही मिली। कुछ-एक स्थानो पर कुछ टूटे-फूटे परित्यक्त कुटीर अवश्य दिखायी दिये।

मध्याह्न के समय वे लोग वृक्षों के एक झुरमुट के नीचे ठहर गये। वन्य-फलों का भोजन किया और विश्राम के लिए लेट गये।

अभी अधिक समय नहीं हुआ था कि लक्ष्मण उठ बैठे।

"क्या हुआ ?"

"पशुओं की असाधारण हलचल का-सा शब्द है..."

राम ने सुनने का प्रयत्न किया।

"कुछ है तो अवश्य !" भूलर बोला, "जैसे बहुत सारे पशु झुंड बांधकर एक दिशा में दौड़ रहे हों।"

"मैं देखता हूं।" राम ने उठकर अपना खड्ग बांधा और धनुष संभाल लिया।

"मैं भी साथ चलूंगा, भैया !"

"सौमित्र !..." राम ने उन्हें रोकना चाहा, किंतु लक्ष्मण शस्त्र बांधकर तैयार हो चुके थे। राम ने लक्ष्मण की मुद्रा देखी—उनका अनुरोध एक ओर इतना दृढ़ और दूसरी ओर इतना दीन था कि उन्होंने बाधा देने का विचार छोड़ दिया, "तुम भी चलो।" वे अपने साथियों की ओर मुड़े, "अनिन्द्य ! पीछे का दायित्व तुम्हारा है। तुम और भूलर नौ-नौ व्यक्ति अपने साथ लेकर, विपरीत दिशाओं में मुख कर, सावधान होकर बैठ जाओ। या फिर बीच में शस्त्र रख, उसके चारों ओर वृत्त बना लो।"

थोड़ी देर वे पर्याप्त गति से चले, किंतु फिर पग शिथिल हो गये। पशुओं की हलचल की कोई विशेष दिशा नहीं रह गयी थी, और न ही उनमें कोई सामूहिकता दिखायी पड़ रही थी।...उन्हें रुक जाना पड़ा।

किंतु उनके रुकते ही पुन: कुछ हलचल हुई। यह हलचल पशुओं की नहीं, मनुष्यों की थी। वृक्षों के पीछे से निकलकर आठ-दस व्यक्तियों ने उन्हें घेर लिया। वे लोग उनके चारों ओर वृत्त बनाकर खड़े थे और उन्होंने शूल तान रखे थे। उनकी आकृति स्थानीय लोगों से भिन्न थी। शरीर पर उत्तरीय नहीं था। कटि के चारों ओर मृग-चर्म लिपटा हुआ था। वैसे सम्प्रत: वे लोग अभावग्रस्त नहीं लगते थे।

राम का हाथ अपने तूणीर की ओर बढ़ा, किंतु कुछ सोचकर वे रुक

गये। भाई को देखकर लक्ष्मण भी शांत ही रहे।

"चलो।"

"कहां ?"

"हमारे स्वामी के पास।"

राम ने लक्ष्मण को संकेत किया, "चलो।"

नियमित दूरी बनाये हुए तथा अपने शूलों को ताने हुए, वे लोग उन्हें वृक्षों की एक सघन पंक्ति के पीछे ले गये। पंक्ति की सघनता कदाचित बाहर से देखने वाले के लिए भ्रम उत्पन्न करने के लिए ही थी। उस पंक्ति के पार न वन उतना घना था, और वहां न वन की-सी अनियमितता थी। वृक्षों के बीच में से जाने के लिए मार्ग बने हुए थे और इक्का-दुक्का कुटीर भी दिखायी देने लगे थे।

वे लोग गुफा जैसे एक पक्के मकान के सामने जाकर रुक गये। एक व्यक्ति भीतर जाकर अनुमति ले आया और तब राम और लक्ष्मण को भीतर चलने के लिए कहा गया।

भीतर प्रवेश करते ही उनकी दृष्टि एक विराटकाय व्यक्ति पर पड़ी। वह काठ के बने एक आसन पर बैठा था और सिर को अपनी छाती पर टिकाये ऊंघ रहा था। उसका पेट इतना स्थूल था कि दूर से देखने पर शरीर के स्थान पर पेट ही पेट दिखायी देता था। गर्दन इतनी छोटी थी कि आभास होता था कि कंधों पर ही सिर टिका हुआ है और गर्दन है ही नहीं। छाती पर सिर टिकाये बैठे होने के कारण ऐसा आभास हो रहा था कि उसकी छाती में ही चेहरा बना हो और कंधों से ऊपर कुछ हो ही नहीं। किंतु उसकी भुजाएं असाधारण रूप से बलिष्ठ लग रही थीं।

राम और लक्ष्मण के आ जाने पर उसने अपनी ऊंघती हुई आंखें खोलकर उन्हें देखा।

"कौन हो तुम लोग ?" उसकी आंखों की चमक असामान्य थी।

"मैं राम हूं, और यह मेरा अनुज है—सौमित्र !" राम निष्कंप स्वर में बोले, "तुम कौन हो और हमें पकड़कर क्यों मंगवाया है ?"

"मैं कबंध हूं—मानव-भक्षी राक्षस !" उसने अट्टहास किया, "मेरे घुटने को इंद्र ने अपने वज्र से तोड़ दिया है, इसलिए अधिक चल-फिर नहीं

सकता। किंतु मेरी भुजाएं आज भी बहुत बलिष्ठ हैं।" उसने अपनी भुजाओं को गर्व से देखा, "और जो तुम्हें पकड़कर लाये हैं—वे भी मेरी भुजाएं है। कोस-दो कोस के भीतर जो कुछ इन्हें मिलता है—पशु या मनुष्य, उसे ये पकड लाते हैं; और वे मेरा भोजन बनते हैं। गये तो आज भी ये पशुओं को ही पकड़ने थे, पर तुम लोग मिल गये...।" वह ज़ोर से हंसा, "शस्त्र बांधे हो, पर युद्ध नही करते। अच्छा भोजन है।" उसने रुककर अपने सेवको को आदेश दिया, "इन्हे मेरे निकट लाओ।"

शूल-धारियों ने अपना घेरा संकीर्ण करना आरंभ किया।

राम और लक्ष्मण कबंध के निकट आ गये। कबंध के पास कोई शस्त्र नही था, अत. भय की कोई विशेष बात नहीं थी।

इससे पूर्व कि वे समझ पाते कि कबंध क्या करना चाहता है, उसने अपने स्थान पर बैठे-ही-बैठे अपनी भुजाएं बढाकर एक-एक भुजा में राम और लक्ष्मण की कटि को घेर लिया और उन्हें निरंतर कसता चला गया। एक क्षण के लिए तो लगा कि राम और लक्ष्मण दोनो ही अवश हो गये है। उस असाधारण स्थूलकाय पंगु व्यक्ति की भुजाओं में इतना बल होगा, इसकी कल्पना उन्होने नही की थी ! लगता था, वह उनके शरीरों को पीस डालेगा...

"भैया ! अपनी रक्षा कीजिये।" लक्ष्मण अपने घुटते हुए सांस से बोले, "मेरा बचना तो कठिन लगता है।"

लक्ष्मण को लग रहा था, पिछले दिनों उनके मन में जन्मी कामनाएं, मानो घटनाओं का रूप लेकर, साकार उनके सम्मुख प्रस्तुत हो गयी हैं। लक्ष्मण के प्रायश्चित का क्षण आ पहुंचा था...लौह-स्तंभों जैसी, इस राक्षस की इन भुजाओं से बचना संभव नहीं था...दोनों भाइयों का बचना तो किसी भी रूप मे संभव नही था...हां ! यदि लक्ष्मण उससे उलझे रहें और राम मुक्त होने का प्रयत्न करें तो चाहे यह कितना भी बलिष्ठ क्यों न हो, भैया को बांधे नही रख सकेगा।...यदि भैया एक बार मुक्त हो जाएं तो वे अपने शस्त्र-कौशल से, इस अवरोध से निकल जायेंगे और अपने साथियों तक जा पहुचेंगे। कदाचित फिर उन्हें कबंध और उसके साथियों से निबटने में कोई कठिनाई नही होगी।...लक्ष्मण तब तक जीवित रह सकें

तो ठीक, अन्यथा अपने बलिदान से वे अपने प्रमाद का प्रायश्चित करेंगे...

कबंध की भुजा राम के लिए भारी सिद्ध हो रही थी, जैसे कोई अत्यत शक्तिशाली अजगर उनकी कमर से लिपट गया हो।...ऐसी कठोर भुजा से राम का पाला पहले कभी नहीं पड़ा था। जनकपुर में शिव-धनुष की भुजा भी इतनी कठोर प्रतीत नहीं हुई थी।...यह कैसी भुजा है? मांस-पेशियां है, अथवा सत्य ही यह इस्पात है?...बाह निरंतर कसती जा रही थी। दोनो भाइयो के प्रतिरोध के होते हुए भी कबंध तनिक भी विचलित नहीं हो रहा था।...लक्ष्मण और राम मे संतुलन करने के लिए भी इस भुजा की एक भी पेशी ढीली नही पड़ रही...सहसा राम का ध्यान अपने संघर्ष से उचटकर लक्ष्मण की ओर चला गया...सौमित्र को यह क्या हो रहा है...जैसे हाथ-पैर डाल दिये हो और शत्रु की विजय को पूर्णत: निश्चित मानकर प्रतिरोधविहीन होकर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हो...विचित्र भंगिमा है बलिदान की!

"सौमित्र!" राम ने भर्राये-से स्वर मे लक्ष्मण को चेताया।

लक्ष्मण ने मानो जागकर आंखें खोली, "आप अपनी रक्षा करें, भैया!"

पर तब तक राम ने अपना खड्ग निकालकर कबंध की बायी भुजा पर एक प्रहार कर दिया था। कबंध की पकड़ कुछ ढीली हो चुकी थी; और जब तक लक्ष्मण अपना खड्ग निकालते, राम दूसरा वार कर चुके थे।

लक्ष्मण आत्मपराजय की मुद्रा से उबरे और उन्होंने ताबडतोड़ तीन-चार प्रहार कर दिये।...कबंध उनके सम्मुख अक्षम होता जा रहा था।

राम ने एक तटस्थ दूरी से देखा—कबंध की लौह-दंडो जैसी भुजाएं व्यर्थ हो चुकी थी। उसके वे शूलधारी सैनिक, जिन्हें वह अपनी डेढ़ कोस लबी भुजाएं मानता था, भयभीत होकर भाग चुके थे; और कबंध मास के एक पगु पहाड़ के समान निष्क्रिय बैठा अपनी कटी भुजाओं से रक्त बहा रहा था और थोड़ी-थोड़ी देर में अपने सूखते अधरो को अपनी जीभ से गीला कर रहा था...

उनकी दृष्टि लक्ष्मण की ओर गयी। वे पहले से कुछ अधिक

दिखायी पड रहे थे। उनके चेहरे पर पुत्ती उस पराजित मानसिकता के भीतर से कुछ-कुछ उत्साह झाक रहा था।

"क्या हो गया था तुम्हे, सौमित्र ? अपना अपराध-बोध त्यागो।" राम का स्वर कुछ आवेशपूर्ण था, "नही तो कोई-न-कोई अनर्थ हो जायेगा। मैं वैदेही को खोजते-खोजते तुम्हे भी खो चुका था। तुमने अपने साथ-साथ मुझे भी आत्मनाश के संकट में डाल दिया था।"

लक्ष्मण अपने साथियों को बुलाने जाने के लिए मुडे, किंतु उन्हें जाना नही पड़ा। कबंध के भागते हुए शूलधारियो से कोई आभास पाकर वे लोग स्वयं ही इधर आ गये थे।

"अनिन्द्य !" राम ने आदेश दिया, "चारो ओर से घेरा डाल लो। इस राक्षस का कोई साथी हो तो उसे बांध लो।...और देखना ! अपने शस्त्रो की सावधानी से रक्षा करना।"

"आओ, सौमित्र !"

वे जाकर कबंध के सम्मुख खड़े हो गये, "तुमने कहा था कि तुम नर-भक्षी राक्षस हो।"

लक्ष्मण ने चौंककर राम को देखा—सामान्यत राम के स्वर मे हिंसा की इतनी खनक नही होती थी। आज राम का स्वर इतना हिंस्र क्यों हो रहा था ? क्या यह सीताहरण की प्रतिक्रिया थी अथवा मृत्यु के मुख से लौटने के बाद की प्रतिहिंसा ?...सीताहरण के पश्चात निश्चित रूप से राम भी पहले जैसे राम नही रह गये थे।

"हां !" कबंध का स्वर धीमा और गिरा हुआ था।

"तुम रावण को जानते हो ?"

"जानता हूं...।" कबंध ने तत्काल अपना वक्तव्य बदला, "उसका नाम सुना है।"

"उसने पंचवटी में मेरे आश्रम से मेरी पत्नी का हरण किया है।" राम बोले, "तुम बता सकते हो, वह उसे कहां ले गया होगा ?"

"मैं इस विषय में कुछ नही जानता।" कबध के कठ से स्पष्ट शब्द नही निकल रहे थे।

"मरते समय अब धूर्तता मत करो।" राम का स्वर कठोर हो गया,

"नही बताओगे तो मैं तुम्हे शातिपूर्वक मरने भी नही दूगा।"

लक्ष्मण देख रहे थे, राम सचमुच इतने कठोर कभी नही दिखे थे। आज तो उनका स्वर ही कुछ और था।

"मैं कुछ नही जानता, राम !"

"तुमने उसे सीता को ले जाते हुए देखा ?"

"नही !"

"इस विषय मे कुछ सुना ?"

"नहीं !"

"अनुमान से बता सकते हो, वह सीता को कहा ले गया होगा ?"

"मैं कुछ नही जानता।" कबंध ने यत्किंचित पीड़ित स्वर में कहा, "मेरा रावण से कोई सबंध नही है।"

राम का चेहरा आक्रोश से जल उठा, "इच्छा तो होती है राक्षस कि इस खड्ग से तेरे शरीर का खड-खंड कर दू; किंतु अपने क्षात्र-धर्म से बंधा हूं। तू युद्ध कर नही सकता, अत: मैं तुझ पर शस्त्र-प्रहार नही कर सकता। किंतु मै तुझे शाति से मरने नही दूगा।" वे लक्ष्मण की ओर मुड़े, "सौमित्र ! इसके लिए चिता बनाओ। मैं इसे जीवित ही अग्नि-समाधि दूगा।"

कबंध के चेहरे का भाव परिवर्तित हुआ। वह अब न दृढ था, न असंपृक्त।

"मुझे अपने शस्त्र से मार डालो।" उसका स्वर दीन हो गया, "और फिर अग्नि-सस्कार कर देना।"

"तुम मर गये तो दाह तो तुम्हारा हम कर ही देंगे।" राम बोले, "किंतु यदि सीता का पता तुमने नही बताया तो मैं तुम्हारा अग्नि-संस्कार भी करूंगा और तुम्हें मरने भी नहीं दूंगा।"

चिता बनती जा रही थी और साथ-ही-साथ कबध की दृढता भी गलती जा रही थी। अपनी आखो के सामने बनती चिता को देख, जैसे उसका राक्षसत्व घुलता जा रहा था। उसकी मुद्रा अब वैसी कठोर नही रह गयी थी, आखों की हिंस्रता कही लुप्त हो गयी थी।

चिता बन गयी। राम ने स्वयं उसमें अग्निदान किया। चिता धू-धू कर जल उठी।

"इसे उठाओ, मित्रो !"

"ठहरो, राम !" कबंध टूटते-टूटते स्वर में बोला, "मर तो मैं रहा ही हूं। तुम कुछ न भी करो तो भी घड़ी भर से अधिक जीवित नहीं बचूंगा।" उसने रुककर याचना भरी आंखों से राम को देखा, "तनिक रुक जाओ। मर जाऊं, तो इस चिता में डाल देना...।"

"बताओ ! रावण सीता को कहां ले गया होगा ?"

"अब बताने में कोई भय नहीं।" कबंध बोला, "वह उसे किष्किंधा की ओर ले गया है।...मेरे कुछ अनुचरों को साथ ले लो। वे तुम्हें मतंग वन में पंपा सरोवर के पास पहुंचा देंगे। वहां सुग्रीव से मिल लेना..."

वह रुक गया।

"सुग्रीव हमारी सहायता. ."

किंतु कबंध मौन हो चुका था। राम अस्त-व्यस्त दृष्टि से उसे देख रहे थे...

सहसा किसी ने राम की दाहिनी भुजा को छुआ।

राम ने पलटकर देखा—वह कदाचित् कबंध का शूलधारी सैनिक था।

"कबंध मर गया है। हम उसके आतंक और उसकी नीच सेवा से मुक्त हो गये हैं, आर्य ! हम आपको पंपा सरोवर तक पहुंचा देंगे।" उसकी आंखों में स्नेह था और मुद्रा में सौहार्द, "कृपया अब इस मांस-शैल का दाह..."

"चलो. .।" राम चिंतालीन थे।

तार के प्रस्ताव का विशेष विरोध नहीं हुआ; और सुग्रीव का राज्याभिषेक शांतिपूर्वक हो गया। शासन संभालते ही सुग्रीव ने हनुमान, नील तथा नल को राजसभा का सदस्य नियुक्त कर दिया, ताकि वे अपनी नीतियों के लिए उचित समर्थन पा सकें। साथ ही उन्होंने किष्किंधा के प्रसिद्ध विद्वान मलयवन को अपने मंत्रियों में स्थान दिया।

औपचारिक समारोहों की समाप्ति पर सुग्रीव की राजसभा की पहली बैठक अत्यन्त उत्साहपूर्ण थी। प्राय. सभी मंत्री, सामंत तथा सभासद उपस्थित थे। सभा आरंभ हुई तो विभिन्न मंत्रियों ने अपने-अपने कार्यों के लिए राजाज्ञा प्राप्त करनी आरंभ की।

"सम्राट !" सबसे पहले कटाक्ष उठा, "पांच सामंत-पुत्रों की एक टोली को विद्याध्ययन के लिए लंका जाने की अनुमति दें तथा उनके व्यय के लिए राज्य की ओर से आवश्यक राशि की व्यवस्था का आदेश दें।"

सुग्रीव गंभीर हो गये, "आज से मंत्रियों, सामंतों, यूथपतियों तथा धनिकों के पुत्रों के अध्ययन के लिए विदेश जाने की प्रथा बंद की जाती है।"

कटाक्ष स्तंभित खड़ा रह गया। वह यह तो जानता था कि सुग्रीव वाली से पर्याप्त भिन्न व्यक्ति है...किंतु इस प्रकार का आदेश। बड़ी कठिनाई से उसके मुख से निकला, "तो किष्किंधा के समस्त कुलीन युवक अशिक्षित रह जायेंगे।"

"नहीं !" सुग्रीव बोले, "किष्किंधा का राज्य अब शिक्षा और विद्याध्ययन के लिए नयी नीति का अनुसरण करेगा। सर्वप्रथम, किष्किंधा में एक बड़ा शिक्षा-संस्थान स्थापित किया जायेगा, जिसमें विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ युद्ध तथा आयुध-शास्त्र का अध्ययन, अध्यापन तथा व्यावहारिक अभ्यास भी होगा। उसी प्रकार उसमें आयुर्विज्ञान का अध्ययन-अध्यापन होगा। अन्य सामान्य विषय तो होंगे ही। उसकी विस्तृत योजना के निर्माण के लिए हनुमान, नल, नील, राजकुमार अंगद, तार, मैंद तथा द्विविद की एक समिति बनायी जाए।"

"अध्यापक और आचार्य कहां से आयेंगे?" मंत्री कटाक्ष अभी तक कुछ समझ नहीं पा रहा था।

"कुछ शास्त्रों के विद्वान हमारे पास हैं।" सुग्रीव बोले, "हनुमान, जाम्बवान तथा अंगद युद्ध तथा आयुध-विभाग संभालें; आर्य सुषेण आयुर्विज्ञान, नल तथा नील वस्तु-शास्त्र इत्यादि। वे लोग योग्यता देखकर अन्य अध्यापकों की नियुक्तियां भी कर सकते है। और..." सुग्रीव सास लेकर बोले, "यदि कुछ विषयो के लिए आचार्य हमारे पास नहीं हैं, तो हम आर्य आश्रमो से सहायता प्राप्त कर सकते हैं। अगस्त्य तथा सुतीक्ष्ण इत्यादि ऋषियों के आश्रमों तक सदेश भिजवा दिये जाएं, तो वे लोग सहर्ष आचार्यों को भेज देंगे। उनके लिए लंका के राक्षस आचार्यों के समान हमें अपार धन व्यय करने की आवश्यकता नही है। उनका भोजन हमे मंहगा नही पडेगा—न ही उनके कुटीरो के लिए हमारे पास साधनों की कमी है।" सुग्रीव कुछ रुककर पुनः बोले, "जब यह सस्थान स्थापित हो जाए तो प्रत्येक यूथ उसी के अनुरूप अपनी भूमि में शिक्षा-संस्थान स्थापित करे। किष्किधा के स्नातक उन यूथ-शिक्षा-सस्थानों में अध्यापकों का कार्य करें। मैं चाहता हू कि अगले बारह वर्षों में हमारी अगली पीढी का कोई बालक, कोई बालिका अशिक्षित न रह जाए..."

"क्षमा करें सम्राट!" धूम्र उपहास के स्वर में बोला, "यूथ का प्रत्येक बालक अध्ययन कर राज-परिषद का सदस्य बनेगा क्या? और यदि सारे वानरकुमार विद्वान् हो गये तो कृषि के लिए, स्वेद बहाने के लिए हम किसे पकड़कर लायेंगे?"

"प्रत्येक बालक अध्ययन कर राज-परिषद् का सदस्य तो नही बनेगा, मंत्रिवर!" सुग्रीव मुसकराये, "किंतु सचेत होकर विद्वान् मंत्रियों के कार्यों का मूल्यांकन करेगा। गुफाओ के भीतर तथा वृक्षों की शाखाओं पर रहने वाला पशु न रहकर मनुष्य बनेगा। प्रत्येक नागरिक को राज्य नहीं चलाना होता, किंतु राज्य किधर चल रहा है, उसकी खोज-खबर रखनी होती है। यथासमय राज्य को टोकना और आवश्यक होने पर रोकना भी पड़ता है। फिर विद्याध्ययन केवल राज्य चलाने के लिए ही नहीं, घर चलाने के लिए भी आवश्यक है, और अपना जीवन चलाने के लिए भी।

आप क्यों नही चाहते, यूथपति धूम्र !" सुग्रीव ने धूम्र को देखा,"कि हमारी जाति भी अन्य मानव-जातियों के समान मनुष्य बनकर जिए ?...जहां तक कृषि तथा अन्य कार्यों के लिए श्रम करने वालो की आवश्यकता की बात है—कदाचित् आप जानते हों, समस्त आर्य जातियां कृषि पर निर्भर है और उनसे अधिक विद्वान् आपको दूसरी जातियो में नही मिलेंगे। आप यदि किसी भी आर्य आश्रम को ध्यान से देखें तो समझ जायेंगे कि स्वय कुलपति भी पर्याप्त परिश्रम करते हैं।"

"सम्राट !" हनुमान अपने स्थान से उठे, "इस संदर्भ में अधिक महत्त्वपूर्ण विषय है साधन—स्थान तथा धन।"

"ठीक है।" सुग्रीव बोले, "किष्किधा के समस्त मदिरालय और वेश्यालय आज से बंद कर दिये जाएं। उन भवनो तथा उनके साथ की भूमि को शिक्षा-विभाग के अधीन कर दिया जाए। यदि इसके पश्चात भी अतिरिक्त धन की आवश्यकता हो, तो वह राजकोष से दिया जाए।"

"सम्राट !" दरीमुख फुफकारता हुआ-सा बोला, "ऐसे आदेश देने से पूर्व आपको भली प्रकार विचार कर लेना चाहिए। यदि आप स्वयं विचार न कर सकें, तो मंत्रियों से मत्रणा .."

"दरीमुख !" सुग्रीव ने उच्च स्वर में कहा, "सम्राट सम्राट ही होता है—सिहासन पर चाहे वाली के स्थान पर सुग्रीव बैठा हो।...शिष्टाचार की उपेक्षा न हो। वैसे इस सिहासन पर भैया होते तो इस वाक्य के लिए तुम्हें अंधकूप मे डाल दिया जाता।...मैं केवल चेतावनी देकर छोड़ रहा हूं। बोलो, तुम्हें क्या आपत्ति है ?"

"सम्राट !" इस बार दरीमुख का स्वर दबा हुआ था, "आप अपने आदेश के परिणामों पर विचार करें। वेश्यालय नही रहेंगे, तो कुलीन घरो मे भी व्यभिचार फैल जायेगा। मदिरालय नही रहेंगे, तो लोग घर-घर मदिरा बनायेंगे और निकृष्ट मदिरा गली-मुहल्लों मे बिकेगी। लोगों के स्वास्थ्य की हानि होगी। राज्य को धन की अपार हानि होगी। मदिरालयों से होने वाली आय के अभाव में आपका कोष खाली होता जायेगा।...और फिर उत्सवो में हम क्या पियेंगे ? सुख और आनन्द का कोई और साधन ?"

सुग्रीव ने आश्वस्त दृष्टि से दरीमुख को देखा, "तुम्हें लोगों के स्वास्थ्य की चिन्ता भी है और यह भी नहीं जानते कि प्रजा के स्वास्थ्य की हानि कर उपलब्ध की गयी आय प्रजा का रक्त है। उसकी हमे आवश्यकता नहीं। आय कम होगी तो राज्य का विलास कम हो जायेगा। अपने उत्सवों पर आप मधुपान कर सकते है। उत्सवों में मदिरा पीकर मत्त हो जाना ही एकमात्र सुख नहीं है।" सुग्रीव रुके, "जहा तक वेश्यालयों और मदिरालयों की बात है—वह प्रजा के साथ राज्य का विश्वासघात है। कोई भी शासन, जो प्रजा को राज्य की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ रख, उसे झूठे सुखों में बहलाये रखना चाहता है—वह विलास के ऐसे साधनों का निर्माण पुष्कल मात्रा मे करता है। वेश्या और मदिरा—मनुष्य की नैसर्गिक आवश्यकताएं नहीं हैं। इनकी आवश्यकता धनाढ्य जन को होती है, जिन्हें जीवन में श्रम नहीं करना पड़ता। सुख-सुविधाओं और धन का बाहुल्य उनमें मानसिक विकृतियां पैदा कर देता है। या उन निर्धनों को होती है, जिनके अपने जीवन मे शोषण है, सुख नहीं। हम अपने नागरिकों के लिए एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं—जिसमें वे श्रम और उत्पादन का सुख पाएं, सड़ती हुई ऊर्जा से मुक्ति पाने के लिए वेश्या और मदिरा न खोजें। आप निश्चिन्त रहें कि न आपके घरों मे व्यभिचार फैलने दिया जायेगा; और न घर-घर मदिरा बनेगी।"

सुग्रीव अपने सहयोगियों के साथ घर आये तो जानकर चकित रह गये कि रुमा को घर बैठे ही राजसभा की कार्यवाही की सारी सूचना मिल चुकी थी। इसका अर्थ था कि राजाज्ञाओं का प्रसारण बहुत तीव्र गति से हो रहा था। जन-सामान्य की रुचि इस ओर बढ़ रही थी।

"यह तो अच्छा हुआ, प्रिय!" रुमा ने स्वागत-शैली मे कहा, "किष्किंधा का कलंक तो धुले; किन्तु आपकी गति तीव्र भी है और उग्र भी। इससे बाधाएं खड़ी हो सकती हैं।"

"कैसी बाधाएं?"

"आपके धनाढ्य सामंतों का विलास छिनेगा तो वे आपके विरोधी हो जायेंगे। आज तक वे अपने धन के बल पर, निर्धन युवतियों की पेट की

भूख से लाभ उठा, उन्हें वेश्याएं बना रहे थे। अब, जब वे ऐसा नहीं कर पायेंगे तो आपको कलंकित करने का प्रयत्न करेंगे कि कष्ट तो कम हुए नहीं, उल्टे सुख के साधन भी छिन गये। इससे तो पिछले सम्राट ही अच्छे थे, स्वयं भी सुख भोगते थे और प्रजा को भी छूट दे रखी थी।"

"चाचीजी ठीक कह रही हैं।" अंगद बोले, "यह वर्ग निश्चित रूप से यही करेगा। इसके लिए आवश्यक है कि हम और भी तीव्रता से चलें ताकि उनका षड्यंत्र आरम्भ होने से पहले ही जन-सामान्य को राज्य में कुछ निर्माण होता भी दिखे।"

"हूं।" सुग्रीव कुछ सोचते रहे, फिर बोले, "शिक्षा-संस्थान अपना प्रभाव दिखाने मे समय लेगा..."

"सम्राट ! एक प्रस्ताव मेरा है।" हनुमान बोले, "अर्थव्यवस्था संबंधी घोषणाएं शीघ्र हो जानी चाहिए। यदि आर्थिक स्थिति नहीं सुधरी, तो ये सारे परिवर्तन खोखले नैतिकतावादी परिवर्तन माने जायेंगे; और नया समाज तो नहीं ही बन पायेगा—उल्टे हम उपहास के पात्र हो जायेंगे।"

सुग्रीव और भी गम्भीर हो गये। कुछ क्षण मौन रहकर बोले, "तुम लोग ठीक कहते हो; किन्तु अर्थव्यवस्था का परिवर्तन इतना सहज नहीं होगा। आज जितने आदेश दिये गये है, उनका सम्बन्ध विदेशी राक्षसो के व्यापार से था—वे विरोध कर नहीं सकते। जब ऐसे आर्थिक परिवर्तन होंगे जिनका प्रभाव धनाढ्य वानर-वर्ग पर पड़ेगा, तब विरोध भी हो सकता है, विद्रोह भी।"

"आप चिन्ता न करें, सम्राट !" हनुमान बोले, "हम अपने सहयोगियों के साथ पूरी तरह तत्पर हैं। सामान्य जन की स्थिति में सुधार नहीं हुआ तो शासन के परिवर्तन का क्या अर्थ? हम नहीं चाहते कि कल यह सुनने को मिले कि जैसे सांपनाथ, वैसे ही नागनाथ।"

"ठीक कहते हो, हनुमान।" सुग्रीव के माथे पर चिन्ता की रेखाएं थीं, "तुम लोग प्रस्तुत रहो। मैं कल नीति की घोषणा कर दूंगा।"

अपने साथियों को विदा कर, सुग्रीव आकर अपने पलंग पर चुपचाप रहे।...जितना सोचते थे, चिन्ता घनीभूत होती जाती थी। कोई

छोर ही दिखायी नही पड़ रहा था...

रुमा आयी। सिरहाने के पास बैठ सुग्रीव के माथे पर हाथ रखा और केशो में अगुलिया फिरायी, "इतनी चिन्ता किस बात की है, प्रिय ?"

सुग्रीव को लगा, उनके मस्तक का बोझ कुछ कम हो गया है। स्नेह का कितना मूल्य है। स्पर्शमात्र से चमत्कार हो जाता है। उन्होंने मुसकराने का प्रयत्न किया, "चिन्ता तो करनी ही होगी, रुमा ! जब बोझ उठाया है, तो बोझ का दबाव तो होगा ही।"

"ठीक है, पर इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं ?"

"चिन्ता !" सुग्रीव उठ बैठे, "छोटे-मोटे सुधारो से कोई विशेष लाभ होता नही दीखता। अधिक फेर-बदल किया जाए तो कई बड़े गहरे जमे हुए महावृक्षों की जडें खोदनी होंगी। वे महावृक्ष गिरेंगे तो गिरते-गिरते भी अपनी चपेट में आयी वस्तुओं को नष्ट कर देंगे।..." सुग्रीव ने रुमा को आखें भरकर देखा, "सोच तो लिया है, किन्तु कर्म के पूर्व का असमंजस...असमंजस भी नही, एक प्रकार का भय—कही भूल तो नही कर रहा। कही क्षति तो नही कर बैठूगा। पश्चात्ताप तो नही करना होगा ?"

रुमा ने सुग्रीव को ऐसे देखा, जैसे मन की बात कहने से पहले उनको तोल रही हो, "आपने सोच लिया है कि क्या करना है ?"

"हां !"

"क्या वह परिवर्तन आप अपने स्वार्थ के लिए करना चाहते हैं ?"

"नहीं। एकदम नही। उसमें मेरा तनिक भी स्वार्थ नही है। वह जनहित के लिए है।" सुग्रीव रुमा को विश्वास दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे।

"अपना सोचा हुआ नही करेंगे तो आपकी आत्मा आपको शातिपूर्वक जीने देगी ?"

"नही। एकदम नही।" सुग्रीव अजाने आवेश मे बोले, "वह मुझे आजीवन धिक्कारती रहेगी।"

"तो फिर चिन्ता किसलिए ?" रुमा मुसकरायी, "जो करना है, वह कीजिये। फिर जो होना हो, वह हो।"

राजसभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। दिनचर्या की औपचारिकताएं समाप्त होते ही हनुमान ने निवेदन किया, "सम्राट ! शिक्षा-संस्थान स्थापित कर दिया गया है। किन्तु वहां अध्यापकों के सम्मुख कुछ विशेष कठिनाइयां हैं। यदि अनुमति हो तो निवेदन करूं।"

"अनुमति है।" सुग्रीव ने सकेत किया।

"सम्राट ! अध्यापकों की पहली कठिनाई छात्रों का अभाव है। उन्हें बहुत कम छात्र मिल रहे है।"

सुग्रीव समझ नही पाये कि हनुमान क्या कह रहे हैं। किष्किंधा में शिक्षा-संस्थान स्थापित किया जाए और उसके लिए छात्र न मिलें। जहां अधिकांश व्यक्ति अशिक्षित है, जहां आज तक शिक्षा की कोई सुविधा उपलब्ध नही हुई—आज अपने घर में व्यवस्था हो तो कोई छात्र न मिले...

"कारण ?"

"अलग-अलग लोगों के अलग-अलग कारण है।" हनुमान बोले, "धनी वर्ग से एक भी छात्र नही आया, क्योंकि वे अपनी संतान को उस सस्थान में नही भेज सकते, जहां निर्धन बालक-बालिकाएं भी पढ़ें। उनकी धारणा है कि निर्धन परिवारों से आने वाले बच्चे गदे होते हैं, उनसे धनाढ्य परिवारों के बच्चो को छूत के रोग लग जाते हैं। दूसरी बात, निर्धन बच्चों के साथ पढ़ने के कारण धनी बच्चों में हीन भावना घर कर जायेगी। तीसरी बात, निर्धन बच्चों में शिष्टाचार की कमी होती है, इसलिए उनके साथ शिक्षा ग्रहण करने पर धनी बच्चो के अशिष्ट और अभद्र हो जाने की संभावना है। चौथी बात, निर्धन बच्चो की भाषा बड़ी भ्रष्ट होती है। वे गदी गालियां देते है—धनाढ्य बच्चे उनसे गालियां सीख लेंगे। पांचवी बात, निर्धनों के बच्चे चोर होते हैं—धनवान बच्चो को उनसे चोरी का रोग लग जायेगा..."

हनुमान की बात पूरी होते-होते सुग्रीव का मस्तिष्क झनझना उठा। चेहरा क्रोध से तमतमाकर आरक्त हो गया...

"सम्राट !" सुग्रीव के कुछ कहने से पूर्व ही नील उठ खड़ा हुआ, "मेरा निवेदन है कि इन तथ्यों के कारण, आप नीति में तनिक भी परिवर्तन न करें। यह कुछ स्वार्थी लोगों के द्वारा शिक्षा [illegible]

किया गया षड्‌यंत्र है। निर्धन छात्रों पर लगाये गये ये आरोप, क्या अपने-आप में प्रमाण नहीं है कि वे लोग स्वयं कितने अशिष्ट और अभद्र हैं। क्या उनकी अपनी भाषा और प्रकृति गंदी नहीं है कि वे अनदेखे, अनजान, निरीह और भोले बच्चों पर इतने आरोप लगा रहे हैं। यदि अपनी कही हुई बातों में उनकी इतनी ही निष्ठा है, तो वे क्यों मानते हैं कि निर्धन लोगों के बच्चों से धनी वर्ग के बच्चे बुराइयां सीखेंगे। वे अपने बच्चों को इतना दुर्बल क्यों मानते हैं...यदि उनके बच्चों में इतने ही गुण हैं तो वे निर्धन बच्चों को अपने गुण क्यों नहीं सिखा देते।...और रही चोरी की बात ..." नील का आवेश पराकाष्ठा पर पहुंच रहा था, "निर्धन व्यक्ति इतने थोड़े-से पारिश्रमिक के लिए जितना श्रम करता है, वह अपने-आप में प्रमाण है कि वैसा व्यक्ति चोर नहीं हो सकता। दूसरी ओर प्रत्येक धनी अपने मन को टटोलकर देखे, यदि उसने चोरी नहीं की तो उसके पास इतना धन कैसे आ गया?"

नील चुप हुए तो अपने आवेश से हांफ गये थे। उसके विपरीत, सुग्रीव का क्रोध जैसे विलीन हो गया था। उन्हें लगा, उनके मन की बात किसी और ने कह दी है। वे पूर्णतः शांत थे।

वे बोले तो उनका स्वर स्थिर और गंभीर था, "क्या इस वर्ग ने यह नहीं सोचा कि शिक्षा-संस्थान का ऐसा बहिष्कार करने से उनकी संतानें अशिक्षित रह जायेंगी। उन्होंने उनकी शिक्षा के विषय में क्या सोचा है?"

"पूरी बात तो मैं नहीं जानता।" हनुमान ने उत्तर दिया, "किंतु मेरा अनुमान है कि वे अपनी संतानों को अन्य जातियों के शिक्षा-संस्थानों में भेजने की बात सोच रहे हैं, जहां उनको उनकी संभ्रांतता के अनुकूल व्यवहार की समुचित शिक्षा मिल सके।" हनुमान के चेहरे पर व्यंग्य मुखर हो आया था, "उनका विचार है कि लंका यहां से अधिक दूर नहीं है।"

"अर्थात् वे अपनी संतानों के लिए शोषण, दमन, हत्या, बलात्कार, आलस्य और विलास की शिक्षा ही अनुकूल पाते हैं।" नल ने कटाक्ष किया।

"ठीक है! मैं उनका अभिप्राय समझ गया।" सुग्रीव बोले, "इस संदर्भ में एक आज्ञा प्रचारित कर दी जाए कि भविष्य में विदेशों में शिक्षा

प्राप्त करने के लिए जाने की अनुमति देने का अधिकार केवल किष्किंधा के शिक्षा-संस्थान को ही होगा—चाहे यह यात्रा कोई निजी धन से ही क्यों न करना चाहे। शिक्षा-संस्थान अनुमति केवल उन लोगों को देगा, जो किष्किंधा में उपलब्ध शिक्षा पूर्णतः प्राप्त कर चुके होंगे और उसके पश्चात भी उच्च अध्ययन की योग्यता प्रमाणित कर पायेंगे...।"

सभा में हल्की-सी भनभनाहट हुई और सहसा ही वह कोलाहल में बदल गयी।

"शांत !" सुग्रीव उच्च स्वर में बोले, "कोलाहल की आवश्यकता नहीं है। जिसे विरोध में कुछ कहना हो, उसे अपना मत प्रस्तुत करने की पूर्ण स्वतंत्रता है।"

"सम्राट ! यह तो पूर्ण दमन है।" सबसे पहले दुर्मुख बोला, "आपने अपनी ओर से किष्किंधा में शिक्षा की व्यवस्था कर दी है, यह बहुत अच्छा किया। इसके लिए हम सब आपके आभारी हैं। किंतु यदि एक व्यक्ति अपनी संतान को शिक्षा के लिए वहां नहीं भेजना चाहता, तो शासन को उसमें क्या आपत्ति है ? आप उसे बाध्य क्यों करना चाहते हैं ?"

"मंत्रिवर !" सुग्रीव धीमे से मुसकराये, "कोई अपने बच्चे को किष्किंधा के शिक्षा-संस्थान में न भेजना चाहे, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है और मैं उसे तनिक भी बाध्य नहीं करूंगा। किंतु यदि कोई अपनी संतान को अशिक्षित रखना चाहेगा अथवा कुशिक्षा देना चाहेगा तो मुझे आपत्ति होगी—क्योंकि संतान चाहे वह उसी की है, किंतु वह वानर जाति की अगली पीढ़ी भी है। अपनी जाति की भावी पीढ़ी को सुशिक्षा देने के लिए हम दृढ़संकल्प हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी संतान को यह शिक्षा देता है कि प्रत्येक मनुष्य समान नहीं है, कोई नीचा है, कोई ऊंचा है; इतना ही नहीं, श्रेष्ठ वह है जो किसी षड्यंत्र के कारण धन एकत्रित कर लेता है, और हीन वह है जो अपने श्रम के बल पर ईमानदारी से जीता है—तो इस शिक्षा का विरोध हम अवश्य करेंगे। यह शिक्षा भावी पीढ़ी के लिए विष है। इस प्रकार मानवता की हत्या की अनुमति हम नहीं देंगे।"

"किंतु आप तो अपना धन व्यय कर, शिक्षा ग्रहण करने के

विदेश जाने का भी निषेध कर रहे हैं।" कटाक्ष बोला।

"हां!" *सुग्रीव पूर्ण आश्वस्त ढंग से बोले,* "दो कारणों से। प्रथम तो यह कि जब अपने देश का धन व्यय कर शिक्षा के लिए किसी को भेजना ही है, तो विदेश वे लोग जाएं, जो उसके योग्य हैं, जो अपने देश में उपलब्ध शिक्षा के साधनों का लाभ उठा चुके हैं; और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनका विदेश जाना आवश्यक हो गया है। दूसरे, धन की शक्ति के कारण अयोग्य लोग विदेश जाकर अपने देश का अपयश फैलायें तथा लौट-कर विदेशी ज्ञान की धौंस से अपने देश के योग्य व्यक्तियों के शीर्ष पर प्रतिष्ठित हों—यह अनुचित है।" सुग्रीव रुके, "किसी को कोई अन्य आपत्ति हो तो कहे।"

सभा मौन रही। कोई कुछ नहीं बोला।

थोड़ी प्रतीक्षा के पश्चात सुग्रीव पुनः बोले, "हनुमान! निर्धन वर्ग के छात्र संस्थान में क्यों नहीं आये?"

"उनके अपने कारण हैं, सम्राट!" हनुमान ने उत्तर दिया, "उनमें से अधिकांश बालक-बालिकाएं अपनी सीमित क्षमता में असाध्य श्रम कर अपने परिवारों को चलाने में आर्थिक सहयोग करते हैं। कोई खेतों में काम करता है, कोई श्रमिकों के साथ उनकी सहायता करता है, कोई धनी परिवारों में घरेलू कार्य करता है। यदि ये निर्धन परिवार अपनी संतानों को अध्ययन के लिए शिक्षा-संस्थान में भेज देंगे, तो उनकी आय की पूर्ति कैसे होगी?"

सुग्रीव का चेहरा गंभीर हो गया...यह तो संभव है कि उन बच्चों से कोई शुल्क न लिया जाए, किंतु उनके परिवारों की आय की क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती। इतना धन तो राजकोष में भी नहीं है...

"मेरा एक प्रस्ताव है, सम्राट!" हनुमान पुनः बोले, "मैंने कुछ आर्य आश्रमों में देखा है कि ब्रह्मचारी आश्रम के खेतों में कृषि का कार्य करते हैं, गोशाला और अश्वशाला का काम करते हैं, कपड़ा बुनने के करघों पर काम करते हैं और बीच-बीच में अध्यापकों के साहचर्य में शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। हम यदि इस प्रकार की व्यवस्था कर सकें, तो बहुत ही अच्छा है; किंतु जब तक ऐसी व्यवस्था नहीं होती, हम इन बच्चों के लिए काम

के पश्चात उनके बचे हुए समय मे कक्षाओं की व्यवस्था करें...।"

"किंतु सारे बच्चे एक ही स्थान पर काम नहीं कर रहे होंगे।" सुग्रीव बोले।

"सम्राट का कथन सत्य है।" हनुमान ने कहा, "किंतु ऐसी अस्थायी व्यवस्था की जा सकती है कि विभिन्न स्थानों पर उन बच्चों के कार्य-स्थलों के पास छोटी-छोटी कक्षाएं लगाएं। इसके लिए हमें अधिक अध्यापकों की आवश्यकता होगी। उसका प्रबंध समाजसेवी, अवैतनिक अध्यापकों के द्वारा किया जा सकता है।"

"सुंदर विचार है।" सुग्रीव बोले, "और कोई कठिनाई?"

"जी! अभी तो इतना ही।" हनुमान बोले, "इतना प्रबंध हो जाए, तो आगे की कठिनाइयां सामने आयेंगी।"

सभा मे मौन छा गया। शिक्षा-संस्थान संबंधी विचार-विमर्श समाप्त हो चुका था। सभासदों की दृष्टि सम्राट पर थी, वे अब क्या चाहते हैं?

सहसा तार उठकर खड़े हो गये, "एक निवेदन मेरा भी है, सम्राट! आशा है, आप उस पर विचार करेंगे।"

सुग्रीव ने स्वीकृति का संकेत दिया।

"सम्राट! हमारे इस वानर-राज्य में कुछ विचित्र घटनाएं घट रही हैं।" तार ने अपनी बात आरंभ की, "मैंने यह अनुभव किया है कि हमारे हाटों में, राक्षसों और यक्षों के देशों मे बने हुए वस्त्र आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपलब्ध है। जब तक मदिरालय बंद नहीं हुए थे, तब तक मदिरा की भी यही स्थिति थी। किंतु आश्चर्य की बात है कि चावल, नारियल तथा मछली की मात्रा क्रमशः कम होती जा रही है। परिणामतः उनका मूल्य बढ़ता जा रहा है। सम्राट! बहुमूल्य विदेशी वस्त्रों के बिना तो हमारी निर्धन प्रजा का काम चल सकता है, किंतु भोजन के बिना लोग कैसे जियेंगे? सोचने की बात यह है कि हमारे राज्य में नारियल के अनेक घने वन हैं; समुद्र से असंख्य मछलियां पकड़ी जाती हैं; और हमारे कृषक अपने श्रम से पुष्कल मात्रा में धान उपजाते हैं—फिर क्या कारण है कि उनका मूल्य निरंतर बढ़ता जा रहा है?"

सुग्रीव चिंतित दीखे।...वे अपनी योजनाओं में इतने व्यस्त रहे थे कि

जन-सामान्य की ऐसी कठिनाइयों की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। राजप्रासादों में तो इन बातों की सूचनाएं नहीं मिल सकतीं। ऐसी सूचनाएं तो हाटों में ही प्राप्त करनी पड़ेंगी. साधारण जन की पहुंच राजसभा तक होनी चाहिए

"कारण ?"

"मैंने कारण खोजने का प्रयत्न किया तो कुछ निष्कर्ष मेरे हाथ लगे हैं। अनुमति हो तो उन्हें प्रस्तुत करूं।" तार बोले।

"अनुमति है।"

"सम्राट ! जिन खेतों में धान उपजता है, वे यूथपति की संपत्ति हैं। उसी प्रकार नारियल के वन किसी-न-किसी मंत्री, सामंत अथवा यूथपति की संपत्ति हैं। पूरे यूथ द्वारा पकड़ी गयी मछलियों पर आधिपत्य यूथपति का होता है। जब तक यूथपति अपने यूथ का पालन पितावत् करता था, तब तक बात और थी; किंतु क्रमशः संपत्ति यूथ की न रहकर यूथपति की हो गयी है और यूथ के सदस्य उसके दास हो गये हैं। ये यूथपति धान्य, नारियल तथा मछलियां अधिकाधिक मात्रा में राक्षसों के हाथ बेच देते हैं और उनके स्थान पर बहुमूल्य वस्त्र तथा मदिरा प्राप्त करते हैं। परिणाम आपके सामने है—निर्धन प्रजा का पेट तक नहीं भरता तथा धनाढ्य वर्ग की स्त्रियों के लिए, अपने असंख्य वस्त्रों में से पहनने के लिए, एक वस्त्र का चुनाव जीवन की सबसे बड़ी समस्या हो गया है।"

सुग्रीव कुछ देर तक सोचते रहे। निर्णय उनके मन में घुमड़ रहा था—पर उसका परिणाम ? यूथपति उनके विरुद्ध विद्रोह भी कर सकते हैं...सहसा उन्हें रुमा की बात स्मरण हो आयी, "जो करना ही है, वह कीजिए। फिर जो होना हो, वह हो।"

"यह सुनकर मुझे दुख हुआ कि यूथ के कष्ट के कारण स्वयं यूथपति हैं। यह अत्यन्त दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।" सुग्रीव कुछ तनकर बैठ गये, "यूथपति इसलिए नियत किये गये थे कि वे अपने यूथ का भली भांति पालन करें। वे अपना कर्तव्य भूल गये हैं, तो उन्हें याद दिलाना ही होगा। ...आज से यह आज्ञा प्रचारित कर दी जाए कि यूथपति की संपत्ति, उसकी निजी संपत्ति न होकर, संपूर्ण यूथ की संपत्ति है। यूथ का कोई भी

उत्पादन प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकतानुसार उनमे बंटेगा और अंत मे जो मात्रा बचेगी, उसका विक्रय समस्त यूथ की अनुमति से होगा। यह विक्रय वानर-राज्य के भीतर ही होना चाहिए। उस उत्पादित वस्तु के बदले कोई विलास-सामग्री क्रय नही की जा सकेगी। ऐसा विनिमय केवल संपूर्ण यूथ के लिए आवश्यक वस्तु के लिए ही होगा। राक्षसो के हाथ कोई वस्तु बेचने से पूर्व सम्राट से अनुमति लेनी होगी। और..."सुग्रीव ने खड्ग अपने हाथ में लिया, "जो यूथपति इन आज्ञाओं का उल्लंघन करेगा, उसका वध सुग्रीव स्वयं अपने हाथों करेगा।"

सुग्रीव को दो समाचार मिले।...चिंता स्वाभाविक थी। समाचार अच्छे नही थे। गुप्तचर सूचना लाये थे कि समुद्र तट की राक्षस बस्तियो में खुल्लमखुल्ला कहा जा रहा था कि मायावी ने वाली की हत्या कर उसके शव को समुद्र मे बहा दिया है। अब किष्किंधा का कोई रक्षक नही है। कुछ दिनों मे राक्षसों का आक्रमण होने ही वाला है। उनकी विजय निश्चित है। सुग्रीव से उनके यूथपति भयभीत तो पहले ही नही थे, अब उनकी नयी राजाज्ञाएं सुनकर वे उससे प्रसन्न भी नही है। राक्षसों के आक्रमण के समय कदाचित् एक भी यूथपति सुग्रीव की सहायता को नही आयेगा...

सुग्रीव जानते थे कि इस प्रकार की निराधार अफवाहों पर विश्वास नही करना चाहिए। वानरों जैसी पिछडी जाति मे अफवाहे उड़ती ही रहती है। यह काम राक्षस लोग योजनाबद्ध ढंग से करते रहते हैं, ताकि वानरों का मनोबल ऊचा न उठ सके...किंतु इन पर तनिक भी कान न धरना अथवा उनसे सर्वथा अनभिज्ञ रहना भी तो बहुत लाभदायक नही है। अफवाहे चाहे सत्य न हों—किंतु उनमें सत्य का कोई कण हो भी सकता है...

यदि सत्य ही वाली का पराभव हुआ है, तो सामरिक शक्ति की दृष्टि मे किष्किंधा के लिए यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण घटना है।...कितने असहाय हैं सुग्रीव कि उनके अपने राज्य के भीतर ही कहीं वाली और मायावी का युद्ध हुआ और सुग्रीव को उसकी सूचना तक नहीं मिली। सूचना मिली होती तो क्या सुग्रीव वाली को इस प्रकार असहाय मर जाने देते। इतने वानर

सेनानायकों, मंत्रियों, सामंतों, धनाढ्य व्यापारियों के आगे डाल देते, तो ये सब तेरी रक्षा करते। जो कुछ तूने किया, क्या वह अपनी रक्षा के लिए किया? तू अपनी रक्षा क्यों चाहता है? बोल! क्या सार्थकता है तेरी? क्यों हो तेरी रक्षा?'

सुग्रीव को लगा, भीतर-ही-भीतर वे कुछ बदल गये हैं। किसी वायवीय लोक में पहुंच गये हैं...उनके मन में जैसे अपने लिए कोई आसक्ति नहीं है ...क्या प्रयोजन है उनकी रक्षा का?...और उनका अपना मन, अपनी रक्षा का कोई प्रयोजन नहीं खोज पाता...स्वयं वे, हनुमान, नल, नील, अंगद और अब तार भी...क्या चाहते हैं वे? यही तो कि सत्ता निर्बल हो जाए, प्रजा शक्तिशाली हो। जनसाधारण सुखी हो, समर्थ, सचेत और जागरूक हो... अब जब उनके आदेशों से प्रजा शक्तिशाली हो रही है, तो वे अपने विषय में चिंतित क्यों हैं?...

उनका ध्यान एक अन्य सूचना की ओर चला गया। सूचना कोटपाल ने दी थी...किष्किंधा की प्राचीर के साथ-साथ नगर के भीतर और बाहर अनेक निर्धन लोग झुग्गियां बनाकर रहते थे। सुग्रीव ने उन्हें सैंकड़ों बार देखा था—उनके विषय में सोचा था। उनकी स्थिति देखकर पीड़ित हुए थे, किंतु हर बार स्वयं को असहाय पाया था...पशुओं से भी बुरी स्थिति में रह रही थी वाली की प्रजा।...जाने राज्य में से कहां-कहां से आकर वे लोग यहां टिक गये थे। नगर में पशुवत ही सही, किसी-न-किसी प्रकार उनकी आजीविका चल रही थी। अपने ग्रामों में उन्हें पेट भरने को अन्न मिलता तो वे अपने बाल-बच्चों के साथ इस प्रकार किष्किंधा के पथों पर रहने तथा सम्भ्रांत नागरिकों की जूठन खाने क्यों आते? स्वाभिमानी श्रमिकों को इस प्रकार अपमानजनक ढंग से जीना उनकी भूख ने ही सिखाया होगा।

नगर में उनके रहने के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। किष्किंधा वानरों की राजधानी थी। प्रत्येक समर्थ और साधन-सपन्न वानर किष्किंधा में अपना प्रासाद बना, वहां रहना चाहता था। धनाढ्य जन किष्किंधा की एक-एक अंगुल भूमि के लिए स्वर्ण लुटाने को तत्पर थे। शासन का मन वणिक का मन हो गया था। वह किष्किंधा के कोने-कोने को ऊंची-से-ऊंची

यूथपतियों का सम्राट ऐसी अनाम मृत्यु पाये कि उसके शव का भी पता न चले...सुग्रीव का मन भर आया...उन्हें अपने शैशव का वाली बार-बार याद आता था। कैसे दोनों भाई साथ-साथ खेलते थे। कैसे सुग्रीव हारकर भी जीतने का हठ करते थे और वाली उनका हठ मानने के लिए जान-बूझकर हार जाते थे।. .जब तक वाली का अहंकार मुखर नहीं हुआ था; और कामुकता तथा मदिरा में आसक्ति के कारण उन्होंने अपना न्याय-पक्ष नहीं छोड़ा था, दोनों भाइयों में कितना स्नेह था...किंतु क्रमशः कैसे उनमें मतभेद हुआ, जो बढ़ता ही गया था...और अब वाली नहीं रहे ..सुग्रीव तो पुरुष है, कठोर है। वे तो किसी प्रकार सह भी लेंगे; किंतु तारा भाभी और अंगद...कैसी पीड़ाजनक बात है कि वाली जैसा समर्थ और साधन-संपन्न व्यक्ति इस प्रकार असहाय, अनाथों के समान मारा जाए...

किंतु सुग्रीव का मन वाली की मृत्यु के समाचार पर अधिक देर तक टिका नहीं रहा।...संभव है, यह झूठ हो। संभव है, वाली अब भी कहीं सागर-तट पर गुफाओं और कंदराओं में या किसी गहन कानन में मायावी के पीछे-पीछे भटक रहे हों। वे मायावी का वध कर अथवा उसकी खोज से निराश होकर किसी भी क्षण लौट सकते है।...किंतु दूसरा समाचार? क्या सचमुच ही वानर यूथपति सुग्रीव का साथ छोड़ रहे हैं? क्या संकट के समय वे लोग विश्वासघात करेंगे?...सुग्रीव को लगा, उनके मन में कहीं हल्का-सा भय जन्म ले रहा है, वे स्वयं को असुरक्षित पा रहे हैं...किंतु क्यों? क्यों भयभीत हैं वे? जब वे आदेश दे रहे थे, तभी उन्हें सोचना चाहिए था कि वे यूथपतियों के हाथ से संपत्ति छीनकर साधारण जन को दे रहे हैं—निश्चित रूप से यूथपति इससे प्रसन्न नहीं हो सकते। क्या वे समझते थे कि यूथपतियों से संपत्ति छीनने पर वे उनको अपना मित्र मान उनकी रक्षा के लिए आयेंगे? यूथपति नहीं आयेंगे तो जन-सामान्य को तो उनकी रक्षा के लिए आना चाहिए, जिन्हें उन्होंने जीवन की सुख-सुविधाएं दी हैं...

सुग्रीव को लगा, उनके मन में कोई अट्टहास कर हंसा है—'वाह रे सुग्रीव! तुमने यह सब क्या अपनी रक्षा के लिए किया था? अपनी रक्षा के लिए तो बहुत सरल उपाय था—प्रजा की हड्डियां और मांस इन यूथपतियों,

सेनानायकों, मंत्रियों, सामंतों, धनाढ्य व्यापारियों के आगे डाल देते, तो ये सब तेरी रक्षा करते। जो कुछ तूने किया, क्या वह अपनी रक्षा के लिए किया? तू अपनी रक्षा क्यों चाहता है? बोल! क्या सार्थकता है तेरी? क्यों हो तेरी रक्षा?'

सुग्रीव को लगा, भीतर-ही-भीतर वे कुछ बदल गये हैं। किसी वायवीय लोक से पहुंच गये हैं...उनके मन में जैसे अपने लिए कोई आसक्ति नहीं है ...क्या प्रयोजन है उनकी रक्षा का?...और उनका अपना मन, अपनी रक्षा का कोई प्रयोजन नहीं खोज पाता...स्वयं वे, हनुमान, नल, नील, अंगद और अब तार भी...क्या चाहते हैं वे? यही तो कि सत्ता निर्बल हो जाए, प्रजा शक्तिशाली हो। जनसाधारण सुखी हो, समर्थ, सचेत और जागरूक हो... अब जब उनके आदेशों से प्रजा शक्तिशाली हो रही है, तो वे अपने विषय में चिंतित क्यों है?...

उनका ध्यान एक अन्य सूचना की ओर चला गया। सूचना कोटपाल ने दी थी...किष्किंधा की प्राचीर के साथ-साथ नगर के भीतर और बाहर अनेक निर्धन लोग झुग्गियां बनाकर रहते थे। सुग्रीव ने उन्हें सैकड़ों बार देखा था—उनके विषय में सोचा था। उनकी स्थिति देखकर पीड़ित हुए थे, किंतु हर बार स्वयं को असहाय पाया था...पशुओं से भी बुरी स्थिति में रह रही थी वाली की प्रजा।...जाने राज्य में से कहां-कहां से आकर वे लोग यहां टिक गये थे। नगर में पशुवत ही सही, किसी-न-किसी प्रकार उनकी आजीविका चल रही थी। अपने ग्रामों में उन्हें पेट भरने को अन्न मिलता तो वे अपने बाल-बच्चों के साथ इस प्रकार किष्किंधा के पथों पर रहने तथा सम्भ्रात नागरिकों की जूठन खाने क्यों आते? स्वाभिमानी श्रमिकों को इस प्रकार अपमानजनक ढंग से जीना उनकी भूख ने ही सिखाया होगा।

नगर में उनके रहने के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। किष्किंधा वानरों की राजधानी थी। प्रत्येक समर्थ और साधन-संपन्न वानर किष्किंधा में अपना प्रासाद बना, वहां रहना चाहता था। धनाढ्य जन किष्किंधा की एक-एक अंगुल भूमि के लिए स्वर्ण लुटाने को तत्पर थे। शासन का मन वणिक का मन हो गया था। वह किष्किंधा के कोने-कोने को ऊंची-से-ऊंची

बोली पर बेच रहा था...ऐसे में इन निर्धन श्रमिकों में कहां सामर्थ्य थी कि वे पैर रखने के लिए भी भूमि का कोई टुकड़ा पा सकते...

किंतु उनकी आजीविका के साधन नगर मे थे और रात को सिर छिपाने के लिए उन्हें प्राचीर के इस पार या उस पार जाना पड़ता था... वर्षों से यही क्रम चल रहा था। न उन्होंने अपने लिए कभी स्थान मांगा, न किसी ने उनकी ओर ध्यान दिया...किंतु आज कोटपाल ने सूचना दी थी कि झुड-के-झुड निर्धन श्रमिक सामंतो के अनेक प्रासादों के साथ लगे शोभा-उद्यानों में घुस आये थे। उन्होने वहा अपनी झुग्गिया बनानी आरंभ कर दी थी...सामतो ने अपने दडधरों के द्वारा बलात् उन्हें वहां से खदेड़ने का प्रयत्न किया। स्थान-स्थान पर झगड़े हुए। कही से श्रमिक भाग गये, कहीं से दंडधरो को भाग जाना पड़ा।...कोटपाल का कहना था कि सहसा ही नगर में अव्यवस्था फैल गयी है। जाने शांतिप्रिय प्रजा को आज क्या हो गया है, कि वह झगडा करने पर उतारू हो गयी है। आज तो जो हुआ, वह हुआ, किंतु कल भी यदि यही हुआ तो कोटपाल शाति-स्थापना मे सर्वथा असमर्थ हो जायेगा। उसके पास इन झगडों को सभालने के लिए पर्याप्त दडधर नही है। वह सम्राट् से निवेदन करने आया था कि उसकी सहायता के लिए राजकीय सेना की गदाधर टुकड़िया भेजी जाए, ताकि वह नगर की शाति भंग करने वाले इन उपद्रवियो को नगर से बाहर खदेड़ सके...

और सुग्रीव सोच रहे थे कि यह सब क्या है ? क्या यह अव्यवस्था है ? उपद्रव है ? अशाति है ? या यह प्रजा की जागरूकता है ? क्या प्रजा अपने जीने का अधिकार जान गयी है ? क्या सुग्रीव की नीतियो ने उनके मन में यह बात जगा दी है कि वे भी मनुष्य है, उन्हे भी जीने का अधिकार है। ...आज तक उनके अधिकारों का शोषण हुआ है, किंतु अब उन्हे अधिकार मिलने ही चाहिए...

सुग्रीव का मन कुछ हल्का हुआ...वर्षों की अचेतावस्था के पश्चात प्रजा के सहसा अंगड़ाई लेकर जाग उठने की अनुभूति कितनी सुखद होती है...सुग्रीव को अपना जीवन पहली बार सार्थक लगा ..अन्याय के उच्छेदन मे अपनी सार्थकता की भावना कितनी आह्लादक होती है।...

कल राजसभा मे यह बात उठेगी। सामत लोग इन उपद्रवियो को दंडित करने की माग करेंगे। प्रजा अपना अधिकार चाहेगी।...क्या करेंगे सुग्रीव? किसका पक्ष लेंगे?...'पक्ष किसका होता है?' सुग्रीव का मन पूछ रहा था, और फिर स्वयं ही उत्तर दे रहा था—पक्ष तो एक ही होता है—न्याय का। हनुमान को देखो—सामत केसरी का बेटा। देश-विदेश घूमा हुआ। बुद्धि-मेधा-ज्ञान से संपन्न। साधारण जन के समान घुटनो तक की एक सादी धोती मे रहता है। जन-सामान्य के साथ अपना जीवन एक कर रखा है उसने। सेवा का धर्म अपनाया है—स्वार्थहीन। प्रजा को बल दे रहा है हनुमान!...तो फिर किसका पक्ष लेंगे सुग्रीव? न्याय का पक्ष ही सुग्रीव का पक्ष है...

अगले दिन राजसभा अतिरिक्त रूप से विशिष्ट हो उठी। प्रायः सभी सभासद उपस्थित थे। दर्शकों की संख्या भी सामान्य से बहुत अधिक थी। सभागार के सम्मुख अथाह भीड एकत्रित थी, जो शात मनःस्थिति मे नही थी।

सुग्रीव अपने संकल्प तथा संकल्प के प्रति एक प्रश्नचिह्न—दोनो को मस्तिष्क मे धारण किये हुए सभा में आये। सभा आरभ हुई किंतु दैनिक क्रम बना नही रह सका। सभासदों के मस्तिष्क में उत्तेजना इतनी अधिक थी कि वे धैर्य नही रख पा रहे थे। सभा मे उपस्थित अनेक सामंतों की अपनी भूमि पर झगड़े हुए थे...

दैनिक कार्यवाही के मध्य तनिक-सा अवकाश मिलते ही दरीमुख उठ खडा हुआ, "यदि सम्राट की अनुमति हो तो नित्य-दिनचर्या को स्थगित कर मैं एक निवेदन करना चाहता हूं।"

सुग्रीव मुसकराए, "बोलो।"

"सम्राट! मुझे आशा है कि कल नगर भर में हुई घटनाओं से आप अनभिज्ञ न होंगे।" दरीमुख बोला, "सम्राट तक उनकी सूचना न पहुंची हो, यह सभव नही है। मैं कहूंगा कि कल नगर मे विप्लव हुआ है। नगर की शाति-व्यवस्था सर्वथा अस्त-व्यस्त हो गयी है। सम्मानित सामतो पर खुले आक्रमण हुए हैं और कोटपाल उनकी रक्षा में सर्वथा असमर्थ रहे हैं। मेरा निवेदन है कि सम्राट इस घटना की ओर ध्यान दें। खोज की जाए

कि इस प्रकार की अव्यवस्था को उकसाने के लिए कौन उत्तरदायी है; और उसे ऐसा दंड दिया जाए कि शेष लोग शिक्षा ग्रहण करें। साथ ही, या तो सम्राट राजकीय सेनाओं को नगर की सुरक्षा का भार सौंपें, अथवा अनुमति दें कि हम अपने यूथों की शक्ति से नगर में शांति स्थापित करें।"

दरीमुख के बैठते ही कोटपाल ने निवेदन किया, "सम्राट ! नगर में जो कुछ घटित हुआ है, वह शुभ नहीं है, मैं भी स्वीकार करता हूं। किंतु, उससे मेरी असावधानी, कर्तव्य-भावना का अभाव अथवा असमर्थता प्रकट नहीं होती। यदि नगर में इस प्रकार के विस्फोट हों, जैसा कि कल हुआ है, तो निश्चय ही मेरे दंडधर उन्हें रोक नहीं सकते...।"

सुग्रीव आश्वस्त भाव से पुनः मुसकराये, "मुझे पूरी सूचना है कि कल नगर में क्या हुआ है। अब प्रश्न यह है कि हमें क्या करना है? एक दृष्टिकोण तो यह है कि हम राजकीय सेना अथवा यूथपति दरीमुख के प्रस्ताव के अनुसार उनके यूथ को अनुमति दें कि वे उन लोगों को खोजें, जिन्होंने बलात् सामंतों की भूमि पर आधिपत्य जमाया है। खोजना कठिन नहीं है। वे लोग या तो अभी भी आधिपत्य जमाये हुए होंगे, या नगर-प्राचीर के भीतर और बाहर अपनी झुग्गियों में मिल जायेंगे। उन सहस्रों लोगों को—जो आपके अपने लोग हैं, वानर जाति के लोग—मृत्यु-दंड दिया जाए। उनकी हत्या की जाए, उनके परिवारों को नष्ट किया जाए, उनकी झुग्गियां जला दी जाएं...।"

"सम्राट !" अंगद उठ खड़े हुए।

"शांत !" सुग्रीव बोले, "पहले मेरी बात सुन लो, फिर प्रत्येक व्यक्ति को अपना मत प्रकट करने का पूर्ण अवसर दिया जायेगा।"

अंगद बैठ गये।

"दूसरा दृष्टिकोण इससे भिन्न है।" सुग्रीव पुनः बोले, "उसके अनुसार यह विश्लेषण होना चाहिए कि ऐसी घटना क्यों घटी और ऐसा क्या किया जाए कि ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो..।" सुग्रीव ने रुककर सारी सभा को देखा। सभासद उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे कि दूसरे दृष्टिकोण का अर्थ स्पष्ट हो। सुग्रीव पुनः बोले, "विश्लेषण केवल

एक घटना का नही होता। घटना तो एक लक्षण मात्र है। देखना यह होगा कि वे सामान्य स्थितिया क्या है, जिनसे यह लक्षण उत्पन्न हुआ।...मेरी बुद्धि के अनुसार इस घटना के मूल में यह तथ्य वर्तमान है कि हमने उन्हें मनुष्य नही समझा। उन्होंने धैर्य से प्रतीक्षा की कि हम कब जागते हैं और इस तथ्य को पहचानते हैं कि उन्हे भी रहने के लिए थोड़ा-सा स्थान चाहिए। किंतु हम अपने प्रासाद बनाते रहे और उन्हें कुटीर बनाने का भी स्थान नही दिया. ।"

"क्षमा करें, सम्राट !" दुर्मुख बोला, "उन्हे किसी ने मना नही किया था। वे जब चाहते, हमारे ही समान किष्किधा की भूमि खरीद सकते थे।" उसके चेहरे पर कटाक्ष का विकृत हास्य था।

"तुम ठीक कहते हो, दुर्मुख !" सुग्रीव ने अपनी शांति नहीं छोड़ी, "वे लोग भी भूमि खरीद सकते थे। यदि मैं कहूं कि उनके पास धन नही था और किष्किधा का धन-लोलुप शासन क्रमशः भूमि का मूल्य बढाता जा रहा था तो तुम कहोगे कि उन्हे धनार्जन से किसने रोका था। अत. मैं बीच की बातें छोडकर सीधे मूल बात पर आता हूं। पूरे यूथ का धन, यूथपति ने अपनी धूर्तता और शोषण वृत्ति से स्वयं हड़प लिया। जब धन लौटाने की माग हुई तो यूथपति ने हिंसा का आश्रय ले, यूथ-जन का दमन किया। क्या तुम कह सकते हो, दुर्मुख ! कि तुम्हारा सारा धन जिसके आज तुम स्वामी हो, तुमने स्वय अर्जित किया है... ?" सुग्रीव रुके, और जब कोई कुछ नही बोला, तो उन्होने अपनी बात आगे बढ़ायी, "अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्होंने जब तुम्हारी हिंसा का विरोध अपनी हिंसा से किया, तो तुम उन पर हिंसा के आरोप लगाने लगे। अब शासन की ओर से और अधिक हिंसा का प्रयोग कर, सामान्य जन के मौलिक अधिकारो का दमन नही होना चाहिए; अन्यथा जनता की ओर से भी अधिक हिंसा होगी।... हमे उनके अधिकारों को मान्यता देनी होगी, वे भी मनुष्य हैं, हमारी अपनी जाति के है, हमारे बंधु है।"

"उनके अधिकारों को मान्यता देने का अर्थ है कि हमारे प्रासादों की भूमि पर उन्हें अपनी गंदी झुग्गियां बनाने की अनुमति दी जायेगी ?" कटाक्ष अत्यन्त रोषपूर्ण स्वर में बोला।

"नहीं ! शासन उन्हें गदी झुग्गियों में नही रहने देगा।" सुग्रीव का स्वर भी ओजपूर्ण हो उठा, "शासन के आदेश से सामंतों के प्रासादों के साथ जुड़े उद्यानों तथा शोभा-क्षेत्रों की भूमि पर सहस्रों की संख्या में दो-दो कक्षों के स्वच्छ आवासों का निर्माण किया जायेगा। बहुत थोड़े शुल्क पर वे आवास उन लोगों को दिये जायेंगे, जिनके रहने की कोई व्यवस्था नहीं है।"

"यह असंभव योजना है। ऐसा हो नहीं सकेगा। बेघर लोगों की सख्या बहुत अधिक है।" कटाक्ष पुनः बोला।

"एक निवेदन मेरा भी है, सम्राट !" हनुमान बोले।

"बोलो।"

"किष्किंधा वानरों की राजधानी है। अत. प्रत्येक वानर यहीं रहने का इच्छुक है। पहाड़ियों के बीच बसी होने के कारण इसका अधिक विस्तार भी नहीं हो सकता। विस्तार किया भी जाए, तो हमारे पास दूर से आने-जाने के लिए परिवहन के साधन भी नहीं है। अतः राजधानी की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, नियम बना दिया जाए कि राजधानी की भूमि किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति नहीं हो सकती। राजधानी के समस्त भवन, सपूर्ण वानर-जाति की संपत्ति हैं, अतः जिस वानर की आजीविका का साधन राजधानी में हो, उसकी आवश्यकतानुसार आवास की व्यवस्था शासन की ओर से हो; और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने कार्य से अवकाश प्राप्त करता है अथवा राजधानी मे उसके बने रहने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है—वह राजधानी छोड़कर अन्यत्र चला जाए।"

सुग्रीव मुसकराये, "यदि मंत्री कटाक्ष की आशंका सत्य प्रमाणित हुई तो फिर हनुमान के प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जायेगा।"

सुग्रीव ने देखा, अनेक सामंतों के चेहरों पर त्रास की गहरी छाया अंकित हो गयी थी।

जैसे-जैसे किष्किंधा की सीमा निकट आती जा रही थी, बाली का धैर्य समाप्त होता जा रहा था। उन्हें लगता था, मार्ग जैसे खिंचता ही जा

रहा है और उसका कोई अंत ही नही है।...कितनी दूर से चलते आ रहे थे वाली। निरंतर कितने ही दिनों से। मार्ग मे उनका मन न किसी सुंदर स्थान पर रुकने को हुआ, न कोई बाधा उनकी गति को मंद कर सकी। कंधे पर अपनी गदा रखे वाली निरतर चलते ही जा रहे थे।

कितना समय हो गया किष्किधा छोड़े? प्रायः एक वर्ष ! एक वर्ष से वे अलका से वियुक्त हैं, उस दुष्ट मायावी के कारण। आरम्भ मे तो मायावी भागता ही चला गया, और वाली उसे पा न सके। फिर वह गुप्त मार्ग पर चलने लगा। कभी कंदराओं में छिप जाता, कभी वन में। और जब उसे राक्षसों की कोई बस्ती मिल जाती थी, तो वह निश्चित होकर वहां टिक जाता था। ऐसी बस्तियों में वाली स्वयं को छिपाते फिरते थे। राक्षस सगठित भी थे और उनके पास शस्त्र भी थे। अकेले वाली उनसे भिड़ते तो मायावी का वध तो नही ही होता, उलटे वे ही अपने प्राणों से हाथ धो बैठते। ऐसे में बड़े विकट धैर्य से मायावी के आगे बढने की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। वाली का अहकार बहुत आहत होता था। उनमे इतना धैर्य कभी नही रहा कि शत्रु सामने दिखायी भी पड़े और वे उस पर प्रहार न करें। किंतु ऐसी बाध्यता भी पहले कभी नही रही... और फिर जैसे-जैसे समुद्र-तट निकट आता जा रहा था, वाली की चिंता बढती जा रही थी। यदि कही एक बार मायावी सागर-तट पर पहुंच गया और उसे राक्षसो का कोई जलपोत अथवा नौका मिल गयी तो उसे पाना असंभव हो जायेगा।...किंतु जाने मायावी के मन में क्या था, वह सीधा समुद्र-तट की ओर न जाकर विभिन्न दिशाओ मे चलता जा रहा था। कभी-कभी लगता था, जैसे वह भयभीत हो कि उसका पीछा किया जा रहा है और अवसर मिलते ही कोई उसका वध कर देगा; पर दूसरे ही क्षण लगता वह निर्भय हो विभिन्न राक्षस-बस्तियों में जाकर अपने मित्रों से मिल रहा है, उनसे सूचनाएं प्राप्त कर रहा है और कदाचित अपने व्यापार से संबंधित व्यवस्थाएं करता चल रहा है...

किष्किधा की प्राचीर के जिस भग्नाश से मायावी वन में कूदा था—वह स्थान वाली को किसी गुफा-मुख-सा लगा था, और अब भी वाली को यह लगता था कि वे और मायावी दोनों ही किसी बहुत विस्तृत और

व्यापक, जटिल और रहस्यमय गुफा मे, एक-दूसरे के आगे-पीछे चल रहे है। कभी मायावी छिप जाता है, कभी वाली छिप जाते हैं। कभी कोई भारी पड़ता है, कभी कोई।

अंत मे वाली को, मायावी एक एकात स्थान पर, समुद्र-तट की पहाडियो की एक गुफा मे, अपने दो साथियों के साथ, असावधान सोया पडा मिल गया था। वाली के मन मे द्वन्द्व जागा—वे तीन थे और तीनो के पास शस्त्र थे। किंतु, यदि यह अवसर वे चूक गये तो जाने मायावी के साथियों की सख्या इससे भी अधिक हो जाए। इस समय उनके पास केवल खड्ग है। बाद मे कही धनुष भी हुआ तो...जीवन मे पहली बार वाली के मन मे सुग्रीव की बात कसक उठी। सुग्रीव सदा ही वानरो के पास शस्त्रों के अभावों की चर्चा किया करता था; किंतु वाली ने कभी उसकी बात पर कान नही दिया।

दूसरे ही क्षण उनके मन में आया, तुरन्त ही इन सोये हुए शत्रुओं पर अपनी गदा से प्रहार कर दें। सोए तो है ही, एक-एक प्रहार मे उनके सिरो का कचूमर निकल जायेगा।...किंतु यह विचार टिका नही। सोये हुए शत्रु पर प्रहार करना वाली की वीरता के अनुकूल नही था। वे उनके निकट गये। अच्छी प्रकार परीक्षण किया। उनके पास एक-एक खड्ग के सिवाय और कोई शस्त्र नही था।

वाली सावधान हो गये। अपनी गदा हाथों में संभाल ली और पैर से एक प्रबल ठोकर मायावी को लगायी।

मायावी ने अचकचाकर आखें खोली। पहले तो उसकी समझ मे ही कुछ नही आया। वह झपझपाती आंखों से भावशून्य मुद्रा में वाली को देखता रहा। किंतु सचेत होते ही वह वाली को पहचान गया।

"वाली !"

"हा !" वाली हुंकारे, "उठ। युद्ध कर। भगोड़े कायर !"

मायावी का भय अधिक नही टिका। वह उठकर खड़ा हो गया। आस-पास की हलचल से उसके साथी भी जाग उठे और भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। वाली अकेले थे और वे तीन। वाली के पास गदा थी और उनके पास खड्ग।...किंतु थोड़ी ही देर में स्पष्ट हो गया कि वे न तो

वाली के समान शक्तिशाली थे और न युद्ध-कुशल। पर उनके शस्त्र वाली के लिए घातक हो सकते थे।...युद्ध प्रबल होता गया। दोनो ओर से आघात घातक होते गये और साथ-ही-साथ अपने आवेश में वाली स्वय को भूलते गये। वे उन्मत्त हो रहे थे और क्रमशः उनके मन से खड्ग का भय विलीन होता जा रहा था। वे उनके निकट होकर प्रहार कर रहे थे.. और सहसा मायावी का एक साथी गदा का आघात खाकर गिर पड़ा। उसे देखने के लिए दूसरा रुका तो वाली ने उसका भी सिर चूर कर दिया...

अब वाली और मायावी दोनों ही अकेले-अकेले थे। मायावी अपने साथियो की अपेक्षा अच्छा योद्धा था और उसके पास खड्ग भी था; किन्तु वाली एक दृष्टि मे ही समझ गये थे कि अपने साथियो के धराशायी हो जाने से उसका मनोबल बहुत आहत हुआ था। उसका उत्साह क्रमशः क्षीण होता जा रहा था और अनायास ही उसका युद्ध आक्रामक के स्थान पर रक्षात्मक होता जा रहा था। उसके पग आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे हटते जा रहे थे।...थोड़ी ही देर मे वह गुफा की शिला से जा लगा था। अपनी पीठ पर शिला के स्पर्श से वह अपनी स्थिति समझकर जैसे किसी नींद से जागा और खड्ग सीधा कर, उसकी नोंक से छेद देने के लिए वह वाली की सीध मे झपटा; किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। वाली ने एक ओर हटकर अपनी गदा को दोनों हाथों में पकड़, घुमाकर शरीर की सारी शक्ति से सीधा प्रहार किया. .मायावी के पास पीछे हटने के लिए भी स्थान नहीं था। वह शिला तथा गदा के बीच कुचला जाकर सीधा धरती पर आ गिरा...

वाली ने स्पर्श कर देखा—मायावी मे प्राण नही थे। उसका शरीर पूर्णतः कुचला जाकर रक्त से गीला हो चुका था।...वाली के उन्माद और आवेश में जैसे भाटा आ गया। सहसा ही उन्हें थकान-सी लगने लगी। मन मे आया कि कही मायावी के निकट ही लेट जाएं और एक दीर्घ निःशक नींद ले लें...किन्तु थकान के साथ ही जैसे एक भय जन्मा।...वाली ने मय के पुत्र मायावी का वध किया था। मायावी साधारण व्यक्ति नही था, राजाधिराज रावण का साला था। उसकी हत्या का समाचार मिलते ही, सम्भव है राक्षसो के झुंड-के-झुंड वाली की खोज मे निकल पड़ें...वाली

अपनी किष्किंधा से बहुत दूर है। उन्हें ठीक-ठीक यह भी ज्ञात नहीं कि वे कहां हैं।

वाली तत्काल चल पड़े और तब से चलते ही आ रहे हैं। न उनकी थकान दूर हुई है, न भय। एक बार मन में भय जागता है तो वे संकुचित हो जाते हैं। कहीं किसी घने जंगल में छिप जाने की इच्छा होती है। और अगले ही क्षण भय की प्रतिक्रियास्वरूप तीव्र हिंसा जागती है। मन होता है कि किसी की ओर से विरोध और शत्रुता की तनिक-सी आशंका होते ही उसे पीस डालें, अपने सम्पूर्ण शत्रु-वर्ग को पूर्णतः नष्ट कर दें...

लौटते हुए भी वाली ठीक उसी प्रकार छिपते-छिपाते किष्किंधा की ओर बढ़ रहे थे, जैसे वे मायावी का पीछा करते हुए गये थे। कई बार उन्होंने सोचा भी, कि ऐसा क्यों है। जाते हुए तो उन्हें मायावी तथा उसके साथी राक्षसों का भय था, किन्तु लौटते हुए.. उन्हें लगता था, राक्षसों का भय उनके मन से अभी निकला नहीं था। राक्षस अत्यन्त दुष्ट और धूर्त होते हैं। सम्भवतः वे अभी भी कहीं घात लगाये बैठे हों। सम्भव है कि वे छिपकर उनका पीछा कर रहे हों...भय उनका पीछा नहीं छोड़ रहा था और भय के साथ थकान बढ़ती जा रही थी।

किष्किंधा के निकट के वनों में आते-आते वाली की शारीरिक थकान के साथ-साथ मानसिक थकान भी बहुत बढ़ गयी थी।...किन्तु जब कभी वे इस मानसिक थकान की परत हटाने का प्रयत्न करते, उन्हें लगता, उस धुएं के नीचे, आशंकाओं के अनेक बिच्छू छिपे बैठे हैं...

वाली के मन का संकल्प दृढ़ होता जा रहा था...एक बार वे अपनी राजधानी में पहुंच सत्ता हस्तगत कर लें, फिर वे अपनी इन आशंकाओं को पूर्णतः निर्मूल कर देंगे। किसी भी दिशा में कोई शत्रु शेष नहीं बचेगा। ..वाली अत्यन्त निर्मम होकर अपने शत्रुओं को समाप्त कर देंगे और पूर्ण शांति से राज्यभोग करेंगे...अलका...

वाली का शरीर थकान से टूट रहा था, किन्तु उनकी पलक तक नहीं झपकी थी।

उन्होंने तारा को देखा। वह जाने कब सो गयी थी। उसके चेहरे पर

पूर्ण तृप्ति की भावना थी, जैसे वाली के लौट आने पर उसे सब कुछ मिल गया था।...इतने दीर्घ वियोग के पश्चात् मिलने पर, वाली के मन में तारा का पुराना आकर्षण लौट आया था—कितनी सुन्दर है तारा...रात्रि की कुछ घड़िया व्यतीत होते-होते, तारा तो मन और शरीर की पूर्ण तृप्ति पाकर सो गयी, किन्तु वाली के मन में पुनः पुरानी वितृष्णा लौट आयी। उन्हें स्वयं अपने-आप पर आश्चर्य हो रहा था कि कुछ समय पूर्व उन्हें तारा इतनी आकर्षक क्यों लगी थी ..क्या वह मात्र कामाकर्षण था...तारा का सामीप्य ही जैसे उनमे अलका की दुर्दमनीय कामना जगा रहा था...

और उन्हें सूचना मिली थी कि सुग्रीव ने अलका को उसकी इच्छा के अनुसार उसके पिता के पास भेज दिया था।.. वाली के वक्ष मे तब से जैसे एक असहनीय पीड़ा घुमड़ रही थी...वाली ने अपने सुख के लिए किष्किंधा से इतना दीर्घ और भयंकर निष्कासन स्वीकार किया था और सुग्रीव की तनिक-सी इच्छा ने, वह सारा सुख वाली से छीन लिया, उनके जीवन की सबसे बड़ी निधि का अपहरण कर लिया। किसी ने सुग्रीव को नही रोका।.. सुग्रीव युवराज न रहकर सम्राट हो गया है। उसके पास राजनीतिक सत्ता है। उस सत्ता के कारण वह जिसका चाहे, सुख छीन सकता है, जिसकी चाहे सम्पत्ति छीन सकता है। वाली का सुख भी... वाली अपने-आप में कुछ भी नही है। सब कुछ राजशक्ति ही है...कल यदि सुग्रीव वाली के प्राण भी लेना चाहे, तो वह भी ले सकता है...

वाली की आंखों के सम्मुख, दिन के समय का वह दृश्य घूम गया... वन से बाहर निकल, वे किष्किंधा की प्राचीर के पास पहुंच गये थे, ठीक उसी स्थान पर, जहां के भग्नांश से वे मायावी के पीछे वन में उतर गये थे। किन्तु अब उस भग्नांश की ही मरम्मत नही हो चुकी थी—सम्पूर्ण प्राचीर का ही जीर्णोद्धार हो चुका था। प्राचीर पक्की तथा ऊंची हो चुकी थी, जैसे बाहर से होने वाले आक्रमण के लिए चुनौती बनकर खड़ी हो। प्राचीर के चारो ओर सैनिक चौकिया. स्थापित हो चुकी थी...वाली का मन स्तब्ध रह गया।...कही ऐसा तो नही कि उनकी अनुपस्थिति मे किसी शत्रु ने नगर पर आधिपत्य स्थापित कर लिया हो और अब प्राचीर पक्की कर, चारों ओर सैनिक चौकिया बैठा, लौटने पर उनके वध की तैयारी हो

आदेश ..."

सुग्रीव ने बात पूरी नही सुनी. .शिल्पी रात के इस प्रहर मे आया है! वह मुख्य द्वार के बाहर प्रतीक्षा कर रहा है। ऐसी क्या बात है? यदि शिल्पी के स्थान पर कोई और व्यक्ति होता तो कदाचित सुग्रीव एक क्षण के लिए सकोच भी करते। या सम्भव है कि इस प्रकार जगाये जाने पर उन्हें क्रोध भी आता, किन्तु शिल्पी...पर वह बाहर क्यों खड़ा है?

द्वार पर खड़े दंडधरों के अभिवादन की उपेक्षा करते हुए, वे बाहर आये। दृष्टि उठाकर देखा—शिल्पी कही दिखायी नही दिया। उन्होंने दंडधर की ओर देखा। दंडधर ने उनकी दृष्टि का अर्थ समझकर अंधकार मे एक ओर सकेत कर दिया।

अनायास ही सुग्रीव के पग उस ओर उठ गये। साथ ही मन ने प्रश्न किया, "ऐसा क्यों?" शिल्पी के महत्त्व से वे परिचित न होते, तो क्या इस कुसमय जगाये जाने पर, वे बाहर आते और बिना किसी को देखे, इस प्रकार अंधकार में चल पडते?.. शिल्पी का महत्त्व वे जानते है; फिर भी जो कुछ वह कर रहा है, क्या वह उचित है? वानरों के युवराज को इस प्रकार आधी रात के समय नीद से जगाकर, एक साधारण जन के समान अंधेरे मे छिपकर, उससे बातें करना ..क्या है यह सब?...

किन्तु उनके पगों की गति विचारों से अप्रभावित रही। मुख्य मार्ग के साथ सटकर अंधेरे मे खडे पेडों के झुरमुट के पास पहुंचते ही उन्हें शिल्पी दिखायी पड़ा। उसने आगे बढकर अभिवादन किया।

"क्या बात है, शिल्पी?"

"युवराज, यहां कोई बात नहीं हो सकती। आप मेरे साथ आयें।"

सारी मर्यादा और शिष्टाचार की उपेक्षा करते हुए, शिल्पी ने झपटकर सुग्रीव की बाह पकड़ ली और बलात् उन्हें अपने साथ खीचता हुआ बोला, "युवराज! अपनी शक्ति-भर मेरे साथ भागें।"

अगले ही क्षण शिल्पी और सुग्रीव उस मार्ग पर भागते जा रहे थे, जो किष्किधा से बाहर जाता था। सुग्रीव के पगो के साथ-साथ उनका मस्तिष्क भी भाग रहा था—यह सब क्या है। क्यो वे [illegible] के संग भाग रहे हैं? शिल्पी किष्किधा [illegible]

का अभ्यास है। उसे उसका शौक भी है। पुरस्कार जीतने के लिए उसे भागने का अभ्यास करने की इच्छा ही हो, तो वह रात-बेरात उठकर भागा करे; किन्तु सुग्रीव का इस प्रकार भगाया जाना ?...कहीं सुग्रीव के साथ ही तो कोई धोखा नहीं हुआ ?...किन्तु अंगद ऐसा क्यों करेगा ? और सुग्रीव के साथ धोखा करने की आवश्यकता ? उसे धोखा करना ही था तो तब करता, जब वाली के जीवित होने में संदेह था और सुग्रीव वानरों के शासक थे। ..अब जब वाली लौट आये थे, शासन पूरी तरह उनके हाथ में था—अब अंगद सुग्रीव के साथ धोखा करके क्या पायेगा ?...कोई-न-कोई बात तो होगी ही...

अंगद एक क्षण के लिए ही आया था सध्या समय। उसका दम फूल रहा था, जैसे भागता हुआ आया हो। उसने एकात में कहा था, "चाचाजी ! समय एकदम नहीं है। बड़ी मुश्किल से आया हूं। यदि किसी भी समय आपके पास शिल्पी को भेजू, तो आप भोजन करते या सोते में से भी उठकर आ जाएं और जो वह कहे, उसके अनुसार करें। चाचाजी ! शायद आपकी कल्पना में भी यह बात नहीं है कि परिस्थितिया कैसी जटिल हो गयी हैं।".. और अंगद यह जा, वह जा।...अभी चार प्रहर भी नहीं बीते कि शिल्पी ने उन्हें सोते में से आ जगाया। और अब उनकी बांह पकड़े घसीटता ही जा रहा है।...

"बात क्या है ? कुछ कहो भी तो, शिल्पी !"

"अभी बताता हू।" शिल्पी दौड़ता चला गया। किसी-न-किसी प्रकार सुग्रीव साथ घिसट रहे थे।

काफी दूर जाकर शिल्पी की गति कुछ धीमी हुई और वह रुक गया।

सुग्रीव रुके तो उनका ध्यान अपने हांफने की ओर चला गया। शिल्पी इतना सहज था, जैसे इतनी दूर तक भागा न हो, दो-चार पग ही चला हो।

सुग्रीव ने शिल्पी की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

"युवराज ! जो कुछ मैंने किया, यह राजकुमार अगद की इच्छा थी।" वह बोला, "राजकुमार का आदेश था कि मैं किसी भी प्रकार आपको

सामने खड़ा था, फिर भी जैसे एक बिंदु होकर रह गया था। उस बिंदु से फुसफुसाता हुआ एक निरतर स्वर फूट रहा था, "भागिये, युवराज ! भागिये !"

पर कैसे भाग जाए सुग्रीव ? रुमा पीछे प्रासाद में थी, और प्रासाद को वाली के सैनिक घेर रहे थे। सुग्रीव का इस समय रुमा के पास होना बहुत आवश्यक था। पता नही वे सैनिक उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे। वे साधारण वानर सैनिक हैं। अधिक शिष्टाचार नहीं जानते। उनके शब्द खुरदुरे हैं, व्यवहार कठोर। अधिकार प्रदर्शित करने का अवसर मिलते ही आवश्यकता से अधिक उग्र हो जाते हैं। संभव है, उनकी किसी बात से रुमा का मन दुख जाए...बेचारी रुमा...वह तो स्वयं किसी को कड़ी बात कह दे तो रो पडती है। फिर...

"भागिये, युवराज ! भागिये !..." सामने खड़ा बिंदु फुसफुसाता जा रहा था।

"किंतु रुमा..." वे बोले, "नही, शिल्पी। मैं वापस जाऊंगा। तुम्हें मुझे पहले ही बताना चाहिए था। मै रुमा को अकेली नही छोड़ सकता। मैंने सुख में भी कभी उसे अकेली नही छोड़ा, यह तो..."

"आप लौटेंगे तो निश्चित रूप से बंदी बनाकर अधकूप में डाल दिये जायेंगे, जहां से कभी जीवित न निकल पाएं। फिर कौन बचायेगा युवराज्ञी को, किष्किंधा को, वानरों को ?...भागिये, युवराज !"

अनायास ही सुग्रीव के पग उठे, जैसे शिल्पी की वाणी उनके मस्तिष्क का आदेश हो। वे भागे। दो-चार डग ही भरे होंगे कि उनके मस्तिष्क ने अपनी समानातर दौड़ आरंभ कर दी...क्या कर रहे हैं सुग्रीव ? क्या वे स्वयं कुछ भी सोच-समझ नही सकते ? स्वयं निर्णय नहीं ले सकते ? शिल्पी के एक आदेश पर अपनी पत्नी और घर छोड़कर भागते जा रहे हैं। क्या वे स्वयं जड़-मूर्त हैं ? कौन होता है शिल्पी उन्हें आदेश देने वाला...यदि वाली उनसे रुष्ट भी है, तो उनके भाई है, शत्रु तो नही। उनसे बातचीत हो सकती है, उन्हें समझाया जा सकता है, मतभेद मिटाया जा सकता है।... यदि अंगद ने शिल्पी को भेजा भी है, तो वे अपने लिए निश्चय करने का अधिकार अंगद को कैसे दे सकते है ?...और फिर क्या प्रमाण है कि अंगद ने

इतनी दूर तो पहुचा ही दू कि आप किष्किंधा के मुख्य पथों के घेरे से बाहर निकलकर सुरक्षित हो जाएं...।"

सुग्रीव ने मुड़कर देखा। उनके पीछे पचास-साठ पगों की दूरी पर, मुख्य पथ अपने एकाकीपन में पृथ्वी से ऊपर उठकर अकड़ा खड़ा था और वे स्वयं शिल्पी के साथ उससे नीचे मैदान में पेड़ों और झाड़ों के अंधकार में खड़े थे।

"किंतु क्यों ?.. " सुग्रीव की जिह्वा पर आया प्रश्न वहीं थम गया। उनकी दृष्टि अंधेरे में डूबे मुख्य पथ पर हिलते हुए बिंदुओं पर केन्द्रित हो रही थी। वे बिंदु क्रमशः बढ़ते जा रहे थे, जैसे काले बिंदुओं की कोई अजस्र धारा हो। अगले बिंदु, पथ के दोनों ओर अपना स्थान ग्रहण कर थम जाते थे और पिछले बिंदु अपना स्थान खोजने के लिए आगे बढ़ जाते थे।

सुग्रीव विस्फारित नयन लिये शिल्पी की ओर घूमे।

"सम्राट वाली के सैनिक।" शिल्पी धीरे से बोला, "नगर को घेरा जा रहा है। अब तक सैनिकों ने आपके महल को भी घेर लिया होगा..."

"किंतु क्यों ?" सुग्रीव चकित थे।

"आपको बंदी बनाने के लिए।"

"मैंने क्या किया है ?" सुग्रीव की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

"वह सब मैं नहीं जानता, युवराज !" शिल्पी बोला, "कुमार ने कहा है कि आप यहां से सीधे मतंग वन चले जाएं, ऋष्यमूक पर्वत पर। हनुमान भी यदि बच पाये तो वहीं मिलेंगे।"

"वह भी ?" सुग्रीव का मस्तिष्क जैसे जड़ हो रहा था।

"भागिये, युवराज ! समय एकदम नहीं है।" शिल्पी कह रहा था, "कुमार ने कहा है कि यदि आपको वानरों के सुखी भविष्य का तनिक भी ध्यान है, तो आप भागकर मतंग वन में सुरक्षित पहुंच जाएं।"

क्या करें सुग्रीव ?...अकस्मात् ही उनकी दृष्टि उठकर दूर, ऊंचे मुख्य-पथ पर खड़े बिंदुओं पर टिक गयी...वे बिंदु आगे नहीं बढ़ रहे थे—वे घेराबंदी कर रहे थे।...और तब उनकी दृष्टि नीचे, खड़ु सदृश इस मैदान में पेड़ों के पीछे, इस झाड़-झखाड़ में खड़े शिल्पी पर ठहर गयी। वह

सामने खड़ा था, फिर भी जैसे एक बिंदु होकर रह गया था। उन बिंदु से फुसफुसाता हुआ एक निरंतर स्वर फूट रहा था, "भागिये, युवराज ! भागिये !"

पर कैसे भाग जाए सुग्रीव ? रुमा पीछे प्रासाद में थी, और प्रासाद को वाली के सैनिक घेर रहे थे। सुग्रीव का इस समय रुमा के पास होना बहुत आवश्यक था। पता नहीं वे सैनिक उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे। वे साधारण वानर सैनिक हैं। अधिक शिष्टाचार नहीं जानते। उनके शब्द खुरदुरे है, व्यवहार कठोर। अधिकार प्रदर्शित करने का अवसर मिलते ही आवश्यकता से अधिक उग्र हो जाते हैं। संभव है, उनकी किसी बात से रुमा का मन दुख जाए...बेचारी रुमा...वह तो स्वयं किसी को कड़ी बात कह दे तो रो पड़ती है। फिर...

"भागिये, युवराज ! भागिये !..." सामने खड़ा बिंदु फुसफुसाता जा रहा था।

"किंतु रुमा..." वे बोले, "नहीं, शिल्पी। मैं वापस जाऊंगा। तुम्हें मुझे पहले ही बताना चाहिए था। मैं रुमा को अकेली नहीं छोड़ सकता। मैंने सुख में भी कभी उसे अकेली नहीं छोड़ा, यह तो..."

"आप लौटेंगे तो निश्चित रूप से बंदी बनाकर अंधकूप में डाल दिये जायेंगे, जहां से कभी जीवित न निकल पाएं। फिर कौन बचायेगा युवराज्ञी को, किष्किंधा को, वानरों को ?...भागिये, युवराज !"

अनायास ही सुग्रीव के पग उठे, जैसे शिल्पी की वाणी उनके मस्तिष्क का आदेश हो। वे भागे। दो-चार डग ही भरे होंगे कि उनके मस्तिष्क ने अपनी समानांतर दौड़ आरंभ कर दी ..क्या कर रहे है सुग्रीव ? क्या वे स्वयं कुछ भी सोच-समझ नहीं सकते ? स्वयं निर्णय नहीं ले सकते ? शिल्पी के एक आदेश पर अपनी पत्नी और घर छोड़कर भागते जा रहे है। क्या वे स्वयं जड-मूर्त है ? कौन होता है शिल्पी उन्हें आदेश देने वाला...यदि वाली उनसे रुष्ट भी हैं, तो उनके भाई है, शत्रु तो नहीं। उनसे बातचीत हो सकती है, उन्हें समझाया जा सकता है, मतभेद मिटाया जा सकता है।... यदि अंगद ने शिल्पी को भेजा भी है, तो वे अपने लिए निश्चय करने का अधिकार अंगद को कैसे दे सकते है ?...और फिर क्या प्रमाण है कि अंगद ने

ही शिल्पी को भेजा है. .

दूसरे ही क्षण, मुख्य पथ पर घेराबंदी करते हुए बिंदुओं का दृश्य सुग्रीव की खुली आखो के सम्मुख घूम गया...

नही ! यह सूचना गलत नही हो सकती। किष्किंधा मे रात के इस प्रहर मे नगर की घेराबंदी करते हुए सैनिको का यह दृश्य, युद्ध जैसी आपात स्थिति मे भी असाधारण है; और इन दिनों तो कही कोई युद्ध नही है, युद्ध की कोई संभावना भी नहीं है। तो फिर वाली के ये सैनिक इस समय क्या कर रहे है? निश्चय ही, रात के इस समय किसी को सोते हुए, दंडधरो के द्वारा विस्तर से घसीट मंगवाना विचार-विमर्श के लिए नही, अधकूप मे डालने के लिए ही हो सकता है।...किष्किंधा मे ऐसी घटनाओं की चर्चा केवल रावण के संदर्भ मे ही की जाती है। यह रावण की ही विशेषता मानी जाती है कि रात के अधकार में शांति से सोये हुए नागरिकों के घरों को सैनिको से घिरवाकर, वह उन्हे बदी बनाता है और उनकी कुलागनाओं और कुलवधुओं को उठवा मगाता है...क्या वाली भी...

सुग्रीव के पगों की गति बढ गयी। पगों के साथ-साथ अब मस्तिष्क भी भागने लगा था।

...रुमा पीछे छूट गयी है। थोड़ी देर में वाली के सैनिक सुग्रीव के प्रासाद को घेर लेंगे; या सभव है कि अब तक घेर भी चुके हों। सारे मार्ग बद कर दिये जायेंगे। प्रत्येक द्वार पर पहरा होगा...फिर वाली घर मे प्रवेश करेंगे। घर मे सुग्रीव को न पाकर उनकी आखो में रक्त उतर आयेगा। वाली को सुग्रीव अपने शैशव से देखते आये है और उनकी प्रकृति को अच्छी तरह समझते है। वाली अपनी विफलता नही सह सकते, न अपनी विफलता के कारणभूत व्यक्ति को क्षमा कर सकते है। विफलता छोटी हो, चाहे बड़ी—ऐसे समय मे उनके भीतर क्रोध की जो आधी उठती है, वह सामने आयी प्रत्येक वस्तु को पीस डालती है।...और सुग्रीव के घर मे क्रुद्ध, अपनी असफलता से बौखलाए हुए हिंस्र वाली के सामने पड़ेगी—रुमा। सभव है, वाली उस समय मदिरा पीकर धुत्त हों। उनकी मानवता पूरी तरह सोयी हो—असहाय बेचारी रुमा !

सुग्रीव के पग थम गये। वे रुमा को ऐसी विपत्ति में छोड़कर, अपनी

रक्षा के लिए कायरों के समान कैसे भाग सकते है ?...कही वाली क्रोध मे रुमा की हत्या...नहीं ! वाली यह नही करेंगे।...एक तो रुमा स्त्री है और फिर, चाहे जो कुछ भी हो, उनके छोटे भाई की पत्नी है—उनके अपने कुल की वधू। वाली के मन मे यदि कोई भ्राति है, तो वह सुग्रीव के लिए हो सकती है। रुमा ने क्या बिगाड़ा है वाली का ?...नही, वाली इतने नीच नही हो सकते। आखिर वे सुग्रीव के भाई है। सुग्रीव क्या उन्हें इतना भी नही जानते ? वाली इतने पतित कैसे हो सकते है कि अपनी अनुज वधू की हत्या कर दें...

इस समय लौटकर सुग्रीव, रुमा के पास घर पहुंच भी जाए, तो क्या कर लेंगे वे ? वे अकेले वाली से भी द्वन्द्व युद्ध नही कर सकते। शारीरिक शक्ति में वाली से उनकी कोई तुलना ही नही है। सुग्रीव उनके पासग भी नही हैं। युद्ध-कौशल में भी वे कोई ऐसे श्रेष्ठ नही हैं कि वाली की शारीरिक शक्ति के विरुद्ध संतुलन स्थापित कर सकें। और फिर अपने सैनिको और सेनापतियों के साथ व्यूहबद्ध खड़े, क्रुद्ध वाली का सामना कैसे किया जा सकता है ? नहीं ! ऐसे में सुग्रीव रुमा को बचा नही पायेंगे, स्वय चाहे मृत्यु की गोद मे ही जा सोयें...

इस आत्महत्या का क्या अर्थ ?

सुग्रीव के मन में जैसे कोई हसा—कायर सुग्रीव ! जान बचाने के बहाने सोच रहा है। अपनी पत्नी को विपत्ति में अकेला छोड़, भीत जंतु के समान रिरियाता हुआ भाग रहा है और अपने को बहुत विवेकी समझता है। साहस है तो वापस लौट ! अपने अभिमान की वेदी पर अपने प्राणो की बलि दे। अपने रक्त से अपने कलंक को धो ..

तत्काल ही एक दूसरा स्वर सुग्रीव के मन मे गूजने लगा—इस मृग-मरीचिका मे मत फसना, सुग्रीव ! तुम्हारे रक्त से कोई कलक नही धुलेगा। यदि कुछ धुलेगा, तो केवल वानरों का सुखद भविष्य। तुम भावनाओं के आवेश मे बह जाने वाले, काल्पनिक आदर्शों मे जीने वाले अव्यावहारिक जीव नहीं हो—तुम व्यावहारिक और विवेकी राजनीतिज्ञ हो। प्राण देने से कोई लाभ नही होगा। अपने प्राणों की रक्षा करो...इन प्राणो से और बहुत कुछ करना है। आवेश में बह जाना बुद्धिमत्ता नही है। आवेश को

संयत करो, संतुलित करो और उसे दिशा दो।...अंगद ने इतना जोखिम उठाकर, अपने पिता के विरुद्ध तुम्हारी सहायता की है। उसके इस साहसी कृत्य पर पानी मत फेरो। उसे तुमसे कुछ आशाएं हैं। यदि वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ, तो मतंग वन में हनुमान भी मिल जायेंगे। वहां बैठकर शांत मन से सोच-विचार कर, हनुमान के साथ विचार-विमर्श कर, भविष्य का कार्यक्रम बनाया जा सकता है।...और यदि वाली से द्वन्द्व युद्ध कर, उसी के हाथों मरना है, तो उसके लिए यही घड़ी उपयुक्त समय नहीं है। वाली को तो कभी भी ललकारा जा सकता है...

कई क्षणों तक निःस्पंद खड़े सुग्रीव आकाश को घूरते रहे। रुमा उन्हें आगे नहीं बढ़ने दे रही थी और वाली उन्हें लौटने नहीं दे रहा था। जाने रुमा को क्या-क्या सहना पड़े। यदि वाली ने उससे तनिक भी अशिष्ट व्यवहार किया तो?...सुग्रीव के रोम-रोम में आग जल उठी...रुमा...किंतु क्या करें सुग्रीव?...रुमा को शायद अंगद बचा ले। संभव है, तारा भाभी ही उसकी कोई सहायता कर सकें।.. किंतु सुग्रीव लौटे तो उन्हें कौन बचायेगा?...

किंतु क्या सोचेगी रुमा, जब उसे बताया जायेगा कि अपने प्राण बचाने के लिए उसे अरक्षित छोड़कर, सुग्रीव रात के अंधकार में कायरों के समान भाग गया।...शायद उसका मन घृणा से भर उठे। वह थूकेगी उनके नाम पर। जो पति विपत्ति के समय पत्नी को ऐसे असहाय छोड़कर भाग जाए, उसका मर जाना ही अच्छा...सुग्रीव को लगा, रुमा उनके सम्मुख खड़ी उन्हें धिक्कार रही है—'कहां गये तुम्हारे सिद्धांत और आदर्श? तुम तो कहते थे, पति-पत्नी को जीवन में सदा साथ रहना चाहिए—सुख में, दुख में, जीवन में, मृत्यु में। अब तुम्हें पत्नी से राजनीति अधिक प्यारी हो गयी—या अपने प्राण अधिक प्यारे हैं?...ऐसा ही था तो मुझे भी साथ ले चलते। मैं तुम्हारा साथ न निभाती तो जो चाहे दंड देते। मुझे तो अवसर ही नहीं दिया...'

सुग्रीव की आंखों में अश्रु आ गये ..'नहीं, रुमा! मुझे इस प्रकार न दुतकारो। मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न करो...मुझे मोह में मत डालो। सदा के समान अपनी विशिष्ट मुद्रा में हंसकर कहो—"जाओ।

जाओ। मैं सब देख लूगी'।"

सुग्रीव का मन कुछ हल्का हुआ। यदि वे आमने-सामने रुमा से पूछते, तो शायद वह हसकर यही कहती—'जाओ। जाओ। मैं सब देख लूगी।'

सुग्रीव ने अपने आसू पोछे और मुड़कर मतग वन की ओर चल पड़े। अब उनकी चाल मे द्वन्द्व नही था।

इस बार सुग्रीव का मन एक अन्य प्रश्न में उलझ गया। आखिर वाली क्या कर रहा है, और क्यों ?...शिल्पी ने उनके अतिरिक्त केवल एक नाम लिया था—हनुमान ! क्या वाली ने उसे सुग्रीव का साथी समझकर दडित करना चाहा था ? यदि सुग्रीव के समस्त साथियों को दडित करना है तो सारी किष्किधा मे केवल वह अकेला तो नहीं है। उसे अनेक वानर-नायकों को दडित करना पड़ेगा। किष्किधा की प्राचीर के भीतर ही नही, दूर-दूर तक फैले हुए वानर-यूथों के उन लक्ष-लक्ष साधारण वानर-जनों को वदी करना होगा, जिन्होने सुग्रीव के नेतृत्व में एक सुदर भविष्य का स्वप्न देखा था, और वानर-यूथो को आदिम स्थिति से निकालकर, सभ्यता तथा प्रगति के पथ पर आगे चलाना चाहा था।...क्या वाली उन सबको वंदी वनायेगा ? और वदी वनाकर क्या करेगा ? यदि वाली सुग्रीव को पकड़ पाता, तो क्या करता ? उन्हे कारागार मे डालता या उनका वध करता ?...किंतु क्यो ? सुग्रीव का अपराध क्या है ?...

सुग्रीव ने वाली का राज्य उससे नही छीना। यदि वे चाहते तो यह तनिक भी कठिन नही था। वानरों में उनकी इतनी प्रतिष्ठा है कि उनके एक सकेत पर किष्किधा मे विद्रोह हो सकता था। किन्तु उन्होंने कभी वाली का बुरा नही चाहा।...हां ! व्यवस्था के प्रश्न पर उनका मतभेद हो सकता है; किन्तु मतभेद कोई अपराध नही है। वाली को दिवगत समझकर मत्रि-परिषद ने जब सुग्रीव का राज्याभिषेक कर दिया, तो शासन पाकर भी उन्होंने वाली के मत्रियों, वंधुओ और मित्रों को वदी तो नहीं वनाया। किसी का वध कराना तो दूर, उनके लिए तनिक-सी असुविधा भी नहीं चाही।...जब तक शासन उनके हाथो में रहा अपनी बुद्धि और विवेक के अनुसार उन्होने न्यायपूर्वक शासन किया और वाली के जीवित

होने की पहली सूचना मिलते ही शासन के समस्त अधिकार स्वेच्छा से त्यागकर अलग खड़े हो गये। वे चाहते तो उस समय वे भी बड़ी सरलता से वाली को बंदी बना सकते थे, अथवा उसका वध करवा सकते थे। किन्तु यह उनकी नीति नहीं रही।...तो अब वाली? क्या चाहता है वाली?...

ऐसा कौन-सा कार्य किया है सुग्रीव ने, जिससे वाली इतना क्षुब्ध है?... सुग्रीव की आंखों के सम्मुख, दो दिन पूर्व का दृश्य घूम गया...

प्रायः वर्ष भर की अनुपस्थिति के पश्चात् वाली लौटा था। सुग्रीव के मन में कितना उल्लास था। जिस भाई के जीवन से वे निराश हो चुके थे, वह साक्षात् सम्मुख आ खड़ा हो, तो किसे प्रसन्नता नहीं होगी। वाली, मात्र जीवित ही नहीं था—अपने शत्रु की लंबी और कठिन खोज के पश्चात् उसका वध कर, विजयी के रूप में किष्किंधा लौटा था। सारे राजपरिवार में उत्सव की-सी स्थिति थी। तारा भाभी के पति लौटे थे, अंगद के पिता... पर ऐसी स्थिति में भी वाली प्रसन्न दिखायी नहीं पड़ रहा था। वह सुग्रीव के साथ नगर के निरीक्षण के लिए निकला था। चलते-चलते एक स्थान पर, वह नगर-प्राचीर के पास रुक गया।

"इस स्थान को पहचानते हो, सुग्रीव?"

सुग्रीव इस स्थान को भली प्रकार पहचानते थे।...यह वही स्थान था, जहां प्राचीर टूटी हुई थी और जिस पर से कूदकर मायावी भाग निकला था।

"क्यों नहीं पहचानूंगा! आपने इसे सियार की गुफा कहा था।" सुग्रीव ने वाली को देखा, "आपने मुझे इस स्थान पर दृष्टि रखने के लिए कहा था.."

वाली का व्यवहार सहज नहीं था। उसके चेहरे पर चरम क्षोभ के भाव थे और आंखों में विक्षिप्तप्रायावस्था झलक रही थी।

"मैंने दृष्टि रखने के लिए कहा था, ताकि मायावी वापस न लौट सके; और तुमने प्राचीर का जीर्णोद्धार करा दिया, ताकि वाली ही न लौट सके..."

"भैया!" सुग्रीव चीत्कार कर उठे।

"सत्य सुना नहीं जाता?" वाली जैसे आपे में नहीं था, "मैं क्या

इतना भी नही समझता.. "

तो क्या सत्य ही वाली यह समझता है कि सुग्रीव ने उसे वापस न लौटने देने के लिए ही प्राचीर की मरम्मत करवाई थी?...क्या वह इतनी-सी बात भी नही सोच सकता कि किष्किधा मे लौटने का एकमात्र मार्ग प्राचीर का वह टूटा हुआ भाग ही नहीं है...

वाली की अपनी चितन-पद्धति थी। सुग्रीव क्या कर सकते थे। वाली ने यदि यह मान लिया है कि प्राचीर का जीर्णोद्धार उसका किष्किधा-प्रवेश रोकने के लिए ही था, तो कोई उसे अन्य बात कैसे समझा सकता है? सभव है, उसने यह भी मान लिया हो कि वहां जो सैनिक थे, वे उसकी खोज के लिए नही, उसकी हत्या के लिए नियुक्त किये गये थे...और यदि एक बार वाली के मन में ऐसी बात आ गयी तो उसे समझाना असभव है. .कही वाली यह तो नही समझ बैठा कि सुग्रीव ने उसकी हत्या का प्रयत्न किया है?...यदि ऐसा है तो वाली, सुग्रीव को जीवित नही छोड़ेगा...

सुग्रीव के सारे शरीर मे एक ठंडी सिहरन दौड़ गयी।

मतग वन तक सुग्रीव जैसे किसी आविष्टावस्था मे पहुचे। वाली की भावना की कल्पना ही उनके लिए घातक थी, जैसे किसी ने उन पर वास्तविक आघात कर दिया हो। किन्तु मतंग वन तक पहुंचते-पहुंचते उनका आक्रोश कुछ हल्का हुआ। मस्तिष्क की जडावस्था भग हुई और वह कुछ-कुछ चिंतनशील हो गया...

...अगद ने उन्हें मतंग वन जाने को ही क्यो कहा?...कही इसमे कोई चाल तो नही?...पर इसमे क्या चाल हो सकती है? यदि सुग्रीव को फसाना ही था, तो उन्हे बचाने की क्या आवश्यकता थी? अंगद उन्हें चेतावनी न भिजवाता तो वे अपने शयन-कक्ष मे सोये हुए, बड़ी सरलता से पकड़े जा सकते थे।...अंगद उन्हे बचाना चाहता था...उसमें किसी चाल का कोई प्रश्न ही नही था।

जैसे-जैसे सुग्रीव का मन सोचता जाता था, उन्हे लगता, वाली से बचने के लिए मतग वन से अधिक उपयुक्त दूसरा कोई स्थान हो ही नही सकता था। यदि अगद ने उन्हें मतंग वन जाने को न कहा होता, तो वे सोचते ही

रह जाते कि कहा जाए ..संभवतः वे निर्णय ही न कर पाते या कोई गलत निश्चय कर बैठते और परिणामतः वाली के हाथों में पड़ जाते... फिर अगद ने हनुमान को भी मतग वन मे ही आने को कहा है। एक से दो भले। अन्यथा वे दोनों पृथक्-पृथक् रहकर, एक-दूसरे की सहायता भी न कर पाते .

मतंग वन बडा उपयुक्त स्थान है—सुग्रीव के पगों के साथ-साथ उनका मन भी चलता जा रहा था—दुंदुभि का प्रसग सुग्रीव के मन में सजीव हो उठा।. मायावी के वध के लिए भी वाली मतग वन में जाने का साहस नहीं कर पाया था। वाली से बचने के लिए मतग वन से उत्तम स्थान दूसरा नहीं है...

न तो मतग वन मे पहुंचने मे कोई बाधा हुई, न हनुमान को खोजने मे; किन्तु तनिक-सी सुरक्षा का अनुभव होते ही, सुग्रीव का मन वापस किष्किधा की ओर दौडने लगा था...जब तक उन्हें किष्किधा का ठीक-ठीक समाचार न मिले, उनका मन स्थिर कैसे हो सकता था। नगर मे रुमा थी, उनके बधु थे, मित्र थे, सहयोगी थे...चिंता तो उन्हे सबकी ही थी, किन्तु रुमा की चिन्ता भिन्न प्रकार की थी। कई बार मन में आया भी कि उनके लिए बधु, मित्र, सहयोगी, मत्री, सैद्धांतिक सहचर—सब उतने ही महत्त्वपूर्ण थे, जितनी रुमा; किन्तु मन विवेक के इस तर्क से सहमत नही था। चाहे वह स्वार्थ हो, चाहे नीचता—किन्तु वे रुमा को अन्य लोगों के समान नही मान पाते थे। वह उनकी पत्नी थी। उसकी चिन्ता उन्हें ही करनी थी। रुमा के लिए जो भी असुविधा, कठिनाई या जोखिम होगा, वह भी उन्ही के कारण था। वाली के लिए रुमा, और कुछ भी नहीं, सुग्रीव की पत्नी थी। नहीं तो वाली को उससे क्या लेना-देना था। सुग्रीव की पत्नी होने के कारण यदि उसे हानि पहुचने की संभावना थी—तो उसका लाभ भी तो उसे पहुचना चाहिए। ..उन्हें रुमा का समाचार मिलना ही चाहिए था...

किन्तु कौन दे समाचार?

वे जितना अधिक सोचते जाते थे, उतना ही उनका निश्चय दृढ़ होता जाता था कि उनका किष्किधा लौटना अविवेकपूर्ण है। मतग वन में टिके

रहकर प्रतीक्षा करें...कदाचित अंगद की ओर से कोई समाचार आये।... कदाचित अगद ऐसी स्थिति में था कि किष्किधा के सारे समाचार जान सके। .. किन्तु अगद किष्किधा की परिधि के भीतर था। वहां वाली का राज था और अगद को सब लोग अच्छी प्रकार पहचानते थे। संभव है कि अगद को सूचना भिजवाने का कोई अवसर ही न मिल सके...पग-पग पर सैनिक होगे, पग-पग पर गूढ पुरुष और गुप्तचर। अगद के पास कोई ऐसा अधिकारपूर्ण पद भी नही है, जिसकी आड़ मे वह ऐसा कोई कार्य कर सके।...इतने अनिश्चित साधन पर निर्भर नही रह सकते सुग्रीव।...और फिर बहुत सभव है कि वाली, अगद का युवराज्याभिषेक कर दे। पिता-पुत्र मे किसी प्रकार का कोई समझौता हो जाए। अंगद का मन बदल जाए...

सुग्रीव स्वय किष्किधा मे प्रवेश नही कर सकते। शेष है केवल हनुमान। किन्तु हनुमान को भेजने का जोखिम स्वयं सुग्रीव नही उठाना चाहते। यदि हनुमान किष्किधा में जाकर किसी परेशानी में फंस गये तो सुग्रीव क्या करेंगे? हनुमान जैसा चरित्रवान, सिद्धातवादी, सच्चा, वीर तथा साहसी, सहयोगी और मित्र उन्हे कहां मिलेगा। हनुमान को भेजने से तो अच्छा है कि वे स्वय ही चले जाएं। वे यदि वाली के हाथों मे पड़ जाते है और वाली उनकी हत्या कर देता है, तो फिर उन्हें मित्रों और सहयोगियों की आवश्यकता ही नही रहेगी...

किन्तु प्रातः सुग्रीव के कहे विना ही हनुमान ने किष्किधा जाने की तैयारी कर ली। सुग्रीव ने उन्हे रोकना चाहा तो वे रुके नहीं, "युवराज ! जाति का नाम वानर होने से ही तो हम वानर नही हो जाते। आखिर कब तक उद्यमहीन होकर ऋष्यमूक की चोटियों पर, वृक्षों की शाखाओं पर, शाखामृगों के समान निवास करते रहेंगे। मुझे किष्किधा जाना ही होगा। यदि हम अभी कुछ नही कर सके, तो भी हमें किष्किधा के समाचारों से तो अवगत होना ही होगा और यदि संभव हो तो अपने साथियो से सपर्क भी स्थापित करना होगा।"

सुग्रीव ने हनुमान को रोकने का प्रयत्न नही किया। वे तो स्वयं ही यह सब चाहते थे; किन्तु न स्वयं जाने का साहस कर पा रहे थे, न हनुमान

से कहने का। हनुमान के प्रति उनका मन स्नेह और सम्मान से भर गया। अद्भुत है हनुमान। एक बार किसी को अपना मित्र मान लें, फिर उसके कार्य के लिए जान लड़ा देंगे। सेवा की भावना तो उनमें जैसे कूट-कूटकर भरी है। आवश्यकता के समय किसी के काम आ सकना, हनुमान के लिए जीवन का सबसे बड़ा सुख है।...और कितने समझदार हैं हनुमान। अपने आप ही समझ गये कि इस समय सुग्रीव को किस बात की आवश्यकता है। मांगने के सकोच से भी बचा लिया उन्होंने सुग्रीव को...

जाते हुए हनुमान को सुग्रीव देखते रहे।...शस्त्रों के अभाव में सारे वानर सैनिक और योद्धा अपनी शारीरिक शक्ति पर अधिक निर्भर रहते है। इसीलिए उनके शरीर प्रायः पुष्ट और सुदृढ़ हैं। अन्य जातियों के सैनिक जितना समय शस्त्रों के अभ्यास में लगाते होंगे—उससे कहीं अधिक समय वानर योद्धा शारीरिक व्यायाम में लगाते है। यह शरीर ही अस्त्र है उनका। किन्तु हनुमान जैसा शरीर वानर जाति में भी असाधारण है। बलशाली से बलशाली राक्षस भी हनुमान के सामने ऊना पड़ा है। किसी की उनसे तुलना हो सकती है तो एक बाली और दूसरे अंगद की। किन्तु उन दोनों में से एक सम्राट है, दूसरा राजकुमार। हनुमान का आज तक उनमे से किसी के साथ द्वन्द्वयुद्ध नही हुआ। कहा नहीं जा सकता कि उनमें से कौन-सा किस पर भारी पड़ेगा...

हनुमान ऋष्यमूक से उतरकर किष्किंधा की ओर जाने वाले वनों में खो गये, तब भी सुग्रीव उन्हीं के विषय में सोचते रहे।...हनुमान ने आज तक विवाह नही किया। किष्किंधा की कोई भी सुन्दरी उनसे विवाह करके स्वयं को गौरवान्वित मानेगी; किन्तु हनुमान का ध्यान ही उस ओर नहीं था। यूथपति केसरी का यह पुत्र किशोरावस्था के आरंभ से ही अनेक आर्य-आर्येतर आश्रमों और गुरुकुलों में विद्यार्जन के लिए भटकता फिरा है। किष्किंधा लौटने पर वह सामाजिक और राजनीतिक जीवन में रुचि लेने लग गया। अपने विषय में शायद हनुमान ने कुछ सोचा ही नहीं।

अपने संक्षिप्त-से शासनकाल में सुग्रीव को हनुमान से बहुत सहायता मिली थी। किष्किंधा के निर्धन निवासियों को उनकी खोहों, गुफाओं और बिलों जैसी झुग्गियों से निकालकर छोटे-छोटे साफ-सुथरे घरों में बसाने की

योजना के सबसे उत्साही समर्थक हनुमान ही थे। कितना काम किया था हनुमान और उनके सामाजिक संगठनों के सदस्यो ने। एक बार सुग्रीव के मन मे आया भी था कि वे राजाज्ञा से उन लोगों को अपनी झुग्गिया छोड़, नये घरों मे जाने को बाध्य कर दें; किंतु हनुमान ने अपनी असहमति प्रकट कर दी थी। उनका कहना था कि जो काम जन-सामान्य के अपने कल्याण का है, उसके लिए राजाज्ञा की बाध्यता क्यों। यदि राजाज्ञा से ऐसा किया गया, तो जनता में शासन के प्रति अविश्वास फैलेगा। राजाज्ञा की सहायता तो केवल दुष्ट-दलन मे लेनी चाहिए।...और उनकी बात कितनी ठीक थी। जब राज-कर्मचारियों ने उन गंदी बस्तियों में जाकर घोषणा की कि उनके लिए शासन की ओर से छोटे-छोटे ही सही, किंतु साफ़-सुथरे मकान बना दिये गये हैं, वे लोग अपने परिवार और सामान के साथ वहा पहुचकर एक-एक मकान का अधिकार प्राप्त कर लें, तो साधारणत. लोगो ने इस घोषणा को उपहास में ही उड़ा दिया था, "राजा को अपनी रानियों-रखैलों के लिए महल बनवाने से अवकाश मिल गया क्योंकि हमारे लिए मकान बनने लगे।" कुछ लोगों ने अपना सदेह दूसरे रूप मे प्रकट किया था, "राजा को किष्किंधा की भूमि कम पड़ने लगी है कि हमारी झुग्गिया भी छीनना चाहता है।"...तब हनुमान तथा उनके सहचरों ने एक-एक घर मे जाकर लोगो को समझाया था कि शासन अब वाली के हाथ में न होकर, सुग्रीव के हाथों मे है; और सुग्रीव वस्तुतः अपनी प्रजा को सुखी देखना चाहते हैं। उन्होंने लोगों का विरोध मुसकराकर सहा, उनके अपशब्द धैर्यपूर्वक सुने और बड़ी कठिनाई से उन्हे विश्वास दिलाया कि यह उनकी झुग्गिया छीनने का षड्यन्त्र नही है।...जब कुछ लोग उनकी बात मानकर नये मकानों मे आ गये, तो अन्य लोगों का सदेह भी मिट गया था।

और अब वाली ने शासन संभालते ही जिसके प्रति सबसे अधिक क्रोध दिखाया—वह हनुमान ही थे। एक ही दिन मे वाली को उसके चाटुकारो ने समझा दिया कि सुग्रीव का सबसे समर्थ सहायक कौन है।...

हनुमान सध्या के धुंधलके मे लौटे। तब तक सुग्रीव अपना सारा धैर्य खो चुके थे और इतने व्यग्र हो उठे थे कि अंधेरा होने तक यदि हनुमान न लौटते,

तो स्वयं किष्किंधा के लिए चल पड़ते, परिणाम चाहे कुछ भी होता।... किंतु पूरी तरह अंधकार उतरने से पहले ही हनुमान लौट आये थे।

हनुमान अकेले नहीं थे। उनके साथ नल और नील थे। उनमें से प्रत्येक ने थोड़ी-बहुत खाद्य-सामग्री तथा दैनिक आवश्यकता का अन्य सामान उठा रखा था।

निकट आते ही हनुमान बोले,"कुछ भोजन-सामग्री लाया हूं, युवराज। भोजन कर लें। आपको भूख लगी होगी। नल और नील भी आ गये हैं। यहां रहने की कुछ व्यवस्था करनी होगी। लगता है, हमारी संख्या बढ़ाने के लिए कुछ और अतिथि किष्किंधा से आयेंगे।"

"समाचार! हनुमान!" सुग्रीव ने बड़ी कठिनाई से अपने स्वर की अधीरता को छिपाया, "रुमा का क्या समाचार है?"

हनुमान आकर उनके सम्मुख बैठ गये। उन्होंने अपनी अन्यमनस्कता का मुखौटा उतार फेंका। गंभीर होकर बोले, "युवराज! समाचार अच्छा नहीं है।"

"क्या?"

"आप स्वयं को स्थिर करें तो बता पाऊंगा।" हनुमान बोले, "समाचार जानने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। किष्किंधा के हाट-बाजारों में ये समाचार हवा के साथ उड़ते फिर रहे हैं।...किंतु समाचार सुखद नहीं है।"

"क्या समाचार है?"

"युवराज वचन दें कि अपना धैर्य नहीं खोयेंगे; अन्यथा समाचार कहना मेरे लिए कठिन हो जायेगा।" हनुमान बोले।

सुग्रीव ने स्थिर दृष्टि से हनुमान को देखा, "मैं वचन देता हूं—कुछ भी हो, धैर्य नहीं खोऊंगा।"

"युवराज! कल की एक रात में ही सारे किष्किंधा नगर में से चुन-चुनकर आपके मंत्रियों, सेनापतियों, मित्रों, बंधुओं और सहचरों को बंदी कर लिया गया है। बच केवल वे लोग गये हैं, जिन्हें समय से सूचना मिल गयी और जो अपने घर छोड़कर इधर-उधर छिप गये। यदि अज्ञातवास करने वाले वे लोग, बाली के गुप्तचरों से बच गये, तो आपका पता पाने

का प्रयत्न करेंगे।"

"एक ही रात मे...?"

"हा, युवराज !"

"और रुमा ?"

"युवराज्ञी का समाचार तनिक विस्तार मे ज्ञात हुआ है।..." हनुमान रुक गये।

"कहो !" सुग्रीव के जबड़े भिच गये।

"युवराज ! आपके घर मे सैनिको ने तब तक प्रवेश नही किया, जब तक वाली वहा नही आ गये। वाली के प्रवेश करते ही, युवराज्ञी को पकड़कर उनके सम्मुख प्रस्तुत किया गया। वाली ने उनसे पूछा कि आप कहा हैं। युवराज्ञी ने सच-सच बता दिया कि आधी रात को कोई आपको बुलाने आया था और आप उन्हे निद्रामग्न छोड़कर बाहर चले गये थे। वाली ने जानना चाहा कि बुलाने कौन आया था। युवराज्ञी ने इस विषय में अपना अज्ञान प्रकट किया।

"सम्राट क्रोध से तमतमा उठे। दंडधरों को प्रासाद के परिचारक, परिचारिकाओं तथा द्वारपालों को बाधकर लाने का आदेश दिया। जब वे सब लोग एकत्र कर दिये गये, तो उन्होंने उन्हे कशाओं से तब तक पीटे जाने का आदेश दिया जब तक वे लोग युवराज को बुला ले जाने वाले व्यक्ति का नाम न बता दें, या मर न जाए। परिणामस्वरूप कुछ ही क्षणो में एक परिचारिका के मुख से शिल्पी का नाम निकल गया। उसने कहा कि उसने स्वय तो शिल्पी को नही देखा; किंतु एक द्वारपाल से सुना था कि युवराज, शिल्पी द्वारा बुलाये जाने पर बाहर चले गये थे...।"

"शिल्पी का क्या हुआ, हनुमान ?" सुग्रीव ने पूछा।

"उसका कुछ पता नही है; किंतु उसे बदी नहीं बनाया जा सका, युवराज !"

"यह ठीक हुआ। फिर...?"

"सम्राट ने शिल्पी को बदी बनाने का आदेश दिया और फिर युवराज्ञी की ओर मुड़े, 'सुग्रीव निकल गया, अन्यथा आज भाई के हाथों भाई का वध होता। किंतु मैं उसे अदडित नही छोड़ सकता। उसे खोजूगा, जिस

हम समझते हैं, किंतु भावुकता अथवा आवेश से कही समस्याओं का समाधान हुआ है ? आप जायेंगे, साथ हनुमान जायेंगे। आप दोनों वहा घेरकर मार डाले जायेंगे। आपके पश्चात् खोज-खोजकर आपके साथियो-सहयोगियों को चुन-चुनकर मारा जायेगा। जिस प्रजा को सुख देने के अपराध मे आपकी हत्या का प्रयत्न किया जा रहा है, उस प्रजा को हर ओर से पीड़ित किया जायेगा।..." नील तनिक रुककर बोले, "मेरा विचार है कि परिस्थितियों को देखते हुए हमे संघर्ष का कोई अन्य मार्ग चुनना पड़ेगा। आत्महत्या का मार्ग मूर्खतापूर्ण भी है और पापपूर्ण भी।"

"एक सूचना और है, युवराज।" हनुमान बोले, "अनुमति हो तो निवेदन करूं। उसके पश्चात आप जो निश्चय करेंगे, मुझे मान्य होगा।"

"बोलो।" सुग्रीव अपने सूखे होंठो को जिह्वा से गीला करते हुए बोले।

"आपको अपने मन्त्री मलयवन की याद होगी..."

"क्यों, क्या हुआ उसे ?" सुग्रीव चौंके।

"वे अपने घर में वाली के सैनिको द्वारा घेर लिए गये। वाली ने उनके परिवार के सदस्यों के सामने उन्हे अपने दडधरों से तब तक पिटवाया, जब तक उनकी मृत्यु नहीं हो गयी। मृत्यु के पश्चात उनका शव उनकी पत्नी को सौप दिया गया। इस घटना का आतंक इतना फैला कि शव उठाने के लिए दस व्यक्ति इकट्ठे करना कठिन हो गया। किसी प्रकार उनके सगे-संबंधी उनके शव को श्मशान-भूमि तक ले आये। किंतु वाली के सैनिकों ने वहां भी उनका पीछा नही छोड़ा। शव को उठाकर लाने वाले छह-के-छह व्यक्ति श्मशान-भूमि मे मार डाले गये..."

सुग्रीव को लगा कि उनकी शिराओं में रक्त ठंडा होता जा रहा है। उनके मुख से स्वर नही फूटा—न विषाद का, न क्रोध का, न आश्चर्य का ...वे देखते-के-देखते रह गये। बड़ी देर के पश्चात उन्होने पूछा, "आर्य मलयवन का अपराध ?"

"आपके साथ सहयोग।" हनुमान बोले।

"तुमने यह सब कहा सुना, हनुमान? क्या अत्याचार के इन समाचारों को छिपाने का प्रयत्न शासन द्वारा नही किया जा रहा ? इससे तो शासन

दिन मेरे हाथ लग गया, उसी दिन या तो उसका वध कर दूंगा या उसे अंधकूप में उतार दूंगा।...किंतु वह तुम्हें क्यों छोड़ गया? क्या समझकर छोड़ गया? शायद वह जानता है कि तुम्हारे रूप का मेरे लिए कभी कोई आकर्षण नहीं रहा; किंतु यह भूल गया कि तुम्हारा नारी-शरीर मेरे लिए प्रतिशोध के समान सुंदर है।..." युवराज्ञी वाली के पैरों में गिर पड़ी। उन्होंने रो-रोकर प्रार्थना की कि यदि सम्राट चाहें तो सुग्रीव की पत्नी होने के पुरस्कारस्वरूप उन्हें वधिकों के हाथ सौंप दें, जीवित जला दें, परंतु उनके नारीत्व का अपमान करके अपने कुल पर दोहरा कलंक न लगाए। किंतु वाली ने उनकी एक न सुनी और उन्हें घसीटकर अपने साथ ले गया...।"

सुग्रीव की आंखों में क्षण-भर के लिए तेज झलका और फिर उनसे अश्रु चू पड़े, "रुमा!"

"युवराज!"

"मुझे शस्त्र दो, हनुमान।" सुग्रीव का कंठ सध नहीं रहा था, "जैसे भी हो, जहां से भी हो, मेरे लिए किसी शस्त्र का प्रबंध करो। मैं इसी क्षण किष्किंधा जाऊंगा। मैं जानता हूं कि वाली को मैं द्वन्द्व-युद्ध में जीत नहीं सकता; किंतु मैं युद्ध करूंगा और उसके हाथों मरकर अपनी कायरता के कलंक को धोऊंगा।"

हनुमान ने नल और नील को संकेत किया। नील ने आगे बढ़कर एक खड्ग भूमि पर रख दिया और नल ने एक गदा।

"युवराज!" हनुमान का गंभीर स्वर गूंजा, "मैं जानता था कि आप शस्त्र मांगेंगे। शस्त्रों का प्रबंध मैंने कर दिया है; किंतु शर्त यह है कि यदि ऐसा दुस्साहस करना ही है, तो वह मैं करूंगा। आपका जीवित रहना वानरों के लिए भी आवश्यक है और युवराज्ञी के लिए भी। मेरे साथ ऐसा कोई बंधन नहीं है।"

"नहीं!" सुग्रीव बोले, "यह मेरा व्यक्तिगत मामला है। मैं ही जाऊंगा।"

"जातियों के न्याय-अन्याय के संघर्षों में व्यक्तिगत मामले इस प्रकार निबटाये जाते हैं क्या?" नील पहली बार बोले, "युवराज! आपकी पीड़ा

हम समझते है, किंतु भावुकता अथवा आवेश से कही समस्याओं का समाधान हुआ है? आप जायेंगे, साथ हनुमान जायेंगे। आप दोनों वहा घेरकर मार डाले जायेंगे। आपके पश्चात् खोज-खोजकर आपके साथियो-सहयोगियों को चुन-चुनकर मारा जायेगा। जिस प्रजा को सुख देने के अपराध मे आपकी हत्या का प्रयत्न किया जा रहा है, उस प्रजा को हर ओर से पीड़ित किया जायेगा।..." नील तनिक रुककर बोले, "मेरा विचार है कि परिस्थितियों को देखते हुए हमें संघर्ष का कोई अन्य मार्ग चुनना पड़ेगा। आत्महत्या का मार्ग मूर्खतापूर्ण भी है और पापपूर्ण भी।"

"एक सूचना और है, युवराज।" हनुमान बोले, "अनुमति हो तो निवेदन करूं। उसके पश्चात आप जो निश्चय करेंगे, मुझे मान्य होगा।"

"बोलो।" सुग्रीव अपने सूखे होंठों को जिह्वा से गीला करते हुए बोले।

"आपको अपने मंत्री मलयवन की याद होगी..."

"क्यो, क्या हुआ उसे?" सुग्रीव चौंके।

"वे अपने घर मे वाली के सैनिकों द्वारा घेर लिए गये। वाली ने उनके परिवार के सदस्यो के सामने उन्हे अपने दडधरों से तब तक पिटवाया, जब तक उनकी मृत्यु नही हो गयी। मृत्यु के पश्चात उनका शव उनकी पत्नी को सौंप दिया गया। इस घटना का आतक इतना फैला कि शव उठाने के लिए दस व्यक्ति इकट्ठे करना कठिन हो गया। किसी प्रकार उनके सगे-संबंधी उनके शव को श्मशान-भूमि तक ले आये। किंतु वाली के सैनिको ने वहां भी उनका पीछा नही छोड़ा। शव को उठाकर लाने वाले छह-के-छह व्यक्ति श्मशान-भूमि में मार डाले गये..."

सुग्रीव को लगा कि उनकी शिराओ में रक्त ठडा होता जा रहा है। उनके मुख से स्वर नही फूटा—न विषाद का, न क्रोध का, न आश्चर्य का ...वे देखते-के-देखते रह गये। बड़ी देर के पश्चात उन्होंने पूछा, "आर्य मलयवन का अपराध?"

"आपके साथ सहयोग।" हनुमान बोले।

"तुमने यह सब कहा सुना, हनुमान? क्या अत्याचार के इन समाचारों को छिपाने का प्रयत्न शासन द्वारा नहीं किया जा रहा? इससे तो शासन

का अपयश फैलेगा।"

"छिपाने का प्रयत्न !" हनुमान की वितृष्णा मुखर हो आयी, "इन समाचारो को अधिकाधिक प्रचारित किया जा रहा है, ताकि प्रजा मे आतक फैले। लोग भय खाएं, अपना मुह सी लें और चेहरे छिपा लें। विरोध की बात कोई सोच भी न पाये।"

"दमन किया जायेगा तो विस्फोट होगा। जनता उठकर खड़ी हो जायेगी।" सुग्रीव आवेश मे बोले, "वाली का शासन पलट दिया जाएगा।"

"हमें रुककर उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।" नील स्थिर स्वर मे बोले, "अव बतायें, युवराज ! क्या अव भी आप किष्किधा जाना चाहते हैं ?"

सुग्रीव ने कोई उत्तर नही दिया। वे क्षितिज को घूरते रहे।

अन्य लोग सोने चले गये तो सुग्रीव भी लेट गये। शरीर और मन थकावट से इतने चूर हो चुके थे कि नीद भी नही आ रही थी। सुग्रीव ने बड़ी विवश और करुण दृष्टि से आकाश को देखा। क्या सारी रात वे तारे ही गिनते रहेगे ? मन और शरीर का इतना थक जाना कि व्यक्ति नीद छोड़, मृत्यु को भी गले लगाने को तैयार वैठा हो; और ऐसे ही समय मे नीद पास भी न फटके, तो क्या करे कोई। नीद आ जाती तो शायद कुछ देर के लिए वे अपनी चिंताओ को भूल सकते। सोकर उठते, तो शरीर और मन मे कुछ स्फूर्ति होती। वे कुछ सोच सकते, कुछ करने का उत्साह जुटा पाते.. किंतु, कुछ थकान अधिक होने के कारण और कुछ इस फूस-पत्तों की शैया की चुभन के कारण नीद एकदम नही आ रही थी। आखो में जलन वढती जा रही थी और मस्तिष्क की शिराएं टूटने-टूटने को हो गई थी। क्या करें सुग्रीव ?...जाने रुमा की क्या स्थिति होगी।

...सुग्रीव जानते हैं कि रुमा के लिए वाली का व्यवहार कितना पीड़ाजनक होगा। रुमा को वाली कभी तनिक भी नही रुचा और न वाली ने ही कभी रुमा को पसद किया। और अव वाली, सुग्रीव का प्रतिशोध, रुमा के स्त्रीत्व से लेगा। रुमा का शरीर पीड़ित होगा, मन अपमानित होगा... कैसे सहेगी रुमा ?...क्या सोचती होगी अपने पति के विषय मे ? जब-जब

वाली उसके शरीर का स्पर्श करता होगा, रुमा का रोम-रोम सुग्रीव को कोसता होगा। सुग्रीव यदि आत्मसमर्पण कर दें, तो क्या वाली रुमा को छोड़ देगा...नही ! शायद तव भी नही। तो क्या करें सुग्रीव ? कैसे सहें यह सारा अपमान ?

सुग्रीव के मन मे आया कि अभी उठें और किसी ऊची चोटी से नीचे खड्ड में छलांग लगाकर सब कुछ समाप्त कर दे...किंतु दूसरे ही क्षण ध्यान आया—वाली यह सब प्रतिशोध की भावना से कर रहा है। सुग्रीव ने वाली का कुछ नहीं बिगाड़ा और वाली प्रतिशोध ले रहा है। तो क्या इतने आहत और अपमानित होकर सुग्रीव प्रतिशोध भी नही लेंगे?...आत्महत्या ...स्वय को समाप्त कर वाली को पूर्ण स्वतत्रता दे देंगे कि वह रुमा को जीवनभर अपमानित करता रहे; सुग्रीव के बंधुओं और सहयोगियो को चुन-चुनकर उनकी हत्याए करता जाए और उनके परिवारों को नष्ट कर दे?...

सुग्रीव के मन मे विरोध की भावना जागी। वे वाली को रोक न सकें, तो भी उसके साथ सहयोग तो नही करेंगे ..तो यह आत्महत्या क्या है? वाली उनकी हत्या करना चाहता था, किंतु कर नही सका। अब वे स्वय आत्महत्या कर उसकी मनोकामना पूरी करेंगे? .नही ! सुग्रीव को जीवित रहना होगा। कितनी भी पीड़ा क्यों न सहनी पड़े, उन्हें न्याय-पक्ष के समर्थन के लिए जीवित रहना होगा और यदि अन्याय का प्रतिकार न भी कर सकें, तो उसके मार्ग में बाधा तो देनी ही होगी। किस बात से वह इतने निराश हो गये कि आत्महत्या की बात सोच रहे हैं—इसलिए कि उन्हें प्रासाद छोड़कर वन मे आना पड़ा है और वहा फूस-पत्तों की शैया पर सोना पड़ रहा है। धातुओं के सुंदर बर्तनों मे स्वादिष्ट भोजन के स्थान पर वन के कंद-मूल-फल तथा पत्थरों के बनाये चूल्हे में सुलगायी आग पर बना अधपका भोजन खाना पड़ा है। यहा शौच के लिए सुविधाजनक स्थान नहीं है...या इसलिए कि उनकी पत्नी का हरण कर लिया गया है तथा रुमा शारीरिक तथा मानसिक रूप में पीड़ित हो रही होगी...या इसलिए कि वे यहा असुरक्षित है और उन्हें प्राणों का भय सताता रहता है...किंतु यह सब तो होना ही है। न्याय के मार्ग में कठिनाइया तो आयेंगी ही। न्याय का

मार्ग सरल और सुखद होता, तो संसार में न्याय का पक्ष लेने वालों की सख्या इतनी कम क्यों होती? सुग्रीव ने यह मार्ग चुना है तो उसका शुल्क भी तो चुकाना ही होगा।

उन्हें लगा, अब उनका मन उतना थका हुआ नहीं है...शरीर भी कुछ हल्का हो गया है। अब कदाचित नींद आ जाए।

प्रात सुग्रीव को पहली चिंता व्यवस्था की हुई। अब एक नया जीवन आरंभ करना था। वह जीवन अस्थायी भी हो सकता था और स्थायी भी। कौन कह सकता था कि वाली से कोई समझौता होगा अथवा सुग्रीव को वाली के हाथों मरना होगा...जो कुछ भी हो, एक अस्थायी व्यवस्था तो स्थापित करनी ही होगी—रहने की, भोजन की, सुरक्षा की और किष्किंधा के साथ संपर्क बनाये रखने के लिए संचार-व्यवस्था की।

आज किष्किंधा कोई नहीं गया था, यद्यपि सुग्रीव की बहुत इच्छा थी कि कोई-न-कोई व्यक्ति दिन में कम-से-कम एक बार किष्किंधा अवश्य जाए और दिनभर के समाचार ला दे। किंतु सुरक्षा की दृष्टि से बहुत अधिक आवागमन उचित नहीं था...हनुमान, नल या नील को बार-बार इस जोखिम में डालना और भी अनुचित था। हनुमान जैसा आधार भी छिन गया, तो सुग्रीव के लिए यह जीवन सर्वथा असह्य हो उठेगा।

हनुमान दिनभर सुग्रीव के आस-पास बने रहकर ही छोटी-मोटी व्यवस्थाओं में लगे रहे। नल और नील के साथ मिलकर उन्होंने ऋष्यमूक और मलय पर्वत जैसे शृंगों की भली प्रकार छानबीन कर कुछ सुविधाजनक गुफाएं खोजीं। कुछ गुफाएं सुरक्षा की दृष्टि से सुविधाजनक थीं और कुछ विश्राम की दृष्टि से। फिर उन्होंने कुछ ऐसे स्थान भी खोजे, जहां पेड़ों के झुरमुट में छिपकर समय भी बिताया जा सके और ऋष्यमूक की ओर से आने वाली विभिन्न पगडंडियों पर दृष्टि भी रखी जा सके...कुछ फलों के वृक्ष भी चुने और कुछ ईंधन के लिए सूखी लकड़ियां भी।

हनुमान काम में व्यस्त थे और [illegible]. दिनभर [illegible] उधेड़बुन में लगे रहे। कभी रुमा का ध्यान [illegible] [illegible]रिवार का। कभी अंगद के विषय में सोचते [illegible] [illegible] को

तनिक भी संदेह हो गया कि उनके सुरक्षित बच निकलने में अंगद का हाथ है, तो अंगद के साथ उसका क्या व्यवहार होगा?...क्या वाली को कुछ समझाया जा सकता है या सदा के लिए उसकी मति ऐसी ही रहेगी? यदि वाली की मति न बदली, यदि उसके साथ समझौता न हो सका, तो सुग्रीव का भावी जीवन कैसा होगा?...और यदि कोई समझौता हो गया, तो वह क्या होगा? रुमा का अपहरण, सुग्रीव की हत्या का प्रयत्न, सुग्रीव के सहयोगियों की हत्याएं...कैसा समझौता होगा वाली से...सुग्रीव किसी निष्कर्ष पर पहुंच नहीं पा रहे थे...

संध्या के समय अपने कामों से अवकाश पा, हनुमान उनके पास आकर बैठे तो सुग्रीव अपने भीतर-ही-भीतर टक्करें मारते हुए प्रश्नों से कुछ उबरे। अन्तर्मुखी दृष्टि से बाहर भी देखा—"कैसे हो, हनुमान! दिन भर बहुत काम किया?"

"यह तो कोई ऐसा काम नहीं, युवराज।" हनुमान हंसे, "यह तो कुछ ऐसा हुआ कि खाली समय पाकर कोई वयस्क भी बच्चों के खेल में लग जाए।"

तभी सुग्रीव की आशंकित दृष्टि, नीचे, दूर तक फैले हुए जंगल में एक पगडंडी पर हिलते हुए एक बिंदु पर पड़ी।

हनुमान ने अपनी बात बीच में ही छोड़ दी। उन्होंने सुग्रीव की दृष्टि का अनुसरण किया। सचमुच उस पगडंडी पर चलता हुआ कोई ऋष्यमूक की ओर आ रहा था। उसकी चाल इतनी तेज, सधी हुई और दृढ़ थी, जैसे वह अपना मार्ग भी जानता हो और गंतव्य भी।

"कौन हो सकता है?" सुग्रीव अपने खड्ग पर हाथ रखे हुए, अपने-आपसे पूछ रहे थे।

"चिंतित न हों, युवराज!" नल और नील भी अब उनके पास आ चुके थे, "वह कोई भी हो, अकेला है। सम्राट स्वयं अकेले भी आएं, तो भय हो सकता है; अन्य किसी अकेले व्यक्ति से हमें भय नहीं है। और वह व्यक्ति सम्राट नहीं है।"

"वैसे भी यह शत्रु पक्ष का व्यक्ति नहीं हो सकता। हमारी टोह में

आया शत्रु हो तो एक तो उसको निश्चित मार्ग मालूम नही हो सकता कि इतने निर्द्वन्द्व भाव से इसी ओर बढ़ता चला आये और दूसरे वह देखता-भालता निरीक्षण करता हुआ आयेगा—इतनी सधी हुई चाल से सीधा यहां तक नही आ पहुंचेगा..."

"तुम ठीक कहते हो हनुमान !" सुग्रीव बोले; किंतु उनके चेहरे का कसाव अभी तक वैसा ही था और उनकी आखें अभी भी उसी बिंदु पर लगी हुई थीं।

वह व्यक्ति वेगपूर्वक बढ़ता ही आया और दृष्टि-सीमा में आते ही तत्काल पहचाना गया।

"यह तो तार है।" सुग्रीव बोले, "यह इस समय यहा कैसे चला आया ? रात को यह किष्किंधा नही लौट सकेगा।"

तार ने निकट आकर अभिवादन किया, "युवराज ! मैं भी आपकी शरण मे आ गया हू।"

"तुम्हे लौटना नही है ?" सुग्रीव ने आश्चर्य से पूछा।

"लौटना क्या, युवराज !" तार का स्वर उदास था, "बाली को जैसे ही पता चला कि आपके राज्याभिषेक का प्रस्ताव मैंने किया था, उसने मुझे बंदी करने का आदेश दे दिया; और बंदी होने का अर्थ आप जानते ही हैं।"

"तुम अगद से मिले ?"

"उसी के निर्देश पर आपके पास चला आया हू। उसने कहा है, जब तक परिस्थितियां नही बदलती, तब तक मै आपका साथ कभी न छोड़ूं।"

"और परिवार ?"

"परिवार !" तार की पुतलिया जड़ हो गयी, "पत्नी और बच्चे कारागार मे है, और घर अग्निसात हो चुका है...पिता कदाचित् अपने प्रासाद मे सुरक्षित है.."

सब स्तब्ध रह गये। किसी के मुख से कोई शब्द नही निकला।

मौन लबा हो गया तो सुग्रीव ही बोले, "नगर का क्या समाचार है ?"

"नगर !" तार के स्वर मे व्यथा के साथ-साथ उपहास का मिश्रण था, "नगर को सुदर बनाया जा रहा है।"

"सुंदर ! क्या अर्थ है तुम्हारा ?" हनुमान ने पूछा ।

"सुंदर बनाने का अर्थ सुंदर बनाना ही होता है, हनुमान !" तार अपने उपहासपूर्ण स्वर में बोला, "युवराज ने अपने शासन-काल में, नगर में स्थान-स्थान पर निर्धनों के लिए आवास बनवाकर, किष्किंधा का सौंदर्य नष्ट कर दिया था । वाली उन सारे आवासों को गिराकर, निर्धन श्रमिकों को नगर से खदेड़ रहा है । उन आवासों को गिराकर वहां प्रासाद बनाये जायेंगे, जिनमें धनाढ्य लोग रहेंगे । धनाढ्य सुंदरियां जगमगाते वस्त्राभूषण पहनकर बाजारों में निकलेंगी, तो किष्किंधा सचमुच सुंदर नगर हो जायेगा ।"

"उन लोगों को घरों से निकाल दिया गया ?" सुग्रीव ने पूछा, "यह कैसे संभव है ?"

"घरों से निकाल ही नहीं दिया गया," तार के स्वर का उपहास पीड़ा में बदल गया, "उनके उन लघु भवनों को गिराकर सपाट कर दिया गया ।"

"पर क्यों ?"

"क्योंकि उनके लिए वे आवास सुग्रीव ने बनवाये थे और वे लोग सुग्रीव को अपना समझते हैं । सुग्रीव के साथियों को दंड नहीं मिलना चाहिए क्या ?" तार का मुख क्रोध से विकृत हो रहा था ।

"वे लोग कहां जायेंगे ?"

"कहीं भी जाएं ।" तार बोला, "वाली कितना दयालु है, आप क्या जानें । वाली ने कहा है कि वे लोग किष्किंधा की सीमा से बाहर वनों को साफ़ कर, जितना स्थान चाहें, घेर लें ।"

"सचमुच बहुत दयालु है वाली ।" हनुमान बोले, "और उनकी आजीविका ?"

"वानर जाति को आजीविका की क्या आवश्यकता ?" तार फिर हंसा, "वानर हैं, वनों में जाएं । फल तोड़ें और खायें । वानर नाम रखा है तो शाखामृगों के समान वृक्षों पर टंगे रहें । क्या आवश्यकता है उन्हें भवनों और नगरों की !"

सुग्रीव को विश्वास नहीं हो रहा था, "पर यह सब कैसे हो सकता है?

उनके भवन किसने तोड़े ?"

"क्यों ? सैनिकों ने !" तार ने कहा।

"किंतु सैनिक इतने क्रूर कैसे हो सकते हैं ?" सुग्रीव ने तर्क किया, "वे निर्धन निरुपाय लोगों को, स्त्रियों और बच्चों के साथ, उनके घरों से निकाल, खुले आकाश के नीचे कैसे फेंक सकते हैं ? आखिर वे भी मनुष्य हैं. ."

"युवराज ! आप इस कला को नहीं जानते।" तार बोला, "बाली जानता है कि सैनिकों को मनुष्य से पशु कैसे बनाया जा सकता है। उसने उनका वेतन बढ़ा दिया है। उन्हें समझा दिया है कि सैनिकों का धर्म अनुशासन में रहना है। अनुशासन तोड़ने वाले को कठोर दंड दिये जाने की घोषणा की गयी है।"

"यहां तक।"

"नहीं, उससे भी आगे।" तार बोला, "उन्हें यह भी समझा दिया गया है कि वीर सैनिक उच्च कोटि के प्राणी हैं। वे महान हैं, सर्वशक्तिशाली हैं। निर्धन श्रमिक तो कीट-पतंग हैं। उनके साथ मानवतापूर्ण व्यवहार अनावश्यक है। वे मानवीय तर्क नहीं समझ सकते। वे पशु हैं; अतः उनके साथ पशुवत् व्यवहार किया जाना चाहिए।"

"जिन लोगों के घर तोड़े गये, उन्होंने कुछ नहीं कहा ? उन्होंने सैनिकों का विरोध नहीं किया ?" नल ने पूछा, "क्या वानर जाति ऐसी निष्प्राण हो गयी है कि कोई उनके घरों को तोड़ता रहे, उनकी पत्नियों और बच्चों को घसीट-घसीटकर पथ पर फेंकता रहे और वे शांत बैठे रहें !"

"बाली प्रजा को विद्रोह करने के लिए बाध्य कर रहा है।" सुग्रीव बोले, "इस प्रकार दमन हुआ तो प्रजा शांत नहीं बैठेगी। बाली कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, प्रजा उससे जा टकरायेगी, उसके प्रासादों को जलाकर क्षार कर देगी।"

तार हंसा, "मैं भी यही समझता था; किंतु जिस निर्वीर्य जनता को मैंने देखा है, वह विद्रोह नहीं कर सकती, प्रतिवाद नहीं कर सकती। वह केवल पिट सकती है और क्षमा मांग सकती है।"

"तुम्हारा मन इस समय स्थिर नहीं है, तार !" हनुमान गंभीर स्वर

में बोले, "तुम्हारी पारिवारिक विपत्ति ने कदाचित् तुम्हारे चित्त को चंचल कर दिया है। जनता निर्वीर्य नहीं है। मेरा विचार है कि जो कुछ हुआ है, वह इतना आकस्मिक है कि उसके लिए रचमात्र भी प्रस्तुत न होने के कारण जनता हतप्रभ रह गयी है। हम लोग स्वय, जो राजनीति के केन्द्र मे थे, इन घटनाओं का पूर्वाभास भी न पा सके, तो सामान्य जनता कैसे सभली रह सकती है। उसे तो ऐसा धक्का लगा है, जैसे किसी ने अकस्मात् बिना किसी चेतावनी के, पीछे से ठेल दिया हो और वह औंधे मुंह, भूमि पर जा गिरी हो। उसके नाक-मुह, हथेलिया और घुटने छिल गये हों... आप उससे कैसे अपेक्षा कर सकते हैं कि ऐसी स्थिति मे इतनी जल्दी वह एक संगठित शासन का विरोध करने के लिए उठ खडी होगी?"

हनुमान का मुख आवेश से तमतमा आया था।

"पर हम इतने असावधान ही क्यों थे?" तार अपने उसी आक्रोशपूर्ण स्वर में बोला, "जनता ऐसी स्थिति में क्यो खड़ी थी कि उसे कोई पीछे से धक्का मार सके? राजनीति का आधार कहीं विश्वास भी हुआ है क्या? सच्चा राजनीतिज्ञ अपने निकट के व्यक्ति को भी सदेह की दृष्टि से देखा करता है।"

"ठीक कहते हो, तार!" इस बार सुग्रीव बोले, "तुमने राजनीति के सिद्धात कदाचित ज्यादा समझदारी से पढ़े हैं। तुम जो कह रहे हो, कम-से-कम भविष्य में उसका ध्यान रखूगा। यद्यपि मैं यह नहीं मानता कि राजनीतिज्ञ को सदा अविश्वास ही करना चाहिए, किंतु यह मानता हूं कि उसे सावधान अवश्य रहना चाहिए।"

"एक ही बात है।" तार ने बात बीच मे ही काट दी।

"यदि तुम्हारा यही तात्पर्य था, तो ठीक है," सुग्रीव बोले, "पर जो बात मैं कहना चाह रहा हूं, वह और है। दो रातें और एक दिन मैं भी बहुत तड़पा हूं। आक्रोश मे जलता-भुनता रहा हूं। सच कहूं तो अनेक लोगों पर क्रुद्ध भी होता रहा हूं...मेरे मन में कहीं यह बड़ी दृढबद्ध धारणा थी कि वाली अलोकप्रिय शासक था और मैं बहुत लोकप्रिय हूं। इसके साथ ही यह विश्वास भी जुड़ा था कि यदि कोई मेरा अनिष्ट करने का प्रयत्न करेगा तो किष्किंधा की साधारण जनता ही नहीं, समस्त वानर-यूथ मेरे

पक्ष में उठकर खड़े हो जाएंगे। विद्रोह होगा और मेरे शत्रु को भागने के लिए दिशा भी नहीं सूझेगी किंतु..." सुग्रीव का स्वर धीमा हो गया, "हम देख रहे हैं कि ऐसा कुछ नहीं हुआ। मेरी हत्या का प्रयत्न हुआ, रुमा का अपहरण हुआ, जाने वह किस अवस्था में होगी..." सुग्रीव का स्वर कुछ कांपा और फिर जैसे मथ गया, "किंतु किष्किंधा में किसी के कानों पर जूं भी नहीं रेंगी। मेरे अपने मंत्री और सेनापति—कुछ बंदी हो गए, कुछ छिप गए, कुछ ने कोई और मार्ग ढूंढ लिया होगा...क्या अर्थ है इसका? क्या इसके लिए मैं दोषी हूं? क्या मेरे साथी विश्वासयोग्य नहीं थे? क्या हमारी जनता कृतघ्न अथवा कायर है?.." वे रुके। बारी-बारी उन्होंने सबके चेहरों को देखा और बोले, "मेरा विचार है, इन प्रश्नों का उत्तर जल्दी में नहीं दिया जा सकता। इस विषय में खुला, निष्पक्ष चिंतन अपेक्षित है। बहुत सोचना होगा...सिद्धांतों का व्यावहारिक तथ्यों से मिलान करना होगा। जिन सिद्धांतों को व्यवहार झुठला दे, उन्हें छोड़ देना होगा।"

सुग्रीव चुप हो गए। वार्तालाप ऐसे बिंदु पर टूटा था कि आगे कोई निश्चित मार्ग न होकर, खुला मैदान था। सब ही जैसे पग उठाने से पहले दिशा निहार रहे थे कि किधर चलना उचित होगा...।

"मेरा विचार है कि पहले थोड़ा भोजन कर लें। फिर आगे की बातचीत हो सकती है।" हनुमान उठ खड़े हुए।

शेष लोगों को भी जैसे सास लेने का अवसर मिला। सब अपने-अपने ढग से मन-ही-मन सोचते हुए चुप रहे। हनुमान ने भोजन की व्यवस्था करने मे अधिक विलब नही किया। भोजन में कुछ फल थे और थोड़ा-थोड़ा चिऊड़ा। जाने उसका प्रबध हनुमान ने कब किया था।

हनुमान भी आकर बैठ गए, तो नील ने फिर से बात आरंभ की, जैसे वे सबके एकत्रित होने की प्रतीक्षा कर रहे हों, "युवराज! आपने जो कुछ कहा, उस विषय में कुछ-न-कुछ सोचा भी होगा। औरो के विषय मे न सही, अपने विषय मे तो सोचा ही होगा। आप इतने असावधान कैसे रहे? सम्राट् से आपका मतैक्य तो कभी भी नही रहा।"

सुग्रीव मुसकराए। निर्वासन के पश्चात के पिछले दो दिनो मे वे पहली

बार इस प्रकार विषाद-रहित होकर मुसकराए थे, "तुमने ठीक कहा, नील। मैं पहले अपने ही विषय मे सोच रहा हूं। मुझे लगता है कि मैं घटनाओ के आवेश-जाल मे से कुछ-कुछ निकल आया हू और तटस्थ होकर सोचने लगा हूं।"

सब लोग पूरी तन्मयता से सुग्रीव की बात सुन रहे थे।

"वाली से हमारा मतैक्य तो नही ही रहा, समय-समय पर खुला मतभेद भी होता रहा है।" सुग्रीव जैसे अपने-आप से बाते कर रहे थे, "जब तक वाली सम्राट था, मैं उसे अपनी राय देता रहा; किंतु उसका विरोध कर उसे हानि पहुंचाने की बात मैंने कभी नही सोची। अंततः हम भाई हैं, शत्रु नही। राजनीतिज्ञ होते हुए भी, हमारे व्यवहार का मूल आधार भ्रातृत्व था। मैंने कभी नही सोचा कि हम एक-दूसरे के शत्रु हैं। एक ही कुल के सदस्य, एक ही जाति, एक ही गोत्र—फिर शत्रुता कैसी? वह विरोध भी जैसे आपसी विरोध ही था। उसमे क्रूरता और कठोरता के लिए स्थान नही था..."

"किंतु अब?" हनुमान पूछ रहे थे।

"अब," सुग्रीव मुसकराए, "वाली ने हमें एक नया पाठ पढ़ाया है। उसने हमारा मोह भग कर दिया है। आज एक सत्य हमारी आखो के सम्मुख सूर्य के समान जाज्वल्यमान है। राजनीति बच्चों का खेल नही है, जिसमे परस्पर-विरोधी पक्षों में खेलकर हम मित्र रह सकें। उसने हमें सिखाया है कि राजनीति का खेल बड़ा हृदयहीन है। शासन की कठोरता मे न आपसीपन है, न भ्रातृभाव, वह तो क्रूर शस्त्र के समान चलता है और अपने मार्ग में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अंधे यत्र के समान पीस डालता है।" सहसा सुग्रीव ने रुककर तार की ओर देखा, "अपनी चिंताओ में, मैं यह पूछना ही भूल गया—अंगद की क्या स्थिति है?"

"राजकुमार!" तार हसा, "राजकुमार ने कहा था कि वे ठीक हैं; किंतु..."

"किंतु क्या..."

"वाली ने इतने कम समय मे ही ऐसा आतक फैलाया है कि मंत्री हो अथवा राजकुमार—कोई यह कहने का भी साहस नही कर सकता कि

है। फिर अंगद का भेजा हुआ तार निरंतर उनके साथ है। कहीं ऐसा तो नहीं कि अंगद पर इतना विश्वास कर वे फिर धोखा खा जाएं—पर अंगद पर वे अविश्वास कैसे करें? किंतु, यदि वाली सचमुच ही यहां नहीं आ सकता, तो अंगद पर संदेह करने का सुग्रीव के पास कोई कारण नहीं है।.. क्या सत्य ही अंगद पर संदेह करने का कोई कारण नहीं हो सका?...

फिर भी सुग्रीव को सावधान तो रहना ही होगा। अब सुग्रीव किसी भी व्यक्ति पर अंधविश्वास नहीं कर सकते, चाहे वह कोई भी क्यों न हो। राजनीति में अंधविश्वास अपराध है, अंधविश्वास ही क्यों, विश्वास भी!

हनुमान, नल, नील अथवा तार में से किसी एक का किष्किंधा के भीतर अथवा नगरद्वार तक हो आना, प्रायः नित्यक्रम हो गया था। संध्या तक सुग्रीव को अनेक समाचार मिल जाया करते थे। वाली का शासन अद्भुत गति से काम कर रहा था। ऐसी गति से न पहले घटनाएं घटी थीं, न समाचार प्रादुर्भूत हुए थे। उन समाचारों को सुनकर, सुग्रीव प्रायः उनका विश्लेषण किया करते थे और अनेक निष्कर्षों को अपनी स्मृति में गहरे उतार लिया करते थे।

अपने भीतर सुग्रीव एक विचित्र अंतर देख रहे थे। क्रमश. उनकी भावुकता विलीन होती जा रही थी और उसके स्थान पर हठ बढ़ता जा रहा था। आरंभ में उनका मन भीतर-ही-भीतर कहीं यह मानने को तैयार ही नहीं था कि वाली सचमुच वही करना चाहता था, जो वह कर बैठा है। उनका विचार था कि वाली बड़ी थकावट और हताशा में किष्किंधा लौटा था और वहां सुग्रीव को सिंहासन पर बैठे देखकर बौखला उठा था। कुछ दिनों में जब उसे विश्वास हो जाएगा कि शासन उसके हाथ से छिन नहीं गया, और कोई उसका शासन छीनना भी नहीं चाहता, तो उसकी बौखलाहट कम हो जाएगी। तब उसकी क्रूरता भी समाप्त हो जाएगी। संभव है कि तब वह अपने कारागार के द्वार खोल दे और लोगों को स्वतंत्रता से जीने दे। सुग्रीव के प्रति किए गए अपने अपराधों को पहचान कर क्षमा मांग ले और उससे कोई समझौता हो जाए...किंतु समझौते की बात मन में आते ही, उनकी कल्पना में रुमा उठ खड़ी होती थी—क्या

किसी व्यक्ति के साथ अन्याय अथवा अत्याचार हुआ है।" तार गंभीर स्वर में बोलता चला गया, "इस समय वाली से मत-वैभिन्न्य का अर्थ है, वाली का विरोध; और वाली का विरोध, उसके विधान के अनुसार अपराध है। यदि राजकुमार किसी का पक्ष लेकर, उसके लिए क्षमा-याचना करें तो उसका अर्थ यह नहीं होगा कि वे अपने प्रभाव से किसी को बचाना चाहते है, वरन उसका अर्थ होगा कि वे अपराधी का पक्ष लेकर सम्राट का विरोध कर रहे हैं। इससे वे किसी अन्य का लाभ नहीं कर पाएंगे, अपनी क्षति अवश्य कर लेंगे। अतः वे चुप हैं। अद्‌भुत स्थिति है, युवराज !" तार ने विकट मुद्रा बनायी, "ऊंचे से-ऊंचा अधिकारी सहमा हुआ। प्रत्येक व्यक्ति आशंका से पीड़ित। निकट-से-निकट संबंधी पर भी संदेह ! ऐसी स्थिति तो पहले कभी नहीं हुई।"

"सचमुच। हमारे जीवन में यह अद्‌भुत समय आया है।" नल बोले।

"एक जिज्ञासा और है, तार।" सहसा सुग्रीव ने कहा, "क्या अंगद ने कुछ अन्य लोगों को भी हमारा पता दिया है, या यह गोपनीय है ?"

"मेरी सूचनाओं के अनुसार तो यह सर्वथा गोपनीय है !" तार धीरे से बोला, "राजकुमार ने यह भी कहा था कि किष्किंधा से छिपकर निकलने वाले लोग, एक साथ, एक ही स्थान पर न रहें, तो अधिक अच्छा है। एक ही स्थान पर रहने से गोपनीयता भी नष्ट होती है; और एक ही साथ शत्रु के हाथों में पड़ जाने की संभावना भी बढ़ जाती है।"

"ठीक कहा है युवराज ने।" सुग्रीव कुछ सोचते हुए, जैसे अपने आप से बोले।

रात को सोते समय भी सुग्रीव के मन में सन्ध्या की वातचीत घुमड़ती रही। ठीक ही तो कहा तार ने—राजनीतिज्ञ को क्या अधिकार है कि वह असावधान रहे। इतनी बड़ी बात पहले क्यों नहीं आयी सुग्रीव के मन में ? पहले सुग्रीव ने वाली से धोखा खाया, क्योंकि सुग्रीव को अपने भाई पर कोई संदेह नहीं था। अब सुग्रीव अंगद पर अविश्वास नहीं करते, क्योंकि वह उनका भतीजा है और उनसे राजनीतिक मतैक्य रखता है। वे उसी के निर्देशानुसार ऋष्यमूक पर डेरा डाले है। अंगद उनका ठिकाना जानता

है। फिर अंगद का भेजा हुआ तार निरंतर उनके साथ है। कहीं ऐसा तो नहीं कि अंगद पर इतना विश्वास कर वे फिर धोखा खा जाए—पर अंगद पर वे अविश्वास कैसे करें? किंतु, यदि वाली सचमुच ही यहां नहीं आ सकता, तो अंगद पर संदेह करने का सुग्रीव के पास कोई कारण नहीं है।... क्या सत्य ही अंगद पर संदेह करने का कोई कारण नहीं हो सका?

फिर भी सुग्रीव को सावधान तो रहना ही होगा। अब सुग्रीव किसी भी व्यक्ति पर अंधविश्वास नहीं कर सकते, चाहे वह कोई भी क्यों न हो। राजनीति में अंधविश्वास अपराध है, अंधविश्वास ही क्यों, विश्वास भी!

हनुमान, नल, नील अथवा तार में से किसी एक का किष्किंधा के भीतर अथवा नगरद्वार तक हो आना, प्रायः नित्यक्रम हो गया था। संध्या तक सुग्रीव को अनेक समाचार मिल जाया करते थे। वाली का शासन अद्भुत गति से काम कर रहा था। ऐसी गति से न पहले घटनाएं घटी थीं, न समाचार प्रादुर्भूत हुए थे। उन समाचारों को सुनकर, सुग्रीव प्रायः उनका विश्लेषण किया करते थे और अनेक निष्कर्षों को अपनी स्मृति में गहरे उतार लिया करते थे।

अपने भीतर सुग्रीव एक विचित्र अंतर देख रहे थे। क्रमशः उनकी भावुकता विलीन होती जा रही थी और उसके स्थान पर हठ बढ़ता जा रहा था। आरंभ में उनका मन भीतर-ही-भीतर कहीं यह मानने को तैयार ही नहीं था कि वाली सचमुच वही करना चाहता था, जो वह कर बैठा है। उनका विचार था कि वाली बड़ी थकावट और हताशा में किष्किंधा लौटा

कुछ

न नहीं

गया, और कोई उसका शासन छीनना भी नहीं चाहता, तो उसकी बौखलाहट कम हो जाएगी। तब उसकी क्रूरता भी समाप्त हो जाएगी। संभव है कि तब वह अपने कारागार के द्वार खोल दे और लोगों को स्वतंत्रता से जीने दे। सुग्रीव के प्रति किए गए अपने अपराधों को पहचान कर क्षमा मांग ले और उससे कोई समझौता हो जाए...किंतु समझौते की बात मन में आते ही, उनकी कल्पना में रुमा उठ खड़ी होती थी

और बात है, किंतु निर्बल की सहिष्णुता की भी सीमा होती है। उसे लड मरने के लिए तत्पर करने के लिए यह विश्वास दिलाना आवश्यक होता है कि मरना तो उसे है ही, विकल्प उसका अपना है—लडकर मरे या [illegible] मस्त वानर [illegible] ज जागा है, समस्त वानर जाति में भी वह कभी-न-कभी जागेगा। जैसे-जैसे दमन चढ़ेगा, वैसे-वैसे उसका विरोध बढेगा। किसी जाति को संघर्ष के लिए तैयार करने के लिए दमन से अच्छा प्रशिक्षक और कौन हो सकता है?...

किंतु सध्या समय हनुमान जो समाचार लाए, उससे दिन भर में जमा-जमाया सुग्रीव का आत्मविश्वास हिल उठा।

"वाली ने किष्किंधा का शिक्षा-सस्थान बद कर दिया है।" हनुमान ने बताया, "और उसके लिए बनाया गया विशाल भवन, सामंतो के मनोरंजन के लिए, विनोदशाला में परिवर्तित कर दिया गया है। अब उसमें मदिरालय और वेश्यालय स्थापित किए जाएगे।"

आंखो में मूक पीड़ा लिये सुग्रीव, हनुमान की ओर देखते रहे। जब चुप नही रह सके तो पूछा, "शिक्षा संस्थान के अध्यापको ने कुछ नही कहा? आचार्य ने विरोध नही किया?"

"आचार्य ने आज सारी राजपरिषद के सम्मुख, सम्राट को विश्वास दिलाया है कि वे मन से सम्राट की प्रत्येक नीति के समर्थक है और उनमे अटूट निष्ठा रखते हैं।" हनुमान का स्वर कुछ ऊंचा हो गया, "उन्होंने सम्राट के पैर छूकर शपथ ली है कि वे अपने प्राण देकर भी उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करेंगे। साथ-ही-साथ उन्होने शिक्षक समुदाय की ओर से समस्त वानरो से निवेदन किया है कि वे प्रसन्न हो कि वे सुग्रीव के पापी शासन से मुक्त हो, वाली की सुदृढ़ तथा शक्तिशाली भुजाओं की छाया मे सुरक्षित हैं।"

"आचार्य ने सम्राट के पैर छुए?" आश्चर्य तथा पीड़ा से सुग्रीव का मुख खुला रह गया।

"हा, युवराज!" हनुमान का स्वर भी उदास हो गया, "आज तक मैंने सम्राटों को आचार्यों के चरण छूते देखा और सुना है; किंतु पता नही,

समझौता हो सकता था वाली से ? रुमा के अपहरण के पश्चात कैसा समझौता ?

अनेक समाचार आते थे, किंतु रुमा का कभी कोई समाचार नही आया। पता नहीं, वाली ने उसे अपने प्रासाद के किस अधकूप में डाल दिया था कि किसी को उसकी हवा तक नही लगती थी। अनेक बार अगद से सपर्क करने पर भी रुमा का कोई समाचार नही मिला।

सुग्रीव को लगता था, वे प्रतिदिन पहले से अधिक कठोर होते जा रहे हैं। भीतर से आग और ऊपर से पत्थर ! अब तक वाली को वे अयोग्य शासक मानते थे, किंतु अब वह अत्याचारी हो गया था। अयोग्य शासक की प्रजा उसकी शिकायत करती है—उसके सम्मुख अपनी मार्गें रखती है और उन्हें पूरा करवाने का प्रयत्न करती है; किंतु अत्याचारी शासक से प्रजा घृणा करती है। वह उसका विरोध करती है और अवसर मिलते ही उससे जा टकराती है। क्या वाली से भी टकराने का समय आ गया है ? तो प्रजा विद्रोह क्यो नही कर रही ? क्या अत्याचार सघन नही हुआ या वानर-प्रजा दमित जाति है, जो कभी भी शासक के विरुद्ध उठने का साहस नही जुटा पायेगी ?

सुग्रीव ने सदा अत्याचार और अन्याय का विरोध किया है; किंतु अब तक उन्होंने दूसरों पर हुए अत्याचार को सुना और देखा था। उसे उन्होंने मानसिक सहानुभूति से ग्रहण किया था। अनेक बार वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि वाली अपनी अयोग्यता के कारण, राक्षसों द्वारा वानरों के शोषण और उत्पीडन को न तो देख पाता है, न उसका प्रतिकार करने का प्रयत्न करता है। किंतु, जो कुछ अब घटित हुआ है, वह सुग्रीव के अपने साथ हुआ है। यह सुना-सुनाया समाचार नही है कि राक्षसों द्वारा किसी वानर-कन्या का हरण हो गया—रुमा का हरण किया है वाली ने... कितना भेद है दोनों मे ! कदाचित इसीलिए कुछ दिन मन-ही-मन रो-धो-कर सुग्रीव अब ताल ठोककर उठ खड़े हुए थे। वे वाली से प्रतिशोध की बात सोचने लगे थे...क्या इसी प्रकार वे लोग भी, जिनके अपने अथवा परिवारों के साथ वाली ने राक्षसी अत्याचार किया है—वाली से प्रतिशोध लेने को उठ खड़े नही होंगे ?...दुर्बल को सबल एक-आध चांटा मार दे तो

और बात है, किंतु निर्बल की सहिष्णुता की भी सीमा होती है। उसे लड़ मरने के लिए तत्पर करने के लिए यह विश्वास दिलाना आवश्यक होता है कि मरना तो उसे है ही, विकल्प उसका अपना है—लडकर मरे या बिना लडे मरे। और सुग्रीव को लगता था कि उन्हे तथा समस्त वानर जाति को वाली का कृतज्ञ होना चाहिए .सुग्रीव मे जो आत्मबल जागा है, समस्त वानर जाति मे भी वह कभी-न-कभी जागेगा। जैसे-जैसे दमन बढ़ेगा, वैसे-वैसे उसका विरोध बढ़ेगा। किसी जाति को सघर्ष के लिए तैयार करने के लिए दमन से अच्छा प्रशिक्षक और कौन हो सकता है?...

किंतु सध्या समय हनुमान जो समाचार लाए, उससे दिन भर में जमा-जमाया सुग्रीव का आत्मविश्वास हिल उठा।

"वाली ने किष्किंधा का शिक्षा-सस्थान बद कर दिया है।" हनुमान ने बताया, "और उसके लिए बनाया गया विशाल भवन, सामतों के मनोरंजन के लिए, विनोदशाला मे परिवर्तित कर दिया गया है। अब उसमें मदिरालय और वेश्यालय स्थापित किए जाएगे।"

आंखो मे मूक पीड़ा लिये सुग्रीव, हनुमान की ओर देखते रहे। जब चुप नही रह सके तो पूछा, "शिक्षा सस्थान के अध्यापकों ने कुछ नही कहा? आचार्य ने विरोध नही किया?"

"आचार्य ने आज सारी राजपरिषद के सम्मुख, सम्राट को विश्वास दिलाया है कि वे मन से सम्राट की प्रत्येक नीति के समर्थक है और उनमे अटूट निष्ठा रखते है।" हनुमान का स्वर कुछ ऊचा हो गया, "उन्होंने सम्राट के पैर छूकर शपथ ली है कि वे अपने प्राण देकर भी उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करेंगे। साथ-ही-साथ उन्होंने शिक्षक समुदाय की ओर से समस्त वानरों से निवेदन किया है कि वे प्रसन्न हो कि वे सुग्रीव के पापी शासन से मुक्त हो, वाली की सुदृढ़ तथा शक्तिशाली भुजाओं की छाया मे सुरक्षित हैं।"

"आचार्य ने सम्राट के पैर छुए?" आश्चर्य तथा पीड़ा से सुग्रीव का मुख खुला रह गया।

"हां, युवराज!" हनुमान का स्वर भी उदास हो गया, "आज तक मैंने सम्राटों को आचार्यों के चरण छूते देखा और सुना है; किंतु पता नहीं,

अब वे सम्राट नही रहे, या वैसे आचार्य नहीं रहे।"

सुग्रीव को लगा, उनके मन का आदर्श चरमराकर टूट गिरा है और उसके टुकडो से उनका मन स्थान-स्थान से छिल गया है। जगह-जगह से रक्तस्राव हो रहा है, और उस आदर्श की मूर्ति के टुकड़ों की चुभन से कितने ही स्थानों से विष जन्म ले रहा है। क्या आचार्य वह होता है जो अपने टुच्चे स्वार्थो के पीछे, न्याय-अन्याय को अनदेखा कर जाए, अत्याचार को कृपा का नाम दे और अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता की ओट में जन-सामान्य को भ्रमित करे...*क्या लाभ ऐसी विद्या और ऐसे ज्ञान का ! पुरानी, सड़ी* हुई सूचनाओ के तोते। चरित्र मे उदात्तता का एक कण नही। तनिक-सी असुविधा सहन नही कर सकते। तत्काल घुटनों पर गिरकर, अत्याचारियों के तलुवे चाटने लगे। *क्या करेंगे* ऐसे लोग किसी देश और जाति का नेतृत्व। सुख-सुविधाओं के कीड़े।

किंतु अगले कुछ ही दिनों मे सुग्रीव जान गए कि घुटने टेकने वाले, अकेले शिक्षा-संस्थान के आचार्य ही नही थे। एक-एक कर समस्त अध्यापकों और आचार्यों ने सम्राट के समर्थन की शपथ ली थी। कवि और कथाकार अपने तर्क-वितर्क, चिंतन-मनन, सिद्धात-आदर्श छोड़कर सम्राट की विरुदावलियां गाने लगे। प्रशसा करने में भी जैसे होड़ लगी हुई थी *कि कौन दूसरे से बढ़कर मूर्खता और अपमान की सीमा पार कर सकता* है। किसी को न मर्यादा का ध्यान था, न अपने दायित्व का। अंधी दौड़ थी, एक-दूसरे से आगे बढने की और सीमा कोई नही थी।

बुद्धिवादियो के पश्चात व्यापारियो की बारी आयी। प्रत्येक हाट की ओर से अलग-अलग अभिनंदन हो रहा था। धन एकत्रित कर सम्राट को भेंट किया जा रहा था। सम्राट के कंठ मे पडी एक-एक पुष्पमाला के लिए व्यापारी समुदाय स्वर्ण-मुद्राएं देने के लिए प्रस्तुत था। उनके जीवन की जैसे एकमात्र तृष्णा यही थी कि किसी प्रकार सम्राट उनकी गणना अपने चाटुकारों में कर लें।

सुग्रीव निरंतर सोच रहे थे। दिन-रात मन में कोई-न कोई प्रश्न *उलझा ही रहता था। कभी सोचते, जन-सामान्य भीरु और कोमल होता* है, लोग सम्राट का दबाव नही सह सके होंगे। अपने बचाव के लिए झूठा

प्रदर्शन कर रहे होंगे। उनसे रुष्ट होने की नहीं, उन पर दया करने की आवश्यकता है...जब तक वे निर्बल है, सम्राट के दमन-चक्र का सामना नहीं कर सकते, तब तक वे इसी प्रकार झूठ बोलेंगे...किंतु दूसरे ही क्षण सोचते, तो उन्हें लगता कि यह सारा वाली-समर्थन केवल भय के कारण नही था। स्वार्थी और अवसरवादी लोगो ने न केवल वाली के सम्मुख नाक रगड़-रगड़कर उसे विश्वास दिलाया था कि वे लोग उसके साथ है, वरन उसके सम्मुख सिद्ध कर दिया था कि वह आज तक के इतिहास का सर्वाधिक लोकप्रिय सम्राट है...सम्राट के मुख से शब्द निकलने भर की देर थी कि चाटुकार लोग औचित्यानौचित्य का विचार छोड, उसे पूरा करने के लिए जुट जाते थे। राजसभा मे उपस्थित होकर अधिक-से-अधिक साक्षियों के सम्मुख, वाली के पैरो पर अपना माथा रगड़ना, राज्य के प्रमुख जनों का पवित्र आचरण हो गया था...और जिस किसी ने इस प्रकार अपमानित होना अस्वीकार किया, उसके विषय में वाली के चाटुकार बार-बार सम्राट को स्मरण कराते रहते थे कि अमुक व्यक्ति ने अभी अपना माथा सम्राट के पैरों पर नही रगडा है। क्या वह सम्राट का विरोधी है ?.. और कुछ ही दिनों में सूचना मिल जाती कि उन लोगों का स्वाभिमान भी समारोहपूर्वक सम्राट की चरण-वंदना कर आया है...

सुग्रीव सुनते और चुप रह जाते। क्या कर सकते थे वे ? कोई भी व्यक्ति जिसका कभी किसी संदर्भ में सुग्रीव से वास्ता पड़ा था, अपना कर्तव्य समझकर, वाली की राजपरिषद में नाक रगड़ आता था। उसके पास अपने बचाव के लिए सुग्रीव की निंदा के सिवाय और कोई मार्ग ही नही था। सुग्रीव की अधिक-से-अधिक निंदा, वाली की अधिक से अधिक दया पाने का साधन थी...कहां सुग्रीव सोचते थे कि उनके अपने सहयोगी ही नही, सामान्य जनता भी उनका पक्ष लेकर, वाली के सैनिकों से जा टकराएगी और कहा उनके अत्यत निकट के मित्र और सहयोगी, घोपित रूप से वाली के चाटुकार बन, उनकी निंदा करने में अपना गौरव मानने लगे थे।

तो क्या जन-साधारण में उनका विश्वास झूठा था...वे समझते थे कि इस आकस्मिक धक्के से सभलते ही लोग चेतेंगे और वाली का विरोध करेंगे।

और यहा, जैसे-जैसे समय बीतता जाता था, न केवल लोगों के सिर वाली की सत्ता के सामने झुकते जाते थे, उनके स्वाभिमान भी बिछते जा रहे थे। शासन के अत्याचारों के समाचार तो अनेक आते थे, जनता के विरोध का एक भी समाचार कभी नहीं आया। लगता था जन-साधारण के मन की प्रत्येक आशा बुझती जा रही थी और उनके सिर अधकार की पूजा मे झुक गए थे.. इन्ही लोगो के सुख और स्वतंत्रता के लिए सुग्रीव और उनके साथियो ने इतने स्वप्न संजोए थे। इन्ही के लिए, उन्हे घर छोड़कर भागना पड़ा और इन्ही के लिए उनकी रुमा का अपहरण हुआ, और आज भी वह आततायी वाली की क्रूर भुजाओं में बंदी, तड़प रही है।

और अंत में उसी हताशा में से सुग्रीव को आशा की किरण दिखाई दी; वे रुष्ट क्यों है? और हताश भी क्यो हों?...सकट में ही तो मित्र और शत्रु, अच्छे और बुरे की पहचान होती है। उन्हे तो वाली का भी कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने ऐसा अवसर प्रस्तुत कर दिया, जिसने प्रत्येक व्यक्ति ने अपने-अपने चरित्र को स्पष्ट कर दिया है। वाली की क्रूरता का यह दबाव न पड़ता तो लोगों के चेहरो पर से ये मुखौटे कैसे उतरते?...ये मुखौटे न उतरते तो सुग्रीव उनके चरित्र की धातु कैसे पहचानते?

सहसा उनका ध्यान बाहर से आते हुए हनुमान और तार के वार्तालाप के स्वरों की ओर चला गया। वे लोग यदि कही गए हुए हों, तो प्रायः इस समय तक लौट आया करते हैं। लौटने के समय मे कोई नवीनता नही थी, किंतु उनके वार्तालाप मे उत्तेजना की कुछ भनक अवश्य थी, जिसका अर्थ था कि आजकल नित्यप्रति घटने वाली अद्भुत घटनाओं मे भी कुछ विचित्र घट गया था।

वे लोग आकर सीधे सुग्रीव की गुफा के सम्मुख ही रुके। सुग्रीव बाहर निकल आए।

"युवराज!" हनुमान बोले।

"क्या बात है, हनुमान?" सुग्रीव ने कुछ उत्सुकता से उन दोनों को देखा। वे दोनो चुपचाप खड़े थे, एक-दूसरे को देखते हुए, जैसे समझ न पा रहे हों कि बात कहा से आरभ की जाए। तभी सुग्रीव की दृष्टि हनुमान के हाथों मे पकड़ी एक पोटली पर पड़ी। एक अत्यत सुदर वस्त्र में कोई वस्तु

लपेटे वे दोनों हाथों में उसे पकड़े हुए थे।

"यह क्या है, हनुमान ?"

हनुमान घुटनों के बल बैठ गए और बड़े यत्न से वह वस्त्र उन्होंने भूमि पर फैला दिया।

सुग्रीव की आखें अचरज से फैल गयी। वस्त्र में लिपटे हुए आभूषण वस्त्र पर इधर-उधर फैल गए।

"यह क्या है ?" सुग्रीव ने पुनः पूछा।

"युवराज ! मतंग वन और किष्किंधा के भीतर भी हमारे कुछ सहयोगी अपने आस-पास होने वाली छोटी-से-छोटी घटना पर दृष्टि रखते हैं और अवसर मिलते ही हम तक सूचना पहुंचा देते हैं।"

"क्या ?" सुग्रीव को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, "लोग सूचना-संग्रह कर, वाली के विरुद्ध तुम्हारी सहायता करने का साहस करते हैं ?"

"हां, युवराज !"

"कौन लोग हैं वे ?"

"कई प्रकार के लोग है।" हनुमान बोले, "कुछ तो हमारे पुराने संगठनों के सदस्य है, कुछ वे लोग है, जो वाली के हाथों पीडित हुए है, जिनके बधु-बाधव या तो कारागार मे डाले गए हैं, या अंधकूपों में। और कुछ बहुत थोड़े-से वे लोग हैं जो सिद्धांततः अन्याय का विरोध करना अपना धर्म समझते है।"

"तो जन-सामान्य अभी निष्प्राण नहीं है।" सुग्रीव बुदबुदाए, "मैंने तो आशा सर्वथा छोड़ दी थी।"

"नहीं, युवराज ! हताश होने की कोई बात नहीं है।" तार के स्वर में उल्लास था, "लोगों से हमें क्रमशः अधिक सहायता मिलने लगी है। कुछ ही दिनों मे हम अच्छी तरह संगठित हो जायेंगे।"

सुग्रीव फिर अपने भीतर कहीं डूब गए...वे अपने मन में निराशा के जाल ही बुनते रहे और उनके साथियों ने संगठन भी बना डाले।

उन्होंने प्रश्नवाचक दृष्टि से हनुमान को देखा।

"युवराज ! आज पर्वत के नीचे वाले क्षेत्र के मतंग वन के चर ने यह

सूचना दी है कि उसने वहां से राक्षसों का एक रथ जाता देखा था। रथ बहुत वेग से जा रहा था। उसके आगे घोड़े या गधे की जाति के पशु जुते हुए थे, किंतु उनकी गति बहुत अधिक थी। उसे एक राक्षस हाक रहा था। उसके वस्त्र राजसी थे। शरीर से हृष्ट-पुष्ट लगता था। वर्ण का श्यामल था और उसकी वड़ी-वडी मूछें थी। रथ यद्यपि चारों ओर से वद था किन्तु वायु-वेग से गवाक्ष का आवरण हट जाने के कारण वह देख सका कि रथ में एक अत्यत गौर वर्ण की असाधारण सुदरी स्त्री बंधी हुई थी। वह स्त्री सहायता के लिए दो व्यक्तियों को वार-वार पुकार रही थी, जिनके नाम 'राम' और 'लक्ष्मण' हैं। ये वस्त्र और आभूषण उसी स्त्री ने चलते हुए रथ में से फेंके है. ."

सुग्रीव ने झुककर वस्त्र को देखा। वस्त्र बहुत सुदर था और कदाचित किसी वानरेतर जाति द्वारा बुना गया लगता था। आभूपण सोने के थे, किंतु उनमे एक भी आभूपण ऐसा नही था, जैसा साधारण स्त्रिया पहना करती है। निश्चित रूप से वह स्त्री वानर जाति की नही थी। किंतु कौन थी वह ? कौन था वह राक्षस ? वह राक्षस ही था क्या ? राक्षस ही रहा होगा, अन्यथा उसके पास रथ और रथ खीचने वाले पशु कहां से आते?... किंतु वह स्त्री कौन थी ? किसका अपहरण हुआ है ?..

"उस स्त्री के विपय में कुछ पता चला ?" सुग्रीव ने पूछा।

"नही ! अभी तक तो कुछ पता नही चला।" तार वोला, "किंतु राक्षस के विपय मे सभावना है कि वह रावण ही होगा, क्योकि सामान्य राक्षसो के पास ऐसे रथ नही है।"

"हा ! वह रावण ही होगा।" सुग्रीव वोले, "तभी तो वह पर-स्त्री का हरण करके भी सुरक्षित निकल गया और वाली के कान पर जू नही रेंगी...सुग्रीव द्वारा अलका का उसके पिता को लौटाया जाना वाली सहन नही कर सकता, किंतु रावण द्वारा कन्याओं का हरण और वानरों का वध भी सहन कर सकता है।"

सुग्रीव का मन वहुत उदास हो गया। वे चुपचाप लौटकर अपनी गुफा मे चले आए। थोड़ी देर खड़े-खडे दीवार को ताकते रहे और फिर लेट गए। वहुत प्रयत्न करने पर भी उनकी आखों के सामने से वह दृश्य नहीं

हट रहा था। बहुत प्रयत्न करने पर, एक-आध क्षण के लिए ध्यान किसी और दिशा में जाता भी तो फिर लौटकर उसी दृश्य पर टिक जाता। वह स्त्री रथ में बंधी हुई थी और बचाए जाने के लिए बार-बार राम और लक्ष्मण को पुकार रही थी...और वह क्रूर राक्षस रावण, अपना रथ दौड़ाता भागा जा रहा था...दूसरे ही क्षण उस स्त्री का चेहरा रुमा के चेहरे में बदल गया। रथ को हांकने वाले के स्थान पर बाली आ बैठा और रुमा निरंतर सुग्रीव को पुकार-पुकारकर रक्षा करने के लिए कहने लगी...

सुग्रीव की आंखों मे अश्रु आ गए। आज भी रुमा उस स्त्री के समान बाली के प्रासाद की दीवारों से सिर टकरा-टकराकर रोती होगी और हर क्षण, हर घड़ी सुग्रीव को पुकारती होगी।...पर क्या करें सुग्रीव? सुग्रीव अपने प्राणों के भय से यहां पर्वत की चोटी पर टंगे बैठे हैं...

रावण द्वारा अपहृत स्त्री अपना वस्त्र और आभूषण फेंक गयी थी कि किसी प्रकार उनके माध्यम से उसके पति को सूचना मिल जाए...यदि उसके पति को सूचना मिल भी गई तो वह क्या करेगा? है उसमें इतनी क्षमता कि रावण से जा टकराए?...सुग्रीव अभी तक बाली से टकराने की बात नहीं सोच पाए हैं.. क्या कर रहे होंगे वे लोग, जिन्हें वह स्त्री अपनी रक्षा के लिए पुकार रही थी? क्या वे भी सुग्रीव के समान किन्हीं गुप्त गुफाओं मे छिपकर अपना समय बिता रहे होंगे? शायद नहीं। जिस ढंग से उस स्त्री ने अपने मूल्यवान आभूषण मार्ग में फेंके है—उससे तो लगता है कि उसे पूर्ण विश्वास था कि उसके रक्षक उसे खोजते हुए आयेंगे और उसकी रक्षा करेंगे.. निश्चय ही, वे लोग उस स्त्री को उसी उत्कटता से खोज रहे होंगे, जिस उत्कटता से वह स्त्री उन्हें पुकार रही थी।

किंतु इतना निकट होते हुए भी—प्रासाद के बाहर, यहां तक कि प्रासाद के भीतर भी कभी किसी ने रुमा का चीत्कार-स्वर नहीं सुना। किसी ने सुग्रीव को सूचना नहीं दी कि रुमा उन्हें अपनी रक्षा के लिए पुकार रही थी। उसका चीत्कार सुनते, तो क्या सुग्रीव इस प्रकार चुपचाप बैठे रहते? नहीं, रुमा को शायद विश्वास ही नहीं था कि सुग्रीव उसकी रक्षा के लिए आएंगे। वे उसे सोती छोड़, भाग जो आए थे। कायर सुग्रीव!

सुग्रीव के मन में आया, अपना सिर गुफा की दीवार से दे मारें...अब वे और अपमान नहीं सह सकते...या तो वे रुमा को वाली के हाथों से छीनने का प्रयत्न करें अथवा आत्महत्या कर प्राण त्याग दें...उनके पास हनुमान, नल, नील तथा तार जैसे साथी हैं। आज हनुमान ने उन्हें बताया है कि दलित और दमित प्रजा में से भी लोग अत्याचार का विरोध करने के लिए तैयार हो रहे हैं। संगठन बन रहे हैं। तो क्यों न सुग्रीव युद्ध की तैयारी करें? वानरों को एकत्रित कर उन्हें सैनिक प्रशिक्षण दें...एक बार शासन सुग्रीव के हाथ में आ जाए, फिर कोई वाली किसी रुमा का अपहरण नहीं कर पाएगा, कोई राक्षस किसी स्त्री का अपहरण कर किष्किंधा के पास से इस प्रकार सुरक्षित नहीं निकल पाएगा..

किंतु कौन थी वह स्त्री?

उसका अपहरण कहां से हुआ था?...

सुग्रीव ने फिर से एक बार वस्त्र और आभूषणों को देखा, किंतु वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे। ऐसे वस्त्र और आभूषण उन्होंने पहले नहीं देखे थे...किन्हें पुकार रही थी वह स्त्री...'राम' और 'लक्ष्मण'...राम और लक्ष्मण...सहसा उन्हें लगा ये नाम उन्होंने कहीं-न-कहीं सुने हैं...पर कहां? किससे? सुग्रीव सोचते रहे...कुछ भी याद नहीं आ रहा था...और सुग्रीव का सिर भारी होने लगा था, जैसे नींद आ रही हो ..सुग्रीव की आंखें बंद हो गयीं। उन्हें झपकी आ गई थी।...सहसा उनकी निद्रा खुली, तंद्रा भाग गयी। जैसे उनकी खोज पूरी हो गयी थी। ..उन्हें याद आ रहा था, उन्होंने शायद दंडकारण्य से आने वाले कुछ यात्रियों के मुख से सुना था कि वहां दो आर्य राजकुमार आए हुए थे। उनके पास अनेक दिव्य शस्त्रास्त्र थे और वे लोग बहुत कुशल योद्धा थे। उन यात्रियों ने यह भी बताया था कि उनके संगठन के कारण वहां राक्षसों को मनमानी करने में कठिनाई हो रही है। शायद उनके नाम यही थे—'राम' और 'लक्ष्मण'. हां! वही होंगे। तभी तो यह स्त्री उन्हें पुकार रही थी। किंतु पिंजरे में बंद पशु के समान सुग्रीव कहां पाएंगे राम और लक्ष्मण को। हाय रे! हतभाग्य सुग्रीव. .

अगले दिन सबका ध्यान इस ओर गया कि सुग्रीव पिछले दिन के समान

हताश नहीं थे। उनकी स्फूर्ति जाग उठी थी और वे अपनी आत्मलीनता से उबरकर पर्याप्त सजग और सचेत लग रहे थे। प्रातः के व्यायाम और अल्पाहार के पश्चात सुग्रीव पिछले दिनो के समान गुमसुम शून्य को नहीं घूर रहे थे। वे पर्याप्त सक्रिय हो उठे थे।

"तुम लोगो ने फिर से सगठन बनाकर कार्य की निश्चित रूपरेखा बनाने की बात मुझसे कही ही नहीं, हनुमान !" वे बोले,"शायद तुम लोगो को मेरी मन.स्थिति उसके उपयुक्त नहीं लगी।" वे मुसकराए, "अब मैं ठीक हूं। निष्क्रिय पडे रहकर समय व्यतीत करने के स्थान पर, मैं सक्रिय रूप से कुछ करना चाहूंगा।"

"युवराज ! किष्किधा नगरी की स्थिति तो आप जानते ही है।" नल बोले, "नगरों से बाहर बसे हुए वानर-यूथों पर दोहरी मार पड़ रही है।"

"दोहरी मार का क्या अर्थ ?" सुग्रीव ने पूछा।

"जो किष्किधा के निकट है, वे वाली के हाथो पिट रहे है और जो किष्किधा से दूर हैं, वे राक्षसो के हाथों।" नल बोले, "प्रायः वानर-यूथ मैदानो को छोडकर या तो गहन वनों मे जा घुसे हैं, या पर्वतों की चोटियों [illegible] । आजकल [illegible] .. प्रयत्न कर रहे है।"

सुग्रीव कुछ प्रसन्न दीखे, "यह तो लाभ की स्थिति है; किंतु पहली बात तो यह है कि हमारी स्थिति कितनी गुप्त तथा कितनी प्रकट है?"

"वैसे तो अभी तक सम्राट को हमारे यहां होने का ज्ञान नहीं है।" हनुमान बोले, "मदिरा उन्हें इतना अवकाश ही नहीं देती। राजकुमार अगद से हमारा सपर्क बना हुआ है और वे बार-बार यही [illegible] कि सम्राट को यदि आपके यहा होने की सूचना मिल भी जाए, तो भी वे मतग वन में कभी प्रवेश नहीं करेंगे।"

"शायद अगद ठीक ही कहता है।" सुग्रीव बोले, "मेरा भी यही अनुमान है कि बाली मतग वन में प्रवेश नहीं करेगा। किंतु, हनुमान ! यदि कोई मतग वन में आए तो उसके विषय में हमें सूचना [illegible] मिलेगी?"

हनुमान मुसकराए, "युवराज ! वन में किसी के प्रवेश करते ही हमें सूचना मिल जाएगी। वन के आरंभ होते ही हमारी गुप्त चौकियां आरंभ हो जाती है।"

"मेरा अनुमान था कि शायद तुमने ऐसी कोई व्यवस्था कर ली होगी।" सुग्रीव मुसकराए...और सहसा, जैसे उनके मन में कोई नया विचार आया, "सुनो ! कुछ बातें मुझे तुम चारों से ही करनी हैं।"

चारों व्यक्ति सावधान हो गए।

"अब मुझसे कुछ भी गुप्त रखने की आवश्यकता नही है। मैं पूर्णत: स्वस्थ और जागरूक स्थिति में हूं।"

चारो के चेहरे उल्लसित हो उठे।

"दूसरी बात—कल तुम लोग एक अपहृत स्त्री का समाचार लाए थे, उसके विषय में अधिक खोज-खबर रखी जाए। मेरा विचार है कि राम और लक्ष्मण वे ही आर्य राजकुमार हैं, जिनके कारण दडकारण्य में राक्षसों के सम्मुख बाधाएं उपस्थित हो रही हैं।"

"युवराज की इच्छा का हमे ध्यान रहेगा।" तार बोले।

पर सुग्रीव ने जैसे उनकी बात सुनी ही नही, "यदि किसी प्रकार हम उनसे संपर्क स्थापित कर पाएं, हमें उनसे बहुत सहायता मिल सकती है।"

प्रात: एक-एक कर वे चारो किसी-न-किसी दिशा मे निकल गए; किंतु नित्य के समान, आज, सुग्रीव जाकर अपनी गुफा में नही लेटे। वे अच्छी प्रकार समझ गए थे कि उन्हे इस प्रकार अकेले छोडकर जाने का अर्थ था कि मतग वन मे ऋष्यमूक के चारों ओर हनुमान के चर इस स्थिति मे थे कि सुग्रीव के लिए तनिक-सी भी आपत्ति उपस्थित होते ही, उन्हें सचेत कर सकें। हनुमान भी इस प्रकार की सूचना से अनभिज्ञ नहीं रहेंगे। अद्भुत है यह हनुमान भी...

सुग्रीव ने खड्ग बाधा, गदा उठाई और चल पड़े—आज उनमे तनिक भी आलस्य नहीं था...वे भी तो देखें कि मतग वन में हनुमान ने कैसी व्यवस्था कर रखी है...

शिलाओं और गुफाओं को पीछे छोड़ते हुए सुग्रीव गहन वन में प्रवेश

कर गए। वे चलते जा रहे थे और सोचते जा रहे थे, सारे वन मे कही कोई व्यक्ति दिखाई नही देता था। पता नही, हनुमान के प्रहरी कहा थे, जिनके भरोसे वह इतना निश्चित था। फिर भी, यह नही कहा जा सकता कि वह निश्चितता झूठी थी। हनुमान ऐसा व्यक्ति ही नहीं था, जो अपने किसी भी काम को इतने हल्के ढंग से करे। यदि हनुमान ने कहा है तो निश्चित रूप से निश्चित रहने वाली बात रही होगी...

बीच-बीच में वन्य-पशुओं के स्वर वायुमडल मे तैर जाते थे। सबसे ऊंचा स्वर मतगों का था...मतंगों के शब्द के साथ ही सुग्रीव की स्मृति में कुछ पुरानी बाते ऊब-चूब करने लगी . सुग्रीव ने सुना था कि वाली जब दुदुभि के पीछे-पीछे इस वन में आया था, तो वह चिघाडते हुए मतगों के आक्रमण से भयभीत होकर लौटा था। तब से वह इस वन मे कभी नही आया...मायावी के कारण भी नही ..तो क्या सुग्रीव इसी कारण सुरक्षित है...

उनके पग रुक गए। सामने एक झुरमुट में हनुमान और शिल्पी बैठे थे। उनके बैठने और बातचीत की पद्धति मे कुछ भी गोपनीय नही था। वे नि.शंक बैठे बाते कर रहे थे।

सुग्रीव को देखते ही वे दोनो उठ खडे हुए।

"तुम यहा कैसे, शिल्पी ?" सुग्रीव ने अत्यत आश्चर्य से पूछा।

"हनुमान को कुछ सूचनाए देने आया था।" वह मुसकराया।

"किंतु," सुग्रीव अब भी चकित थे, "मैने सुना था, वाली ने तुम्हे बदी करने का आदेश दिया है।"

"युवराज ने ठीक सुना था," शिल्पी बोला, "किंतु वह आदेश वापस ले लिया गया है।"

"कैसे ? अंगद के प्रभाव से ?"

"नही !" शिल्पी की मुसकान मे वक्रता घुल गयी, "रत्ना के प्रभाव से।"

सुग्रीव का आश्चर्य बढ़ गया, "रत्ना कौन है ?"

"उसे आप नही जानते।" शिल्पी बोला, "वह इन दिनों किष्किंधा की सबसे सुदरी वेश्या है।"

"वेश्या का कैसा प्रभाव ?"

शिल्पी खुलकर मुसकराया, "इन दिनों किष्किंधा की सारी राजनीतिक सत्ता वेश्याओं और उनके संबंधियों के हाथों में है। जो स्त्री स्वयं को, और जो पुरुष अपने घर की स्त्रियों को वेश्या बना सके, वे वाली से सब कुछ पा सकते हैं।"

सुग्रीव आंखों में पीड़ा का भाव लिये शिल्पी को देखते रहे। अंत में उनके मुख से निकला, "इंद्र का पुत्र..."

अपनी स्तब्धावस्था से उबरने में सुग्रीव को थोड़ा समय लगा। उबरने के पश्चात वे सहज हो गए, "पर तुम तो अब भी संकट से खेल रहे हो, यहां कैसे चले आए ?"

इस बार शिल्पी मुसकरा नहीं सका। बोला, "युवराज ! संकट तो है ही, किंतु जब न्याय का युद्ध होने को हो, साफ़-साफ़ दो वर्ग बनकर सामने आ रहे हों, तब भी यदि सामान्य जन संकट के भय से अन्याय का पक्ष लेगा या तटस्थ रहने का नाटक करेगा, फिर तो मानवता अत्याचार के विरुद्ध कभी नहीं लड़ सकेगी। इससे बड़ा संकट और क्या हो सकता है; इसीलिए मैंने छोटे संकट झेलने का निश्चय किया है।"

"सच कहते हो, शिल्पी !" सुग्रीव आत्म-चिंतन के-से स्वर में बोले, "हम छोटे संकट में बचने के लिए ही बड़े संकट झेलते चलते हैं . तुम किस काम से आए ?"

"हनुमान को बता चुका हूं, युवराज !" शिल्पी धीरे से बोला, "अब चलूंगा। अनुमति दें।"

शिल्पी चला गया तो सुग्रीव ने हनुमान को देखा। वे कुछ अतिरिक्त रूप से गंभीर लग रहे थे।

"क्या बात है, हनुमान ?"

"आइए, युवराज ! वापस चलें।" हनुमान सुग्रीव के साथ-साथ मुड़े, "शिल्पी सूचना लाया है कि आपको किष्किंधा से खदेड़कर ही सम्राट संतुष्ट नहीं हैं। उन्होंने खोज करवाई है और उन्हें कुछ-कुछ आभास है कि आप ऋष्यमूक पर्वत पर कहीं छिपे हुए हैं। अंगद का कहना है कि

सम्राट कुछ कारणों से स्वय मतग वन मे प्रवेश नही करेंगे..."

"मै जानता हूं।" सुग्रीव बोले।

"वे अपने सेनानायकों को भेजकर न तो पराजय का कलक झेलना चाहते हैं, न भाई को कायरतापूर्वक मरवाने का अपयश किंतु सम्राट की इच्छा है कि आपके वध की योजना बनाई जाए और किष्किधा के व्यावसायिक अपराधियों को धन का लालच देकर आपके पीछे लगा दिया जाए।"

सुग्रीव के पग रुक गए।

"विश्वास नही होता, हनुमान !"

"सूचना राजकुमार अगद ने भेजी है, युवराज !"

सुग्रीव कुछ नही बोले। वे चुपचाप चलते रहे। उनके भीतर चिंतन-प्रक्रिया चल पड़ी थी—वाली के कपट, विश्वासघात, क्रूरता तथा दमन को देखते हुए—रुमा के अपहरण और उसके अपमान के बाद भी सुग्रीव अजाने ही, मन-ही-मन कही मानकर चल रहे थे कि वाली उनका भाई है। मूलतः वह उनसे प्रेम करता है, किंतु इस समय एक भ्राति के कारण वह उनका विरोधी हो गया है। उन्हे लगता था कि समय बीतने के साथ-साथ वाली का आवेश कम हो जाएगा और कदाचित दोनों भाइयों में कोई समझौता हो जाएगा...किंतु यह मृगतृष्णा मात्र है...वाली उनका भाई नही है, वह किसी भ्राति के कारण क्रूर नही हुआ है। वह तो अत्याचार और दमन का मत्त-मतंग है। मार्ग में आने वाले प्रत्येक दुर्बल जीव को वह पीसता जाएगा। वह मतग अब सुग्रीव पर चढ़ दौड़ा है। वह वापस नही लौटेगा। विकल्प दो ही है—या तो मतग के सामने वे लेट जाए और वह उन्हें पीसता हुआ आगे बढ़ जाए, या दुर्बल होने पर भी उस मतग की सूड उखाड़ने का प्रयत्न करें...

...ठीक कहता है शिल्पी ! न्याय का युद्ध होने को हो, दो वर्ग साफ पृथक् हो रहे हों। दोनों ओर सेनाए सज रही हों, तब भी तटस्थता के नाम पर सेनाओं से अलग खड़े रहना कायरता और नीचता है...सुग्रीव से अधिक समझदार हनुमान और उनके अन्य साथी है। उनकी राजनीतिक समझ अधिक सुथरी है। सुग्रीव इसे पारिवारिक झगड़े से अधिक

वह स्वयं साथ आया था। उसका साथ आना सुरक्षा-व्यवस्था की दृष्टि से आवश्यक नही था। जितने सशस्त्र सैनिक सीता के रथ को घेरकर चल रहे थे, उनका विरोध कर, उनके हाथों से निकल जाना, सीता की अपनी कल्पना के लिए भी दुरूह था।...किंतु, फिर भी रावण साथ चल रहा था।

"सीते!" रावण का स्वर अत्यन्त कोमल था।

सीता ने उसकी बातो तथा संबोधनों के उत्तर प्राय. बंद कर दिए। क्या उत्तर दिया जाए इस षड्यन्त्रकारी नीच पुरुष की बातो का!

"सीते! यदि तुम स्वेच्छा से मुझे अंगीकार कर लो तो मैं राम और लक्ष्मण को जीवित छोड़ दूगा और उन्हे कोई छोटा-मोटा राज्य भी दे दूगा।" वह रुका, "और स्त्री के बिना राम यदि अत्यन्त दुःखी हो, तो मै उसका विवाह शूर्पणखा से कर दूगा।"

"तुम्हारी बहन तो अपने दहेज में लका का राज्य और राजाधिराज का शव लाने वाली थी।" सीता का स्वर वितृष्णा से भर उठा।

रावण हतप्रभ रह गया।

उसे अपनी स्थिति से उबरने में कुछ क्षण लगे, "क्या कहा था शूर्पणखा ने?"

"उसी से क्यों नही पूछ लेते!"

रावण सीता को देखता रह गया वह सीता को नही जानता था, किंतु शूर्पणखा को जानता था।...उसकी कामाग्नि वस्तुत इतनी उग्र थी कि यदि उसका वश चलता तो वह अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपने समस्त बंधुओं तथा लंका के साम्राज्य को होम डालती। शूर्पणखा रावण की वास्तविक बहन थी।

सहसा रावण का ध्यान दूसरी ओर चला गया।...यदि किसी प्रकार राम लका के आस-पास या लका में आ गया और उसने शूर्पणखा की इच्छा पूर्ण कर दी तो लका में भयंकर गृह-युद्ध होगा। शूर्पणखा रावण सरीखी योद्धा न सही, किंतु युद्ध-कुशल वह भी है। उसके समर्थक एव प्रेमी भी अनेक है। कालकेय दैत्य आज भी उसके इंगित पर मरने को तत्पर बैठे हैं...

नहीं देना चाहते थे ..किंतु उनके साथी इसे आरंभ से ही न्याय और अन्याय का युद्ध मानकर चल रहे हैं ..अब सुग्रीव को भी इसे उसी दृष्टि से देखना होगा। जब यह भार उन्हीं के कंधों पर पड़ा है तो उन्हें अपनी निजी सीमाओं, संबंधों और दुर्बलताओं से ऊपर उठना होगा। इसे कर्तव्य मानकर ही स्वीकार करना होगा। वाली और सुग्रीव भाई नहीं हो सकते—उन्हें दो विरोधी शक्तियों का रूप ग्रहण करना ही होगा। यदि वाली का निश्चय यह है कि ये दोनों शक्तियां साथ-साथ जीवित नहीं रह सकतीं, इसलिए सुग्रीव को मरना होगा, तो सुग्रीव का भी निश्चय है कि यदि उसे जीवित रहना है तो वाली को मरना होगा...सुग्रीव को वाली से लड़ने की तैयारी करनी होगी। अपनी क्षमता को तोलना होगा; न्याय के पक्ष में लड़ने वाली शक्तियों से संपर्क करना होगा। एक-एक वानर को घसीटकर न्याय के पक्ष में लाकर खड़ा करना होगा। अब तक सुग्रीव ने ये सारी बातें राक्षसों के विरुद्ध ही सोची थीं; किंतु अब कौन कह सकता है कि वाली भी राक्षस नहीं हो गया है—क्या भेद रह गया है वाली और रावण में ?...रावण दूर है, सुग्रीव को पहले वाली से ही निबटना होगा...

"हनुमान !" सहसा सुग्रीव बोले, "दुरूह स्थानों पर छिपे वानरों से संपर्क किया जा रहा है ?"

"हां, युवराज ! प्रयत्न आरंभ कर दिया गया है।"

"यह काम शीघ्र होना चाहिए।"

सुग्रीव पुनः अपने चिंतन में डूब गए।

६

पहले तो रावण ने रक्षिकाओं को ही आदेश दिया कि सीता को अशोक-वाटिका तक पहुंचा आएं; किंतु बाद में जाने क्या सोचकर उसने अपना विचार बदल दिया था। सीता को अशोक-वाटिका तक पहुंचाने के लिए

वह स्वय साथ आया था। उसका साथ आना सुरक्षा-व्यवस्था की दृष्टि से आवश्यक नही था। जितने सशस्त्र सैनिक सीता के रथ को घेरकर चल रहे थे, उनका विरोध कर, उनके हाथों से निकल जाना, सीता की अपनी कल्पना के लिए भी दुरूह था।...किंतु, फिर भी रावण साथ चल रहा था।

"सीते !" रावण का स्वर अत्यन्त कोमल था।

सीता ने उसकी बातों तथा संबोधनो के उत्तर प्रायः बद कर दिए। क्या उत्तर दिया जाए इस षड्यन्त्रकारी नीच पुरुष की बातो का !

"सीते ! यदि तुम स्वेच्छा मे मुझे अगीकार कर लो तो मैं राम और लक्ष्मण को जीवित छोड़ दूगा और उन्हे कोई छोटा-मोटा राज्य भी दे दूगा।" वह रुका, "और स्त्री के बिना राम यदि अत्यन्त दुःखी हो, तो मै उसका विवाह शूर्पणखा से कर दूगा।"

"तुम्हारी बहन तो अपने दहेज में लका का राज्य और राजाधिराज का शव लाने वाली थी।" सीता का स्वर वितृष्णा से भर उठा।

रावण हतप्रभ रह गया।

उसे अपनी स्थिति से उबरने मे कुछ क्षण लगे, "क्या कहा था शूर्पणखा ने ?"

"उसी से क्यों नहीं पूछ लेते !"

रावण सीता को देखता रह गया : वह सीता को नही जानता था, किंतु शूर्पणखा को जानता था।...उसकी कामाग्नि वस्तुत: इतनी उग्र थी कि यदि उसका वश चलता तो वह अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपने समस्त बधुओं तथा लका के साम्राज्य को होम डालती। शूर्पणखा रावण की वास्तविक बहन थी।

सहसा रावण का ध्यान दूसरी ओर चला गया।...यदि किसी प्रकार राम लका के आस-पास या लका मे आ गया और उसने शूर्पणखा की इच्छा पूर्ण कर दी तो लंका मे भयकर गृह-युद्ध होगा। शूर्पणखा रावण सरीखी योद्धा न सही, किंतु युद्ध-कुशल वह भी है। उसके समर्थक एव प्रेमी भी अनेक हैं। कालकेय दैत्य आज भी उसके इगित पर मरने को तत्पर बैठे हैं...

रावण ऐसा गृह-युद्ध नहीं चाहेगा। उसे अनेक लोगों से निवटना है। .. और सबसे बडी बात, सीता से आत्म-समर्पण करवाना है। ऐसी स्थिति मे शूर्पणखा का लका में अधिक दिन रहना उचित नहीं है। वैसे भी यदि सीता ने रावण को अंगीकार कर लिया तो शूर्पणखा अपनी ईर्ष्या और क्रोध मे ही जल मरेगी। उससे सावधान रहना होगा और उसे राम से यथासभव दूर रखना होगा ..इसी सीता के कारण, किस झंझट में फस गया रावण ! एक ओर मदोदरी क्रुद्ध सिहनी बनी हुई है, दूसरी ओर शूर्पणखा किसी भी समय घातक हो सकती है। ..और विभीषण ! विभीषण रावण की नीति को कभी स्वीकार नही करेगा।...इन सारी परिस्थितियों मे, रावण को लका मे ही पर्याप्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ सकता है. · रावण को पहले अपने घर का व्यूह साधना होगा...शूर्पणखा को तो तत्काल ही अश्मद्वीप भेज देना होगा। उसका यहा रहना रावण के लिए घातक है। ...रावण की ओर से निराश होकर, वह राम को लंका मे बुलाने का भी प्रयत्न कर सकती है और यदि राम लका मे आ गया...उसने एक वार मुसकराकर शूर्पणखा की ओर देख लिया तो शूर्पणखा उसकी प्रणय-कृपा पाने की एक आशा मे ही लका को फूक देगी...

कैसे झझट मे फस गया रावण ! केवल इस एक स्त्री के कारण...

रावण ने दृष्टि फेरकर सीता को देखा : दासियों मे घिरी, गभीर तथा परेशान सीता !...इसे प्राप्त न किया तो राजाधिराज होने की क्या सार्थकता ? इसे पाने के लिए प्राण न दिए, तो जीवन की क्या उपयोगिता ? .. शूर्पणखा, राम को पाने के लिए, यदि लका को फूक सकती है, तो रावण सीता को पाने के लिए सपूर्ण राक्षस साम्राज्य दाव पर लगा सकता है।

तभी प्रतिरावण हसा, "यह विरोध राम और रावण का है या रावण और शूर्पणखा का ?..."

पर रावण का ध्यान प्रतिरावण से हटकर किन्ही अनजाने मार्गों पर भटकन भरी यात्राए करता चला गया।.. सीता-प्राप्ति तो वाद मे होगी, पहले उसे अपने घर मे अपना शासन स्थापित करना पड़ेगा।

प्रतिरावण भी विलीन हो गया। इस बार उसने अधिक हठ नही

ठाना। कदाचित् शूर्पणखा का भय उपजा जाना ही उसे पर्याप्त लगा था।

सीता से रावण ने कोई विशेष बातचीत करने का प्रयास नही किया। वह अन्यमनस्क-सा बैठा, किन्ही गुत्थियों को मन-ही-मन सुलझाता रहा। उसके संकेत पर ही रथ अशोक वाटिका में प्रविष्ट हुआ। उसकी दृष्टि वाटिका के बाहर स्थापित किए गए सैनिक शिविरो पर पड़ी—एक बार मन मे आया भी कि एक साधारण-सी कोमल और कमनीय स्त्री को बदी बनाए रखने के लिए इतने सैनिको की आवश्यकता नही होनी चाहिए... पर तत्काल ही उसका मन सशक हो उठा...सीता के सबध मे तनिक भी असावधानी नही बरती जानी चाहिए।...अपने बल पर सीता निकल भागने का प्रयत्न कदाचित् न भी करे, किंतु शूर्पणखा अपने सहायको के माध्यम से उसकी हत्या भी कर सकती है।...सीता की हत्या ! इस कल्पना से ही रावण का मन क्षुब्ध हो उठता है.. विभीषण उसे मुक्त करवाने मे सहायक हो सकता है। और मदोदरी ?. .फिर राम के पक्ष का भी कोई व्यक्ति आ सकता है। इन षड्यत्रो के विरुद्ध रावण को सावधान रहना होगा...पहरे में शिथिलता नही करनी होगी...

प्रतिरावण ने अट्टहास किया—"राम का भय तेरे रक्त मे घुल गया है ...उसके यहा आ पहुंचने की भी कल्पना करने लगा है तू ?..."

रथ रुक गया।

एक निश्चित दूरी पर वृक्षो के पीछे सशस्त्र पुरुष प्रहरियो की टोलियो ने सन्नद्ध होकर घेरा डाल लिया। दूसरी ओर से स्त्री रक्षिकाए आयी और हाथों मे नग्न खड्ग लेकर वृत्ताकार खडी हो गईं। रथ मे से दासिया उतरी और उन्होने सीता को भी उतरने का सकेत किया।

सीता बिना किसी प्रतिरोध के उतर आयी। रथ मे बैठे रहने का कोई लाभ नही था।

किंतु सबकी अपेक्षाओं के विरुद्ध, रावण रथ मे ही बैठा रह गया—जैसे नीचे उतरने की उसकी इच्छा ही न हो...पर यदि उसे रथ मे बैठे-बैठे ही लौट जाना था तो यहा तक आने की क्या आवश्यकता थी ? सीता को वह इससे भी अधिक दृढ़ सुरक्षा-प्रबंध के साथ यहा भिजवा सकता था।...

दासियों से लेकर पुरुष रक्षकों तक को ज्ञात था कि यह रावण का प्रमद वन है। किसी स्त्री को यहां लाने का एक ही अभिप्राय था। इससे पहले कितनी ही बार ऐसी घटनाएं घट चुकी थीं।...किंतु आज रावण रथ से नीचे उतरा ही नहीं। वह वापस लौटने को तैयार लग रहा था।

जाने से पहले वह क्षण भर के लिए सीता की ओर मुड़ा, "जानकी! किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मांग लो।"

"धनुष-बाण!" सीता अपने सधे हुए स्वर में बोली, "जानकी के हाथ में धनुष-बाण देने में भय लगता हो तो एक खड्ग..."

रावण ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने सारथी को रथ मोड़ने का संकेत किया। सीता का यह हठ वह उसी क्षण से देख रहा था, जिस क्षण से उसने उसका अपहरण किया था। एक क्षण के लिए भी यह स्त्री न तो भयभीत हुई थी और न दीन। ऐसी स्त्री को जीतना क्या सरल है—जिसमें न भौतिक सुविधाओं के लिए तनिक भी दुर्बलता हो, न शारीरिक कष्टों का भय! यह तो मंदोदरी ने बीच में एक प्रतिबंध लगा दिया कि सीता स्वेच्छा से रावण को स्वीकार करे—अन्यथा भी क्या सीता शारीरिक यातना के सामने अपनी पराजय स्वीकार करती?..शायद नहीं! पर ऐसी भी कोई स्त्री हो सकती है, जिसमें न कोई प्रलोभन हो, न कोई भय? रावण ने आज तक ऐसी कोई स्त्री नहीं देखी।

सीता के हाथ में शस्त्र देने का तो कोई अर्थ ही नहीं था। उसकी शस्त्र-परिचालन-क्षमता को रावण जानता था।...इस अवरोध में से वह निकल नहीं पाएगी, किंतु शस्त्र मिल जाने पर युद्ध के माध्यम से अथवा अन्य किसी प्रकार से वह आत्मघात का प्रयत्न करेगी। पर रावण उसे आत्मघात नहीं करने देगा..

अपने महामहालय में लौटने से पूर्व रावण, शूर्पणखा के पास पहुंचा।

"कैसी हो, शूर्पणखे?"

"आप तो प्रसन्न हैं, भैया!" शूर्पणखा की आंखों में हिंस्र चमक थी, "सीता आपके आधिपत्य में है।"

रावण ने देखा—कितनी ईर्ष्या थी शूर्पणखा की आंखों में, कितनी प्रतिहिंसा! विजयी को चीर-फाड़कर खा जाने की पराजित आशंका का

दमित रूप...

"भगिनी !" रावण यथासंभव कोमल स्वर मे बोला, "विचित्र संयोग है कि मैंने तुम्हें जितना देना चाहा, उतना कभी नही दे पाया। उल्टे मेरे कारण तुम्हारी क्षति होती रही। मैने किसी वीर सेनापति से तुम्हारा विवाह कर, तुम्हे एक स्वतत्र राज्य देना चाहा; किंतु तुमने विद्युज्जिह्व का वरण किया। भाग्य का खेल देखो, तुम्हारा प्रिय मेरे ही हाथों मारा गया। मैने तुम्हे जनस्थान का भोग दिया। उसे भी मेरी शत्रुता के कारण, राम ने तुमसे छीन लिया।" रावण ने रुककर शूर्पणखा को देखा, "यह दंड भी तुम्हे मेरी बहन होने के कारण सहना पड़ा। इसलिए तुम्हे किसी प्रकार भी सुखी रखने का मेरा दायित्व और भी बढ़ जाता है।"

'लका से निष्कासन !' शूर्पणखा का मन चीत्कार कर उठा, 'यह रावण, भाई का प्यार जताकर, बहन को अपने राज्य से निष्कासित कर रहा है।...'

"तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध मैने ले लिया है।" रावण बोला, "जब तक उस कंगले राजकुमार राम का वध कर हम जनस्थान को पुनः हस्तगत नही कर लेते, तब तक तुम सुख से अश्मपुर मे रहो। मैं एक शक्तिशाली सेना तथा धन का विपुल भडार तुम्हारे साथ भेज रहा हूं...।"

"तुम्हें मेरा कितना ध्यान है, भैया !" शूर्पणखा होंठों पर मुसकान ले आयी, "अश्मपुर में मैं बहुत अकेली हो जाऊंगी। वहा मुझे शाति नही मिलेगी। मैं अभी कुछ दिन और यहीं रहकर अपनी मानसिक शांति लौटाना चाहती हूं। मंदोदरी भाभी के पास रहना कितना सुखद है।"

'यह तुम्हारी शाति लूटेगी।' प्रतिरावण जोर से हंसा।

"मैंने तुम्हारे प्रस्थान की तैयारियों का आदेश दे दिया है।" रावण बोला, "अपनी सुविधानुसार अपने राज्य मे जाकर सुख-भोग करो। ऐसा न हो कि शासक को उदासीन पाकर अश्मपुर के कालकेय स्वतंत्र हो उठें।"

रावण ने शूर्पणखा के उत्तर की प्रतीक्षा नही की। वह जानता था कि उसका उत्तर क्या होगा।

शूर्पणखा स्पष्ट देख रही थी कि उसका लंका में रहना ही हितकर था। पर रावण यह नही चाहता...इस रावण से तो विभीषण ही अच्छा,

जो कम-से-कम अपने मन की बात सच-सच तो कह देता है। पर रावण लका का राजाधिराज है। उसकी आज्ञा का पालन होगा। हठ मे या बल मे—वह रावण को जीत नही पाएगी। उसे जाना ही होगा...

रावण का रथ दूर निकल गया तो सीता ने अपने वर्तमान परिवेश की ओर ध्यान दिया। इस स्थान के लिए उन्होंने प्रहरियो से बार-बार 'अशोक-वाटिका' का नाम सुना था। जहा वे खड़ी थी, उसके निकट ही एक बड़ा अशोक वृक्ष खड़ा था, जिसके तने के साथ ईटो का एक वृत्ताकार चबूतरा बना हुआ था। कदाचित् यह वृक्ष की छाया मे बैठने के लिए बनाया गया था। दृष्टि उठाकर देखने पर, अनेक स्थानो पर अशोक वृक्षो के झुड भी दिखाई पड़ते थे। सध्या के झुटपुटे मे दूर के अन्य वृक्षो को पहचानना कठिन था, अन्यथा तेरह वर्षों के इस वनवास के पश्चात् सीता के लिए पेड़-पौधे अपरिचित नही रह गए थे। वे यदि मुक्त होती और दिन का उजाला होता तो वे भी कदाचित् पचवटी-प्रदेश में प्रवेश करते हुए मुखर के समान उल्लसित मन से वनस्पति की एक-एक जाति को पहचानने का प्रयत्न करती...

कितना प्रसन्न था उस दिन मुखर ! पर क्या जानता था बेचारा कि अपनी धरती मे उसका प्रवेश, उसकी मृत्यु की भूमिका बनेगा।...

वे उस स्थिति मे नही थी। वनस्पति से अधिक आवश्यक मानव को पहचानना था। रावण की कामना की पृष्ठभूमि मे, मार्ग मे जो कुछ सीता ने देखा, वह सुखद नही था। स्थान-स्थान पर सैनिक शिविर और चौकिया। सशस्त्र पुरुष एवं स्त्री प्रहरी—इस समय भी उनके चारों ओर खड्गधारिणी राक्षसिया, प्रहरियो के रूप मे खड़ी थी और कदाचित् इन वृक्षों के पीछे कही पुरुष प्रहरी भी हों...बायी ओर सादा-सा एक कुटीर था, जिसके पास कुछ नि शस्त्र दासियां खड़ी हुई...अटपटी-सी दृष्टि से सीता को देख रही थी। कदाचित् यह कुटिया उनके विश्राम और दासिया उनकी सेवा के लिए थी...रावण ने बार-बार सीता को इगित किया था कि वे यदि उसकी इच्छा के अनुकूल चलेंगी तो उन्हें जीवन की प्रत्येक सुविधा उपलब्ध होगी...

थी। उसके आगे बढ़ने मे तनिक भी असावधानी नही थी। वह सीता की ओर से आशकित भी नही थी।...और सीता के मन में वे सारी पद्धतिया और युक्तिया गूज रही थी, जो उन्होंने समय-समय पर राम और लक्ष्मण से सीखी थी प्रतिपक्षी के दाहिने हाथ मे खड्ग हो, वह दायीं ओर से ही आ रहा हो तो अपने दाहिने पैर से उसके दाहिने पैर को या तो बलपूर्वक दबा देना चाहिए, या जोर की ठोकर देनी चाहिए...अपने दोनों हाथों से उसकी शस्त्र वाली भुजा की कलाई को कसकर मोड़ देना चाहिए अथवा हाथ पकडकर झटके से खीच अपने शरीर की आड़ पर रोक, उसे दूसरी ओर उछाल देना चाहिए...

खड्गधारिणी नायिका की चाल मे बाधा तभी पहुची, जब अत्यन्त अप्रत्याशित रूप से उसने पाया कि अकस्मात् ही उसके हाथ से खड्ग निकल गया है और वह औंधे मुह भूमि पर आ गिरी है। ...किंतु उसकी स्फूर्ति भी अद्भुत थी। निमिष भर में वह उठकर खड़ी हो गयी और उसने आदेश पर आदेश दे डाले।

एकबारगी ही सारी शस्त्र-धारिणिया सीता के चारों ओर घिर आयी और उनके पीछे पुरुष प्रहरियो की पक्तिया भी प्रकट हो गयी। क्षण-भर मे ही सीता के सम्मुख स्पष्ट हो गया कि उनके चारों ओर अनेक वृत्ताकार घेरे डाले जा चुके हैं और ऐसे व्यूह मे से बचकर निकल पाना कदाचित् सभव नही है .

दूसरे ही क्षण खड्गधारिणियों का सामूहिक आक्रमण हुआ। सीता के लिए यह भी एक नया खेल था। बीसियों खड्गधारिणियों का सामूहिक आक्रमण इस ढग से हुआ था कि किसी के शस्त्र ने सीता के शरीर का स्पर्श नही किया और उनके शस्त्र-व्यूह मे सीता के हाथ का खड्ग पूरी तरह उलझा हुआ था...अगले ही क्षण खड्ग उनके हाथ से निकल गया था...

उन्होंने रस्सियों से बाध, सीता को अशोक वृक्ष के नीचे बैठा दिया।

"हमें तुम्हारी हत्या करने का आदेश नही है," खड्गधारिणी नायिका बोली, "अन्यथा तुम्हारी हड्डियां और मांस हम आपस में बांट चुकी होती।"

"अब क्या करोगी ?"

"राजाधिराज के पास सूचना भिजवायी है। आज्ञा वही से आयेगी।" वह रुककर बोली, "राजाधिराज की प्रिया होने के नाते, आज मृत्यु-दड से बच गयी हो।"

सीता को यह सूचना अपने अनुकूल लगी। अपनी कामना के कारण रावण उनके साथ साधारण बदी का-सा व्यवहार नही करेगा, अन्यथा शस्त्र छीनने और सशस्त्र विरोध का दड, सहज ही मृत्यु-दड हो सकता था...

सूचना पाकर रावण स्वय नही आया, कदाचित् वह अन्यत्र कही उलझा हुआ था, किंतु लगता था, उसकी आज्ञा कुछ अधिक विस्तृत थी। सूचना लाने वाले चर ने बड़ी देर तक अपनी बात धीरे-धीरे खड्गधारिणी नायिका को समझायी।

चर की बात सुनकर, खड्गधारिणियों ने सीता को पहले के ही समान घेर लिया। उनके बंधन खोले और मुक्त कर दिया, "राजाधिराज ने तुम्हारा यह अपराध क्षमा कर दिया।"

जब तक सीता कुछ समझें, समस्त खड्गधारिणियां पीछे हटकर वृक्षों के झुंडों के पीछे विलीन हो गयी। अब सीता नि.शस्त्र दासियों से घिरी हुई थीं, किंतु यह बात सीता से छिपी न रह सकी कि ये नि.शस्त्र दासिया शरीर से पर्याप्त हृष्ट-पुष्ट थी—कदाचित् ये सामान्य सेविकाए न हों, दंडधर टुकड़ियों की सदस्याए थी। शस्त्र सीता की आखों की पहुंच से दूर कर दिये गये थे, ताकि न उनके सम्मुख प्रलोभन हो और न वे पुनः शस्त्र छीनने का प्रयत्न करें।

"अब !"

सीता एक ओर हटकर, एक वृक्ष के तने से लगकर बैठ गयी।

पचवटी में उनके आश्रम मे, उस मायावी तपस्वी के आने के समय से अब तक उनका मन एक क्षण के लिए भी स्थिर नही हुआ था। घटनाचक्र ऐसी गति से चला और क्षोभ इतना प्रबल था कि अपनी स्थिति को समझने के लिए भी मन रुककर, एक क्षण के लिए कुछ सोच नही सका। अब जाकर,

कहीं अवकाश मिला था कि वे अपनी स्थिति के विषय में कुछ सोच सकें।

निःसंदेह, वे अपने राम से बहुत दूर, इस लंका में, रावण के सुरक्षित गढ में वंदिनी थीं। अपनी रक्षा के लिए उनके पास कोई शस्त्र नहीं था। लंका में उनका कोई सहायक नहीं था। राम और लक्ष्मण को कदाचित् आभास भी नहीं मिल सकता था कि वे लंका में इस प्रकार वंदिनी हैं। राम के पक्ष के जिस व्यक्ति ने सबसे अंत में उन्हें देखा, वे जटायु थे—वृद्ध, तात जटायु! उस वृद्ध शरीर पर जनस्थान के युद्ध में लगे घाव अभी सूखे नहीं थे कि उन्हें रावण से युद्ध करना पड़ा। किस वीरता से लड़े थे तात जटायु। किंतु अंत में, रावण के भागते हुए रथ से जिस प्रकार वे गिरे थे, उसके पश्चात् उनका बचना कठिन ही था। कदाचित् वे जीवित ही न रहे हों, तो फिर राम को सूचना ही कैसे मिलेगी...

मार्ग में उन्होंने आभूषण भी गिराये थे; किंतु इतने सघन वन में गिराये गये वे आभूषण राम और लक्ष्मण तक पहुंच ही जाएं—क्या यह आवश्यक है। जाने वे आभूषण कहां गिरे हों। कहीं किसी वृक्ष, झाड़ अथवा लता-गुल्म में समा गये हों। वृक्षों के पत्ते झड़-झड़कर उन पर गिरे हों और वे आभूषण नीचे दब गये हों। इतने आभूषण तो उनके पास थे भी नहीं कि वे सारे मार्ग में अनवरत गिराती ही आतीं। जो आभूषण गिराये थे, वे प्रकृति की गोद में कहीं विलीन हो जाने के स्थान पर यदि किसी मनुष्य के हाथ लग गये हों, तो आवश्यक तो नहीं कि वह मनुष्य उन्हें राम तक पहुंचा ही दे। वह उन्हें अपने उपयोग में क्यों नहीं लायेगा?..वह उन्हें पहन सकता है, किसी को भेंट कर सकता है, उनके स्थान पर किसी से कोई वस्तु प्राप्त कर सकता है...

और यदि राम को कोई नहीं बतायेगा कि सीता का अपहरण रावण ने किया है; और तो और सीता के अपने शरीर से विलग हुए आभूषण तक नहीं बताएंगे तो राम क्या करेंगे...राम बहुत दुःखी होंगे, उनकी आंखों में अश्रु थम नहीं पाएंगे, वे वन के वृक्षों और पर्वतों की शिलाओं से सिर टकराएंगे...पर उन्हें सीता का पता कौन देगा...पर्वत और वन गूंगे हैं, प्रकृति बधिर है...राम की प्रतीक्षा में सीता जीवन धारण कर सकती हैं;

किंतु सूचना के अभाव में राम कैसे आएंगे ..सीता के मिलने की आशा नहीं रहेगी तो राम जीवित कैसे रहेंगे ?...राम के जीवित रहने की कोई आशा नहीं और सीता के मुक्त होने की ?...रावण द्वारा धर्षित होने अथवा उसके द्वारा वध किये जाने की प्रतीक्षा में जीवन धारण करने का क्या अर्थ ? प्रत्येक क्षण अपने प्रिय जनों के वियोग, अपमान, पीड़ा, क्लेश तथा मृत्यु की छाया मे जीवित रहने का क्या अर्थ ?...लम्बी यातना के पश्चात पीडित एव अपमानित मृत्यु का आलिंगन करने से तो श्रेयस्कर यही है कि वे तत्काल अपने प्राण दे दें .

किंतु दूसरे ही क्षण उनकी आखों के सम्मुख राम तथा लक्ष्मण के चेहरे झलमला आये। राम की भंगिमा उनके चिर-परिचित आत्मविश्वास की भंगिमा थी और लक्ष्मण के चेहरे पर उनका वीरदर्प...सीता ने कैसे मान लिया कि राम वन के वृक्षों तथा पर्वत की चट्टानो से सिर टकराकर अपने प्राण दे देंगे और वीरवर लक्ष्मण अपने भैया राम को प्राण देते हुए चुपचाप देखते रहेंगे...क्या इतनी ही जिजीविषा है राम और लक्ष्मण में ? क्या इसी संघर्ष शक्ति को लेकर वे अत्याचार को मिटाने निकले थे ?... इतने ही सुकुमार थे तो अयोध्या का राज्य छोडकर वन मे क्या करने आए थे ?...क्या सीता ने अपने राम को छुई-मुई की लता समझा है कि पत्नी का हरण हो गया तो वे बिना प्रतिशोध लिये, बिना अन्याय का प्रतिकार किये, बिना अपनी प्रिया का उद्धार किये चुपचाप अपने प्राण दे देंगे... सीता की आखों के सम्मुख खर-दूषण के साथ हुआ युद्ध घूम गया.. कैसे अकेले राम खड़े थे, पर्वत की चोटी पर, राक्षसो की विशाल सेना के सम्मुख। घाव पर घाव लगे राम को। सारा शरीर रक्त-स्नात हो गया। पर राम क्या तनिक भी डिगे ? एक क्षण के लिए भी उनके मन मे दुर्बलता जागी ?...जब-जब राम की आखों ने कोई अत्याचार देखा, जब-जब उनके कानों ने कोई आर्त पुकार सुनी, राम की जिजीविषा द्विगुणित हो उठी। प्रत्येक चुनौती ने उनके बल को शाण पर चढाया...वही राम क्या अपनी प्रिया का हरण होने पर मुह ढापकर बैठे रोते रहेंगे ?...और प्रवास को गये प्रिय के विरह मे कण-कण जलती विरहिणी सुकुमारी नायिका के समान मौन-मूक अपने प्राण दे देंगे ?...नहीं ! सीता ने

क्यों नही सोचा कि उनके हरण की बात सुनते ही राम के प्राण जल उठेंगे और उनके साथ सारा वायुमंडल तप्त हो उठेगा। मृतप्राय लोगों की आत्मा को ज्वलत अग्नि बना देने वाला व्यक्ति स्वयं राख का ढेर नही हो सकता।

और लक्ष्मण! भाभी के इस प्रकार अपहरण की बात जानकर लक्ष्मण क्या शांत रह जायेंगे? लक्ष्मण, जिन्हे परिहास मे सीता 'उग्रदेव' कहती थी—वे उग्रदेव क्या इस घटना के बाद रोने बैठ जायेंगे? सभव है कि वे पचवटी की सारी जन-सेना को लेकर चल पड़ें...किंतु, जब पता ही नही होगा कि सीता कहा ले जायी गयी हैं, तो सेना को लेकर वे कहा जायेंगे?...

सूचना के अभाव मे अपनी समस्त तेजस्विता, वीरता, शौर्य, सगठन-शक्ति तथा जिजीविषा के साथ भी राम और लक्ष्मण क्या कर पायेंगे?...

सीता यहा से सूचना भिजवाने का प्रयत्न करें? पर कैसे? यहा कौन है जो उनका सदेश राम तक पहुचाए? वे तो अभी तक यही सोच-सोचकर चकित है कि रावण ने उन्हें वदिनी बनाकर ही कैसे संतोष कर लिया। ये प्रहरी राक्षसिया उन्हें अभी तक जीवित देखकर कैसे चुप है। उनमें से ऐसा कौन है, जो सीता की बात मानकर राम को सूचित कर आए कि उनकी वैदेही अपनी मुक्ति के लिए यहां उनकी प्रतीक्षा कर रही है।

पर यह भी तो सभव है कि राम अपने अनुमान से समझ लें कि यह राक्षसो का ही कृत्य है।...और राक्षसों में सिवाय रावण के और कौन है, जो ऐसा दुस्साहस कर सके।...राम चाहे यह न जानते हों कि सीता कहा है, पर वे यह तो जानते है कि रावण कहा है। वे सीता के उद्धार की आशा से न सही, रावण के वध के प्रयत्न के लिए तो लका मे आ ही सकते हैं।

सीता तनकर सीधी बैठ गयी...यही होगा। राम और लक्ष्मण कुटिया में लौटेंगे। सीता को वहा नही पायेंगे। तत्काल वे समझ जायेंगे कि यह रावण का कृत्य है। वे अपनी सेना सगठित करेंगे और लंका की ओर चल पड़ेंगे...सीता को धैर्य रखना होगा। राम अवश्य आयेंगे। सीता जीवित रह सकी तो उन्हें मुक्ति भी मिलेगी और राम भी...सीता को जीवित

रहना होगा, प्रतीक्षा करनी होगी और अपनी रक्षा भी। सम्भव है, राम ने उन्हें ऐसे ही दिनों के लिए शस्त्र-शिक्षा दी हो।...यदि कहीं से सीता को कोई शस्त्र मिल जाता..पर कहां मिलेगा शस्त्र! कौन देगा उन्हें शस्त्र..

वृक्षों के पीछे स्थित प्रहरी राक्षसियों के दल में होने वाले कोलाहल ने सहसा सीता का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लिया।...अब तक सीता ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया था। कदाचित् वे लोग बैठी मदिरा पी रही थी और द्यूत खेल रही थीं।...कोलाहल बढ़ता जा रहा था। उनके स्वर उच्च से उच्चतर होते जा रहे थे। किंतु किसी एक का भी स्वर सधा हुआ नहीं था। कदाचित् मदिरा के प्रभाव में ही उनके स्वर लड़खड़ा रहे थे।

इन मद्यप, असावधान रक्षिकाओं के भरोसे बंदी कर रखा है रावण ने सीता को?

सीता के मन में हूक उठी—कहीं से एक खड्ग मिल जाता तो वे इन सबको पछाड़ती हुई निकल जातीं। एक प्रयत्न तो असफल हो चुका। किंतु तब वे रक्षिकाएं सावधान और सतर्क थीं। न तन-मन से शिथिल थीं, न मदिरा के प्रभाव में थीं।...पर यदि वे किसी प्रकार निकल भी जाएं, तो क्या राम के पास पहुंच जायेंगी?...रावण इतना मूर्ख नहीं है कि इतने परिश्रम से लूटकर लाये गये धन को इन मदिरा-प्रमत्त मूर्खाओं के भरोसे सुरक्षित मान ले। इन रक्षिकाओं के पीछे वृक्षों की दूसरी पंक्ति है। उन वृक्षों के पीछे रावण की सशस्त्र सेनाओं के प्रहरी होंगे। संभवत: वाटिका चारों ओर से प्रहरियों द्वारा घेर रखी गयी होगी।.. और यदि सीता उनके अवरोध में से निकल भी गयीं तो कहां जायेंगी? सारी लंका नगरी में एक भी व्यक्ति उनका परिचित नहीं है। किस घर में उन्हें शरण मिल सकेगी? कौन उन्हें आश्रय देगा? जिसके भी द्वार पर जायेंगी, वही रावण का कोई आत्मीय राक्षस होगा। वह सीता को पुन: रावण के हाथों में सौंप देगा। क्या पायेंगी सीता इस भाग-दौड़ में?...यदि वे किसी घर में शरण न भी खोजें, तो भी समुद्र उनका मार्ग रोके खड़ा है। वे किसी भी प्रकार समुद्र को पार नहीं कर सकतीं। ऐसी स्थिति में, या तो समुद्र में डूबकर

मरना होगा, उसके तटवर्ती प्रदेश में पशुओं द्वारा भक्षण किये जाने की प्रतीक्षा करनी होगी, भूख-प्यास से प्राण देने होंगे अथवा राक्षसों द्वारा पुन. पकडी जाकर कारागार मे पड़ना होगा। यदि एक बार मुक्त होकर पुन पकडी गयी तो कदाचित् रावण अधिक कठोर हो जायेगा। तब वाटिका के स्थान पर कारागार में निगड़ाबद्ध करके भी रखा जा सकता है .हाथ-पैरो मे बेडिया डालकर...

"चुप रह, कुकुरातमजा !" किसी रक्षिका का लड़खड़ाता चीत्कार सारी वाटिका में तैर गया, "बडी आयी धन वाली ! रक्षिका की जाति और धनवान बनी है।.. कहा से आया तेरे पास धन ? मैं जानती नही क्या..." स्वर मे आत्मविश्वास बढ़ गया, "पहले केवल नायक की शैया पर आरूढ़ होती थी, अब हाट में भी बैठने लगी।"

"हाट मे बैठना निन्दाजनक है क्या?" कोई अन्य स्वर बोला, "रक्षिका के रूप मे जितना धन एक मास के वेतन मे मिलता है, हाट में बैठने पर उससे अधिक एक रात में मिल जाता है।...पर तुझे नही मिलेगा..." विकट अट्टहास किया उस स्वर ने, "तेरा शरीर अब भोग के नही, भक्षण के योग्य ही रह गया है। उसमे भी कदाचित् ही किसी को स्वाद आए।"

"अपनी जिह्वा को वल्गा दे, निर्लज्ज !" पहला स्वर पुनः बोला, "तेरे पति को एक बार ज्ञात हो गया..."

दूसरे स्वर ने फिर अट्टहास किया, "मेरा पति तो इस सरलता से धन आता देखकर, विस्मित ही रह गया ! वह तो अब सारी स्त्रियो को यही परामर्श दे रहा है कि समय रहते हाट में बैठ जाओ, अन्यथा तुम्हारे वय तक पहुचकर तो उत्कोच लेकर भी नायक अपनी शैया पर पग धरने की अनुमति नही देगा।"

"अरे, खेल क्यो बन्द कर दिया, निगोड़ियो !" कोई नया स्वर बोला, "चलो, फेंको कौड़िया। किसी की शैया पर आरूढ़ होना-न-होना, हाट में बैठना-न-बैठना, तुम्हारी अपनी इच्छा पर है। राक्षसराज रावण ने राक्षसियो को पूरी स्वतत्रता दे रखी है। राक्षसियों में स्थायी पतित्व का

विधान नही है।"

"स्थायी पतित्व का विधान नही है तो क्यों मदोदरी किसी अन्य पुरुष के साथ नही चली जाती ! क्यों सुलोचना के पातिव्रत का ढिंढोरा सारी लका मे पीट-पीटकर उसे निकुंभला देवी के समान पूजनीया बना दिया गया है !" कोई अन्य स्वर बोला।

"लका के विधाताओं को अपनी पत्नियों का पातिव्रत अच्छा लगता है। पर-स्त्रियों में उन्हे अस्थायी पतित्व की राक्षसी नैतिकता ही भली लगती है..." कहने वाली खिलखिलाकर हस पड़ी, "तुम लोग किस चक्कर मे पड़ी हो। स्वय राजाधिराज सीता का अपहरण कर लाये है या नही। जब से लाये हैं, तब से उसे एक-पातिव्रत धर्म के दोष समझा रहे होगे। किन्तु यह सत्य वे अपनी पत्नी को कभी नही समझायेंगे !"

"किन्तु शूर्पणखा तो इस सत्य को बहुत पहले से समझे बैठी है।" कोई नयी रक्षिका उनके वार्तालाप में सम्मिलित हो गयी।

"शूर्पणखा हाट में नही बैठती। वह आखेट करती है।" उसने अट्टहास किया,"बेचारी इस बार बहुत आहत होकर लौटी हैं। उसका प्रिय तो उसे मिला नही, उलटे भाई को सीता मिल गयी। दोहरा दुख है हमारी शूर्पणखा को। एक ओर अपनी वचना के कारण विरह में जल रही है, दूसरी ओर भाई की उपलब्धि के कारण ईर्ष्याग्नि में...।"

"उसे उपलब्धि नही हुई, यह तो बाध्यता है; किन्तु अपने भाई को तो उपलब्धि त्यागने को कह सकती है।" उन्मुक्त हंसी के साथ वह राक्षसी बोली।

किसी अन्य स्वर ने भी खिलखिलाकर साथ दिया, "वहा भी बाध्यता है। बहुत पीड़ित है बेचारी। न उगलते बने, न निगलते। सीता रावण के पास रहे और उससे रावण को सुख मिले, यह वह नही चाहती। किन्तु सीता रावण के पास रहे और राम उसे खोजता हुआ आकर शूर्पणखा के जाल मे फस जाए, यह वह चाहती है। अब बताओ," उस स्वर ने अल्प-विराम के बाद पूछा, "शूर्पणखा क्या चाहती है, सीता रावण के पास रहे या न रहे?"

"चुप रहो तुम लोग !" किसी नये सावधान-से स्वर ने सधे हुए भाव से कहा, "राजाधिराज को रावण कहती हो और राजकुल के विषय में ऐसे खुलकर बातें करती हो। किसी को सूचना मिल गयी तो खाद्य पदार्थों तथा सरस वार्तालाप का स्वाद लेने के लिए मुह के भीतर यह जिह्वा नहीं रहेगी।"

"ठीक कहती है बहन त्रिजटा।" पुनः एक लड़खड़ाता-सा स्वर बोला, "राजपरिवार की चर्चा करनी हैं तो वीरवर राक्षसेन्द्र, अखिल विश्व के राजाधिराज रावण की स्तुति करो।"

उनके स्वर धीमे पड गये और क्रमशः वे लोग मौन हो गयीं।

सीता का ध्यान पुनः अपनी स्थिति की ओर लौट आया...कैसे लोगों में फंस गयी है वे ! रावण तथा उसका अत्याचार तो एक ओर, यहां तो इन रक्षिकाओं के वार्तालाप से ही उनका दम घुटने लगता है। क्या रावण ने जान-बूझकर ऐसी रक्षिकाओं को यहां नियुक्त किया है, जो अपनी बातों से सीता को मृत्यु से भी कठिन यातना पहुंचाती रहें...क्या इनके पास मदिरा, द्यूत, व्यभिचार, वेश्यावृत्ति के सिवाय अन्य कोई विषय नहीं है बातचीत के लिए.. मल-कीट मल में ही बिलबिलाता रहता है और वहीं प्रसन्न रहता है . यह सब सुनना पड़ेगा सीता को— निरन्तर, अनवरत... ये ही लोग उनके आसपास बनी रहेंगी...ऐसी ही चर्चाएं करेंगी.. उनके स्वर सीता के कानों से टकराते रहेंगे, सीता का मन दु:खी होता रहेगा, किन्तु वे कुछ नहीं कर सकती...हां, यदि कोई शस्त्र मिल जाता...यदि इनसे मुक्ति नहीं पा सकती तो बहुत व्याकुल होने पर आत्महत्या तो कर ही सकती...किन्तु कहां से मिलेगा शस्त्र...

किसी की आहट पाकर, उन्होंने सिर उठाकर देखा—रक्षिकाओं में से ही एक राक्षसी उनकी ओर बढ़ रही थी। क्या करने आयी है यह ? सीता सतर्क हो गयी.. निकट आकर वह सम्मानपूर्वक रुक गयी और अत्यन्त शालीनता से हाथ जोड़कर उसने प्रणाम किया, "मैं त्रिजटा हूं, देवि ! मेरी नियुक्ति आपकी रक्षिकाओं में की गयी है; किन्तु मुझे अपनी दासी ही मानें। कोई कष्ट हो तो मुझसे अवश्य कहें। मेरे वश में..."

"इन रक्षिकाओं की चर्चाएं.. " सीता के मुख से अनायास निकला, "ये स्त्रिया हैं या पशु !"

"मुझे खेद है कि देवि को इनके व्यवहार से कष्ट पहुचा। मैं प्रयत्न करूगी कि भविष्य मे ऐसी चर्चाए देवि के श्रवणों को कष्ट न दें।" वह वहुत धीमे मुसकराई, "ये दया की पात्र है, देवि ! जिस समाज की अंग है, वैसा ही तो व्यवहार करेगी। जिस समाज में मनुष्य को समारोहपूर्वक पशु बनाया जा रहा है, उसमे ये अबोध स्त्रिया सिवाय अपनी भूख जगा, उसके लिए मानवीय-अमानवीय ढग से छीना-झपटी करने के, और क्या कर सकती हैं। पाशविक व्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति पशु बन जाता है, देवि ! और फिर पाशविकता मे ही स्पर्धा आरम्भ हो जाती है।" उसने मौन होकर सीता को देखा, "आप अपना धैर्य न छोड़े, देवि ! आपका कोई अनर्थ न होगा। इन्हे समय-समय पर मै सभालती रहूगी, आप अपने मन को संभालें।"

त्रिजटा दो क्षण चुप खडी रही और फिर प्रणाम कर अपने स्थान पर लौट गयी।

सीता के मन का विषाद कुछ हल्का हुआ...इन लोगों मे से भी कुछ लोगों मे मनुष्यता अभी शेष है। .एक त्रिजटा ही सही, पर कोई तो उनकी भी पीडा समझता है। जो पीडा समझता है, उसके मन में सहानुभूति भी होगी, और सहानुभूति मे व्यक्ति सक्रिय भी हो सकता है। सम्भव है, यह त्रिजटा ही समय आने पर उनकी सहायता करने के लिए तैयार हो जाए। एक खड्ग लाकर देना उसके लिए बहुत कठिन नहीं होगा।...एक खड्ग मिल जाए तो सीता को अनेक अप्रिय स्थितियों से मुक्ति मिल सकती है। वे अपने सम्मान की रक्षा कर सकती है। कष्टकर परिस्थितियों में प्रतिवाद कर सकती है। समय आने पर रावण से खड्ग-युद्ध कर सकती हैं; और यदि कुछ न हो सके तो आत्मवध तो कर ही सकती है...किन्तु उसने जो कुछ कहा है, वह कही मात्र नाटक तो नही ?...कही यह भी रावण की चाल तो नही ? हो सकता है, रावण के ही आदेश पर त्रिजटा ने सीता से सहानुभूति दिखायी हो और उनका विश्वास प्राप्त कर, उनकी हितू बनकर अन्ततः

वह उन्हें किसी षड्यन्त्र में फंसाने का प्रयत्न करे...इस राक्षस नगरी में मीना को किसी का सहज विश्वास नहीं करना होगा...

७

बहुत देर से विभीषण दम साधे बैठे थे। ऐसा भयंकर द्वन्द्व उनके जीवन में कम ही आया था। जो कुछ हो रहा था, उसे देखते हुए मौन रह जाना उनके लिए बहुत कठिन था; और बोलने का यह कोई स्थान नहीं था। वे जानते थे कि जो कुछ वे बोलना चाहते हैं, वह इस राजसभा में कदापि सहन नहीं किया जायेगा। यह राजसभा है या लपटों का अड्डा...जिस अपराध के लिए किसी साधारण अपराधी को कदाचित् मृत्यु-दंड दिया जाता, उस अपराध के लिए राजाधिराज की स्तुति हो रही है! चाटुकार सभासद, मंत्री, साम्राज्य के चिन्तक तथा विचारविद् लोग रावण की प्रशस्तियां गा रहे हैं...पिता पर-स्त्री के अपहरण जैसा निन्दनीय कर्म करके आया है और पुत्र भुजा उठा-उठाकर पिता की वीरता का गुणगान कर रहा है ..क्या हो गया है मेघनाद को?...क्या आदर्श रखा है रावण ने अपने परिवार तथा प्रजा के सम्मुख? आज इंद्रजित पिता द्वारा किये गये अपहरण की प्रशंसा के गीत गा रहा है, तो कल यदि उसका अपना मन किसी पर आ जायेगा, तो क्या वह अपहरण नहीं करवायेगा? अपहरणों और बलात्कारों के लिए क्या हत्याएं नहीं होंगी? इंद्रजित करेगा तो क्या उसके भाई नहीं करेंगे? पहले ही साम्राज्य की स्थिति इस दृष्टि से अच्छी नहीं है। राजकीय दंडधर वैसे ही सिवाय अपने स्वार्थों के और किसी की रक्षा नहीं करते। अपराधों के कीचड़ में वे आकंठ ऐसे धंसे हैं कि साधारण अपराध तो उन्हें अपराध ही नहीं लगते। सामान्य-जन के धन, सम्मान और प्राणों का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य ही नहीं है। उनसे कार्य करवाने के लिए या तो उन्हें सत्ता का भय दिखाना पड़ता है, अथवा

भारी उत्कोच देना पड़ता है...लका के लोगों के लिए ये ऐसी जानी-मानी बातें है कि सुनकर अब कोई चौंकता भी नही है।...और जब कभी साम्राज्य के दडधर अथवा सैनिक सधान करते है तो सारे अपराधो के मूल मे या तो राजाधिराज के अपने पुत्रों मे से कोई निकल आता है, अथवा बड़े-बड़े पदाधिकारियों के सुपुत्रों में से कोई। इनमे से कोई न भी हुआ तो इन्ही की छत्रछाया मे पलने वाले मल्लों मे से कोई होता है। उन अपराधियो को दड नही दिया जा सकता, क्योंकि शक्तिशाली राजपुत्रों अथवा राज-पुरुषों में से किसी के रुष्ट हो जाने का भय बना रहता है। राजपुत्रों ने अपने-अपने मनोरजन के लिए मल्लो की सेनाए पाल रखी है...अपने आश्रयदाताओं के लिए आखेट करते-करते, अब इन मल्लों को भी बान पड़ गयी है। सध्या का झुटपुटा हुआ नही और उन्होने मदिरा का भाड अपने कंठ के नीचे उडेला और बद रथों को लेकर आखेट के लिए निकल गये। कभी कोई वेश्या उनके हाथ लग गयी तो ठीक; अन्यथा कोई कुलवधू अथवा कुमारी कन्या ही उनकी बलि चढ़ जाती है!

विभीषण के मन मे पिछले सप्ताह घटी घटना फिर से जाग उठी—साम्राज्य के जलसेना के अधिनायक की पुत्री सागरिका अपने छोटे भाई वरुण के साथ साम्राज्ञी के महल में होने वाली संगीत-गोष्ठी मे भाग लेने के लिए घर से निकली थी। मार्ग मे दोनों भाई-बहन इसी प्रकार के किन्ही लपटों के हाथो में पड़ गये। रात तक घर नही लौटने पर जलसेना अधिनायक ने खोज आरम्भ की। दडधरों के अधिनायक को भी सूचित किया गया, सशस्त्र सेनाओं से भी सहायता ली गयी। सारी लंका मे त्राहि-त्राहि मच गयी। प्रश्न जलसेना-अधिनायक के बच्चों का था, इसलिए दंडधरो ने भी अपना स्वाभाविक आलस्य छोड़कर, आकाश-पाताल एक कर दिया; किन्तु बच्चो का कोई पता नही चला। तीसरे दिन सागरिका और वरुण के शव, समुद्र-तट की पहाड़ियो में पड़े मिले। जलसेना-अधिनायक के बच्चे थे, इसलिए सिंह-शावकों के समान अपने अपहरणकर्ताओं से जूझे थे। अपहरणकर्ता जाने संख्या में कितने थे—पर बच्चो के शरीरों पर घाव अनेक थे। बच्चों ने स्वयं को अपमानित नही होने दिया; सम्मान की रक्षा मे प्राण दे दिये। सागरिका के शरीर पर तो

घाव थे; किन्तु वरुण के शरीर पर करवाल के बीस घाव थे और फिर भी उस सिंह-पुत्र के मुख पर कहीं दीनता का भाव नहीं था।

सारी लंका हिल उठी थी। स्वयं राजाधिराज ने जलसेना-अधिनायक के घर जाकर, अपने मुख से शोक प्रकट किया था। दो ही तो बच्चे थे जलसेना-अधिनायक के। दोनों का इस प्रकार हृदयद्रावक वध हो जाना, इस अपराध-सहिष्णु लंका के लिए भी साधारण बात नहीं थी। बच्चे सुंदर थे, मेधावी थे, वीर थे, साम्राज्य के इतने बड़े अधिकारी के बच्चे थे—तो भी क्या हो सका? आज तक उनके हत्यारों का पता नहीं चल पाया। साधारण-जन के बच्चे होते तो कदाचित् उनकी हत्या का भी पता न चलता। पहाड़ियों में पड़े-पड़े उनके शव क्रमशः क्षय को प्राप्त होते और अन्ततः सागर की लहरों के थपेड़े उन्हें अपने साथ बहाकर ले जाते।

और विभीषण के मन में आज भी इस विषय को लेकर कोई द्वन्द्व नहीं है कि सागरिका और वरुण के हत्यारों का संधान जान-बूझकर नहीं किया जा रहा है। स्वयं राजाधिराज डरते होंगे कि संधान करने पर यदि अपराधी उनका अपना ही कोई सुपुत्र निकल आया तो?...

पिछले सप्ताह ही जिस अपराध से सारी लंका कांप उठी थी, आज वही अपराध स्वयं लंका का राजाधिराज कर आया है और सारा शासन-तंत्र उसका अभिनन्दन कर रहा है...धिक्कार है इस साम्राज्य पर! प्रजा के सम्मुख अपने चरित्र का कैसा सुंदर उदाहरण रखा है राजाधिराज ने... कैसा अनुकरणीय...!

सहसा नाना सुमाली ने सभागार में प्रवेश किया।

"आओ, पुत्र! मैं तुम्हें अपने वक्ष से लगा लूं और तुम्हारा अभिनन्दन करूं।"

विभीषण को लगा, किसी ने उनके कानों में दहकते हुए अंगारे भर दिये हैं...वृद्ध नाना का यह व्यवहार.. रावण को ताड़ना तो नहीं ही दी, उलटे उसका अभिनन्दन हो रहा है...सागरिका का हरण अपराध था, वह शोकपूर्ण और करुण घटना थी तो सीता का अपहरण कैसे अभिनंदनीय हो गया...

"वत्स! तुमने शत्रु-पत्नी का अपहरण कर एक ओर उसका क्षय कर

दिया और दूसरी ओर हमारा सिर गौरव से ऊचा कर दिया।"

विभीषण का हृदय जल उठा। स्वय को रोकना उनके लिए संभव नही रहा। "क्षमा हो, राजाधिराज ! असुरक्षित स्त्रियो के हरण में मुझे कोई वीरता दिखायी नही देती।"

रावण का उल्लसित चेहरा क्षणभर के लिए सकुचित हुआ और फिर उस पर घृणा के भाव स्पष्ट हो गये। सीता-हरण के लिए जाते हुए भी रावण ने विभीषण के विषय मे सोचा था। उसे विभीषण से यही आशा थी। यह व्यक्ति, जिसे आज तक रावण ने आश्रय दिया, भाई होने के नाते, अबाध धन-सपत्ति और अधिकार दिये—यह नैतिकता के नाम पर सदा रावण के कृत्यों का विरोध करता है।...रावण जिसका भला करता है, वही रावण का विरोध करने लगता है—शूर्पणखा हो या विभीषण...आज तक रावण ने सबको खरीदा है, किंतु विभीषण की अन्तरात्मा का क्रय न रावण का भय कर सका, न रावण का धन और न रावण द्वारा प्रस्तावित भेट में दी जाने वाली सुदरियों की सेना ! विभीषण अपनी एक सरमा से ही तृप्त है।

"यह राजनीति है, विभीषण !" रावण का स्वर अत्यन्त शुष्क था, "शत्रु को तेज-हीन और हताश करने के लिए सामरिक महत्त्व की एक चाल।" रावण के चेहरे पर एक क्रूर मुसकान उभरी, "इतने दिनों तक राज-सभा में रहकर भी तुम्हारी राजनीतिक बुद्धि का विकास नही हुआ।"

"कदाचित नही हुआ।" विभीषण का हृदय अपने आवेश से कठोर होता गया, "राजाधिराज ! विभीषण स्त्री के अपहरण को सामाजिक तथा मानवीय अपराध मानता है। यह राजनीतिक चाल नही है, यह कामुकता का खुला प्रदर्शन है। कामुकता को गौरवान्वित करना गर्व का विषय नही है।"

"राजाधिराज के कृत्यों को गौरवान्वित करने मे क्या दोष है, विभीषण ?" रावण के बोलने से पूर्व सुमाली बोला।

"दोष कहां है।" विभीषण वक्रता से मुसकराये, "राजाधिराज के द्वारा एक सीता का अपहरण होता है, तो लंका मे बीसियों नागरिकाओं

का हरण होता है।"

"यह पिताजी को अपयश देने का प्रयत्न है।" मेघनाद दांत पीसकर बोला।

"मैं अपयश की नहीं, परपरा की बात कर रहा हू।" विभीषण का चेहरा शात और स्वर गभीर हो उठा, "प्रजा के सम्मुख दुष्ट उदाहरण रखने से दुष्ट तत्त्वों को बल मिलता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखो और गंभीरता से सोचो, इद्रजित।" विभीषण का स्वर पुनः आवेशमय हो उठा, "इसमें न राजनीति है, न वीरता, न इसमें शत्रु-अशत्रु का प्रश्न है—मूल रूप में यह एक असहाय स्त्री के अपहरण की बात है। वह स्त्री कोई भी हो—यह पुरुष जाति का स्वार्थ है, उसकी पशु-वृत्ति है...अपने पक्ष की पशु-वृत्ति का समर्थन कोई अच्छी बात नहीं है। उसका प्रभाव लका से बाहर ही नहीं, लका के भीतर भी होता है। अन्य जातियों के लिए कठिनाइयां उत्पन्न करने के प्रयत्न में हम अपने लिए भी उतनी ही कठिनाइया उत्पन्न कर रहे हैं।"

"किंतु वह शत्रु-पत्नी है, विभीषण!" सुमाली ने दोहराया।

"रहने दीजिये, नाना!" रावण ने विवाद को रोक दिया,"इस वैरागी को पुनः उपदेश देने का दौरा पडा है। यह इस समय सम्मोहनावस्था में है। इसकी आखें अब कुछ नहीं देखेंगी, कान कुछ नहीं सुनेंगे। इस विकृत मस्तिष्क को हमारा प्रत्येक शत्रु अपना मित्र दिखायी पडता है। हमारा गौरव इसे कुकृत्य लगता है। मेरी समझ में नहीं आता कि मेरी मा ने मेरा शत्रु अपने ही उदर से क्यों उत्पन्न किया! यह कार्य किसी और के लिए छोड़ दिया होता, तो उसका क्या बिगड़ जाता।"

विभीषण आपे में लौट आये। राजपरिषद् का वातावरण अब तर्क-वितर्क का नहीं था। रावण जब इस मनःस्थिति तक आ पहुंचता था, तो राजसभा में विरोधी मत नहीं रखे जा सकते थे। ऐसे में या तो रावण का समर्थन किया जा सकता था, उसकी प्रशस्ति गायी जा सकती थी, या फिर मौन रहा जा सकता था। अन्यथा बहुत संभावना होती थी कि रावण के मुख से या तो कोई कठोर दंड उच्चरित हो उठेगा अथवा उसका चंद्रहास खड्ग नग्न होकर चमकने लगेगा...

विभीषण अपने स्थान पर बैठ गये। रावण की क्रुद्ध फुफकारती दृष्टि उन्हें घूरती रही। लगता था, नाग ने फन उठा लिया है और प्रतीक्षा मे है कि शत्रु में तनिक भी स्पदन हो और वह उसे डंक मारे ..किंतु विभीषण दम साधकर पडे रहे। फुफकारते नाग को दश का कोई अवसर नही मिला और थोडी-सी प्रतीक्षा के बाद वह दृष्टि लौट गयी

फिर विभीषण कुछ नही बोल सके। उनका मन ही नही रमा। उनके भीतर की हलचल इतनी उग्र हो उठी थी कि बाहर की बातो के लिए आखें और कान दोनो ही बंद हो गये।

आज ये सब लोग राम को अपना शत्रु बता रहे हैं, किंतु राम ने किया क्या है? वे इनके शत्रु है, या ये उनके शत्रु हो रहे है .आज रावण को लका से बाहर अपने शत्रु-ही-शत्रु क्यों दिखायी पड रहे है! किसी समय एक मित्र सहस्रार्जुन था—क्योकि रावण उससे पराजित हो गया था। एक मित्र वाली है, क्योकि रावण उसके व्यक्तिगत शौर्य से भयभीत है। मैत्री भी ऊपर-ही-ऊपर से दिखाने के लिए है, ताकि वाली रावण को कोई हानि न पहुचाये, अन्यथा बानरों के प्रति रावण का व्यवहार कभी भी मैत्रीपूर्ण नही रहा। शेष सब शत्रु-ही-शत्रु है—क्यों? ताकि उनकी भूमि हथियाई जा सके, उनकी स्त्रियो का अपहरण किया जा सके, उनके खनिज पदार्थ और उनकी कृषि-सपदा को लूटा जा सके। मैत्री मे तो दूसरे पक्ष को भी कुछ अधिकार देने पडेंगे, शत्रु का तो कोई अधिकार होता नही—उसका सब कुछ छीना जा सकता है, उसका सर्वांग शोषण हो सकता है... तो फिर क्यों न रावण सबको अपना शत्रु बनाये...अपने भाई कुबेर तक को तो शत्रु बनाकर उसकी लका छीन ली . जाने कैसे अभी तक विभीषण यहा टिके है.. लोक-लाज है, या सचमुच भ्रातृत्व इतना प्रबल होता है; अन्यथा रावण का अपना तो वही हो सकता है, जो लूट मे उसका साथ दे, निर्बलो और असहायो के शोषण मे उसकी सहायता करे . दुष्टों, लपटों तथा अत्याचारियो का हिंस्र पशुओं का-सा एक झुड साम्राज्य के पदाधिकारियो की पदवी लिये बैठा है..

किसी की सपत्ति छीन लो, या उसके प्राण ले लो, या उसकी स्त्री का अपहरण कर लो—वह अथवा उसका कोई सहायक विरोध करे तो उसको

अपना शत्रु घोषित कर अपनी लोलुपता और कामुकता की तृप्ति करो और फिर अपनी इन वृत्तियों को गौरवान्वित करो !

राम शत्रु हैं, तो रावण क्यों नहीं लड़ा राम से ? क्या आवश्यकता थी इस षड्यंत्र की ? अकेली, अबला, असहाय स्त्री को चुरा लाये और अब अपनी वीरता का बखान कर रहे हैं...वीर तो राम हैं। शूर्पणखा ने उसकी पत्नी की हत्या करनी चाही; किन्तु उसके भाई ने केवल अपमान-चिह्न देने के लिए, नाक और कानों को शस्त्र-चिह्नित कर छोड़ दिया। वे लोग नारी का सम्मान करना जानते हैं; अन्यथा रावण की नीति के अनुसार उन्हें भी या तो शूर्पणखा का भोग करना चाहिए था—अथवा अपने सैनिकों के बीच उसे सर्वभोग्या बनाकर रखना चाहिए था...किन्तु उन्होंने...

आज रावण अपनी कामुकता को वीरता कहता है...स्त्री-अपहरण वीरता है तो जब विद्युज्जिह्व शूर्पणखा को ले गया था तो रावण ने उसकी वीरता का अभिनन्दन क्यों नहीं किया ? क्यों जाकर उससे युद्ध किया और उसकी हत्या की ? जब कुंभीनसी को मधु लंका से निकालकर ले गया था तो प्रतिशोध के लिए रावण को मधुरा तक धावा मारने की क्या आवश्यकता थी ? क्यों नहीं उसने मधु की वीरता पर प्रसन्नता प्रकट की ?...फिर शूर्पणखा और कुंभीनसी तो अपनी इच्छा से अपने वरे हुए प्रेमियों के साथ गयी थीं...

सहसा विभीषण का ध्यान उचट गया; सभा भंग हो चुकी थी और रावण अपने स्थान से उठकर खड़ा हो चुका था।

विभीषण भी उठ खड़े हुए।

जाते-जाते रावण विभीषण के पास रुका, "काफी समझदार हो गये हो। तुम्हारा बाद का व्यवहार हमें बहुत पसन्द आया।"

विभीषण चुपचाप उसे देखते रहे। रावण अपने अधरों पर एक वक्र मुसकान ले आया और आगे बढ़ गया।

विभीषण का रथ अपने महल की ओर भागा जा रहा था।

हां ! बाद का व्यवहार तो रावण को पसन्द आया ही होगा। वह

और चाहता ही क्या है—सब अपना मुख सी लें, मस्तिष्क मे ताला लगा लें, और या तो सिर झुकाकर मौन खड़े रहें या उसकी हा मे हा मिलाएं। . .आज कुम्भकर्ण राजसभा मे नही था। वह होता, तो क्या कहता ? क्या वह भी परस्त्री-हरण के लिए इसी प्रकार रावण का अभिनन्दन करता ?...विभीषण का मन कहता है कि वह नाना अथवा मेघनाद के समान रावण का अभिनन्दन नही करता। वह अवश्य ही रावण को प्रताड़ित करता। उसके स्वर को रावण इतनी सुविधा से दबा भी नही पाता। कुम्भकर्ण का बल ऐसा नही है कि रावण सहज ही उसका दमन कर सके। तभी तो उसके साथ निवटने के लिए, रावण ने दूसरा मार्ग अपनाया है। उसने कुम्भकर्ण को आठो पहर मदिरा में डुबोए रखने का प्रवन्ध कर दिया है। कुम्भकर्ण जागता है तो मदिरा पीता है। पीते-पीते निढाल हो जाता है, तो सो जाता है। जागता है तो पुनः मदिरा पीने लगता है...रावण ने कुम्भकर्ण को यदि मदिरा के भाड मे परिणत न कर दिया होता तो आज राक्षस-साम्राज्य में कुम्भकर्ण, रावण का सबसे वडा प्रतिद्वन्द्वी होता—वह न बुद्धि में रावण से कम है, न बल में, न शस्त्र-क्षमता में, न युद्ध-कौशल मे...किन्तु बेचारा आरम्भ मे ही रावण से मात खा गया। युद्ध और राजनीति के मार्ग पर अग्रसर होने देने के स्थान पर, रावण ने उसे मदिरा के भाडो की ओर अग्रसर कर दिया...

राक्षस-साम्राज्य के इस अन्यतम राजनीतिज्ञ और योद्धा को स्वय रावण नष्ट कर रहा है—कुभकर्ण का सहोदर भ्राता। रावण ने यह नही सोचा कि वह अपने भाई का जीवन नष्ट कर रहा है, उसने यह भी नहीं सोचा कि वह अपने साम्राज्य को एक योग्य व्यक्ति की क्षमताओ से वंचित कर रहा है...वह तो राजनीतिज्ञ है; राजनीतिज्ञ और कुछ नही देखता, मात्र अपना स्वार्थ देखता है...किसी का कुछ भी नष्ट हो जाए, किन्तु उसका कोई प्रतिद्वंद्वी सक्षम न रह जाए। रावण का अपना भाई भी उसके समान समर्थ नही होना चाहिए...

और दूसरी ओर कुंभकर्ण है कि सब-कुछ जानते-बूझते भी वह रावण पर आच नही आने देगा। कुभकर्ण सचेत हो, न्याय-अन्याय के निर्णय मे समर्थ हो तो वह रावण के कृत्य का समर्थन कभी नही करेगा; किन्तु इसी

दुष्कृत्य के लिए कोई रावण को दंडित करना चाहे तो कुंभकर्ण रावण की ढाल बन जाएगा . मदिरा के अतिरेक से क्रमशः क्षय होने वाले शरीर में एक अद्भुत स्नेही हृदय है उसी स्नेह के आधार पर रावण ने कुंभकर्ण को भी अपनी हां में हां मिलाने वाला सामान्य सभासद बना रखा है...पर विभीषण उसकी हां में हां कैसे मिला सकते हैं?.. राक्षसों के वर्चस्व, अपने शत्रुओं और अपनी वीरता की आड़ में रावण क्या कर रहा है... मानव के पशुत्व का गौरव-गान। वह मनुष्य के भीतर सोये हुए पशु को न केवल जगा रहा है, उसे बल भी दे रहा है—अबाध भोग...कोई संयम नहीं, कोई मर्यादा नहीं। सारे विश्व का धन बहता हुआ लंका में आ रहा है, किन्तु प्रत्येक लंकावासी अपने भोजन-भर के लिए भी आश्वस्त नहीं है। एक ओर निर्बाध विलास है तो दूसरी ओर सीमाहीन भूख। ऐसे भी हैं जो अपने बच्चों को बेचने को बाध्य हों और ऐसे भी हैं जो सैकड़ों दासों की सेवा ग्रहण करते हुए भी अभी प्रसन्न नहीं हैं। राजपुत्री और राजपुरुषों का आचरण ऐसा है कि वे अपने सिवाय प्रत्येक पुरुष को दास तथा प्रत्येक स्त्री को वेश्या बना देना चाहते हैं...धन से न्याय मिल सकता है, विद्या मिल सकती है, सम्मान मिल सकता है, मानव शरीर मिल सकता है—जीवित शरीर शोषण अथवा भोग के लिए; मृत शरीर भक्षण के लिए . धन नहीं है, तो भोजन भी नहीं, वस्त्र भी नहीं, औषधि नहीं, सुरक्षा नहीं, न्याय नहीं ..धनवान के लिए लंका स्वर्ग है और धनहीन के लिए नरक !

मदिरा का कितना प्रचलन हो गया है लंका में, जैसे लंका के चारों ओर जल का नहीं, मदिरा का समुद्र उफन रहा हो। संस्कृति के नाम पर रावण की राजधानी में सार्वजनिक मनोरंजन के लिए जो नाटक होते हैं, वे हिंसा, विकृत नैतिकता, बलात्कारों, अवैध संबंधों, वेश्या-विटों के संबंधों से भरे पड़े हैं। प्रदर्शन के लिए नारी का नग्न शरीर सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है।...नयी पीढ़ी आंख खोलते ही विलास, कामुकता तथा अपराध को पहचान लेती है। ये बातें उसके मन में ऐसी बस जाती हैं कि उनकी आंखें और कुछ देख ही नहीं पातीं। विद्यालयों के आचार्य, साम्राज्य के कवि तथा विद्वान मदिरा-लोलुप, लोभी और कायर हो गये हैं। उनके जीवन में एक

ही तथ्य रह गया है—राजाधिराज की सेवा मे चाटूक्तिया प्रस्तुत करना और साम्राज्य से धन ऐंठने का प्रयास करना।

रथ रुक गया।

विभीषण अपने कक्ष मे आये तो सरमा ने हंसकर स्वागत किया, "आज समय कुछ अधिक लग गया, नाथ ! श्रात भी दिखायी दे रहे है।"

"हा, समय तो अधिक लगना ही था।" विभीपण पलग पर लेटते-से बोले, "राजाधिराज विजयी होकर लौटें तो पार्षदो को अपनी स्वामिभक्ति दिखाने के लिए अधिक समय चाहिए होता है।"

"कौन-सी नयी विजय कर आये है राजाधिराज ?" सरमा कौतुक भरे स्वर में बोली, "जिसने प्रिय को थका दिया।"

"ठीक कहती हो, सरमा !" विभीपण भी कुछ हलके स्वर में बोले, "राजाधिराज विजयी होकर लौटते है तो मेरे लिए परेशानी बढ़ जाती है।"

"आप व्यर्थ ही उद्विग्न क्यों होते है ?" सरमा का स्वर स्निग्ध हो उठा, "अपने काम से काम रखिये। ससार-भर की बातें सोच-सोचकर स्वय को पीड़ित क्यो करते हैं।"

विभीपण मुसकराये, "कुछ लोगो की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वे ससार-भर की बातें सोचे बिना रह नही सकते। वे अपने काम से काम रख नही सकते।...और फिर प्रिये ! अपनी आखें बद कर लेने से ही तो हम समाज से असंपृक्त नही हो जाते। रहना तो इसी समाज में है। हम चाह कर भी इससे असपृक्त कैसे हो सकते है ?"

"कौन-सा मोर्चा मार आए राजाधिराज ?"

"बहन पति का अपहरण नही कर सकी तो भाई पत्नी का अपहरण कर लाया।"

"ओह ! वैदेही का अपहरण !"

"हां ! सूचना मिल गयी ?"

"यह सूचना तो लका की हवा मे तैर रही है।" सरमा बोली, "पर मैंने सुना है कि इस अपहरण के लिए राजाधिराज को उकसाने वाली बहन

शूर्पणखा भी इसमे प्रसन्न नही है, और बहन मदोदरी की भी इस विषय मे राजाधिराज से पर्याप्त कहा-सुनी हुई है।"

"भाभी का तो मुझे पता नही।" विभीषण बोले, "किन्तु अपनी बहन के विषय मे निश्चित रूप से कह सकता हू कि वह इससे प्रसन्न नही होगी। बहन की ईर्ष्या की कोई सीमा नही।"

"बहन तो ईर्ष्या के कारण व्यग्र है। आप क्यो उद्विग्न है? आपके मन मे तो ईर्ष्या नही है?" सरमा मुसकरा रही थी।

"मैं समाज मे फैलते पशुता के इस विष के कारण उद्विग्न हूं।" विभीषण बोले, "इस विष के कारण ससार मे आज कोई भी कही भी सुरक्षित नही है।"

"आप तो है ?"

"इस प्रकार सात्वना न दो, सरमा।" विभीषण के स्वर मे पीडा उभर आयी, "मैं कैसे सुरक्षित हू। सागरिका और वरुण के अपहरण से क्या मेरा मन नही रोया? और यदि अपने तक सीमित होकर ही जीना है, तब भी सोचना पडेगा कि जब समाज मे पशुता की ऐसी आधी चल रही हो, तो जाने उसकी चपेट मे कब कौन आ जाए। कौन कह सकता है सरमा! कल तुम्हारा ही अपहरण हो जाए।"

"कौन करेगा ऐसा साहस?" सरमा ने मुसकराने का प्रयत्न किया; किंतु उसके स्वर का धीमापन, उसकी घबराहट प्रकट कर रहा था, "मैं वीरवर विभीषण की पत्नी हूं—राजाधिराज के अनुज की पत्नी!"

"राम कम वीर नही हैं।" विभीषण का स्वर गंभीर था, "मदिरा मे धुत्त पशु जब आखेट के लिए निकलते है, तो क्या उन्हें दिखायी पड़ता है कि कौन किसकी पत्नी है।.. मान लो कि कल राजाधिराज का ही मन तुम पर आ जाए।"

"नही!" सरमा का स्वर सहमा हुआ था, "मैं उनके भाई की पत्नी हूं।"

"लंपटता इन सबधों को नही पहचानती, सरमा!" विभीषण उसी स्वर मे बोले, "आज मै उनका भाई हूं; अपनी नीतियों का विरोध करते

देख, कल वे मुझे अपना शत्रु घोषित कर दें, तो क्या देर लगेगी तुम्हारा हरण होते ? आखिर वैदेही का क्या दोष है—यही तो कि उसके पति को राजाधिराज ने अपना शत्रु घोषित कर दिया है।"

"फिर भी !" सरमा वैसे ही भीत स्वर मे बोली, "मैं उनकी अनुजवधू हू—कोई इतना पशु कैसे हो सकता है ?"

"रुमा भी वाली की अनुजवधू थी।" विभीषण जैसे स्वप्न मे बोल रहे थे, "जब मनुष्य पशु हो जाता है, तो फिर कैसा अनुज और कैसी अनुजवधू !"

सरमा कुछ नहीं बोली। फटी-फटी आखो से अपने पति को देखती रही।

सरमा की फटी आखें देख विभीषण भी मौन रह गये, अन्यथा उनका कल्पना-अश्व तो और भी ऊची छलागें लगा रहा था। सरमा तो प्रौढ़ महिला थी—ससार को जानती-बूझती थी...किंतु उनकी पुत्री—कला ? जिसे अभी ससार के विधि-विधान का कुछ भी ज्ञान नही था। लका के समाज का तो तनिक भी नही। वय सधि को पीछे छोड़ती हुई तरुणी, जो शायद अपने मन मे उठती भाव-तरगों को भली भाति पहचानती भी नही। वह यदि लपटों के हाथ चढ गयी, तो उसकी रक्षा कौन करेगा ?...

विभीषण का सिर चकराने लगा था...

रात को विभीषण पलग पर लेटे तो दिन-भर की घटनाए उनकी आंखो के सम्मुख घूमने लगी।...रावण ने जब-जब इस प्रकार के कृत्य किये थे, तब-तब विभीषण के मन मे विरोध जागा था। हर बार विभीषण ने सोचा था कि वे रावण का विरोध करें और उसे इन घृणित कार्यों से रोके, किन्तु रावण की शारीरिक शक्ति, उसका शस्त्र-कौशल, उसकी राजनीतिक सत्ता तथा उसके समर्थकों को देखकर, वे सक्रिय रूप से कुछ करने का साहस नही कर पाये थे। बार-बार वे अपनी असमर्थता को यह समझकर पी गये थे कि यह रावण का कुछ दिनो का उन्माद है—कब तक उसका अविवेक उसे अशुभ मार्ग पर चलाता रहेगा।...किन्तु अब सिद्ध हो चुका था कि यह रावण के यौवन का उन्माद अथवा अविवेक मात्र नहीं

था, यह तो रावण की प्रकृति है—जो उसके प्राण रहते नहीं जायेगी। उसकी इन्द्रियां शिथिल हो जायेंगी तो वह अपनी कामुकता की तृप्ति के लिए कोई और मार्ग खोज लेगा...उससे पीड़ित मानवता का त्राण कभी नहीं होगा और अब उसका सुयोग्य पुत्र शासन-व्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण होता जा रहा है। ऐसा पुत्र—जो पिता की कामुकता का भी समर्थन करता है। ऐसे पिता तो विभीषण ने देखे और सुने थे, जो संतान के प्रति अपने वात्सल्य में बंधे-बंधे अपनी संतान की दुश्चरित्रता की ओर से आंखें मूंद लेते हैं, किन्तु ऐसा पुत्र तो उन्होंने पहली बार ही देखा है, जो न केवल अपने पिता की दुश्चरित्रता को स्वीकार करता है, वरन उसका समर्थन करता है और कदाचित उसे प्रोत्साहित भी करता है।...रावण की इंद्रियां शिथिल हो भी गयीं तो क्या—उसने कितने ही रावण और तैयार कर दिये हैं। इंद्रजित और उसके भाई...

किसे सुख मान बैठा है रावण? संयम के अभाव को? संयम प्रकृति का नियम है। और प्राकृतिक नियम को तोड़ने वाला व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता। भौतिक सुख किसमें है? खाने में—स्वादिष्ट और गरिष्ठ भोजन के खाने में? व्यक्ति के खाने की मर्यादा होती है। स्वाद के पीछे अधिक खाकर मनुष्य रोगों को आमंत्रित करता है। लंका के धनाढ्य वर्ग में लोग भोजन के अभाव के कारण नहीं, भोजन के अतिरेक से रोगी रहते हैं।.. मानसिक सुख क्या है? आत्मप्रशंसा, अन्य लोगों द्वारा की गयी चाटुकारिता! उससे अहंकार ही तो स्फीत होगा। अहंकार अपने-आप में ही कष्ट का कारण बन जायेगा। कैसा विचित्र है प्रकृति का संतुलन; और कैसी जटिल व्यवस्था है! अपनी सीमित दृष्टि से जिसे सुख मानकर मनुष्य ललक से उसकी ओर झपटता है, वही उसके दुःख, क्लेश और क्षय का कारण होता है। अंधा है मनुष्य! धन की मृगतृष्णा में स्वयं को ऐसा जकड़ता है कि दलदल में धंसने के समान आकंठ उसमें जा धंसता है। धन का स्वामी न रहकर धन का दास हो जाता है।...मानवीय धरातल पर तो धन का सुख उसके समान वितरण में है—उसके जनहित में व्यय करने में है। किन्तु शोषण द्वारा अर्जित धन को वह मोहांध जनहित में कैसे व्यय कर सकता है—वह तो उसका सुख भोगने के लिए स्वयं को पशु बनायेगा

उनकी गदा उठी, तो उसे रोकने के लिए रावण का खड्ग उठेगा...इस सारे अनाचार का रक्षक वही है—और उसका तनिक-सा भी विरोध रावण का ही विरोध है ..रावण की प्रकृति रच मात्र भी सहिष्णु नही है...

और यदि इस समय विरोध ही करना हो तो सबसे पहले रावण की लपटता का ही विरोध होना चाहिए, रक्षा करनी हो तो सबसे पहले वैदेही की ही रक्षा होनी चाहिए.. है विभीपण मे साहस ? अशोक वाटिका मे जाकर, रक्षकों को मार भगा, सीता को वे सुरक्षित राम के पास पहुंचा सकते है ? . विभीपण की कल्पना मे रावण का क्रुद्ध-क्रूर रूप उभरा। क्रोध से फट आयी आखे और नग्न खड्ग पकडे, उठी हुई भुजा।...रावण ने अपने बहनोई का वध कर दिया तो क्या विभीपण को वह छोड़ देगा... और इंद्रजित ? रावण के मन में अपने भाई के प्रति कदाचित करुणा जाग जाए; किन्तु इद्रजित के मन में कोमलता कहा ?

विभीपण को लगा, उनका मन असुरक्षा-भाव से घबरा उठा है। कैसा विचित्र होता है मनुष्य। न्याय की रक्षा से पहले वह अपनी रक्षा करना चाहता है। अपनी असुरक्षा का ध्यान आते ही वह या तो अत्याचार से समझौता कर लेता है या उसकी ओर से आखें मूद लेता है।. .सदा ऐसा ही होता आया है विभीपण के साथ। हर बार उनके भीतर उठे विरोध और विद्रोह के भाव को, आत्मरक्षा के भाव ने दबा दिया है; और रावण का भाई विभीपण कभी नही कह सका कि रावण अत्याचारी है... विभीपण ने इस नगरी में सदा स्वय को असहाय और बाध्य पाया है। परिणामत. उनकी जिह्वा छटपटाकर शांत हो जाती रही है। खड्ग कभी कोप से बाहर नही निकला, गदा कभी प्रहार की मुद्रा में ऊपर नहीं उठी... किन्तु घुटन और आत्मदमन की भी कोई सीमा होती है, स्वयं अपने-आपको धिक्कारने का भी कोई अंत होता है या नही ? जब इतने आत्मदमन के पश्चात भी विभीपण स्वयं को इस राक्षस नगरी के अनुकूल नही बना पाये; आज तक वे रावण के आमोद-प्रमोद से तनिक-सा भी सुख नहीं पा सके, तो क्यों नही वे मान लेते कि उनका तथा रावण का टकराव अवश्यम्भावी है। अंततः किसी दिन तो उन्हे रावण उठी हुई ... परिणाम चाहे कुछ हो...राव[illegible] ...ी ही होगी।

...मर...कब

वह दिन आयेगा, जब न्याय का भाव आत्मरक्षा के भाव से भी प्रबल हो उठेगा ? कब गौरवशाली मृत्यु अपमानित जीवन से अधिक श्रेयस्कर लगेगी ? इस प्रकार दबे-घुटे, अपमानित-अवमानित जीवन मे ही उन्हें कौन-सी उपलब्धि हो रही है, जिसका सुख वे छोड नही पा रहे ? उनकी मृत्यु हो गयी तो ससार की क्या क्षति हो जायेगी...

किन्तु सरमा ! सरमा की रक्षा कौन करेगा ? राम तथा लक्ष्मण जैसे वीरो के होते हुए भी रावण सीता का अपहरण कर लाया, तो विभीषण के न रहने पर सरमा जैसी सुन्दरी की क्या गति होगी इस राक्षस नगरी में...सरमा अब तरुणी नही रही, नवयौवनावस्था और यौवनावस्था को पार कर प्रौढ़ावस्था की ओर बढ रही है...विभीषण की दृष्टि सरमा के चेहरे पर ठहर गयी ..किन्तु पुरुष के लिए वह आज भी लुभावनी है। लंका में पुरुष के संरक्षण के बिना ऐसी स्त्री सुरक्षित नही है।...अपने लिए न सही, सरमा के लिए तो उन्हें जीवित रहना ही होगा...

विभीषण की इच्छा हुई, अट्टहास कर स्वय पर हस पड़ें; या स्वय को ऐसा धिक्कारें कि किसी को मुख न दिखा सकें...कैसी आड ढूढ निकाली है अपनी कायरता के लिए...अपने लिए नही जीना, सरमा की सुरक्षा के लिए जीना है। अपनी कायरता भी छिपा ली और परमार्थ का गौरव भी ओढ लिया...

विभीषण का ध्यान सहसा सरमा से हटकर सीता की ओर चला गया। सरमा उनकी पत्नी है, उसकी रक्षा तो उनका धर्म है ही; किन्तु न्याय और धर्म की मर्यादा इतनी ही तो नहीं है कि अपनी सुरक्षित पत्नी की रक्षा का दंभ किया जाए। जब कभी किसी अन्यायी की दृष्टि सरमा पर पड़ेगी और उसका हाथ सरमा की ओर बढेगा, तब विभीषण उसकी रक्षा करेंगे। किन्तु सीता ? सीता का अपहरण तो हो चुका। रावण उन्हे लंका में ले भी आया है...उनकी रक्षा के लिए क्या किया है विभीषण ने ?...प्रश्न यह है कि क्या सीता की रक्षा हो भी सकती है ?...उड़ता-उड़ता समाचार मिला था कि महारानी मदोदरी ने राजाधिराज को बाध्य किया है कि सीता को अपने पति को भूलने के लिए एक वर्ष का समय दिया जाए...संभव है यह

सत्य हो, अन्यथा रावण सीता को अशोक वाटिका में क्यों रखता ? पर अशोक वाटिका मे रहने भर से ही सीता सुरक्षित हैं क्या ? अशोक वाटिका भी तो रावण का प्रमद वन ही है।. .सभवतः भाभी को विश्वास हो कि वर्ष भर के लिए सीता सुरक्षित हो गयी...पर भाभी सीता की सुरक्षा क्यो चाहती है ? क्या उन्हे राम का भय है ? क्या वे सीता की रक्षा कर, राम के क्रोध से अपने परिवार को बचाना चाहती हैं ? तो क्या वे समझती हैं कि राम वर्ष-भर मे आकर सीता को छुड़ा ले जाएगे ? या इस अवधि में सीता को लौटा देने के लिए वे सम्राट को सहमत कर लेंगी ?

रावण मान कैसे गया ? रावण की प्रकृति को थोड़ा-सा भी जानने वाला व्यक्ति तत्काल कह देगा कि इतना वडा त्याग रावण के लिए संभव नही है...कौन-सी शक्ति है भाभी के पास अपने पति को बाध्य करने के लिए...इद्रजित ?...सीता-हरण के लिए रावण की जो सबसे बड़ी शक्ति है, वही सीता की रक्षा के लिए भाभी की शक्ति है...एक इंद्रजित ही अब पति-पत्नी दोनो की शक्ति हो गया...

क्या राम जान पाएगे कि सीता को कौन ले गया ? जान गये तो लंका में आने का साहस कर पाएगे ? पंचवटी में उन्होंने अद्‌भुत वीरता तथा युद्ध-कौशल दिखाया है; पर लका...? समुद्र...और फिर रावण की सेना... क्या सोच रही हैं भाभी ?...

रावण तुल जाये तो लका में सीता की रक्षा विभीषण नही कर सकेंगे। परतु अपना विरोध तो उन्हे प्रकट करते ही रहना चाहिए। संभव है, रावण का मनोवल ही कुछ कम हो।

विभीषण चौंके। आज सहसा ही उनके मन ने आत्मसाक्षात्कार किया था...कैसी विचित्र बात थी...विभीषण के मन में सीता की सुरक्षा के लिए अपने भाई के शत्रुओं की सहायता करने का भी विचार आ रहा था...जाने कब से रावण की क्रूर प्रकृति के विरुद्ध विभीषण का मन विद्रोह कर रहा था, किंतु यह उन्होंने आज ही पहचाना था कि अब अपने भाई के प्रति उनके मन मे ऐसा कोई स्नेह-सूत्र नही रह गया था, जिसके कारण वे उनके अन्याय का भी समर्थन कर सकें।

विभीषण का चिंतन-प्रवाह पुनः टूटा...वे सब भविष्य की बातें है। संभव है, वे पुनः रावण को समझाने का प्रयत्न करें। मंदोदरी भाभी और बहन शूर्पणखा भी अपने ढंग से सीता की रक्षा का प्रयत्न करेंगी। सभवतः राजाधिराज के मत्रियों मे अविन्ध्य भी इस अपहरण का समर्थन नही करेंगे .किंतु इस समय भी वैदेही की सुरक्षा के लिए कुछ-न-कुछ करना होगा ..और कुछ नहीं तो सांत्वना के दो शब्द ही सही...प्रात. ही वे सरमा से बात करेंगे। यदि स्वयं सरमा जा सके...या कला के हाथ वैदेही को कोई सदेश भेजा जा सके...

८

सीता ने उसे पहचानने का प्रयत्न किया, किंतु उन्हें तनिक भी याद नही आ रहा था कि उसे उन्होंने कभी कही देखा था। उसके अधरों से परिचय की ही नही, मैत्रीपूर्ण स्निग्ध मुसकान झड रही थी। नहीं ! यह अभिनय नही हो सकता। उसकी आंखों में जो पारदर्शिता थी, वह स्पष्ट कह रही थी कि यह अभिनय नही है। भावों की इतनी ईमानदार अभिव्यक्ति...कौन है यह ?

अंधेरा हो चुका था। पहरे पर नियुक्त राक्षसिया अपना कार्य समाप्त कर प्रायः इसी समय अपने-अपने घरो को लौट जाती थी। रात के लिए बहुत कम रक्षिकाएं होती थीं—वे भी प्रायः सो जाती थीं। एक निश्चित दूरी से परे कही पुरुष प्रहरियों के कर्कश शब्द सुनायी देने लगते थे...आज जाने क्या हुआ था। एक त्रिजटा को छोड़ शेष राक्षसियां जा चुकी थीं और पुरुष प्रहरियों के वे निर्लज्ज और कर्कश स्वर अभी आरंभ नही हुए थे; जैसे सूर्यास्त होने के पश्चात चंद्रमा के उदय होने के बीच का अतराल...

इसी बीच यह तरुणी प्रकट हो गयी थी।...वह रक्षिकाओं में से नही थी। उसका वेश प्रहरियो का-सा नही था। उसके पास कोई शस्त्र भी नही

था। बहुमूल्य वस्त्रों में वह राजकुल की कन्या लग रही थी; किंतु वह रावण की पत्नियो, गणिकाओ, रखैलो, अपहृताओ मे से कोई नही हो सकती। उसका शरीर अभी पुरुष-संग से अछूता दीखता था। उसके चेहरे पर न तो पुरुष-भोग की उद्दडता थी, न दमन का त्रास। वह तो कोमल भावनाओ वाली सुकुमार कन्या थी। उसके चेहरे पर न मलिनता का भाव था, न कलुष की छाया।

उसने अत्यंत सुकुमार भगिमा से नमस्कार किया, "देवि वैदेही ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें।"

"कौन हो, बहन, तुम ? तुम्हें पहले तो कभी नही देखा।"

वह और भी निकट आ गयी और धीमे स्वर में बोली, "आप बैठें। कुछ निवेदन करने आयी हूं।"

सीता बैठी तो पास ही वह भी बैठ गयी, "मैं राजाधिराज रावण के छोटे भाई राजकुमार विभीषण की आत्मजा कला हूं, देवि ! प्रकट रूप से आपसे मिलना न मेरे लिए हितकर होगा, न आपके लिए कल्याणकारी। इसलिए माता ने मुझे इस समय भेजा है। नगर मे आज उत्सव होने के कारण रात्रि-प्रहरियों के आने मे अभी विलंब है। रक्षिकाएं जा चुकी हैं; वाटिका के बाहर की सैनिक चौकी मे यह मद्यपान का समय है; और भीतर त्रिजटा अकेली है। उनसे कोई भय नही ..इस शिथिलता में भी आप बाहर नही जा सकती, किंतु मैं..."

"इतना सकट उठाकर क्या कहने आयी हो, बहन ?" सीता व्यग्रता से बोली, "मैं तो जैसी भी हूं; किंतु यदि मेरा भला करते हुए, तुम पर अथवा तुम्हारे परिवार पर कोई विपत्ति आये..."

"नही ! किसी विशेष सकट की आशका नही है।" कला ने एक सतर्क दृष्टि इधर-उधर डाली, "फिर भी सावधान तो रहना ही होगा।"

"कहो, बहन ! क्या कहने आयी हो।"

"देवि ! माता ने कहलवाया है कि हमें अत्यंत खेद है कि इस दु:ख की स्थिति में भी अभी तक हम आपकी कोई सहायता नही कर पाये हैं। आर्य राम की पत्नी देवी वैदेही का अपहरण हो, वे बंदिनी बनायी जाएं, उन्हें प्रतिदिन दैहिक और मानसिक यातना दी जाए और हम कुछ भी न कर

सकें—यह हमारे लिए लज्जा का विषय है।...किंतु हम प्रयत्न कर रहे हैं। पिताजी ने राजाधिराज को समझाने का प्रयत्न किया है; किंतु राजाधिराज इस विषय मे किसी प्रकार का विरोध सहने को प्रस्तुत नही है। फिर भी प्रयत्न चल रहे हैं। राजाधिराज के मत्री अविध्य भी आपकी मुक्ति का प्रयत्न करेंगे; और देवि !" कला कुछ और भी निकट चली आयी तथा उसका स्वर और भी धीमा हो गया, "महारानी मदोदरी और बुआ शूर्पणखा—यद्यपि आपकी हितैषिणी नही है, फिर भी वे आपकी सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं।"

सीता ने चकित होकर कला की ओर देखा, "क्यो ?"

"यह मुझे ज्ञात नही।" कला जल्दी-जल्दी बोली,"मैं अब चलू, देवि !"

सीता जैसे निद्रा से जागी, "हा, चलो, बहन ! मेरे कारण तुम्हारा अनिष्ट न हो।...अपनी माता तक मेरा आभार पहुंचा देना।..और तुम्हारे सुरक्षित घर पहुचने की सूचना...?"

"त्रिजटा विश्वसनीय दासी है। वही आपको सदेश देगी।"

कला ने नमस्कार की मुद्रा मे हाथ जोड़े और जल्दी-जल्दी चलती हुई, वृक्षो के पीछे खो गयी।

सीता चकित-विस्मित-सी बैठी रह गयी।. इस सदेश का उन पर स्पष्ट प्रभाव हुआ था, जैसे कोई बहुत विश्वसनीय और प्रभावकारी सात्वना दे गया हो...मन पर घिर आयी निराशा की जकड़न शिथिल पड गयी थी। मन हलका-हलका-सा हो आया था...इस लका मे भी ऐसे लोग है जो रावण से असहमत हैं, सीता की सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील है।...वे लोग साधारण और प्रभावहीन नहीं हैं। विभीषण, अविध्य, महारानी और वह शूर्पणखा...पर वे लोग रावण का विरोध क्यों कर रहे है?...न्याय के लिए? शूर्पणखा के मन में कोई न्याय नही है। शूर्पणखा सीता की रक्षा चाहती है, राम को लंका में बुलाने के लिए?...वह सीता को चारा बनाकर राम का आखेट करना चाहती है...

सीता का मन काप उठा। यदि यही हुआ तो? सीता की लालसा में राम लंका मे आकर इन राक्षसों के पिंजरे में फंस गये...यह तो भयंकर षड्यंत्र है।...कला ने ठीक ही कहा है, शूर्पणखा सीता की हितू नही है...

कैसी विडंबना है ! सीता ने अपनी मुक्ति के विषय में ही सोचा है; लंका में आकर राम के बंदी होने के विषय में कुछ नहीं सोचा। इससे तो अच्छा है कि वे आत्महत्या कर लें, किंतु राम को उनकी आत्महत्या की सूचना न मिली तो...

पर राम को वे इतना असहाय क्यों मान रही हैं ? उन्होंने यह कैसे मान लिया कि राम आएंगे तो राक्षसों के चंगुल में फंस ही जाएंगे ? राम की रणनीति इतनी कच्ची नहीं है कि वे बलि पशु के समान अपना वध करवाने के लिए, सागर लांघकर लंका में आ जाएंगे। जो व्यक्ति सागर-संतरण का पराक्रम करेगा, वह क्या राक्षसों के हाथों निरीह मृत्यु को प्राप्त होगा...सागर ही तो राक्षसों की सबसे बड़ी सुरक्षा है। जो इस कवच को भंग करेगा, वह उसके पीछे छिपे, वक्ष को भी पीस डालेगा। राम और लक्ष्मण, एक बार लंका में आ तो जाएं...राक्षस सेना उनके सम्मुख ठहर नहीं पायेगी।...यदि सीता की मृत्यु हो गयी तो राम लंका की ओर क्या करने आएंगे ? सीता की सुरक्षा ही राम की प्रेरणा है—सीता को प्रत्येक कष्ट में जीवन-धारण करना होगा।

सीता को शूर्पणखा और मंदोदरी अपनी सखियों-सी प्रिय लगने लगीं...वे सीता के प्राणों को अक्षुण्ण रखेंगी, तो राम सीता को प्राप्त करने के लिए लंका में आएंगे...सीता इन राक्षसों का काल बनेंगी और अन्याय की चिता पर अपने प्रिय को पाएंगी...इतनी बड़ी उपलब्धि के लिए सीता को अपनी अग्नि-परीक्षा तो देनी ही होगी।

किंतु जाने आज सीता के मन को क्या हो गया था। वह एक दिशा में चलता ही नहीं था। कुछ देर तक एक दिशा में चलकर, पलटकर खड़ा हो जाता था और फिर निकट विपरीत दिशा में भागने लगता था ..अभी वह अपने राम को प्राप्त करने की संभावनाओं पर विचार करता हुआ, उल्लसित मृग के समान कुलांचे भर रहा था और अभी ही वह एक भयंकर प्रश्नचिह्न बनकर उनके सम्मुख खड़ा हो गया था—इतने दीर्घ काल तक रावण जैसे लंपट के आधिपत्य में रहने वाली सीता को राम और अयोध्या का समाज अंगीकार कर लेगा ?...क्या उन पर भी अहल्या के समान भ्रष्ट होने का लांछन लगाकर, उन्हें त्याग नहीं दिया जायेगा ?...यदि राम ने

भी यही किया तो ? ..सीता के सम्मुख सिवाय आत्महत्या के दूसरा मार्ग नही रह जायेगा। सीता मे अहल्या का-सा धैर्य नही है।.. किंतु अहल्या का उद्धारकर्ता सीता को लाछित कैसे करेगा ?...

कैसी विडबना है...इतने ऋषि, मुनि, तपस्वी राक्षसों द्वारा अपमानित और भ्रष्ट शरीर हुए...किसी ने उन्हे भ्रष्ट घोषित नहीं किया, किसी ने शाप नही दिया,...भ्रष्ट केवल स्त्री ही होती है।.. अपने पीढियों के सस्कारों के कारण स्त्री अपने सतीत्व को प्राणों का पर्याय मान बैठी है। शील भग होते ही वह आत्महत्या की बात सोचती है। ..उसकी रक्षा मे असमर्थ समाज को दडित क्यों नही किया जाता ?. विचित्र न्याय है, जो पीडित और अपमानित है, उसे ही अपराधी घोषित कर दंडित किया जाता है; और अपराधी पुरुष गर्व से छाती ताने खुले-आम घूमता है...इस न्याय-पद्धति को राम कभी स्वीकार नही करेंगे। वे रावण को गर्व से छाती फुलाए जीने का अधिकार नही देंगे...

आज कोई-न-कोई विशेष बात अवश्य थी। संध्या होते ही पुरुष प्रहरी आकर वाटिका मे जम गये थे। सीता ने इन प्रहरियो को देखा कभी नही था, उनके स्वर ही सुने थे। उनकी चौकी, लता-गुल्मों तथा वृक्षो की बाड के पीछे, कुछ दूरी पर स्थित लगती थी। वैसे भी दिन के प्रकाश के रहते, वे वहा नही होते थे; कदाचित दिन में पहरे का कार्य स्त्रियो को ही सौंपा गया था; रात का अधकार छा जाने पर ही पुरुष प्रहरियो का कार्य आरभ होता होगा। वे दिखायी नही पड़ते थे, किंतु अपने कोलाहल से उपस्थिति का बोध कराते रहते थे। न वे धीमा बोलना जानते थे, न मौन रहना। उनके स्वर कर्कश और अभद्र थे। एक-दूसरे से साधारण-सी बात करते तो यही आशका होती कि परस्पर झगड रहे हैं।

सीता का मन हुआ कि घेरा डालकर बैठी हुई स्त्री प्रहरियों से ही पूछ लें कि आज क्या बात है। किंतु तत्काल ही मन बुझ गया। इनमें से किसी ने भी उनसे कभी कोमलता का व्यवहार नही किया था। उनसे बात करने की इच्छा होती ही नही थी। हा, त्रिजटा होती तो बात और थी; किंतु वह अभी तक आयी नही थी। सभव है, आज उसका कार्यकाल रात

के समय हो...

पुरुष प्रहरी अपने स्थान पर जम गये थे और सदा के समान उनका कोलाहल आरंभ हो गया था।

"चल, भाई !" किसी एक ने कहा, "जब तक कोई विशेष कार्य नही है, थोडी द्यूतक्रीडा हो जाए।"

"मेरे पास धन नही है।" अन्य स्वर ने उत्तर दिया।

"बहाने मत बना !" पहला स्वर बोला, "अरे, यह बंदिनी कोई उड जाने वाली चिडिया नही है कि तू रात भर धनुप का संधान कर लक्ष्य-भेद के लिए सन्नद्ध खड़ा रहना चाहता है। यह तो एक सुकुमार राजकुमारी है। उसके लिए तो भीतर बैठी वे नकटी प्रहरी स्त्रियाँ ही पर्याप्त है।"

"मेरे पास धन नही है।" दूसरे स्वर ने अपना उत्तर दुहराया।

"लगता है, आज तेरी पत्नी ने तुझे फिर उपदेश पिलाया है और उसका तुझ पर प्रभाव भी हो गया है।" पहला स्वर बोला, "ले, थोडी मदिरा पी ! उपदेश उसमें घुल जायेगा। तब तेरी समझ मे आ जायेगा कि तेरी पत्नी ने द्यूत के विरुद्ध जो कुछ कहा था, वह कोरी बकवास थी, और शायद तुझे यह भी याद आये कि तेरे पास धन भी है।"

"मेरे पास धन नही है।" दूसरा स्वर खीझकर बोला, "इसमें याद आने न आने की क्या बात है। जब धन ही नही है, तो पत्नी का उपदेश क्या करेगा और तेरी मदिरा क्या करेगी ?"

पहला स्वर कुछ कोमल और मैत्रीपूर्ण हो गया, "क्यों नही है तेरे पास धन ? तुझे वेतन नही मिलता या तू उत्कोच नही लेता ?"

"वेतन क्यों नही मिलता !" दूसरा स्वर बोला, "पर तू ही तनिक सोचकर सच-सच बता कि उस वेतन में तू क्या-क्या कर लेगा ? धनाढ्यों की नगरी है लंका। एक प्रहरी का वेतन तो एक कोठरी के आवास-शुल्क मे ही निकल जाता है। फिर खान-पान कितना महगा है यहां। नि.शुल्क गुरुकुल एक भी नही है। पाठशालाएं इतनी महगी हैं। कोई किस-किस को रोये। स्वर्ण-नगरी है लंका। यहा तो वही रह सकता है, जिसके घर में स्वर्ण बहता है। एक बेचारे प्रहरी का वेतन क्या कर लेगा ?"

"तो उत्कोच क्यों नहीं लेता ?" पहला स्वर बोला, "तू कोई विभीषण है ?"

"उत्कोच कौन देगा यहां ?" दूसरा स्वर बोला, "मेरा तो पहरा ही ऐसे स्थानों पर लगता है, जहां एक कौड़ी की भी आय न हो। तेरा पहरा भी यहां है, बता तुझे आज क्या आय होगी ? कौन देगा तुझे उत्कोच ? और क्यों देगा ?"

"आज न सही।" पहला स्वर बोला, "आज तो विशिष्ट कर्तव्य के रूप में मुझे यहां भेजा गया है। प्रतिदिन तो यह नहीं होगा।"

"मेरे साथ तो प्रतिदिन यही होता है।"

"क्यों, तुझमें ऐसी क्या विशेषता है...?"

"मेरा नायक मुझसे रुष्ट है।"

"क्यों रुष्ट है तुझसे ? तू उसके लिए मदिरा का प्रबंध करके नहीं देता ?"

"नहीं ! लोगों से छीन-झपटकर उसके लिए मदिरा का प्रबंध तो मैं कर दिया करता था, किंतु एक दिन एक विशेष घटना घट गयी।"

"क्या हुआ ?"

"हमारी टोली में जो प्रहरी स्त्रियां हैं, उनमें एक है आकिकटका। बड़ी ही कटीली स्त्री है वह। एक रात अंतःपुर में उसके साथ मेरा पहरा लगा। उस रात हमारा नायक वहां आया और उसने आकिकटका को अपने साथ ले जाना चाहा। मुझे यह एकदम नहीं रुचा। कहां मैं सोच रहा था कि रात भर आकिकटका मेरे साथ अकेली रहेगी तो कुछ रस आयेगा। थोड़ी-सी मदिरा का भी प्रबंध मैंने कर लिया था। और कहां वह नायक उसे अपने साथ ले जाना चाहता था। मैं ईर्ष्याग्नि में जल उठा। वह रात्रि भर आकिकटका के साथ विलास करे और मैं यहां जाग-जागकर पहरा दूं... मैंने सोचा, ऐसा कभी नहीं होने दूंगा। नायक ने मुझे उन्नति तथा अधिक उत्कोच उपलब्ध होने वाले स्थानों पर नियुक्त करने के प्रलोभन भी दिये; किंतु मेरे मस्तिष्क पर मदिरा चढ़ी हुई थी और रात्रि-भर के लिए, आकिकटका के साथ एकांत विलास का विचार उन्माद बनकर मेरे में घुसा हुआ था। मैंने नायक से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि आ

का कर्तव्य यहा पहरा देना है, वह यहीं रहेगी। यदि नायक उसे यहा से हटा ले जायेगा तो शोर मचा दूगा। परिणामतः नायक उसे अपने साथ नही ले जा सका और मुझसे रुष्ट हो गया।"

पहला स्वर बहुत जोर से हंसा, "चलो ! उस रात तो अच्छा आमोद-प्रमोद रहा ..तुम्हारे पास मदिरा भी थी और आर्किकटका भी।"

"आमोद-प्रमोद क्या रहता !" दूसरा स्वर बोला, "मदिरा और आर्किकटका तो थी, किंतु एकात नही रहा। नायक ने अपनी चौकी पर पहुचते ही, पहरा दृढ करने के बहाने, दो और पुरुष प्रहरी हमारे साथ चिपका दिये।"

"ओ-हो-हो !" पहला स्वर बहुत जोर से हसा, "बड़ा दुष्ट है तेरा नायक, भाई।" वह एक क्षण के लिए रुका, "अच्छा बता, तेरी आर्किकटका तुझसे प्रेम करती है या नायक से ?"

"अरे, प्रेम-व्रेम क्या होता है।" दूसरा स्वर बोला, "लका मे निर्धन स्त्री-पुरुष को प्रेम का अधिकार है क्या ? उसके पति की किसी ने हत्या कर दी है। एक छोटा-सा बच्चा है। अपने और बच्चे के पालन-पोषण के लिए प्रहरी-दल मे भर्ती होने आयी। नायक को जच गयी.. बड़ी कटीली स्त्री है, मैंने कहा न। नायक ने उसे दल मे भर्ती कर लिया। तब से बेचारी पहरा भी देती है और नायक की सेवा भी करती है।"

दूसरा स्वर अपनी निश्चितता मे कुछ और ऊचा हो गया, "तो सब कुछ जानते-बूझते मूर्ख क्यो बना बैठा है। जब नगर ही वेश्याओं-कुट्टिनियों और विटो का है, तो तू अपने नायक को प्रसन्न क्यों नहीं कर लेता ? व्यर्थ में ही कगला बना बैठा है।"

"कैसे कर लू प्रसन्न !" दूसरा स्वर कुछ हताश था, "दो-चार कौड़ियों मे होता हो, तो प्रसन्न भी कर लूं। स्वर्ण-मुद्राओ की थैली कहां से लाऊ उसकी पूजा करने को ?"

"तू निपट अनाडी है, भाई।" पहला स्वर सहानुभूति से भर गया, "तू क्यों पूजेगा उसे स्वर्ण-मुद्राओ की थैली से। तू उसे प्रसन्न तो कर, अपने-आप स्वर्ण-मुद्राएं बरसने लगेंगी तेरे घर।"

"पर कैसे कर लू उसे प्रसन्न ?"

"अरे, नगर का कोई भी विट पहुंचा देगा। तुझे कोई नही मिलेगा, तो मुझे कहना, मैं प्रबध कर दूगा।" पहला स्वर बोला, "पर तेरी कोई सुदरी कन्या..."

सहसा वह मौन हो गया। दूसरा स्वर भी कुछ नही बोला। लगता था, कोई आ गया है।

सीता ने शाति की सास ली। जाने कौन आया है; पर कोई भी आया हो, अच्छा ही है। नही तो ये दोनों अपनी जुगुप्सित वार्ता इसी प्रकार सारी रात चलाये रखते और सीता के लिए एक क्षण की शाति भी असंभव हो जाती...कैसा नगर है! कैसी व्यवस्था है! सब ओर धन, विलास, व्यभिचार और अपराध का जुगुप्सापूर्ण वातावरण!

तभी स्फूर्ति से चलती हुई त्रिजटा ने वृक्षों की बाड़ के भीतर प्रवेश किया। उसके पीछे-पीछे कुछ अन्य दासियां थीं। वे स्त्री प्रहरी नहीं थीं—न उनका वेश वैसा था, न उनके पास शस्त्र थे। उनके शरीर का गठन भी वैसा नहीं था। निश्चित रूप से वे सामान्य दासियां थीं।

त्रिजटा आकर सीता के सम्मुख रुक गयी, "देवि! राजाधिराज रावण ने आपको दर्शन देने की इच्छा प्रकट की है। उन्होंने आदेश दिया है कि आपका शृगार किया जाए। अभी थोड़ी देर मे वे यहां पधारने वाले है।"

सीता अवाक् बैठी त्रिजटा का मुख देखती रहीं। तो यह समारोह महाराजाधिराज के आगमन के उपलक्ष में हो रहा है। पहले पुरुष प्रहरी आकर बैठ गये, और अब सैरंध्रियां आयी हैं। घावों पर नमक छिड़क रहा है यह दुष्ट राजाधिराज! एक तो अपहरण कर लाया और अब शृंगार का आदेश दे रहा है...

"देवी का क्या आदेश है?" त्रिजटा ने नम्रतापूर्वक पूछा।

"बहना री! पूछती क्या है।" प्रहरी एकटा बोली, "यह बड़ी धृष्ट नारी है। ऐसे कहा मानेगी! राजाधिराज ने आदेश दिया है तो करो इसका शृंगार। न माने तो हमसे कहो। हम इसके हाथ-पांव बाध देती हैं। शृगार हो जाए तो बधन खोल देना।"

त्रिजटा ने हंसने का अभिनय किया, "कहती तो ठीक हो, सखि! किंतु

इन दिनों मेरी प्रकृति कुछ भीरु हो गयी है। इसमें दो मन बैठे हैं। आज इनमें विरोध चल रहा है। कल वैदेही काल आएँ और लंका की राज-रानी बन जाएं तो आज की कठोरता का दंड नहीं देंगी मुझे ? नहीं, हना ! मुझे अपने शव के खंडों को लंका के [illegible] की कल्पना सुखद नहीं लगती।"

एकटा का मुख खुल गया, जैसे उसे अपनी दुर्बुद्धि का आभास हो गया हो। बोली, "तुम समझदार हो, [illegible] पड़ी।"

"तो देवी का क्या आदेश है ?" त्रिजटा ने [illegible] सीता से पूछा।

"मुझे तुम्हारे राजाप्रिवड़ के [illegible] की लेशमात्र भी इच्छा नहीं है।" सीता धीमे स्वर में बोली, "[illegible] ठीक नहीं है। प्रसाधनों से मुझे वितृष्णा है। मुझे क्लेश देना चाहो तो और बात है, अन्यथा जैसी हूं, मुझे वैसी ही रहने दो।"

"जैसी आपकी इच्छा।" त्रिजटा [illegible] दासियों की ओर मुड़ी, "तुम लोग जाओ। देवी वैदेही की अनुमति नहीं है।"

सीता ने कृतज्ञ दृष्टि से त्रिजटा को देखा। कला ठीक कह गयी थी कि त्रिजटा विश्वसनीय सिद्ध हो सकती है। त्रिजटा थी भी तो बहुत चतुर। एक ओर तो वह [illegible] भाव से सीता को सांत्वना देती रहती थी और दूसरी ओर अन्य राक्षसियों की उग्रता पर ठंडे जल के छींटे डालती रहती थी। यदि वह इस प्रकार चतुराई से काम नहीं लेती तो जाने वे राक्षसियां सीता के साथ कैसा व्यवहार करतीं...

रावण के आने में अधिक समय नहीं लगा। किंतु सीता को यह देखकर [illegible] आश्चर्य हुआ कि मंदोदरी तथा कुछ अन्य रानियां उसके [illegible] दासियों की तो सेना ही थी।...कैसा पुरुष है यह, [illegible] याचना करने के लिए भी अपना रनिवास साथ लेकर [illegible] के मन को तनिक भी नहीं समझता क्या ? क्या यह [illegible] पत्नियों और प्रेमिकाओं की प्रेम-भावना के [illegible] नहीं होती ?...या, यह इतना अहंकारी है कि [illegible] कैसा भी क्यों न हो, संसार की प्रत्येक स्त्री [illegible]

उसके चक्षु बंद कर दिए हैं, केवल जिह्वा ही खुली है इसकी। विवेक जैसे संज्ञा-शून्य हो गया है और केवल पाशविकता ही जाग रही है, अपने विवेक की हत्या कर, पशु-धरातल पर जी रहा है यह मनुष्य...

आज कुछ अधिक समारोहपूर्वक आया है। शरीर-सज्जा पहले की अपेक्षा अधिक थी। युद्ध-वेश नहीं था आज—रत्न, मनि-माणिक्य से लदा हुआ—आभूषणों की गठरी!

"कैसी हो, वैदेही?"

रावण के मुख पर खिली लोलुप मुस्कान, सीता के रक्त में जैसे विष के समान आ घुली। उनकी दीनता और भीरुता विलीन हो गयी। तेज में दमकते हुए स्वर में बोलीं, "एक आततायी द्वारा बंदी की गयी निरीह नारी कैसी हो सकती है, रावण?"

तत्क्षण उभर आयी अपनी अप्रसन्नता को रावण ने दबाया और सायास मुसकराकर बोला, "आततायी नहीं, जानकी! प्रेमी कहो। मैं तुमसे प्रेम की याचना करने आया हूं।"

"प्रेम करने वाला व्यक्ति अपना जीवन होम देता है, अपहरण नहीं करता।" सीता रुंधे हुए स्वर में बोलीं, "तुम मुझे एक वस्तु नहीं दे सकते।"

"ऐसा क्या है, वैदेही! जो मैं तुम्हें नहीं दे सकता। तुम एक बार स्वेच्छा से मुझे अंगीकार कर लो, मैं महारानी मंदोदरी को तुम्हारी प्रधान दासी नियुक्त कर दूंगा।"

सीता ने मंदोदरी की ओर देखा, वे धरती को घूर रही थीं मानो धरती में समा जाने का मार्ग ढूंढ रही हों। किंतु रावण का ध्यान उस ओर नहीं था।

"मैं किसी को अपमानित करना नहीं चाहती।"

रावण ने कुछ कहा नहीं। अपने पीछे खड़ी दासी को संकेत किया। दासियों की प्राचीर फटी और उनके पीछे से दासियों का एक समूह अपने हाथों में बड़े-बड़े थाल उठाए प्रकट हुआ। उन्होंने एक-एक कर सारे थाल लाकर सीता के चरणों के पास भूमि पर सजा कर, उनके आवरण हटा दिये।

"इन्हें देखो, जानकी!" रावण बोला, "ये वस्त्र और आभूषण केवल

लंका में ही उपलब्ध हो सकते हैं; और वह भी केवल तुम्हें। आज तक महारानी मंदोदरी को भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इतने धन से इंद्र का साम्राज्य क्रय किया जा सकता है, जानकी! यह सब कुछ तुम्हारा है।"

"प्रजा के शोषण से अर्जित धन का अपव्यय कर गौरव का अनुभव करते हो, दंभी!" सीता कठोर स्वर में बोली, "मैंने तुमसे यह नहीं मांगा था।"

रावण के शरीर का समस्त रक्त जैसे उसके मुख पर एकत्रित हो आया। उसकी मुट्ठियां बंध गयीं। वह आवेश में एक पग आगे भी बढ़ा; पर सहसा उसकी दृष्टि मंदोदरी पर जा पड़ी और वह रुक गया। क्रोध से उसका कंठ अवरुद्ध हो रहा था, "क्या मांगा था तुमने?"

"एक खड्ग! और तुमसे हो सके तो द्वंद्व-युद्ध।"

अपने ही विष से जलते नाग के समान, रावण का मुख काला और विकृत हो गया। उसने फुफकारती दृष्टि से एक बार सीता को देखा, फिर बरबस उसकी दृष्टि मंदोदरी की ओर घूम गयी। मंदोदरी अपने आत्म-गौरव मे लिपटी शांत और आश्वस्त खड़ी थी। रावण की गर्दन झुक गयी और बिना कुछ कहे, बद्ध पशु-सा, वह वाटिका से बाहर जाने के लिए मुड़ गया।

चलने से पूर्व मंदोदरी ने एक तरल दृष्टि से सीता की ओर देखा और अत्यंत धीमे स्वर में बोलीं, "तुम धन्य हो, देवि!"

वे रुकी नहीं। उनके पीछे-पीछे अन्य रानियां भी चल पड़ीं। पंक्ति-बद्ध दासियां थाल उठाए अपनी स्थिर गति से चलती गयीं। सबके अंत में भ्रमित-सी द्वंद्व-ग्रस्त एक युवती खड़ी रह गयी। उसके संशय भरी दृष्टि से सीता की ओर देखा। अनिर्णय से लड़ती हुई, उनके निकट आयी और सिर झुकाकर बोली, "इस देवबाला का दुर्भाग्य कि यह आपका यह रूप कुछ सप्ताह पूर्व न देख सकी।"

उसकी आंखों से अश्रु बह निकले। उसने दांतों से अपना अधर दबा लिया और भागती हुई, रानियों की उस शोभा-यात्रा में जा मिली।

सीता उन्हें जाते हुए देखती रहीं। जाने कौन-कौन इसमें अपनी इच्छा से सम्मिलित हुई है और कौन किसी के दबाव से; कौन किसी राजनीतिक

समझौते की बलि बनी है और कौन बलात् उठाकर लायी गयी है...मंदोदरी कह गयी है कि सीता धन्य हैं। क्यों? क्या किया है सीता ने? यही तो कि वे न प्रलोभन को मानती हैं, न भय को...कितना क्रुद्ध हो उठा था रावण! बार-बार मंदोदरी की ओर देखकर विवश हो जाता था। तो फिर क्यों लाया था मंदोदरी को अपने साथ?...सीता अब तक सुरक्षित हैं, तो उसमें अन्य लोगों का भी श्रेय है...कदाचित् मंदोदरी का भी हो...और राम जैसे रक्षक के आने की आशा...

कौन थी वह देखनेवाली? कितनी दुखिया थी बेचारी! कदाचित् सद्यः अपहृता है। सीता का यह रूप देख लेती तो कदाचित् उसका प्रतिरोध अधिक दृढ़ होता...कौन थी बेचारी?

६

मेघनाद ने आकर मां को प्रणाम किया।

"चिरंजीवी होओ, वत्स!"

"किस कारण स्मरण किया, मां?"

"बैठो, पुत्र!" मंदोदरी ने हल्के स्मित के साथ कहा, "क्या त्रिलोकविजयी पिता के ही समान जगद्विजेता पुत्र के पास भी महारानी कही जाने वाली इस स्त्री के लिए तनिक भी अवकाश नहीं है!"

मेघनाद ने चकित होकर मां की ओर देखा, "यह उपालंभ क्यों, मां? पति और पुत्र दोनों के प्रति यह कटाक्ष। त्रिलोकविजय इतना उपहासास्पद कर्म तो नहीं, मां!"

"इसीलिए कह रही हूं, बैठो वत्स!" मंदोदरी अपने आसन पर बैठ गयी और मेघनाद को अपने निकट बैठने का इंगित किया।

मेघनाद कुछ चकित-संकुचित-सा आकर मां के पास बैठ गया — क्या बात है मां के मन में।

"विश्वविजय निश्चय ही उपहासास्पद कर्म नहीं है, बेटा।" मंदोदरी ने गर्वभरी आंखों से अपने पुत्र को देखा और स्नेहभरा हाथ उसकी पीठ पर फेरा, "और फिर मैं तो वह भाग्यशालिनी नारी हूं, जिसका पति तथा पुत्र दोनों ही विश्वविजेता हैं।...किंतु उस गौरव के पीछे थोड़ी पीड़ा भी है।"

"क्या है, मा?" मेघनाद का स्वर विह्वल हो आया, "ऐसी कौन-सी पीड़ा है, जिसका हरण तुम्हारा यह पुत्र नहीं कर सकता?"

"तुमने अपने छोटे भाई अक्ष को देखा है, पुत्र? तुम्हें पता है कि विरूपाक्ष और नरांतक किधर जा रहे है?"

"क्या बात है, मां?"

"तुम्हे उनमें कोई विशेष बात दिखायी नहीं पड़ती?"

"स्पष्ट कहो, मां!"

"तुम्हें अक्ष में सम्यक् बौद्धिक विकास दिखायी पड़ता है, इंद्रजित?"

उत्तर देने से पहले थमकर, मेघनाद ने ध्यान से अपनी मां को देखा—आज मां ने एक बार भी उसे 'मेघ' कहकर नहीं पुकारा था। और इस बार तो मां ने उसे इंद्रजित कहा है—इंद्र को जीतना भी मां के लिए आपत्तिजनक है क्या?

"नहीं, मा! अक्ष के विकास से मैं संतुष्ट नहीं हूं; किंतु..." वह क्षण भर कुछ सोचता-सा बोला, "उससे विश्वविजय का क्या संबंध है?"

"वही संबंध समझाने के लिए मैंने तुम्हें बुलाया है, पुत्र!" मंदोदरी ने सस्नेह उसकी ओर निहारा।

"तुम और तुम्हारे पिता—तुम दोनों ही अद्भुत वीर हो, इंद्रजित! वीरता का प्रदर्शन अपने घर में तो हो नहीं सकता; इसलिए विश्वविजयी वीर अधिकांशतः लंका से बाहर रहते हैं। तुम लोग जब लौटते ही तो विपुल धन—स्वर्ण, रत्न, मणि-माणिक्य और रत्न लेकर आते हो। देश-विदेश की सुंदरियां—क्रय, विजय अथवा अपहरण कर लाते हो; और पुनः किसी युद्ध के लिए लौट जाते हो। लंका की सेनाएं अपराजेय हैं, अतः लंका के व्यापारियों के लिए विश्व के सारे मार्ग खुल गये हैं। उनके माध्यम से भी लंका में कम धन नहीं आता। लंका में इतना सारा धन संचित हो रहा

है—लंका के राक्षस इसका क्या करेंगे, पुत्र?'

"वे लोग धन का भोग करेंगे," इंद्रजित हंसा, "इसके लिए चिंतित होने की क्या आवश्यकता है, मां? धन सुख का पर्याय है। आज विश्व भर का सुख लंका में संचित हो रहा है। यह हमारे लिए हर्ष की बात है, मां! रक्षपति रावण के साम्राज्य के समान वैभवशाली राज्य सारे संसार में किसी का नहीं है।"

"तुम सत्य कह रहे हो, पुत्र!" मंदोदरी शांत स्वर में बोली, "तुमने लंका में अपार वैभव एकत्रित कर दिया है; किंतु कभी सोचा है कि इस वैभव का भोग कैसे होगा?"...मंदोदरी ने मेघनाद के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की, "स्वर्ण, रत्न, मणि-माणिक्य, स्वयं में कोई सुख नहीं हैं—सुख वे द्रव्य है, जो इनके माध्यम से खरीदे जाते है। आज लंका के राक्षस सुखी है, क्योंकि लंका ने अपने वैभव-प्रदर्शन के लिए असंख्य मदिरालय, द्यूतालय और वेश्यालय खोल दिये है। राजपुत्रों, सामंत-पुत्रों और राजपुरुषों को कुछ करना नहीं पड़ता। उनका जीवन अर्जन का नहीं, भोग का जीवन है। भोग के लिए धन व्यय करना पड़ता है; और व्यय के लिए उनके पास पुष्कल धन है। संध्या समय वे अपने प्रासादों से निकलते हैं और मदिरालयों में जा बैठते हैं। मदिरा पीते हैं, द्यूत खेलते हैं; और नारी शरीर की खोज में निकल पड़ते है। वेश्यालयों में भीड़ लग जाती है। लंका में यह प्रचलन बहुत बढ़ गया है; इसलिए वारवनिताओं की मांग भी बढ़ गयी है। परिणामतः अपहरण अधिक हो गये हैं, बलात्कार बढ़ गये हैं, दासियों का क्रय-विक्रय बढ़ गया है।"

"किंतु मां! इससे अक्ष का क्या संबंध?" मेघनाद चकित था।

"क्यों? क्या वह इसी वातावरण में नहीं पल रहा; या उसके पास पर्याप्त मात्रा में धन नहीं है?" मंदोदरी का स्वर कुछ तीव्र हो गया।

"किंतु वह राजकुमार है। उसे शस्त्र-विद्या सीखनी चाहिए।"

मंदोदरी का स्वर वक्र हो उठा, "वह कुट्टिणी यमजिह्वा की युवती पुत्री मदालसा से काम-विद्या सीख रहा है; और विश्वविजेता भाई तथा पिता का लाया हुआ धन ढो-ढोकर उस वेश्या के घर में भर रहा है। इस पुण्य से अवकाश पाएगा तो शस्त्र-विद्या भी सीख लेगा।"

मेघनाद चुपचाप मां को देखता रहा। मंदोदरी मौन ही रही तो जैसे निष्कर्ष रूप में बोला, "उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। अभी उसका वय इस योग्य नहीं है।"

मंदोदरी का तेज जैसे भभककर फूटा, "पिता संसार भर में से सुंदरियों का अपहरण करता फिरेगा तो पुत्र अपने नगर की एक वेश्या के पास भी नहीं जाएगा? तुम्हारे पिता ने कभी यह सोचा है कि उनका वय किस योग्य है कि उनका पुत्र यह सोचेगा?"

"मां!" मेघनाद का स्वर भी कुछ ऊंचा हुआ, "जगद्विजेता, राक्षसेन्द्र, राजाधिराज रावण के विषय में ऐसा कहना तुम्हें शोभा नहीं देता। वे आपके पति हैं। राक्षसेन्द्र के लिए यह कोई नयी बात तो नहीं।"

"पुरानी बात उचित ही होती है क्या?" मंदोदरी का तेज तनिक भी फीका नहीं पड़ा, "तुम कब इस परंपरा का अनुसरण करने वाले हो? मैं सुलोचना प्रमिला से कह रखूं कि वह अपने कुछ पुराने वस्त्र संभाल रखे और दासी कर्म के लिए तैयार रहे।"

"मां!" मेघनाद क्रुद्ध स्वर में बोला।

"क्यों? बुरा लगा?" मंदोदरी का स्वर व्यंग्यपूर्ण था, "जब तुम्हारे पिता ने मेरी उपस्थिति में, अपहृता वैदेही के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि वे महारानी मंदोदरी को उसकी प्रधान दासी नियुक्त कर देंगे; तो तुम्हारी मां को कैसा लगा होगा, पुत्र?"

मेघनाद चुप रहा।

"बोलते क्यों नहीं? इन पकते हुए केशों के वय में, महारानी मंदोदरी को भोग के लिए लायी गयी नवागत युवतियों की दासी बनाकर विश्व-विजेता वीर की जननी का अभिनन्दन किया जा रहा है क्या?"

"नहीं, मां! यह बात नहीं है।"

"तो क्या बात है?"

"पिताजी ने सीता का मन जीतने के लिए उसे प्रलोभन दिया होगा।"

कई क्षणों तक मंदोदरी अपने पुत्र को देखती रही और मुख से करुण स्वर फूटा, "तेरे जैसा पितृभक्त पुत्र भी मैंने

इंद्रजित ! तुझे पाकर तेरे पिता फूले नहीं समाते होंगे; पर मैं सोचती हूं कि तू इतना पितृभक्त न होता तो शायद तेरे पिता का कल्याण होता। जा, पुत्र ! मैं हतभागी सुलोचना को उसका भविष्य बता दूंगी।"

इंद्रजित ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह प्रणाम कर मंदोदरी के कक्ष से निकल गया।

मंदोदरी पछाड़ खाकर पलंग पर औंधी जा पड़ी।

द्वितीय खण्ड

१

हनुमान प्रातः से ही पर्याप्त सतर्क तथा किंचित उद्वेलित-से थे; किन्तु उन्होंने सुग्रीव से कुछ नहीं कहा। व्यायाम, सामूहिक शस्त्राभ्यास तथा अल्पाहार हो जाने के पश्चात ही वे बोले, "युवराज ! एक महत्त्वपूर्ण सूचना है।"

हनुमान का व्यवहार कुछ इतना असाधारण था कि सुग्रीव ही नहीं, नल, नील तथा तार भी जैसे अतिरिक्त रूप से सजग होकर उन्हें देखने लगे।

"क्या बात है, हनुमान !" सुग्रीव बोले, "सूचनाएं तो प्रतिदिन आती-जाती रहती हैं; किन्तु इतने अस्थिर तो तुम कभी नहीं हुए।"

"आज की सूचना ही कुछ ऐसी है, युवराज !" हनुमान ने सिर झुका लिया मानो वे सुग्रीव का सामना न कर पा रहे हों।

"कहो, हनुमान ! जो भी है, कहो। क्या वाली ने रुमा का वध कर दिया ?"

"नहीं !" हनुमान सिहर उठे। उनके व्यवहार ने सुग्रीव के मन में कितनी अनर्थकारी संभावनाओं को जन्म दिया है, "नहीं, युवराज ! युवराज्ञी के विषय में कोई सूचना नहीं है। चरों ने सूचना दी है कि पंपा सरोवर के तट पर एक वृद्ध तापसी शबरी की कुटिया में कुछ प्रवा[illegible] एक दल टिका था। प्रवासी दल के नेता तपस्वी वेश में हैं; किन्तु न

वे शस्त्रबद्ध है, वरन उनके साथ एक पूरा शस्त्रागार है, जिसे वे अपने कंधों पर ढो रहे हैं। उनके नेता राम नामक अयोध्या के निर्वासित राजकुमार हैं; साथ ही उनके छोटे भाई लक्ष्मण हैं। वे लोग क्रमशः इसी ओर बढ़ रहे है...।"

सुग्रीव का रंग पीला पड़ गया। उनके मन में अंगद द्वारा शिल्पी के माध्यम से भिजवाई गयी सूचना गूंज गयी।...

"वे लोग अपराध व्यवसायी तो नहीं हैं?" सुग्रीव असमंजस में थे।

"नहीं।" हनुमान शीघ्रता से बोले, "मेरा तात्पर्य यह नहीं था। यदि युवराज को स्मरण हो तो...मेरा अनुमान है कि ये वे ही लोग हैं, जिन्हें वह अपहृत स्त्री पुकार रही थी, जिसने मार्ग में वस्त्र तथा आभूषण गिराये थे।"

"हां!" सुग्रीव की चिंता कुछ कम हुई, "वह स्त्री राम और लक्ष्मण को ही पुकार रही थी। वे ही होंगे।"

"मेरा भी यही अनुमान है, युवराज!" हनुमान का स्वर गंभीर था, "किन्तु यह अनुमान मात्र ही है। मेरे मन में उन लोगों को लेकर बहुत सारा ऊहापोह है।"

सबने प्रश्नवाचक दृष्टि से हनुमान की ओर देखा।

"यदि ये वे ही लोग हैं," हनुमान बोले, "तो निश्चित रूप से वे पीड़ित और असहाय हैं। वे लोग उस स्त्री की खोज में होंगे। उनको सहायकों की आवश्यकता होगी, जो अपहरणकर्ता का पता-ठिकाना खोजने तथा उस स्त्री को लौटा लाने में उनके लिए उपयोगी हो सकें। यदि उनका संपर्क वाली से हो गया; उससे मैत्री हो गयी तो वाली उनकी सहायता कर सके या न कर सके, वे वाली की सहायता अवश्य ही कर सकेंगे। उनके पास एक पूरा शस्त्रागार है और उनका प्रमुख आयुद्ध धनुष है, युवराज!"

इस बार सुग्रीव के साथ-साथ नल, नील तथा तार के चेहरे भी चिंतित हो उठे—हनुमान सच कह रहे थे।

"यदि वे लोग साधारण शस्त्र-व्यवसायी है", हनुमान पुनः बोले, "और संयोग से इस ओर बढ़ रहे हैं, तो भी हमारे लिए वे दो रूपों में संकट का कारण हो सकते हैं—वे स्वयं हमसे युद्ध करना चाहें, अथवा वाली की

प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए हमारा वध करना चाहें..."

"क्या बात है, आज हनुमान का सारा चिंतन ही हमारे विरुद्ध जा रहा है।" नल अधीरतापूर्वक बोले, "भला प्रवासियों की कोई मंडली हमारी वैरी ही क्यों होगी?"

"मेरा आशय यह नहीं था।" हनुमान बोले, "किंतु हम विपत्ति में है; असहाय है, छिपे होने पर भी शत्रुओं से घिरे हुए है। इसलिए प्रत्येक नयी घटना हमारे मन में सोये हुए भयभीत मृगशावक को जगा देती है। हमारी स्थिति ऐसी नहीं है कि हम बिना भरपूर खोज और परीक्षण के किसी भी अपरिचित आगतुक को अपना मित्र मान लें।"

"ठीक कहते हो, हनुमान।" इस बार तार बोले, "किंतु मेरा विचार है कि ये दोनों आर्य राजकुमार वे ही राम और लक्ष्मण है, जिनकी राक्षसों के साथ हुई भिड़तों के संबंध में हमें उड़ती-उड़ती सूचनाएं मिलती रही है।"

"बुरा हो इस अज्ञातवास का।" सुग्रीव झल्लाकर बोले, "कोई सूचना ही ठीक ढंग से नहीं मिल पाती", सहसा वे संभले, "पर नील की बात ठीक है, हमें इस विषय के धनात्मक पक्ष पर भी सोचना चाहिए। यदि वे लोग शस्त्रबद्ध है, तो वे हमारे सहायक भी हो सकते हैं—क्या हम उनके शस्त्रों का प्रयोग वाली के विरुद्ध नहीं करवा सकते?"

"यदि उनकी स्त्री का अपहरण हुआ है," नील ने कहा, "तो उन्हें सहायकों की आवश्यकता होगी। ऐसे में वे लोग हमारी ओर से वाली के विरुद्ध क्यों लड़ेंगे? एक तो वैसे ही राक्षसों से उनकी शत्रुता होगी, ऊपर से वाली से युद्ध कर वानरों को भी अपना शत्रु बना लें?...वे तो उसकी ओर से लड़ना चाहेंगे, जो उनकी सहायता करे। वाली की तुलना में हम उनकी क्या सहायता कर सकेंगे?"

"यदि हम यही मानकर चल रहे हैं कि ये वे ही आर्य राजकुमार है, जिन्होंने दंडक वन में स्थान-स्थान पर राक्षसों का विरोध किया है और वह स्त्री भी उनकी ही आत्मीय थी, जिसका राक्षसों द्वारा हरण हुआ है, तो ऐसे में हमारे लिए कुछ आशा हो सकती है।" हनुमान बोले, "वे लोग तेजस्वी हैं, तो स्वयं पीड़ित होने के कारण पीड़ितों की ही सहायता करेंगे।

वे शस्त्रबद्ध हैं, वरन उनके साथ एक पूरा शस्त्रागार है, जिसे वे अपने कंधों पर ढो रहे हैं। उनके नेता राम नामक अयोध्या के निर्वासित राजकुमार हैं; साथ ही उनके छोटे भाई लक्ष्मण हैं। वे लोग क्रमशः इसी ओर बढ़ रहे हैं...।"

सुग्रीव का रंग पीला पड़ गया। उनके मन में अंगद द्वारा शिल्पी के माध्यम से भिजवाई गयी सूचना गूंज गयी।...

"वे लोग अपराध व्यवसायी तो नहीं हैं?" सुग्रीव असमंजस में थे।

"नहीं।" हनुमान शीघ्रता से बोले, "मेरा तात्पर्य यह नहीं था। यदि युवराज को स्मरण हो तो...मेरा अनुमान है कि ये वे ही लोग हैं, जिन्हें वह अपहृत स्त्री पुकार रही थी, जिसने मार्ग में वस्त्र तथा आभूषण गिराये थे।"

"हां!" सुग्रीव की चिंता कुछ कम हुई, "वह स्त्री राम और लक्ष्मण को ही पुकार रही थी। वे ही होंगे।"

"मेरा भी यही अनुमान है, युवराज!" हनुमान का स्वर गंभीर था, "किन्तु यह अनुमान मात्र ही है। मेरे मन में उन लोगों को लेकर बहुत सारा ऊहापोह है।"

सबने प्रश्नवाचक दृष्टि से हनुमान की ओर देखा।

"यदि ये वे ही लोग हैं," हनुमान बोले, "तो निश्चित रूप से वे पीड़ित और असहाय हैं। वे लोग उस स्त्री की खोज में होंगे। उनको सहायकों की आवश्यकता होगी, जो अपहरणकर्ता का पता-ठिकाना खोजने तथा उस स्त्री को लौटा लाने में उनके लिए उपयोगी हो सकें। यदि उनका संपर्क वाली से हो गया; उससे मैत्री हो गयी तो वाली उनकी सहायता कर सके या न कर सके, वे वाली की सहायता अवश्य ही कर सकेंगे। उनके पास एक पूरा शस्त्रागार है और उनका प्रमुख आयुद्ध धनुष है, युवराज!"

इस बार सुग्रीव के साथ-साथ नल, नील तथा तार के चेहरे भी चिंतित हो उठे—हनुमान सच कह रहे थे।

"यदि वे लोग साधारण शस्त्र-व्यवसायी हैं", हनुमान पुनः बोले, "और संयोग से इस ओर बढ़ रहे हैं, तो भी हमारे लिए वे दो रूपों में संकट का कारण हो सकते हैं—वे स्वयं हमसे युद्ध करना चाहें, अथवा वाली की

प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए हमारा वध करना चाहे..."

"क्या बात है, आज हनुमान का सारा चिंतन ही हमारे विरुद्ध जा रहा है।" नल अधीरतापूर्वक बोले, "भला प्रवासियों की कोई मंडली हमारी वैरी ही क्यों होगी?"

"मेरा आशय यह नहीं था।" हनुमान बोले, "किंतु हम विपत्ति में है; असहाय है, छिपे होने पर भी शत्रुओं से घिरे हुए है। इसलिए प्रत्येक नयी घटना हमारे मन में सोये हुए भयभीत मृगशावक को जगा देती है। हमारी स्थिति ऐसी नहीं है कि हम बिना भरपूर खोज और परीक्षण के किसी भी अपरिचित आगतुक को अपना मित्र मान लें।"

"ठीक कहते हो, हनुमान।" इस बार तार बोले, "किंतु मेरा विचार है कि ये दोनों आर्य राजकुमार वे ही राम और लक्ष्मण है, जिनकी राक्षसों के साथ हुई भिडंतो के संबंध में हमे उडती-उड़ती सूचनाएं मिलती रही हैं।"

"बुरा हो इस अज्ञातवास का।" सुग्रीव झल्लाकर बोले, "कोई सूचना ही ठीक ढंग से नहीं मिल पाती", सहसा वे संभले, "पर नील की बात ठीक है, हमें इस विषय के धनात्मक पक्ष पर भी सोचना चाहिए। यदि वे लोग शस्त्रबद्ध है, तो वे हमारे सहायक भी हो सकते हैं—क्या हम उनके शस्त्रों का प्रयोग वाली के विरुद्ध नहीं करवा सकते ?"

"यदि उनकी स्त्री का अपहरण हुआ है," नील ने कहा, "तो उन्हें सहायकों की आवश्यकता होगी। ऐसे में वे लोग हमारी ओर से वाली के विरुद्ध क्यों लड़ेंगे ? एक तो वैसे ही राक्षसों से उनकी शत्रुता होगी, ऊपर से वाली से युद्ध कर वानरों को भी अपना शत्रु बना लें ?...वे तो उसकी ओर से लड़ना चाहेगे, जो उनकी सहायता करे। वाली की तुलना में हम उनकी क्या सहायता कर सकेंगे ?"

"यदि हम यही मानकर चल रहे हैं कि ये वे ही आर्य राजकुमार हैं, जिन्होंने दंडक वन मे स्थान-स्थान पर राक्षसों का विरोध किया है और वह स्त्री भी उनकी ही आत्मीय थी, जिसका राक्षसों द्वारा हरण हुआ है, तो ऐसे में हमारे लिए कुछ आशा हो सकती है।" हनुमान बोले, "वे लोग तेजस्वी हैं, तो स्वयं पीडित होने के कारण पीड़ितों की ही सहायता करेंगे।

उन्होने न्याय का पक्ष लेकर राक्षसों का विरोध किया है तो अपने स्वार्थ के कारण भी, वे लोग राक्षसों के मित्र वाली की मैत्री स्वीकार नहीं करेंगे। दूसरी ओर, वाली भी राक्षसों के विरुद्ध इन निर्वासितों की सहायता कर, रावण का विरोध आमंत्रित करने की मूर्खता नहीं करेगा।"

"हनुमान ठीक कह रहा है।" सहसा सुग्रीव उत्साहित हो उठे, "हनुमान एकदम ठीक कह रहा है। यदि ये वे ही लोग हैं, तो न वे वाली से मैत्री करना चाहेंगे, न वाली उनकी सहायता करेगा।" जिस आकस्मिकता से उनका उत्साह जागा था, उसी आकस्मिकता से वह बिखर भी गया। किंतु उन्हें सहायकों की आवश्यकता है और हम उनकी कोई सहायता नही कर सकते।"

"कर सकते हैं।" हनुमान का स्वर अत्यंत संयत, संतुलित तथा गंभीर था, "पहली बात तो यह है कि उस स्त्री के विषय में हम उन्हें कुछ निश्चित प्रमाण दे सकते है। और तब, यदि वे हमारी सहायता कर वाली को किष्किंधा के राज्य से अपदस्थ कर दें, और युवराज को किष्किंधा के सिंहासन पर बैठा दें, तो फिर हम उनकी सहायता ही सहायता कर सकते हैं।"

"उल्टी बात !" नील बोले, "वे हमसे सहायता चाहेंगे, और हम उनसे कहें कि पहले हमारी सहायता करो तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे।"

"उल्टी बात नहीं है।" हनुमान कुछ उत्तेजित होकर बोले, "वे हमारी सहायता करें तो हम उनकी सहायता करेंगे। हम स्वयं राक्षसों से पीड़ित है और उनके अनाचार को समाप्त करना चाहते हैं। किंतु वाली राक्षसों के विरुद्ध उनकी कोई सहायता नही करेगा—न पहले, न पीछे। उन्हें यदि राक्षसों के विरुद्ध सहायक चाहिए, तो उनके पास कोई विकल्प नहीं है। वे हमारा समर्थन नही करेंगे तो अपने एकमात्र मित्र को शत्रु के हाथों में सौंपकर, स्वयं अपने प्रति शत्रुता का निर्वाह करेंगे।"

"हनुमान ! तुम पहले कही गयी अपनी ही बात का विरोध नही कर रहे ?" सुग्रीव जैसे सहसा किसी नींद से जागकर बोले।

"नहीं, युवराज !" हनुमान सहज होकर बोले, "मेरा मत न पहली

बात में था, न अंतिम बात में। मैंने तो पहले ही कहा था, मेरे मन में बहुत ऊहापोह है। मत स्थिर करने के लिए ही तो यह विवाद चलाया है।"

"ठीक कहते हो, हनुमान !" तार बहुत देर के पश्चात बोले, "हमें सर्वपक्षीय चिंतन करना चाहिए।...किंतु एक बात मैं भी कहूंगा।" तार कुछ तनकर बैठ गये, "बाली उनकी सहायता नहीं करेगा—यह बात भी तो उन लोगों को समझानी होगी। यदि वे लोग पहले बाली के संपर्क में आ गये, तो हमारे विरुद्ध बाली उनका उपयोग तो कर ही लेगा, बाद में उनकी सहायता करे या न करे।"

"इस दृष्टि से तो हमें अपने स्थान पर बैठे रहकर उनके आने की प्रतीक्षा करने के बदले, आगे बढ़कर उनका स्वागत करना चाहिए। उनसे संपर्क कर, उनकी ओर मैत्री का हाथ भी बढ़ाना चाहिए।"

"किंतु एक और बात..." सुग्रीव बहुत गंभीर थे, "ऐसा न हो कि हम उनकी शस्त्र-शक्ति को वास्तविकता से अधिक आंककर उन्हें अपना मित्र बना लें और उससे बाली को अपने प्रति और भी क्रूर होने के लिए प्रेरित करें।"

"उनकी सहायता तो हमें वैसे भी करनी चाहिए, युवराज !" हनुमान बोले, "वे न्याय के पक्ष में हैं और पीड़ित हैं...और पीड़ितों के संगठन से ही शोषण का अंत हो सकता है।"

"मैं तुमसे पूर्णतः सहमत हूं, हनुमान !" सुग्रीव का स्वर उदास हो गया, "स्त्री के अपहरण की पीड़ा मुझसे अधिक और कौन समझ सकता है, और अपहृत स्त्री की सहायता न कर पाने की असमर्थता का दंश भी और किसके वक्ष में इतना गड़ा होगा...उनकी सहायता तो हमें करनी ही चाहिए। इस कष्ट में तो वे मुझे अपने सहोदर भाई-से लगते हैं। हमारा न्याय भी एक है, और स्वार्थ भी...किंतु इस संकट की घड़ी में हमें आपद्धर्म का निर्वाह करना होगा। हम उन्हें ऐसी मैत्री न दें, जिससे हमें और उनको हमारे क्रूर शत्रुओं का क्रोध नष्ट कर दे।"

"पर पहले मालूम तो हो कि वे हैं कौन ?" सुग्रीव के चुप होते ही तार बोले।

"यह तो आवश्यक है ही।" हनुमान ने उत्तर दिया, "किंतु यह

निश्चय तो पहले ही हो जाना चाहिए कि उनकी वास्तविकता मालूम हो जाने पर उनके प्रति हमारा व्यवहार कैसा होगा।"

"तो ऐसा करो, हनुमान !" सुग्रीव बोले, "तुम किसी प्रकार यह ज्ञात करो कि वे लोग कौन हैं। यदि वस्तुतः ये वे ही राक्षस-विरोधी आर्य राजकुमार हैं, और वह स्त्री इन्हें ही पुकार रही थी, तो तुम उन्हें मित्रतापूर्वक यहां ले आओ। उनकी शस्त्र-शक्ति की परख यहां हो जाएगी और तब आगे का कार्यक्रम बन जाएगा; किंतु..." सुग्रीव का स्वर कुछ कांप-सा गया, "यदि वे कोई अन्य शस्त्रधारी हैं और बाली द्वारा हमारी टोह लेने के लिए भेजे गये हैं, तो..."

"ऐसी स्थिति में किसी एकांत स्थान में घेरकर हमें उनका वध करना होगा।" तार बोले, "यदि वे शत्रु-भाव से आये हैं, तो हमारे गुप्त ठिकाने को देख लेने के पश्चात उनका जीवन हमारी मृत्यु के समान है।"

"यह ठीक है।" हनुमान ने समर्थन किया, "मेरा मत है, युवराज ! आप मलय पर्वत पर अपनी गुप्त गुफा में चले जाएं। जब तक हमें इन आगंतुकों का पूर्ण तथा वास्तविक परिचय नहीं मिल जाता, तब तक आप वहीं निवास करें।"

"हमारा जीवन तथा सम्मान अब तुम्हारे हाथ में है, हनुमान !" सुग्रीव की आंखों में अश्रु थे तथा स्वर भरा आया था।

हनुमान सुग्रीव को बुलाने चले गये तो राम, लक्ष्मण तथा उनके बीस जन-सैनिकों ने अपने आयुध कंधों से उतार लिये। एक छायादार वृक्ष देखकर, कुछ अस्त्र-शस्त्र उसके तने के साथ टिका दिये, और कुछ उसकी छाया में सजोकर रख दिए। कुछ शिला-खंडों को स्वच्छ कर तथा कुछ वृक्षों की टूटी सूखी शाखाओं को व्यवस्थित कर बैठने का प्रबंध कर लिया गया।

हनुमान से सारी सूचनाएं पाकर, राम के मन में नये सिरे से एक चिंतन-प्रक्रिया चल पड़ी थी—जिस व्यक्ति की खोज में वे यहां तक आए थे, उस व्यक्ति ने स्वयं ही न केवल उन्हें ढूंढ निकाला था, वरन अपने मंत्री के माध्यम से मैत्री का संदेश भी भिजवा दिया था। इससे अधिक सुखद स्थिति और क्या हो सकती थी? किंतु मैत्री का इच्छुक वह व्यक्ति स्वयं

कष्ट में था। उसकी स्थिति स्वयं राम के समान कष्टप्रद तो थी ही, कुछ अंशों में उनसे भी अधिक बीहड़ थी। राम ने अपनी इच्छा से निर्वासन स्वीकार किया था, किंतु सुग्रीव को बलात् किष्किंधा से निष्कासित कर दिया गया था। राम वन में स्वच्छंद जीवन व्यतीत कर रहे थे और सुग्रीव को अज्ञातवास करना पड रहा था। राम की पत्नी को रावण नामक संपूर्ण मानवता का शत्रु, दुष्ट राक्षस हरकर ले गया था, और सुग्रीव की पत्नी का स्वयं उनके बड़े भाई ने अपहरण किया था। राम अपने शत्रु को खोज-कर, उसे दंडित कर प्रतिशोध लेने तथा सीता को लौटा लाने का साहस रखते थे; और सुग्रीव असहाय-सा, अपने शत्रु से मुख छिपाता फिर रहा था...

राम और उनके साथियों ने दूर से सुग्रीव को आते देखा। हनुमान कुछ आगे-आगे चल रहे थे। और शेष कुछ लोगों ने सुग्रीव को घेर रखा था। सुग्रीव बहुत आश्वस्त होकर नही चल पा रहे थे। यद्यपि सुग्रीव के साथी उन्हें एक नृप के संपूर्ण आदर के साथ ला रहे थे, तो भी सुग्रीव के डग भरने मे आत्म-विश्वास का पूर्ण अभाव था। वे आशंकित मन तथा अस्थिर पगों से चल रहे थे।

निकट आकर वे राम के सम्मुख खड़े हुए तो उन्होंने हाथ जोड़कर राम का अभिवादन किया।

राम ने देखा—सुग्रीव के चेहरे की कांति नष्ट हो चुकी थी। आतंकपूर्ण वातावरण तथा अनिश्चित परिस्थितियों में रहने के कारण उनकी आंखों में भय स्थायी रूप से जम गया था तथा होंठों की भंगिमा से हताशा का भाव अभिव्यक्त होता था।

राम ने आगे बढकर सुग्रीव को गले से लगा लिया, "सुग्रीव ! आज से हम-तुम बंधु हुए। तुम मुझे लक्ष्मण के समान प्रिय रहोगे। एक-दूसरे के सुख-दुःख मे हम सहभागी होंगे। तुम्हारा मित्र मेरा भी मित्र होगा और तुम्हारा शत्रु मेरा भी शत्रु होगा।"

सुग्रीव ने अपने होंठो पर सायास एक भीत मुसकान प्रकट की, "आर्य राम ! कहीं आप बिना सोचे-समझे तो वचन नहीं दे रहे। यद्यपि हनुम।

ने आपको मेरे विषय में सब कुछ बताया होगा—फिर भी, वह मेरा मित्र तथा सचिव है। क्या आपको इस प्रकार हमारा विश्वास कर लेना चाहिए?"

राम का विश्वास कुछ अधिक मुखर होकर उनके चेहरे पर झलका, "सुग्रीव! तुम्हारा चेहरा मेरे अपने हृदय का दर्पण है। स्त्री के अपहरण की पीड़ा और अपमान को जितना मैंने अपनी अनुभूति से जाना है, उतना ही तुम्हारे मुख-मंडल से भी जाना है। तुम्हारे दुःख के सामने तो मुझे अपना दुःख भी छोटा लगने लगा है। अब तुम्हारे विषय में और क्या जानना है?"

"यदि मैं आपके किसी काम न आऊं या आपसे विश्वासघात करूं?" सुग्रीव भीरु स्वर में बोले।

लक्ष्मण अट्टहास कर हंसे, "किसी की अक्षमता उसका दोष नहीं होता, सुग्रीव! और विश्वासघात..."

लक्ष्मण ने अपना वाक्य अधूरा छोड़, हाथ से उस वृक्ष की ओर इंगित किया, जिसके नीचे उनका शस्त्रागार पड़ा था।

सुग्रीव ने वृक्ष की ओर देखा और सिहर उठे—उन शस्त्रों में विभिन्न प्रकार के धनुष पड़े थे—और सारी किष्किंधा में एक भी धनुर्धारी नहीं था।

उन्होंने राम की ओर देखा—वे सहज आश्वस्त ढंग से मुसकरा रहे थे।

"यद्यपि हमारी शस्त्र-शक्ति इसलिए नहीं है कि उससे हम किसी को आतंकित करें; राम बोले, "ये आत्म-रक्षा अथवा न्याय-रक्षा के साधन मात्र हैं; किंतु विश्वासघाती को दंड देना भी तो न्याय ही है।"

सुग्रीव का भी साहस कुछ बढ़ा। उनका स्वर कुछ ऊंचा हुआ। आंखें कुछ अधिक खुल आयीं, "आपका शस्त्र-भंडार अद्भुत है, भद्र राम! हमारे पास वैसे शस्त्र नहीं हैं। मान लीजिए कि आपको हमारी ओर से कोई भय और आशंका न हो; किंतु आपने मेरे शत्रुओं को अपना भी शत्रु माना है। मेरा सबसे बड़ा शत्रु इस समय मेरा अपना भाई और किष्किंधा का राजा वीरवर वाली है, जिसके भय से मैं भीत चूहे के समान अपने बिल में छिपा बैठा

ओर इंगित किया, "भद्र राम ! वाली के शरीर में इतनी शक्ति है कि वह यदि इन साल वृक्षों को पकडकर झकझोरे तो इनका एक-एक पत्ता झड़कर पृथ्वी पर आ पडेगा।"

राम अपनी आश्वस्त मुसकान अधरों पर लिये मुसकराते रहे। उन्होंने वहीं खड़े-खड़े अपने धनुष पर एक तीक्ष्ण लौह-फलक वाला बाण चढाया, प्रत्यंचा को कान तक खींचा और बाण छोड दिया।

सुग्रीव तथा उनके साथियों ने आश्चर्य से देखा—राम का बाण एक-एक कर सातों साल वृक्षों को छेद गया था। अद्भुत था राम का लक्ष्य-भेद, बल तथा कौशल !

"क्या विचार है, मित्र ?"

सुग्रीव अभिभूत थे, "समझ गया, भद्र! वाली को तो निकट जाकर अपने हाथों से बारी-बारी सातों वृक्षों को हिलाना पड़ता है। राम अपने स्थान पर खड़े-खड़े, एक ही बाण से, एक ही साथ सातों वृक्षों को छेद सकते है।...तुम समर्थ हो, मित्र ! और तुम्हारे कारण, आज मैं भी वाली से अधिक समर्थ हूं।"

सुग्रीव अपने आह्लाद में द्रवीभूत आगे बढ़े और राम को उन्होंने अपने वक्ष से लगा लिया।

प्रातः अभी पूरी तरह उजाला भी नहीं हुआ था कि सहसा ही सारा मतंग वन जाग उठा। प्रहरी तथा सूचना देने वाले चर इधर-उधर भागते दिखायी देने लगे और अनेक लोगों का आवागमन आरंभ हो गया, मानो बड़ी-बड़ी सैनिक टुकड़ियों का स्थानांतरण हो रहा हो।

ऋष्यमूक पर सुग्रीव की गुफा के सम्मुख सभा जुड़ी हुई थी। सुग्रीव, राम, लक्ष्मण, नल, नील तथा तार वहां हनुमान की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे।

थोडी देर में हनुमान आते दिखायी दिये। उनके साथ-साथ ऋक्षों के यूथपति जाम्बवान भी थे।

सुग्रीव ने अपने स्थान से उठकर जाम्बवान को गले लगाया, "ऋक्ष यूथपति ! आप ?"

"हां, युवराज !" जाम्बवान ने थके किंतु उल्लसित स्वर में कहा, "किष्किंधा तथा वाली को छोड़, आपकी शरण में आ गया हूं। अकेला नहीं आया हूं। यूथ के सदस्य तथा सेनानायक भी मेरे साथ है। अब जीवन-मरण सब आपके हाथ है। जो आज्ञा होगी, उसका पालन होगा। मुझे हनुमान के समान ही अपना अनुचर समझें।"

जाम्बवान ने समर्पण के प्रमाणस्वरूप अपना सिर झुका दिया।

"किंतु आपको हमारे ठौर-ठिकाने का पता कहां से चला ? क्या हमारा स्थान अब गुप्त नहीं रहा ?" सुग्रीव के स्वर में हलकी आशंका थी।

"यही समझें, युवराज !" जाम्बवान निष्कप स्वर में बोले, "किंतु उसमें भय का कोई कारण नहीं है। किष्किंधा की प्रजा आज प्रायः जानती है कि युवराज मतंग वन में ही हैं। और प्रजा यह भी जानती है कि वाली अकेला अथवा अपनी सेना के साथ मतंग वन में प्रवेश करने का साहस नहीं करेगा।"

सुग्रीव ने चिंतित दृष्टि से हनुमान की ओर देखा, "यह गोपनीयता कैसे भंग हो गयी, हनुमान ?"

"युवराज ! आर्य राम तथा लक्ष्मण का आगमन गोपनीय नहीं रखा जा सकता।" हनुमान स्थिर वाणी में बोले, "हम अपनी चिंताओं में उलझे रहने के कारण अधिक नहीं जान सके; किंतु इस क्षेत्र की सारी जनता जैसे इन जन-नायकों के आगमन की प्रतीक्षा में थी। वह वृद्धा शबरी तक जानती थी कि राम पंचवटी में थे और वहां से इस ओर आ रहे हैं।"

"किंतु सुरक्षा !..." तार ने कहना चाहा।

"सुरक्षा ! इस प्रचार के कारण हम और अधिक सुरक्षित हो गये हैं।" हनुमान मुसकराये, "वाली पहले मतंगों के भय से इधर आने का साहस नहीं कर रहा था; अब उसे ज्ञात हो गया है कि राम, लक्ष्मण, उनके जन-सैनिक और उनका शस्त्रागार भी यहां है। उसके भेजे हुए गुप्तचरों का मतंग वन में प्रवेश करते ही जन-सैनिक प्रहरियों के बाणों से स्वागत हुआ है। उससे वाली का मनोबल पर्याप्त क्षीण हुआ है तथा प्रजा का मनोबल बढ़ गया है। उसका पहला प्रमाण तात जाम्बवान का किष्किंधा छोड़कर हमारे पास आ जाना है।"

"मुझे बहुत पहले ही वाली तथा किष्किंधा को छोड़कर आपके पास आ जाना चाहिए था।" जाम्बवान सहज मुसकान के साथ बोले, "किंतु अपनी वृद्धावस्था के कारण साहस नहीं कर पा रहा था।...किष्किंधा में दैनन्दिन जीवन क्रमशः अधिक अपमानजनक तथा अन्यायपूर्ण होता जा रहा है, युवराज। वहां रहना असह्य हो रहा था। नगर का प्रत्येक लुच्चा राज-परिषद् का सदस्य हो गया है और प्रत्येक ईमानदार व्यक्ति सत्ता द्वारा प्रताडित, आतंकित, असहाय तथा निरीह जीव। एक ओर से वाली धक्के मार रहा था और दूसरी ओर से आर्य राम के आपके पास आ पहुंचने का समाचार मिला। इन दो शक्तियों के मिलने की सूचना ने मेरा भयावृत तेज झकझोरकर जगा दिया। मैं छिपकर नहीं आया हूं। खुल्लमखुल्ला आया हू—घोषित रूप से। अपने साथ अदमनीय जन-शक्ति लाया हू। आप मतग-वन को एक दुर्ग में परिवर्तित कर दें। आप देखेंगे, अब नित्य-प्रति प्रजा-जन, वानर यूथ तथा अनेक सेनानायक आपकी शरण मे आते जाएंगे। बहुत शीघ्र यह स्थान सैनिक स्कंधावार में बदल जाएगा। आप चाहे तो कुछ ही दिनों मे वाली को अपदस्थ कर, किष्किंधा मे सम्राट के सिंहासन पर अपना अभिषेक करा सकते हैं।"

उपस्थित लोगों ने अपना हर्ष प्रदर्शित किया।

"सुनो, मित्र सुग्रीव!" सारे वार्तालाप में राम पहली बार बोले, "यह तो निश्चित है कि हमारा लक्ष्य क्या है; किंतु अभी तक हमने वाली को अपदस्थ करने की पद्धति पर तनिक भी विचार नहीं किया है।"

सुग्रीव कुछ क्षणों तक राम को देखते रहे, जैसे मन की बात कहने से पहले राम को तौल रहे हों और फिर धीरे से बोले, "अपदस्थ करने की पद्धति पर नहीं, वध की पद्धति पर।"

राम चौंककर अनायास ही उठ खड़े हुए।

"क्यों? क्या हुआ?" सुग्रीव मानो राम से इसी प्रकार की प्रतिक्रिया की अपेक्षा कर रहे थे।

"मेरे लिए वाली एक अपराधी मात्र है। शेष अपराध इस समय छोड़ भी दिये जाएं, तो रुमा के अपहरण के लिए वाली को वही दंड मिलना चाहिए, जो सीता के अपहरण के लिए रावण को मिलेगा।" राम बोले,

"...किंतु सुग्रीव ! वाली तुम्हारा भाई है।"

"संबंध की दृष्टि से वाली मेरा भाई है," सुग्रीव का स्वर अत्यन्त गभीर था, "किंतु अपने कृत्यों से वह मेरा ही नही, सारी वानर-जाति का शत्रु हो गया है। एक भाई द्वारा, अपने भाई के वध के प्रस्ताव पर आपका चकित होना स्वाभाविक ही है। इस विषय मे मैं स्वयं भी अनेक चिंताओं से घिरा हुआ हूं। यदि मैं वाली के वध का माध्यम बनता हूं तो मेरा प्रिय सहयोगी अंगद अपने पिता के हत्यारे के विषय में क्या सोचेगा; यह तार अपनी बहन को विधवा करने वाले सुग्रीव से कैसा व्यवहार करेगा; स्वय भाभी तारा के मन में मेरे प्रति जो स्नेह है, वह क्या कहेगा; और वृद्ध सुषेण मेरे प्रति क्या धारणा रखेंगे ?. .किंतु आज मै ऐसे दोराहे पर खडा हूं, जहा मुझे अपने स्नेह-सबधों और न्याय मे से एक को चुनना है। दोनों मुझे नही मिल सकते...।" सुग्रीव क्षण भर के लिए मौन रहकर पुन: बोले, "मैं यदि अपने प्रति किये गये वाली के अत्याचारों को भुला भी दू तो क्या किष्किधा की प्रजा तथा वानरों के यूथ उसके अत्याचारो को क्षमा कर देंगे ?"

"नही।" जाम्बवान दृढ़ स्वर मे बोले, "वाली को कोई क्षमा नही करेगा। इतना ही नही, वाली को क्षमा करने वाले को किष्किधा की प्रजा क्षमा नही करेगी।"

"मैं वाली को क्षमा करने का प्रस्ताव नही कर रहा।" राम मुसकराते हुए बोले, "किंतु वह व्यक्ति, जो आपका अपना आत्मीय है, आपमें से अनेक लोगो का सबंधी है, किष्किधा का सम्राट रहा है—उसे मृत्युदंड देने से पूर्व भली प्रकार सोच-समझ लेना चाहिए।" राम ने रुककर, एक बार सबको देखा, "वाली ने जो कुछ किया, अथवा वह जो कुछ कर रहा है, वह 'व्यक्ति-वाली' के रूप में नही, 'सम्राट-वाली' के रूप मे ही संभव है। यदि हम वाली को किष्किधा के सम्राट पद से अपदस्य कर देते है तो उसका वह डक ही नष्ट हो जाएगा, जिससे वह सारी वानर-जाति को पीड़ित कर रहा है। तब उसके जीवित रहने में आपको क्या आपत्ति है ?"

"भद्र राम !" हनुमान बोले, "आप हमसे अधिक बुद्धिमान भी है, अनुभवी भी और कदाचित अधिक उदार भी। इसीलिए आप वाली को

केवल अपदस्थ कर छोड़ देने की बात कह रहे हैं। किंतु आर्य ! वाली के विषय में जो कुछ मैं जानता हूं, उसके आधार पर कुछ कहना चाहूंगा।"

"कहो।"

"जीवित रहते वाली को सम्राट पद से अपदस्थ नहीं किया जा सकता। वह किसी भी अवस्था में उसे संभव नहीं होने देगा।" हनुमान गंभीर और स्थिर वाणी में बोले, "और यदि आपने वाली को प्राणदान दिया तो उसके सहयोगी-अनुचरों को भी प्राणदान देना होगा—जो हत्यारे, दुष्ट, पामर, पापी और अत्याचारी हैं। वे सब लोग हमारे समाज में रहेंगे। क्षमा कर दिये जाने पर वे समाज में स्वतंत्र रूप में अपने संचित धन के बल पर सम्मानित ढंग से रहने का अधिकार तो पा जाएंगे; किंतु समाज के प्रति अपने दायित्व का तनिक भी निर्वाह नहीं करेंगे। वे अपनी पराजय को नहीं भूलेंगे तथा समाज में सदा विष फैलाएंगे। नये शासन की अवमानना करेंगे और आदर्शों को अपने पैरों से ठुकरायेंगे। उनके रहते हुए, समाज में नवनिर्माण का कार्य नहीं हो सकता। इसलिए उन्हें जीवित छोड़ देना अपने ही लक्ष्य के प्रति विश्वासघात होगा।" हनुमान ने मुसकराकर राम को देखा, "मैं अनावश्यक रक्तपात का समर्थक नहीं हूं, भद्र राम ! न मैं व्यक्तिगत प्रतिहिंसा में विश्वास करता हूं; किंतु अपराधियों को उनके अपराध के ही अनुपात में दंडित करने तथा सामाजिक निर्माण के विघ्नों के उन्मूलन में मेरा विश्वास बद्धमूल है।"

"आप लोगों का क्या मत है ?" राम ने अन्य लोगों की ओर देखा।

"हनुमान ठीक कहते हैं।" सम्मिलित स्वर में समर्थन आया।

लक्ष्मण के मुख पर संतुष्टि का उल्लास प्रकट हो गया।

"तो फिर ऐसा ही हो।" राम बोले, "मैं आप लोगों के समर्थन से दो घोषणाएं करना चाहता हूं। प्रथम, हम इसी क्षण से मित्रवर सुग्रीव को वानरों का सम्राट घोषित करते हैं; तथा द्वितीय, वाली के अपराधों पर विचार करते हुए उसे मृत्यु-दंड देते हैं।"

"हम सहमत हैं। हम सहमत हैं।" सब ओर से स्वर आये।

राम ने सुग्रीव का हाथ पकड़कर, उन्हें एक ऊंची शिला पर बैठाया और पंपा सरोवर के जल से उनका अभिषेक कर, उनके हाथ में शस्त्र दे दिया।

इस बार वे लोग राज-परिषद की मर्यादा से बैठे।

"किष्किंधा पर सैनिक अभियान संबंधी प्रस्तावों पर विचार आरंभ किया जाए।" सुग्रीव ने अनुमति दी।

सबसे पहले जाम्बवान बोले, "मेरे साथ मेरा सारा यूथ है। उसके अतिरिक्त अनेक सेनानायक हैं। आर्य राम एवं लक्ष्मण है। स्वयं सम्राट, वीरवर हनुमान, नल, नील तथा तार है। फिर हमें सोचने की क्या आवश्यकता है। हम सब रण-सज्जित होकर इसी क्षण चलें और वाली तथा उसकी सेना का सामना करें। जहां तक मेरा अपने तथा वाली के पक्ष का मूल्यांकन है—युद्ध दो घड़ी भी नहीं चल पाएगा। बहुत सारे सेनानायक अपने सैनिकों के साथ आरंभ में ही हमारे साथ आ मिलेंगे और शेष सेना को हम देखते-देखते नष्ट कर देंगे।"

"तात जाम्बवान अपने अप्रशिक्षित, असैनिक यूथ जनों को किष्किंधा की राजकीय सेना से लड़ाना चाहते हैं—यह अनुचित है।" लक्ष्मण बोले, "आपके पास कितने भी वीर सेनानायक हों, आप निहत्थे जनसमूह को सेना से लड़वाकर निरीह हत्याओं के भागी बनेंगे। मैं ऐसी युद्ध-नीति का समर्थन नहीं कर सकता।"

"लक्ष्मण ठीक कहते हैं।" जाम्बवान ने मुसकराकर अपने विरोध का समर्थन कर दिया, "किंतु, कदाचित वे किष्किंधा की राजकीय सेना की स्थिति नहीं जानते। किष्किंधा की सेना के पास गिनती के खड्गधर हैं, धनुर्धारी तो है ही नहीं। सेना की मुख्य शक्ति गदाधर टुकड़ियां हैं। हमारे यूथ के युवक, वीर सेना-नायकों के शस्त्रों के समर्थन से सहज ही उनका सामना कर लेंगे। और तब भी यदि कुमार को यह निरीह हत्याओं का ही आयोजन लगता है, तो इन यूथजनों को सैनिक प्रशिक्षण देने तथा किसी-न-किसी प्रकार के आयुधों से सज्जित करने तक इस अभियान को स्थगित रखा जा सकता है।"

"यदि प्रशिक्षण और शस्त्रों की ही बात है," अनिन्द्य अपने संकोच को सायास पीछे धकेलकर बोला, "तो हम दंडक वन से अपनी जन-सेना को लाकर इस अभाव की तत्काल पूर्ति कर सकते हैं।"

"यह ठीक है।" सुग्रीव असाधारण रूप से उल्लसित हो उठे, "सत्य

यह है कि वाली की शक्ति इतनी आतंकपूर्ण है कि मैं किसी भी बात को संयोग पर नहीं छोड़ना चाहता। इसलिए हमें अधिक-से-अधिक तैयारी के साथ वाली पर आक्रमण करना चाहिए। सेनानायक हमारे पास हैं। जाम्बवान अपने यूथ के माध्यम से हमें जन-बल प्रदान कर रहे हैं, तथा अनिन्द्य के प्रस्ताव के अनुसार दंडक-वन की जन-शक्ति तथा शस्त्र-शक्ति दोनों उससे जुड़ जाती हैं। यदि हम इस पूर्ण तैयारी के साथ किष्किंधा पर सैनिक अभियान करेंगे तो हमारी पराजय की तनिक भी संभावना नहीं है।"

सुग्रीव ने रुककर राम की ओर देखा—वे अपने चिंतन में लीन थे।

सहसा राम ने सिर उठाया, "क्या विचार है, लक्ष्मण ?"

"भैया !" लक्ष्मण का स्वर द्वंद्वरहित नहीं था, "ऐसे में दंडक वन के पुनः आरक्षित हो जाने की भी संभावना है। ऐसा न हो कि उस संगठन का जितना लाभ हम यहां उठाएं; जन-सेना के हट जाने के कारण, उससे अधिक क्षति दंडक वन में हो जाए।"

"मैं सौमित्र से सहमत हूं।" राम गंभीर स्वर में ठहर-ठहरकर बोले, "वस्तुतः हमें अपनी दृष्टि तनिक दूरगामी रखनी पड़ेगी। हम इस समय एक व्यापक युद्ध के आमने-सामने हैं। ये छोटे-छोटे युद्ध उस व्यापक युद्ध के स्थानीय व्यूह हैं। हमारा युद्ध इस सर्वग्रासी, अन्यायी, शोषक तथा अत्याचारी राक्षसी वृत्ति से है। वाली का विरोध भी उसकी इसी राक्षसी वृत्ति के कारण ही है। वह इस समय रावण का ही एक मोहरा बना हुआ है। हम वाली के साथ युद्ध को इतना महत्त्वपूर्ण नहीं मान सकते कि रावण को भूल जाएं।"

"पर रावण को कौन भूल रहा है ?" सुग्रीव बोले, "यदि दंडक वन की जन-सेना को वहां से हटाने पर दंडक वन असुरक्षित हो जाता है, तो उस सेना को वहीं रहने दें।"

"बात केवल जन-सेना को हटाने या न हटाने की नहीं है।" राम बोले, "यदि रावण की राक्षसी सेना के साथ होने वाला अंतिम युद्ध आप लोगों के ध्यान में है, तो मुझे बताइए—उस युद्ध में हमारे सैनिक कौन होंगे ?"

"क्यों !" सुग्रीव बोले, "किष्किंधा की राजकीय सेना लड़ेगी।"

"हमारे यूथ लड़ेंगे।" जाम्बवान बोले।

"और दंडक वन की जन-सेना लड़ेगी।" अनिन्द्य ने जोड़ा।

"ठीक ! मेरा भी यही विचार है।" राम बोले, "इसलिए आवश्यक है कि इन तीनों की रक्षा की जाए, किंतु वानर-सम्राट सुग्रीव की योजना के अनुसार किष्किंधा पर सैनिक अभियान किया जाए तो यूथजन तथा जन-सैनिक एक ओर होंगे और किष्किंधा राजकीय सेना दूसरी ओर। वह एक प्रकार का गृह-युद्ध होगा, जिसमें दोनों पक्षों की सम्मिलित हानि, राक्षस-विरोधी सेना की हानि है, अतः हम स्वयं ही अपनी शक्ति के नाश की योजना बना रहे हैं।" राम रुककर बोले, "हमें गृह-युद्ध के इस विनाश को रोकना होगा।"

"तो फिर युद्ध कौन करेगा और किससे करेगा ?" हनुमान ने चकित होकर पूछा।

राम कुछ नहीं बोले। वे मौन रहकर एक-एक व्यक्ति को देखते रहे, मानो उनसे उस प्रश्न का उत्तर मांग रहे हों।

"एक बात और भी है," सबको चुप देखकर राम पुनः बोले, "यदि वाली से युद्ध करने के लिए हम एक प्रशिक्षित सेना तैयार करने का प्रयत्न करेंगे, तो उसमें पर्याप्त समय लगेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उतने दिनों तक वाली का अत्याचार भी चलता रहेगा और वह अपनी सैनिक शक्ति भी बढ़ाता रहेगा। संभव है कि इस बीच वह राक्षसों से कोई सैनिक-संधि करने में भी सफल हो जाए।"

"आपके मन में कोई योजना है, राम !" हनुमान बहुत कोमल स्वर में बोले, "तो आप ही बताएं।"

आवेश से भरा था। सहसा ही वे बहुत अस्थिर हो उठे थे।

"क्या हुआ, सम्राट ?" हनुमान उनके निकट आ गये।

राम उन्हें शांत भाव से देखते रहे, और फिर उन्होंने मुसकराकर पूछा, "क्या हुआ, मित्र ?"

जिस आकस्मिकता से सुग्रीव आवेश में आए थे, उसी आकस्मिकता से वे शात हो गये। प्रयत्नपूर्वक वे मुसकराए, "कुछ विशेष नहीं, राम !... यह युद्ध हमारा, सबका है। उसमें आप अकेले जोखिम क्यों उठायें ? आप हमारे अतिथि है। हम यह कैसे सहन करेंगे कि हम सुखपूर्वक अपनी गुफाओं में बैठे रहें और आप हमारे लिए अपने प्राणों को संकट में डालें।"

राम खुलकर मुसकराए, "औपचारिक दृष्टि से तो तुम्हारा कथन शिष्टाचार के अनुकूल है, मित्र ! किंतु हमने अपनी मैत्री मे एक-दूसरे के सुख-दुःख को अपना मानने की शपथ ली है। अब वाली तुम्हारा ही नही, मेरा भी—हम सबका शत्रु है। यदि आज तुम्हारे लिए मेरा अपने प्राणो को सकट मे डालना उचित नही है, तो कल मेरे लिए तुम्हारा अपने प्राणो को सकट मे झोकना भी उतना ही अनुचित हो जाएगा।"

सुग्रीव सकुचित हो उठे, "मेरा यह तात्पर्य नही था, राम !"

"तो अपना तात्पर्य स्पष्ट कहो, मित्र !" राम बोले, "अपना सकोच तथा औपचारिक व्यवहार त्याग दो।"

सुग्रीव कभी राम को देखते और कभी अन्य उपस्थित लोगों को। वे कुछ बोले नही।

"बोलो, सुग्रीव !मन की बात कहो।" राम स्नेह-युक्त स्वर में बोले।

"सत्य ही कहना होगा, राम !" अंततः सुग्रीव बोले, "मैं वाली से बहुत भयभीत हूं और बहुत कातर मनःस्थिति में हूं। इस समय मेरा एक-मात्र अवलंब आप है।...आपने यूथपति जाम्बवान के मुख से सुना ही है कि आपके आते ही वानरों का मनोबल जाग उठा है और वे वाली के विरुद्ध मेरे पक्ष में खड़े होने की बात सोचने लगे है। ऐसे में आपके खोने की तनिक-सी संभावना देखते ही मेरे प्राण तड़प उठते हैं।"

"आप भैया की शक्ति को भली प्रकार परखकर भी उसे बहुत कम आंक रहे हैं, वानर सम्राट !" लक्ष्मण अत्यंत दृढ़ स्वर में बोले, "युद्ध का

परिणाम कितना भी अनिश्चित क्यों न हो; भैया और वाली के द्वन्द्व-युद्ध मे भैया की पराजय की रंचमात्र भी सभावना नही है।"

"मेरा अर्थ यह नही था।" सुग्रीव घबराकर बोले, "मैं भद्र राम की शक्ति को तनिक भी कम नही आक रहा। मैं राम के पराजित होने की भी बात नही सोच रहा .।"

"तो फिर क्या है तुम्हारे मन मे?" राम के अधरो पर उनकी कमनीय मुसकान आकर ठहर गयी, "सत्य बोलने मे सकोच मत करो, मित्र! बोलो।"

सुग्रीव राम की वाणी और मुसकान में बध गए। उनका आत्म-नियत्रण शिथिल हो गया, "राम! मुझे भय है कि आपको देखते ही वाली तत्काल आपसे मैत्री की घोषणा कर देगा। वह कह देगा, उसकी आपसे कोई शत्रुता नही है। वह आपकी शरण में आ जायेगा। वह सीता को खोजने में आपकी सहायता का वचन देगा। वह सारी वानर सेना को सीता की खोज में लगा देगा..." सुग्रीव का स्वर कापने लगा, "फिर आप उसका वध कैसे करेंगे, राम? और यदि आप उसका वध नही करेंगे तो कौन उसे दडित करेगा? रुमा को कौन लौटा लायेगा? सुग्रीव के प्राणो को वाली के भय से कौन मुक्त करेगा? और किस मे इतनी शक्ति है कि वह किष्किधा और वानर यूथों को वाली के चंगुल से मुक्त कराये..."

लगा, वानर सम्राट की आंखो से अश्रु बहने लगेंगे।

राम अपने स्थान से उठकर सुग्रीव के सम्मुख आ खडे हुए। उन्होंने उन्हें कधों से पकड़कर उठाया और अपने वक्ष से लगा लिया। "कातर मत हो, सुग्रीव! राम का वचन स्वयं अपने-आप में प्रमाण होता है। मैंने रुमा और वानरो की मुक्ति का वचन दिया है; मैंने वाली को मृत्यु-दंड और तुम्हें किष्किधा का राज्य दिया है।"

"मुझे इसमे कोई सदेह नही, राम!" सुग्रीव बोले, "किंतु वाली धूर्त्त है और मेरा मन अत्यत भीरु तथा कातर है।" सुग्रीव ने राम के कधे से सिर उठाकर उनकी आखो में देखा, "जहा इतने वचन दिये हैं, वहां एक वचन और दो, मित्र!"

"मागो, सुग्रीव!"

सुग्रीव घड़ी भर राम को देखते रहे; और फिर जैसे संशय भरे स्वर मे बोले, "वाली के जीवित होते, आप या लक्ष्मण उसके सम्मुख नही पड़ेंगे।"

"यही होगा, मित्र !" राम बोले; किंतु उनका स्वर चिंताशून्य नही रह गया था।

उसके पश्चात और विचार-विमर्श नही हो सका। सुग्रीव की मनःस्थिति ऐसी नही थी कि युद्ध की योजनाओं तथा व्यूहों की व्यवस्था मे अपना मन लगा सकते। नल, नील तथा तार उन्हें उनकी गुफा तक ले गये। राम भी एकात चिंतन के लिए अपनी गुफा में चले आए। हनुमान, लक्ष्मण, जाम्बवान तथा अनिन्द्य मतगवन को सैनिक स्कंधावार का रूप देने में जुट गये।

जाम्बवान की बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। थोड़े-थोड़े समय के अंतराल से छोटे-बड़े यूथपतियों, सेनानायकों तथा सामान्य-जन के सुग्रीव की शरण में आ जाने की सूचनाएं आ रही थी। लगता था, जाम्बवान के साहस ने अन्य लोगों के मन में राख के नीचे दबी साहस की चिनगारी को भी प्रज्वलित कर दिया था।...नयी-नयी टुकडियो और जन-समूहो के आने से उनकी व्यवस्था की समस्या जटिल होती जा रही थी। सुग्रीव, हनुमान, नल, नील अथवा तार मे से किसी को भी आभास नही था कि इतनी बडी सख्या में लोग इस प्रकार खुल्लमखुल्ला वाली से विद्रोह कर, उनके पक्ष में आ खडे होगे।...दो-एक दिनो की बात होती, तो फिर भी उनके रहने और भोजन की व्यवस्था हो सकती थी; किंतु लबे समय तक सबके आवास तथा भोजन की व्यवस्था असंभव-सी दीख रही थी। साथ-ही-साथ उनकी सुरक्षा की भी समस्या थी। जिन मतंगों के भय से वाली इस वन में प्रवेश नही कर रहा था, वे अन्य लोगों के लिए भी संकट का कारण बन सकते थे।

सुग्रीव तक हनुमान एक-एक सूचना पहुचा रहे थे। इतने सारे लोगों के आगमन के समारोह तथा उनकी व्यवस्था संबंधी समस्याओ मे उलझकर बीच-बीच में सुग्रीव, अपने चिंतन के कूप से उबरकर ऊपर आ जाते

थे और अपनी चिंताओं को भूल जाते थे; किंतु सामने से हनुमान के हटते ही, वे समस्याए धूमिल हो जाती थी; और वे पुनः अपनी चिंताओं में डूबने-उतराने लगते थे।

उन्होंने अपने मन का वास्तविक भय स्पष्ट कर राम को कह दिया था। राम ने उन्हें वचन दिया था, और राम के वचन पर अविश्वास करने का कोई प्रत्यक्ष कारण भी नही था...किंतु, सुग्रीव अपने उस मन का क्या करते, जो बार-बार भीरु मृग-शावक के समान आशंकित होकर अपनी सुरक्षा के लिए अपने ही स्थान पर खड़ा-खड़ा कूदने लगता था, या शश-शावक के समान बिना कुछ सोचे-समझे किसी भी दिशा में दौड़ लगा देता था और अपनी नादानी में पहले से भी बड़ी चिंता की किसी कंटीली झाड़ी में जा उलझता था। चिंता-कंटकों से स्थान-स्थान से आहत होकर रक्त बहा-बहा, उनके मन का भी जैसे श्वास टूटने लगा था...

वाली के लिए कितना सुगम था, राम और लक्ष्मण से मैत्री कर लेना! अतत. वे चाहते क्या है—सीता की खोज! वाली के पास उसके लिए साधन सहज उपलब्ध है। राम तथा लक्ष्मण आराम से किष्किंधा के प्रासादों मे टिके रहें और वाली सीता की खोज-खबर ला देगा। कोई प्रतिबंध नही, कोई शर्त नही—राम और लक्ष्मण को कुछ नही करना पडेगा। न किसी को दंडित करना होगा, न किसी को मुक्त करना होगा, न किसी को सम्राट बनाना होगा...

और एक बार ऐसा हो गया तो न केवल सुग्रीव की सुरक्षा स्वप्न हो जाएगी; वरन वाली पहले से कही अधिक शक्तिशाली हो जाएगा। वाली की अपनी शक्ति का ही कोई प्रतिकार नही है; यदि राम और लक्ष्मण भी उससे जा मिले तो सुग्रीव क्या करेंगे—वे उनकी शस्त्र-शक्ति, युद्ध-कौशल तथा सगठन का जोड कहा से लाएंगे..

सुग्रीव का मन निराशा के तल तक जा पहुचा और हताश अवस्था मे बडी देर तक पड़ा रहा। अंततः स्वयं ही उसकी प्रतिक्रिया आरंभ हो गयी और स्वय ही अपने मन को प्रताड़ित करने लगे—राम तथा लक्ष्मण के प्रति इतने अविश्वास का कारण? आज तक उन्होंने इन दोनो भाइयों के विषय मे जो कुछ सुना था, उससे क्या सुग्रीव ने उनके विषय मे यही धारणा

बनायी थी कि वे सुख और सुविधाओं के लिए अन्याय से समझौता करते फिरते है ? वे इतने ही सुविधाजीवी होते तो अयोध्या का राज्य ही क्यों छोडते ? और यदि वलात वन में धकेल ही दिये गये थे तो समर्थ राक्षसों तथा असमर्थ जन-सामान्य एव बुद्धिजीवियों में से वे शोपित तथा असमर्थ लोगों का पक्ष क्यों लेते ?

धिक्कार है सुग्रीव तुझ पर ! तूने राम तथा लक्ष्मण की सद्भावना पर विश्वास नही किया, उनके चरित्रो को इतना दुर्बल माना और उनकी वीरता पर सदेह किया...मूर्ख ! बहुत चतुर बनते-बनते तू अपना ही नाश कर बैठा। यदि राम तथा लक्ष्मण, वाली के जीवित रहते उसके सम्मुख नही पड़ेंगे, तो वाली से लड़ने क्या तू जाएगा ?...यह क्या किया सुग्रीव तूने...

राम बड़ी देरतक बैठे सोचते रहे—कैसी विचित्र परिस्थितियों मे घिर गये थे वे। वाली से वे लड़ें, यह सुग्रीव नहीं चाहता; और सुग्रीव की सेना वाली की सेना से लडे, यह राम नही चाहते। न सेना लड़े, न व्यक्ति, तो वाली का वध कैसे होगा ? ...

वानरों में गृह-युद्ध तो किसी भी स्थिति में नही होना चाहिए। ये निरीह हत्याएं हैं। उनका कोई प्रयोजन नही। पराजय वाली की हो अथवा सुग्रीव की—वानर जाति दोनो रूपो मे निर्बल होगी। इस युद्ध का प्रयोजन तो केवल वाली के वध से सिद्ध हो जाएगा।...हां, यदि वाली का वध न हुआ, वह इसी प्रकार सत्ता में बना रहा तथा अत्याचार करता रहा, तो वानर निश्चित रूप से दो पक्षों मे युद्ध-सज्जित होते रहेंगे; और अततः उनमे परस्पर जो रक्तपात होगा, वह अत्यत भयकर होगा। उस रक्तपात से वानरों को बचाने के लिए आवश्यक है कि वाली का अत्याचार शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो; और उसका एक ही मार्ग है—वाली का वध !

वाली को द्वन्द्व-युद्ध के लिए कौन ललकारे ?...जब उनके अथवा लक्ष्मण के वाली के साथ द्वन्द्व-युद्ध की कोई सभावना नही है, तो फिर सबसे उपयुक्त व्यक्ति स्वयं सुग्रीव ही है। वह वानरों के विद्रोही पक्ष का नेता है, वानरों की दृष्टि से सर्वाधिक शस्त्रबद्ध है और आयुधों के सचालन

मे भी कुशल है...और सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वाली ने उसी की पत्नी का अपहरण किया है...इस पाप के प्रतिकार का सर्वाधिक अधिकार सुग्रीव को ही है .

अपने स्थान पर बैठे रहना राम के लिए अनावश्यक था। उन्होंने अपनी गुफा से बाहर निकलकर देखा—लक्ष्मण तथा अनिन्द्य अभी तक नही लौटे थे। वे हनुमान के साथ गये थे; कही किसी व्यवस्था में लगे होंगे ...एक ओर मुखर के वध तथा दूसरी ओर सीता का अपहरण हो जाने के कारण राम और लक्ष्मण पहले की तुलना मे अधिक समय तक परस्पर एक दूसरे के साथ रहे थे; किंतु अनिन्द्य के साथ भी लक्ष्मण का काफी समय बीता था। उससे सौमित्र की मुखर जैसी मैत्री तो नही हुई थी; किंतु फिर भी वे एक-दूसरे को काफी समझने लगे थे .किंतु राम को सीता के अपहरण के पश्चात जो अकेलापन मिला था, वह उनकी आत्मा से ऐसा चिपक गया था कि अनेक लोगो की संगति मे भी जैसे भीतर से वे अकेले ही रहते थे। . जाने सीता कहां होंगी, और किस स्थिति मे होंगी या रावण द्वारा मार डाली गयी होंगी...जीवित भी होंगी तो बंदिनी होंगी, शारीरिक तथा मानसिक यातनाएं सह रही होंगी, अपमानित होंगी...राम विलंब नही कर सकते...

राम द्रुत गति से सुग्रीव की गुफा तक आए।

"सुग्रीव !"

सुग्रीव गुफा से बाहर निकले। राम उन्हे देखकर चौंक उठे—वह अपनी गुफा मे बैठा रोता रहा है क्या ? चेहरे का वर्ण पीला पडा हुआ... आखों मे भय, त्रास, हताशा, उलझन और अनेक अनजाने भावों के गुंजलक !...यह सुग्रीव कैसे लड़ेगा दर्पोद्धत वाली से ! यह तो वाली को देखते ही भाग जाएगा। कैसे असंभव कार्य की बात सोच रहे है राम ! कभी मेमना भी सिंह से लड़ा है क्या ?...तत्काल राम ने स्वयं ही अपने विचारों को झटक दिया—यह सुग्रीव की प्राकृत दशा नही है।...सीता के अपहरण के पश्चात वे स्वय कितने विचलित और अस्थिर हो गये थे। तब क्या स्वयं उनको देखकर कहा जा सकता था कि राम कभी युद्ध भी कर सकते

है .सिद्धाश्रम, चित्रकूट तथा दंडक वन की राक्षस-त्रस्त, भीत तथा भीरु प्रजा को देखकर क्या कोई कल्पना कर सकता था कि वे लोग नियमित जन-सेना में सज्जित हो जाएंगे, और राक्षसों को उनके सम्मुख मुंह की खानी पड़ेगी।.. सुग्रीव के भीतर प्राकृत योद्धा को जगाना पड़ेगा...

"सुग्रीव !"

"मैं बड़ी उलझन में हूं, भद्र राम !"

"मैं समझ सकता हू, मित्र !" राम मुसकराए, "इसीलिए एकांत मे तुम्हारे पास आया हूं। सभा में सारी बातें तो नही हो सकती।"

"इस विश्वास और स्नेह के लिए..."

"इन बातों को छोड़ो।" राम के अधरों पर स्निग्ध मुसकान थी, "इतने आर्त मत रहो। तुम मेरी शरण में आए हो और मैं तुम्हारी शरण आया हूं। तुम्हे मेरी आवश्यकता है और मुझे तुम्हारी। मेरे बिना तुम्हारा कार्य रुका पड़ा है और तुम्हारे बिना मेरा।...और फिर यह मात्र स्वार्थ का गठबंधन नही है—अन्याय के प्रतिकार तथा अत्याचारी को दंडित करने के लिए युद्धोन्मुख होना है। ऐसी स्थिति में तुम उलझन में रहोगे; चिंतित, पीड़ित तथा कातर रहोगे; तो युद्ध कैसे होगा, मित्र ? अत्याचारी दंडित कैसे होंगे ?"

"आप ठीक कहते हैं, राम !" सुग्रीव धीमे स्वर में बोले,"किंतु मैं अपने मन का क्या करूं ? बाली के आतंक मे मेरे हाथ का खड्ग भी कांपकर गिर जाता है। आपको तथा लक्ष्मण को बाली के सम्मुख जाने देने का भी मेरा साहस नही होता। बाली का वध कैसे होगा ? उससे युद्ध कौन करेगा ?"

"बाली से युद्ध तुम करोगे, सुग्रीव !"

सुग्रीव का सारा शरीर सिहर उठा। राम का स्वर जैसे अपनी लाखों प्रतिध्वनियों के साथ उनकी शिराओ मे झनझना रहा था। उन्होने आश्चर्य से राम की ओर देखा। राम मुसकरा रहे थे—शांत, स्निग्ध तथा मोहक मुसकान। सुग्रीव ने अनुभव किया, राम जब इस प्रकार मुसकराते हैं तो देखने वाले मे आत्मविश्वास का संचार होता है। तभी तो राम जान-बूझकर इस प्रकार मुसकराते हैं।

"बाली का वध मेरे हाथों संभव होता, तो मैं वह कब से कर चुका,

होता।" सुग्रीव धीरे-से बोले, "यदि वाली से युद्ध करने की क्षमता मुझमें होती तो मैं आज तक ऋष्यमूक की गुफाओ में भीत मूपक के समान क्यो छिपता फिरता।...आप मेरा उपहास न करें, राम ! मैं आपकी दया का पात्र हूं।"

"मैं उपहास नही कर रहा, सुग्रीव !" राम पुनः मुसकराए, "मैं तुम्हें तुम्हारी क्षमता का स्मरण करा रहा हूं। तुम वीर हो, योद्धा हो, तेजस्वी हो; और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि तुम्हारा पक्ष न्याय का पक्ष है। न्याय के लिए लडने वाला भी कभी दुर्बल हुआ है, सुग्रीव ?"

सुग्रीव ने अत्यंत कातर दृष्टि से राम को देखा, "मेरा न्याय वाली की गदा से टकराता है तो उसका चूर्ण बन जाता है, और वाली की गदा पर प्रहार का चिह्न भी नही छूटता। मेरी वीरता और रण-दक्षता वाली को सामने पाते ही भाग जाती है। बताओ, मैं क्या करूं, राम ! यदि आप मुझे वाली से लडने के लिए बाध्य करेंगे, तो मैं यही मानूगा कि आप वाली के हाथों मेरा वध करवाना चाहते हैं।"

"नही !" राम खुलकर हसे, "ऐसा मत सोचना, मित्र ! सत्य यह है कि मैं तुम्हे उस पापी से लड़वाऊंगा और तुम्हे वचन देता हूं कि तुम्हे मरने नही दूगा।"

"यह आपका अतिम निर्णय है ?"

"अतिम ! दृढ तथा अपरिवर्तनीय !" राम बोले, "लड़ना तुमको ही पड़ेगा, क्योंकि पीड़ित तुम हो। प्रतिशोध तुम्हे ही लेना होगा, क्योंकि अपराध तुम्हारे प्रति किया गया है।...गुरु विश्वामित्र ने कहा था—जो पीड़ित लड़ता नही है, उसका उद्धार संभव नही है।"

"पर..."

"पर क्या, सुग्रीव !" राम बोले, "शत्रु की प्रहारक शक्ति यदि तुम्हें श्रेष्ठतर लगती है तो तुम भी अपनी प्रहारक शक्ति बढ़ाओ। उसके शारीरिक बल का प्रतिकार तुम अपने शस्त्र-बल से करो।"

"वाली शस्त्रों से युद्ध करता ही नही।" सुग्रीव धीरे से बोले, "उसके साथ तो शारीरिक शक्ति का ही युद्ध है—मल्ल-युद्ध और मुष्टि-युद्ध।"

"तो उन्ही का अभ्यास करो।" राम बोले, "शक्ति का प्रतिकार

कौशल से तो हो ही सकता है।

"मैं साहस नहीं कर पाता, भद्र राम !"

"तुम्हारा साहस तो मैं हूं, सुग्रीव !" राम ने स्नेहयुक्त हाथ सुग्रीव के कंधे पर रखा, "मैं वहीं उपस्थित रहूंगा। तुम्हें दिये गये वचन के अनुसार, वाली के सम्मुख नहीं आऊंगा; विपत्ति में देखते ही तुम्हारी सहायता करूंगा। ..मेरा वचन याद रखना—तुम्हें मरने नहीं दूंगा।"

लक्ष्मण तथा अनिन्द्य, हनुमान के साथ लौटे तो उन्हें संदेश मिला कि 'राम प्रस्रवणगिरि पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हनुमान और लक्ष्मण तत्काल वहां पहुंचें।' पीछे का दायित्व अनिन्द्य को सौंपकर, लक्ष्मण हनुमान के साथ प्रस्रवणगिरि पर आ पहुंचे।

वहां उन्होंने जो कुछ देखा, वह अद्भुत था। राम, सुग्रीव को मल्ल-युद्ध के नये दाव-पेंच सिखा रहे थे; और सुग्रीव बड़े मनोयोग से उनका अभ्यास कर रहे थे।

"यह क्या, भैया ?" लक्ष्मण ने विस्मय से पूछा।

"वाली से युद्ध की तैयारी। सुग्रीव वाली से मल्ल-युद्ध करेंगे।" राम ने बताया।

"शस्त्र-युद्ध क्यों नहीं करते ?" लक्ष्मण बोले, "हनुमान बता रहे थे कि शारीरिक बल में वाली, वानरराज सुग्रीव पर सदा भारी पड़ेंगे।"

"वाली शस्त्र-युद्ध नहीं करेगा। अतः सुग्रीव मल्ल-युद्ध ही करेंगे; किंतु शारीरिक बल की कमी को युद्ध-कौशल से पूरा करेंगे।" राम तनिक रुककर बोले, "मैंने तुम दोनों को इसलिए बुलाया है कि तुम लोग सुग्रीव को अभ्यास में सहायता करो; कल प्रातः ही सुग्रीव वाली को ललकारेंगे।"

"कल प्रातः ?" लक्ष्मण चकित थे, "इतनी जल्दी ?"

"वाली के वध में जितना विलंब होगा, स्थितियां उतनी ही जटिल होती जाएंगी।" सहसा राम चुप हो गये।

लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान तीनों ही राम को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखने लगे।

करने जाएंगे। और सुग्रीव ने जब-जब अपने मन से पूछा, 'क्या वे इस द्वन्द्व-युद्ध के इच्छुक थे ?' उन्हें एक बार भी स्वीकारात्मक उत्तर नहीं मिला। यदि वे वाली से द्वन्द्व-युद्ध के इच्छुक होते, तो फिर इतने दिनों तक वनों तथा पर्वतों में छिपे रहने की क्या आवश्यकता थी ? तब राम का आश्रय पाने की क्या उतावली थी ? जब लड़ना स्वयं सुग्रीव को ही है तो फिर राम का क्या श्रेय ? उनकी सहायता कैसी ? उनका संरक्षण कैसा ?...किंतु इसमें राम का क्या दोष है...उन्होंने तो स्वयं ही द्वन्द्व-युद्ध करने का प्रस्ताव रखा था। तब अपनी मूर्खतावश सुग्रीव ने उन्हें उनके वचन में ऐसा बांध दिया कि अब वे चाहें भी तो वाली से युद्ध नहीं कर सकते...अब लड़ना होगा सुग्रीव को।...राम के आने से पूर्व, सुग्रीव के पास लड़ने और न लड़ने का तो विकल्प था; किंतु अब परिस्थितियों ने जो मोड़ ले लिया है, उसमें वह विकल्प भी उनके पास नहीं है। अब सारे निर्णय राम के हाथ में है, और राम ने यह निर्णय किया है कि सुग्रीव वाली से युद्ध करें...पर क्या राम देख नहीं पा रहे कि सुग्रीव में वाली का सामना करने का सामर्थ्य नहीं है। सदा से वाली से डरा हुआ सुग्रीव उससे आंखें मिला भी पाएगा क्या ?...राम ने मल्ल-युद्ध के जो दांव सिखाये हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। संभवतः वाली ने उनके विषय में कभी सुना भी न हो; किंतु उनके बल पर क्या वाली की असीम शक्ति का प्रतिकार किया जा सकता है ?...

जैसे-जैसे उषाकाल निकट आता जा रहा था, सुग्रीव का मन व्याकुल होता जा रहा था। वे स्वयं अपने मन की भावनाओं को समझ नहीं पा रहे थे। वे भयभीत थे, घबराए हुए थे या रुष्ट मात्र थे ? रुष्ट थे, तो किससे—वाली से ? राम से ? अपने आप से ? अथवा अपने मित्रों से ?...कभी मन में आता, सबसे झगड़ पड़ें—अपने साथियों से, सहयोगियों से, अपने मंत्रियों से, और राम से भी क्या उन लोगों को इतनी-सी बात समझ में नहीं आ रही कि द्वन्द्व-युद्ध के व्याज से, वे सुग्रीव की हत्या का प्रबंध कर रहे हैं...पर राम कहते हैं कि वे सुग्रीव को मरने नहीं देंगे...तो सुग्रीव युद्ध से पीछे कैसे हट सकते हैं ? वानरराज ऐसे जाल में फंस गये

हैं, जिसे काटना असंभव है...उन्हें वही कार्य करना पड़ेगा, जिसके लिए वे स्वय ही प्रस्तुत नही है।

प्रात. वे सायास विलंब कर, अपनी गुफा से निकले। उन्होंने पूजा में अधिक समय लगाया; सामूहिक व्यायाम के पश्चात भी उन्होंने अतिरिक्त समय लिया; शस्त्राभ्यास मे भी अपनी दिनचर्या का अतिक्रमण किया; और अल्पाहार से उठने की जैसे उनकी इच्छा ही नही हो रही थी।

उधर राम क्रमश· जाने की तैयारी करते जा रहे थे। सुग्रीव के साथ-साथ राम तथा लक्ष्मण के अतिरिक्त हनुमान, नल, नील तथा तार भी जाने वाले थे। पीछे की व्यवस्था अधिकांशत: जाम्ववान तथा अंगद के हाथों में थी।...राम ने सुग्रीव के इस अभियान को अधिक-से-अधिक प्रचारित करवा दिया था, ताकि बाली को पहले ही सूचना मिल जाए।

सुग्रीव का मस्तिष्क तपते-तपते जैसे जड़ हो गया था।-उनमे से सारी भावनाएं निष्क्रमण कर गयी थी। अब वे जैसे कुछ अनुभव ही नही कर पा रहे थे। किसी जड यत्र के समान अन्य लोगों के कहने पर हाथ-पैर हिला रहे थे। मन में युद्ध के लिए किसी प्रकार का उत्साह नही था...कभी-कभी वे स्वय अपने-आप से तटस्थ होकर सोचने लगते...जब आधी रात को वे किष्किधा से भागे थे, तो अगले दिन रुमा के अपहरण की सूचना पाकर वे बाली से लड़कर मर जाने के लिए किष्किधा लौटना चाहते थे; किन्तु आज उन्हें क्या हो गया था। वे अपने-आपको ही समझ नही पा रहे थे..

सुग्रीव जितने जड होते जा रहे थे, राम मे उसी अनुपात मे सक्रियता बढती जा रही थी। उन्होंने अपनी देख-रेख में लक्ष्मण को शस्त्र-सज्जित करवाया था; और स्वय भी बडे समारोह से आयुध बाध रहे थे।

जब किसी भी प्रकार सुग्रीव और विलब न कर सके, तो उनका प्रयाण आरंभ हुआ।

"मै इससे एक प्रहर पूर्व चलना चाहता था।" राम ने सिर पर चढ आये सूर्य को देखा।

सुग्रीव कुछ नही बोले। जानते थे, यदि उन्होंने जान-बूझकर विलम्ब न किया होता तो वे लोग एक प्रहर पूर्व ही चल पड़ते। किंतु,

तथा उत्साहपूर्वक किसी समारोह में सम्मिलित होने के लिए जाते हुए, तथा गुरु के पास पहुंचाने के लिए पिता द्वारा बलात घसीटे जाने वाले बालक में अंतर होता है ..

ऋष्यमूक से नीचे उतरकर वन में प्रवेश करते ही हनुमान सबसे आगे हो गये। उनके पीछे सुग्रीव तथा राम थे। लक्ष्मण राम के साथ लगे-लगे थे, और सबसे पीछे नल-नील तथा तार चल रहे थे।...यह कदाचित सुग्रीव की रक्षा की दृष्टि से किया गया था...किंतु सुग्रीव को यह सारा आयोजन ही व्यर्थ लग रहा था। जो सुग्रीव स्वयं अपने पैरों से चलकर मृत्यु के मुख में समाने जा रहे थे, अब उनकी सुरक्षा का क्या अर्थ...सहसा सुग्रीव की दृष्टि आगे-आगे चलते हुए हनुमान पर पड़ी। कैसे आत्म-विश्वास और वीर-दर्प से चल रहा था हनुमान। आज तक किसी के मन में हनुमान के वाली के साथ द्वन्द्व-युद्ध की बात क्यों नहीं आयी।...वय में हनुमान छोटा है। उसमें ऊर्जा भी अधिक है। शरीर से भी सुग्रीव की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ है। मल्ल-युद्ध में तो वह सपूर्ण वानर-जाति में सर्वोपरि माना जाता है...किंतु युद्ध के लिए जा रहे हैं सुग्रीव...

साथ-साथ चलते हुए राम और लक्ष्मण मार्ग की जानकारी पाने के लिए अनेक प्रश्न कर रहे थे। कहीं वे लोग प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध हो रहे थे; कहीं गुफाओं तथा वृक्षों के झुरमुटों को वे सामरिक दृष्टि से परख रहे थे; कहीं उनकी जिज्ञासा वनस्पति के सम्बन्ध में थी; कहीं उन्हें कोई स्थान आश्रम के उपयुक्त लग रहा था।

किंतु उनका वार्तालाप सुग्रीव में तनिक भी रुचि नहीं जगा पा रहा था।

अंगद को सूचना मिली और वे निःस्पंद रह गये—स्थिति यहां तक आ पहुंची है। सुग्रीव और वाली का द्वन्द्व-युद्ध ! और द्वन्द्व-युद्ध का अर्थ होता है—दो योद्धाओं में से एक की मृत्यु। पर पिता तथा गुरु समान अपने चाचा में से वे किसकी मृत्यु के प्रति निरपेक्ष हो सकते हैं ! पिता की मृत्यु का अर्थ होता है—एक स्नेह-संबंध की पीड़ा-दायक समाप्ति, मां का वैधव्य, चाहे कैसे भी हो, पर पिता तो हैं—उस पिता का सिर से उठ जाना।

और यदि पिता की विजय हुई तो अगद के लिए उसका अर्थ है, मित्र सम स्नेही चाचा से विछोह; गुरु तथा मार्गदर्शक नेता का लोप !...और किष्किधा ही नही, सम्पूर्ण वानर-जाति के लिए उसका अर्थ होगा, निकट-भविष्य मे मुक्ति की सभावनाओ की निश्चित मृत्यु ! स्वतत्रता, समता तथा न्याय का अकाल देहात। अधकारमय, अपमानजनक, शोषक, स्वार्थी, भ्रष्ट मत्ता की निर्विरोध दृढ स्थापना।

किमकी विजय की कामना करें अगद ? किसका पक्ष लें ? और यदि वे किसी का भी पक्ष नही ले सकते, तो जाकर उनसे कहे कि वे दोनों न लड़ें... किसी प्रकार का कोई समझौता कर लें। क्या किसी प्रकार के समझौते की कोई संभावना है?.. पर समझौता हो सकता तो यह स्थिति ही क्यों आती?...यह तो होना ही था। दोनों भाइयो की वृत्तिया जिस प्रकार एक-दूसरे की विरोधिनी थीं—उनके सह-अस्तित्व की कल्पना भी कैसे की जा सकती है। वाली को प्रजा-पालन का तनिक भी ध्यान नही था और सुग्रीव पूर्णतः उसी ओर उन्मुख थे। फिर यह दो भाइयों का झगडा कहा रहा? ये दोनों तो दो विरोधिनी शक्तियो के प्रतीक मात्र थे, जिनका भिडना अनिवार्य है ..

कदाचित सुग्रीव स्वयं वाली से द्वन्द्व-युद्ध का साहस न करते। कर सके होते, तो इतने लंबे अतराल तक शात क्यों पड़े रहते।...जब से राम और लक्ष्मण अपने कुछ साथियो के साथ उनसे आ मिले है, तब से उनका ही साहस नही बढा है, अनेक वानर यूथपतियों, सेना-नायकों तथा सामान्य जन का भी साहस बढ गया है। तभी तो जा-जाकर वे लोग सुग्रीव से मिल गये हैं।...अन्य लोगों का ही साहस नही बढा, स्वयं अगद के सिर का बोझ भी हल्का हो गया है। राम तथा लक्ष्मण के आ मिलने से सुग्रीव अब असुरक्षित नही रहे—अंगद ने भी मान लिया था ..किंतु यदि राम के संरक्षण में सुग्रीव पूर्णतः सुरक्षित है, तो वे इस द्वन्द्व-युद्ध में भी पूर्णत सुरक्षित ही होगे। ऐसा सभव नही है कि सुग्रीव, राम के परामर्श के विना अथवा उनको साथ लिये विना ही वाली से लडने के लिए चल पड़े हों; और यदि राम तथा लक्ष्मण को साथ लेकर सुग्रीव लड़ने आये है, तो वाली की मृत्यु निश्चित है...

अगद के शरीर का सारा रक्त, उनके मस्तिष्क की ओर दौड चला... उन्हे जाकर पिता को सावधान करना चाहिए; मा को बताना चाहिए। ऐसे पिता की रक्षा नही हो पाएगी...किंतु दूसरे ही क्षण वह रक्त उल्टी दिशा में दौड़ पड़ा—यदि वाली को सुग्रीव के आक्रमण से बचाना ही अगद का अभीष्ट था, तो फिर सुग्रीव को बचाने के लिए आधी रात को शिल्पी को भेजने का क्या अर्थ था ? अंगद ने अपना सिर पकड़ लिया...कैसे विरोधों में फस गये है वे; न दाए जा सकते है, न बाएं। वे न मां को विधवा होते देखना चाहते है, न रुमा चाची को बंदिनी और अपमानित होते। न वे चाचा को पिता के पगों के नीचे तड़प-तड़पकर मरते देखना चाहते है; न पिता को राम के बाणों से आहत होकर प्राण देते...।

क्या कर सकते हैं अगद ! अब तो उनके हाथ में कुछ भी नही रहा !

वाली ने पग नगर-द्वार के बाहर रखा ही था कि सुग्रीव सामने खड़े दिखायी दिये। वाली की आखों में रक्त छलका—उस दिन तो आधी रात को पत्नी को सोती छोड घर से भाग निकला था और आज आया है ललकारने ! नीच ! कायर !!...वाली के किष्किधा से बाहर जाते ही सिंहासन पर जमकर बैठ गया, जैसे वाली की मृत्यु हो गयी हो ...और स्वय मरने से इतना डरता है कि अपनी पत्नी भी वाली के लिए छोड़कर भाग गया।

वाली के जी में आया, पूछे कि क्या पाने की इच्छा से लड़ने आया है—किष्किधा का राज्य चाहिए या रुमा ?...पर दूसरे ही क्षण वाली के मन में स्पष्ट हो गया, वह सुग्रीव को इन दोनों में से कुछ भी लौटाने को प्रस्तुत नहीं है। किष्किधा का राज्य देने का तो कोई अर्थ ही नही है... रुमा ! पहले रुमा की ओर वाली ने कभी विशेष ध्यान नही दिया था... किंतु अब रुमा के साथ इतने दिन रह लेने के पश्चात वाली ने उसका मूल्य पहचाना है...वाली उसे नही लौटा सकता।

वाली से कुछ भी वापस मांगने वाला जीवित नही रह सकता...सुग्रीव तो एकदम ही नही...वाली के लिए अब रुकना संभव नही था। वह झझावात के समान भागा और उसने सुग्रीव की नाक पर मुक्के से प्रहार किया।...सुग्रीव जाने किस विचार में खड़े थे कि न उन्होंने वाली के मार्ग

से हटने का प्रयत्न किया, न प्रहार रोकने का। वाली के मुष्टि-प्रहार से जब वे दूर जा पड़े, तब जैसे उनकी चेतना लौटी—वे राम के कहने पर वाली से लड़ने के लिए आ गये थे और वाली के आतंक से जडीभूत, मूर्ति के समान खड़े हो गये थे।...ऐसी विकट स्थिति मे भी वे स्पष्ट देख रहे थे कि उनका मन वाली से इतना आतंकित तथा उसके बल से इतना अभिभूत था कि उस पर स्वयं प्रहार कर विजयी होने की बात उनके लिए कल्पनातीत थी...किंतु उनके सम्मुख यह भी स्पष्ट था कि वाली इस बार उन्हें जीवित नही छोडेगा। .वाली पर प्रहार वे करें या न करें, विजयी वे हों या न हों; किंतु उन्हे अपनी रक्षा तो करनी ही होगी। वाली उनसे कितना भी अधिक शक्तिशाली हो, किंतु इतने निरीह तो सुग्रीव भी नही है कि वे चुपचाप पडे पिटते रहे और शत्रु के प्रहारों से अपने प्राण निकलने की प्रतीक्षा करते रहे।. .उनकी दृष्टि वाली पर पडी, वह पुनः प्रहार करने के लिए झपट रहा था; किंतु जब तक सुग्रीव सभलते, वाली ने दूसरी चोट कर ही दी थी।...सुग्रीव भूमि पर जा गिरे। वाली ने उन्हें उठने का अवसर नही दिया। वह पुनः झपट पड़ा।.:.सुग्रीव उसके चंगुल से निकलने का प्रयत्न कर रहे थे और वाली था कि उन्हें भूमि पर रगेदता भी जाता था और पीटता भी जाता था।

सुग्रीव ने अपनी सपूर्ण शारीरिक शक्ति तथा मनोबल का आह्वान कर, वाली को परे धकेला। निमिष भर के लिए वाली का दबाव हल्का पड़ा कि सुग्रीव उठ खडे हुए; किंतु उनसे कही अधिक स्फूर्ति से वाली भी उठा और जब तक सुग्रीव सभलें, वाली ने भयंकर मुष्टिका-प्रहार किया। सुग्रीव की नाक पर, वाली का यह दूसरा मुक्का लगा था। पीडा से कराहते हुए सुग्रीव भूमि पर लोटते हुए, दूर जा गिरे...लेटे-लेटे सुग्रीव ने अपनी नाक पर हाथ रखा। उनका हाथ तरल, उष्ण रक्त से रंग गया। वाली उन्हें घूरता हुआ अपने स्थान पर खडा, श्रम के कारण हाफता हुआ भी, जैसे पुनः झपटने की तैयारी में था।...सुग्रीव का मस्तिष्क बड़ी तेजी से सोच रहा था—इस बार के आक्रमण मे सभव है, वाली उन्हे उठाकर दे मारे, उनका हाथ या पैर मरोड़कर तोड़ दे अथवा उखाड़ ही डाले, या मस्तक को ही चकनाचूर कर दे...उनके अपने शरीर में इतनी क्षमता नही

बची थी कि वे वाली के प्रहार को सभाल पाते...और राम उनकी सहायता नही करेंगे.. क्यों करेंगे ? शक्तिशाली किष्किधापति वाली के विरुद्ध, कोई भी व्यक्ति निष्कासित, असमर्थ, असहाय, निरुपाय सुग्रीव की सहायता क्यो करेगा ? क्या मिलेगा किसी को सुग्रीव की सहायता करके...कोई तेरी सहायता नही करेगा सुग्रीव ! उठ ! भाग !...अपने प्राण बचा...

सुग्रीव उठकर खड़े हुए और वाली पर झपटने के स्थान पर, सहसा पलटकर, उल्टी दिशा मे वन की ओर भागे...

ऋष्यमूक पर पहुचने पर राम को, सुग्रीव अपनी गुफा के सम्मुख, अपने सहायको के साथ बैठे हुए दिखाई दिये। उन्होंने अपने घावों को अभी धोया-पोंछा भी नही था। वे जिस स्थिति में वहा पहुचे होंगे, उसी स्थिति मे बैठे हुए थे—पूर्णतः निराश, हताश तथा टूटे हुए। हनुमान, नल, नील, तार और जाम्बवान भी मुह लटकाये हुए बैठे थे।

हनुमान ने राम और लक्ष्मण की ओर इगित कर, सुग्रीव से कुछ कहा। कदाचित उनके आने की सूचना दी हो। किंतु सुग्रीव ने मुंह उठाकर उनकी ओर देखा तक नहीं।

राम जाकर सुग्रीव के सम्मुख खड़े हो गये, किंतु सुग्रीव ने अपना चेहरा दूसरी ओर फेर लिया।

राम मुसकराए, "मुझसे रुष्ट हो, मित्र सुग्रीव ?"

सुग्रीव तड़पकर घूमे, जैसे उन पर कशाघात हुआ हो, "कौन किसका मित्र है, राम ! क्या मैत्री इसी को कहते हैं..." उनका आक्रोश हताशा मे बदल गया और उनकी आखों से आसू बह निकले, "मैं क्या जानता नहीं था, या मैंने स्वीकार नही किया था, कि वाली मुझसे कही अधिक शक्तिशाली है। फिर भी मैं तुम्हारी मैत्री और बल का संबल पाकर, तुम्हारे आदेश से यम सरीखे अपने उस शत्रु से लडने के लिए गया। मैंने उसे ललकारा था, अपने बल और साहस के भरोसे नही, तुम्हारी शक्ति और युद्ध-क्षमता के सहारे। और तुम मुझे वास्तविक मर्कट मानकर मेरे पिटने को अपनी क्रीडा समझते रहे। मैं वहां पिटता रहा, घाव खाता रहा, मेरा रक्त बहता रहा; और तुम दोनों भाई धनुष-बाण लिये, वृक्ष के पीछे खड़े

तमाशा देखते रहे कि दो असम योद्धाओं को भिड़ा, निर्बल को पिटते देखने मे कैसा वीभत्स रस मिलता है।...जला दो अपने धनुष-बाण ! ये या तो शोभा के लिए है, या नाटक के लिए।"

"सुग्रीव !" लक्ष्मण क्रुद्ध होकर बोले, "अनर्गल प्रलाप बद करो। क्या अधिकार है तुम्हें यह सब कहने का ?"

"एक तो इतना बडा छल किया," सुग्रीव तडपकर बोले, "और अब शिकायत भी नही करने दोगे।"

"कहने दो, सौमित्र !" राम मुसकराए, "वानरराज इस समय क्रोध मे है। कहो, बधु ! क्या कहना है ?"

"मुझे क्या कहना है !" सुग्रीव ने राम की ओर देखा, "मैं तो स्वय यहा सुनने के लिए बैठा हूं। तुमने मेरे साथ छल क्यो किया ?"

"मैंने तनिक भी छल नही किया, मित्र !" राम की मुसकान लुप्त हो गयी, "मैंने तो सचमुच यही चाहा था कि हम तुम्हे समर्थ बनाए; ताकि तुम स्वय अपने हाथों अपने शत्रु का वध कर, अपना प्रतिशोध लो और वीरत्व का यश पाओ।"

"पर मैं वाली से लड़ नही सकता।" सुग्रीव झल्लाकर बोले।

"केवल अपने मित्रो से झगड़ सकते हो !" लक्ष्मण ने तीखे स्वर मे कहा।

"शात हो जाओ, सौमित्र !" राम मुसकराए, "क्रोध में कही गयी मित्र की बात का क्या बुरा मानना।" वे सुग्रीव की ओर मुड़े, "वह तो मैने भी देखा है, सुग्रीव ! तुम्हारा शरीर कितना अक्षम है, यह कहना कठिन है; तुम्हारी चेतना वाली से इतनी पराभूत है कि तुम उसके सम्मुख खडे नही हो सकते। इसीलिए कहूंगा कि तुम वाली से लडने अवश्य गये थे; किंतु तुम लड़े नही।

"लडा नही तो अपना यह रक्त ऐसे ही बहा आया ?" सुग्रीव आक्रोशपूर्ण स्वर मे बोले।

"लडना एक बात है," राम मुसकराए, "और खड़े-खडे पिटते रहकर भाग आना दूसरी बात है। तुमने लड़ने का तनिक भी प्रयत्न नही किया, मित्र ! न देखा, वाली प्रहार कैसे कर रहा है, न देखा तुम्हे अपना बचाव

कैसे करना चाहिए; न तुमने मल्ल-युद्ध किया, न मुष्टिका-युद्ध। तुमने एक बार भी उन दावो के प्रयोग का प्रयत्न नही किया, जो तुम्हें सिखाए थे। तुम तो झुझलाए हुए वच्चे के समान वाली से बचने का प्रयत्न करते रहे, और जब तक मैं समझू कि तुम्हारे मन में क्या है, तुम भाग भी चुके थे !"

"आपने यहा तो सात ताल-वृक्ष छेद दिये थे, वहा बाण क्यो नही चलाया ?" सुग्रीव बोले, "आपने वचन दिया था, आप वाली का वध करेंगे।"

"तुमने मुझे वाली से द्वद्व-युद्ध करने दिया होता, तो मैंने उसका वध भी कर दिया होता। जिस औघड़ स्थिति में तुमने मुझे डाल दिया है, उसमें मैंने यही कहा था कि वाली का वध तुम ही करोगे। हां ! मैं वाली को तुम्हारा वध नही करने दूगा।"

"तो ?"

"तो यह कि अपने मन में हमारे प्रति आया अविश्वास दूर करो। राम पर सामान्य स्थिति में भी अविश्वास करने का कोई कारण नही है।" राम का स्वर अधिक मैत्रीपूर्ण हो उठा, "और इस समय तो सीता की खोज और सुरक्षा के लिए हम तुम्हारी शरण मे आये हुए हैं। हम तुम्हारे साथ छल कैसे कर सकते है ?"

"मेरी समझ में कुछ नही आ रहा है।" सुग्रीव का स्वर आक्रोशशून्य हो गया, "मुझे अपने ऊपर तनिक भी भरोसा नही है; और आप मेरे ही हाथों वाली का वध करवाना चाहते हैं।"

"शात मन से मेरी वात समझने का प्रयत्न करो, सुग्रीव !" राम बोले, "यह मान बैठना सर्वथा निरर्थक है कि कोई व्यक्ति, समाज अथवा जाति से निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है। हमारे पास इसके अनुभव-सिद्ध प्रमाण हैं। सिद्धाश्रम से लेकर पचवटी तक राक्षस अपराजेय शक्ति माने जाते थे; किंतु जहा-जहां लोग संगठित होकर उठ खड़े हुए—वहा-वहा वे राक्षसों से अधिक शक्तिशाली हो गये।"

"पर मैं लोग नही, एक व्यक्ति हूं," सुग्रीव बीच मे ही बोले, "मैं अपना सगठन कैसे करू ?"

"वही बता रहा हूं।" राम बोले, "युद्ध के संदर्भ में शक्ति का अर्थ है, प्रहारक शक्ति। प्रहारक शक्ति कई प्रकार से बढ़ाई जा सकती है—शारीरिक बल बढ़ाकर, युद्ध-कौशल की वृद्धि कर, शस्त्र-शक्ति प्राप्त कर अथवा संगठन से। वाली के साथ युद्ध के संदर्भ में तुम अपनी शारीरिक शक्ति नहीं बढ़ा सकते। शस्त्र-युद्ध तुम्हें करना नहीं है। एक व्यक्ति अपना संगठन कैसे करेगा। अतः तुम्हें अपना युद्ध-कौशल ही बढ़ाना होगा।"

सुग्रीव कुछ नहीं बोले, अवाक् राम को देखते रहे।

"आओ, सौमित्र!" राम बोले, "तुम भी आओ, हनुमान!"

राम बड़ी देर तक लक्ष्मण तथा हनुमान की सहायता से सुग्रीव को अभ्यास कराते रहे। अपराह्न और संध्या के बीतने का पता ही नहीं चला। किंतु, धीरे-धीरे सुग्रीव का आत्मबल जागता जा रहा था। उनका विश्वास बढ़ता जा रहा था। मन पर जमी हताशा की परतों में दरकें पड़ गयी थीं; और विजय की आशा का संचार होता जा रहा था...विजय! वह भी वाली पर...क्या यह संभव है? कितना बड़ा काम होगा.. यश और गौरव ..राम ठीक ही तो चाहते थे कि सुग्रीव स्वयं वाली से लड़ें।...और पहली बार सुग्रीव ने अनुभव किया कि राम किस प्रकार निर्जीव मन और शरीर में प्राण फूंकते हैं...जब अपने नवार्जित कौशल के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण उन्हें कई लोगों के माध्यम से मिल चुका, तो उन्होंने कहा, "मैं वाली से लड़ने को प्रस्तुत हूं, मित्र राम!"

राम मुसकराती आंखों से उन्हें देखते रहे, "थोड़ा अभ्यास और करो, वानरराज! अब कल प्रातः ही किष्किंधा चलेंगे।"

"नहीं!" सुग्रीव के स्वर में हठ का अंश स्पष्ट था, "वाली द्वारा पीड़ित, प्रताड़ित तथा आहत होने की वेदना इतनी उग्र है कि मैं रात्रि-भर तो क्या, एक घड़ी भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता।"

"किंतु तुम्हारी इच्छानुसार तत्काल भी चल पड़ें तो किष्किंधा पहुंचते-पहुंचते एक प्रहर रात्रि बीत जाएगी।" राम बोले, "दिन-भर चलने वाला युद्ध भी रात को रुक जाता है; और तुम रात को ही युद्ध आरंभ करना चाहते हो।"

"राम ! या तो मुझे समर्थ बनाया न होता।" सुग्रीव बोले, "अब जब सामर्थ्य का भाव जगाया है तो टाल-मटोल मत करो। प्रतीक्षा मेरे लिए असह्य है।"

"तो चलो, सुग्रीव !" राम ने अपना धनुष उठा लिया, "किंतु चलने से पूर्व वचन दो कि इस बार कुछ भी हो जाए, तुम युद्ध छोड़कर भागोगे नहीं। इतना भरोसा मेरे वचन पर रखो कि यदि वास्तविक संकट की घड़ी आयी तो मैं हस्तक्षेप करूंगा और युद्ध रुकवाकर तुम्हें जीवित निकाल लाऊंगा।"

"मैं वचन देता हूं, राम !" सुग्रीव भरपूर आत्मविश्वास के साथ बोले, "इस बार चाहे मर भी जाऊं, युद्ध से पलायन नहीं करूंगा।"

"धन्य वीर, धन्य !" राम ने सुग्रीव का कंधा थपथपाया, "तुम अवश्य विजयी होगे।" वे लक्ष्मण की ओर मुड़े, "सौमित्र ! उस गजपुष्पी लता की एक पुष्पित शाखा तोड़ लाओ।"

लक्ष्मण ने शाखा राम के हाथ में पकडायी तो राम ने उसे मोड़ वृत्ताकार बनाकर, सुग्रीव के गले में माला के समान पहना दिया, "यह जयमाला है, वीर ! मैं अभी से तुम्हारी विजय की घोषणा कर रहा हूं। अब हम प्रस्थान कर सकते हैं।"

प्रातः के ही समान पुनः किष्किंधा की ओर यात्रा आरंभ हुई। आगे-आगे हनुमान थे; उनके पीछे-पीछे सुग्रीव, राम तथा लक्ष्मण, प्रायः साथ-साथ चल रहे थे। सब के अंत में नल, नील तथा तार थे। किंतु प्रातःकाल की मनःस्थिति के सर्वथा विपरीत इस समय सुग्रीव अपनी इच्छा से ललकपूर्वक, उत्साह से भरे हुए चल रहे थे। उनके मन की सारी आशंकाएं, भय तथा त्रास, जाने कहां जाकर सो गये थे। इतने हल्के मन से, इतने आत्मविश्वास के साथ वाली से युद्ध करने के लिए जाना, स्वयं उनके अपने लिए आश्चर्यजनक था।

प्रातः आगे-आगे चलते हुए हनुमान, सुग्रीव और वाली के विषय में सोच रहे थे; किंतु इस समय उनके मन में केवल राम की बातें घुमड़ रही थीं। अभी परसों संध्या समय राम सुग्रीव से मिले थे; और रात-भर में

किष्किधा के लोगों के साथ-साथ, वानरों के अनेक यूथपतियों और सेनानायकों के मन मे वाली का आतंक वाष्प बनकर उड गया था। कल सुग्रीव की क्या मन:स्थिति थी, आज प्रात. ही सुग्रीव इसी मार्ग पर पैर घसीटते हुए किष्किधा की ओर गये थे और बुरी तरह पिटकर तथा अपमानित होकर युद्ध छोड़कर भाग आये थे, और वही सुग्रीव इस समय किस उत्साह के साथ वाली से लड़ने जा रहे हैं; जैसे वाली अत्यन्त शक्तिशाली वानर सम्राट न होकर, एक साधारण-सा असैनिक वानर हो ..कौन-सी युक्ति है राम के पास? कैसा प्रभाव है उनका? ..अहंकार उनमे नही है। गर्वोक्तिया करना उनका स्वभाव नही है। किसी का श्रेय स्वय लेना नही चाहते, अन्यथा सुग्रीव को वाली से लडवाकर उन्हे ही यश देना क्यो आवश्यक था? . कैसे वे स्थिति का विश्लेपण करते है। कैसे दुर्बलता तथा दोप खोजते हैं। और कैसे उसका समाधान करते है। सुग्रीव के साथ तो उन्होंने वह किया है, जो शैया पर पडे किसी रोगी का उपचार कर कोई वैद्य उसे दौडने-भागने योग्य कर दिखा देता है ..अद्भुत है राम!

परिचारिका ने द्रुत गति से प्रवेश कर तारा को अभिवादन किया, "देवि! नगर-द्वार का प्रहरी-नायक सूचना लाया है कि नगर-द्वार पर खड़े सुग्रीव, सम्राट को युद्धार्थ ललकार रहे है।"

"समाचार सम्राट तक पहुच गया है क्या?" तारा झपटकर उठ खड़ी हुई।

"अव तक पहुच गया होगा, देवि!"

तारा परिधान-परिवर्तन के लिए भी नही रुकी। वे भागती हुई अपने कक्ष से बाहर निकली। ..आधी रात होने को थी और इस समय सुग्रीव युद्ध के लिए आह्वान कर रहा है, तो अवश्य ही कोई विशेप वात हो गयी है। आधी रात के समय देवर ने नगर-द्वार के बाहर, अपने भाई के वध के लिए जाल विछाया है, अथवा अपने साथियों को लेकर आया है...अंगद कह भी रहा था...

वाली ने अपने कक्ष से वाहर पग रखा ही था कि तारा सामने जा खड़ी हुई, "आधी रात के समय कहा जा रहे है, प्रिय?"

मायावी को मारकर लौटने के पश्चात. अलका को किष्किंधा में न पाकर, वाली के मन मे तारा के प्रति कुछ-कुछ आकर्षण लौटा था, किंतु फिर भी वाली के मन की वितृष्णा पूर्णत. समाप्त नही हुई थी। अपने क्षोभ के इस क्षण में तारा को सम्मुख देखना वाली को तनिक भी सुखद नही लगा।

"सुग्रीव ने युद्ध के लिए पुकारा है।" स्वयं को संयत करने का प्रयत्न करते हुए वाली ने कहा।

"इस समय ?"

"समय कोई हो। युद्धाह्वान को सुनकर वाली रुक नही सकता।"

"पर रात को आने के पीछे, सुग्रीव की कोई चाल भी हो सकती है। प्रात. तक रुक जाएं। मेरी इच्छा है, आप अकेले न जाए। अंगद तथा कुछ सेना-नायकों को साथ ले जाएं।"

"युद्ध के संदर्भ में तुम्हारी इच्छा मेरे लिए कब से मान्य होने लगी?" वाली का स्वर रूक्ष था, "यह मेरा और उस कायर सुग्रीव का द्वन्द्व-युद्ध है। इसमे और किसी का क्या काम ?"

वाली ने पग बढाया...

तारा ने झपटकर वाली का हाथ थाम लिया, "मेरी बात सुन लो, प्रिय !"

"क्या है ?" वाली ने उसे रुष्ट दृष्टि से देखा।

"मुझे अंगद ने बताया था कि सुग्रीव की मित्रता दो आर्य राजकुमारों से हो गयी है। उनके पास भयकर शस्त्र है। उन्होंने आपके वध का वचन सुग्रीव को दिया है..."

"तभी तो प्रात: सुग्रीव पिटकर चिल्लाता हुआ भाग गया था।" वाली का स्वर व्यंग्यात्मक हो उठा, "ऐसी निराधार कल्पनाओं पर मेरा कोई विश्वास नही है रानी। मैंने भी सुना है कि राम की पत्नी का हरण हो गया है और वह उसे खोजता फिर रहा है। यदि इसमें तनिक भी सत्य होता तो राम अपनी प्रार्थना लेकर मेरे पास आया होता। इस भगोड़े सुग्रीव की मित्रता से उसे क्या मिलेगा।...हटो ! मुझे जाने दो।"

वाली ने अपना हाथ छुड़ा लिया और आगे बढ़ गया।

तारा जड़-सी अपने स्थान पर खड़ी रह गयी—कैसे वाली को समझाएं वे। सहमा उनके मन मे जैसे साहस का स्रोत फूटा और भागकर उन्होंने पुनः वाली को रोक लिया, "राम आए हों या न आए हों; किंतु आप दोनों भाइयों के झगडे से अनिष्ट-ही-अनिष्ट होगा। प्रियतम! आप सुग्रीव को क्षमा कर दें। उसे किष्किंधा में लाकर उसका युवराज्याभिषेक कर दें और रुमा उसे लौटा दें।"

वाली ने तारा को झटककर अपना हाथ छुडा लिया, जैसे तारा का स्पर्श विषैला दंश हो। मुक्त होते ही वह द्रुतगति से आगे बढ गया और तारा के देखते-देखते प्रासाद से बाहर जाने वाले मार्ग के मोड़ों में ओझल हो गया।

तारा जानती थी कि वाली पर अब उनका कोई प्रभाव नही था। यदि वाली ने उनकी बात तनिक भी सुनी होती, तो यह स्थिति ही नही आती, जिसमे दोनो भाई परस्पर एक-दूसरे के रक्त-पिपासु हो उठते। जब तक मायावी और उसके द्वारा लायी गयी अलका बीच मे नही थे, तब तक इस कुटुंब मे मतभेदों के होते हुए भी ऐसी कटुता नही थी। किंतु मायावी के आते ही वाली तारा से दूर होते चले गये; और दोनो भाइयो मे तो जैसे विष-बीज ही बो दिया गया था ..जब तक वाली, मायावी के वध के संदर्भ मे किष्किंधा से विलुप्त रहे, तारा ने वह अवधि सौभाग्य तथा वैधव्य की मध्यवर्ती स्थिति के रूप मे काटी थी; किंतु वाली के लौटते ही किष्किंधा मे रक्तपात, अपहरण, बलात्कार, कारागार तथा अंधकूपों का युग आरंभ हो गया था.. वाली तारा का तनिक भी कहा मानते तो सुग्रीव की चाहे हत्या कर देते, किंतु रुमा के साथ ऐसा दुर्व्यवहार कभी न कर पाते; परंतु अपने क्रोध में वाली अंधे हो गये थे और तारा सर्वथा असहाय होकर देखती रही कि उसका पति अन्य सामान्य-जनो के समान ही अपनी अनुज-वधु के साथ भी अत्याचार कर रहा है...तारा किस अधिकार से जाकर सुग्रीव को कहें कि वह अपने भाई के प्रति द्रोह त्याग दे, उनके विरुद्ध कोई षड्यंत्र न करे।...इन सब के बदले सुग्रीव यदि इतनी-सी ही मांग उनके सम्मुख रख दे कि वे रुमा को मुक्त करा उसे सौंप दें, तो तारा उसकी तनिक भी सहायता कर सकेंगी क्या?...वाली अपने

विलास, हिंसा तथा उन्माद के बंदी हो चुके है, वे किसी की बात नही मानेंगे। तो फिर तारा कर ही क्या सकती है...

राम ने वृक्ष की ओट मे से देखा।

नगर-द्वार से बाहर निकलकर वाली ने सुग्रीव को ढूंढने के लिए अंधेरे मे अपनी दृष्टि घुमाई। उसे अधिक प्रयत्न नही करना पड़ा। अर्द्ध-रात्रि के अंधकार में भी चादनी मे नहाए, एकदम सम्मुख खड़े सुग्रीव पर तत्काल उसकी दृष्टि पड़ी। लगा, वह तत्काल झपट पड़ेगा; किंतु किसी अज्ञात कारण से, निमिष-भर के लिए वह अप्रतिभ खड़ा रह गया। कदाचित् सुग्रीव का यह अपूर्व आत्मविश्वास उसके लिए अप्रत्याशित था।

किंतु वाली अधिक देर तक रुका नही रहा।

"तू फिर आ गया, नीच !" पहला प्रहार इस बार भी वाली ने ही किया, "इस बार तू जीवित बचकर नही जाएगा।"

किंतु, वाली के प्रहार को सुग्रीव ने बड़ी शाति से देखा और झपटकर आते हुए वाली के मार्ग से एक ओर हटकर वाली को ईषत् कोण से धक्का दिया। उनके धक्के से वाली गिरा नही, किंतु उसका वार खाली चला गया। सुग्रीव अपने स्थान पर और भी दृढ होकर खड़े हो गये। वाली क्रोध मे जोर से हुकारा, किंतु सुग्रीव न उससे डोले और न उसकी प्रतिक्रिया में उन्होंने कोई शब्द किया।

सुग्रीव का आत्मविश्वास देखकर राम को भी बल मिला।

वाली ने पुन. प्रहार किया; किंतु सुग्रीव ने उसकी भुजा को कर्तरी के आकार मे सधी अपनी पकड़ मे ले लिया। राम ने उन्हे यह दांव विशेष रूप से सिखाया था। वाली का सारा आवेश, भाटा के साथ पीछे हटती हुई झाग के समान बैठता दिखायी दिया। उस अधकार मे भी वाली के चेहरे पर से आक्रोश और क्रोध के भावों के बीच से यातना के चिह्न उभरते दिखायी पड़े।

राम का मन आश्वस्त हुआ।

किंतु वाली अधिक देर तक उस मुद्रा मे नही रहा। उसने किसी अज्ञात विधि से अथवा मात्र अपनी शारीरिक शक्ति के बल पर स्वयं को मुक्त कर

लिया, और इससे पहले कि सुग्रीव सभलते और अगली विधि के लिए स्वयं को तैयार करते, वाली ने भरपूर मुष्टि-प्रहार सुग्रीव की नाक पर किया .. सुग्रीव जैसे बलिष्ठ व्यक्ति के लिए भी वाली का प्रहार भारी था। वे उससे डोल गए। किंतु पुनः सभलकर वाली से गुथ गये।

राम की भृकुटी चिता मे वक्र हो उठी। सुग्रीव को वाली से गुंथना नही चाहिए था।

किंतु तब तक वाली ने सुग्रीव को अपनी भुजाओं मे बाधकर विभिन्न युक्तियो से इतना पीडित किया कि सुग्रीव बिलबिला उठे। लगा, मल्ल-युद्ध का सारा विधि-विधान, सारी युक्तियां, दांव-पेंच उनकी बुद्धि से निकल गए। अपने शरीर के समस्त बल का आह्वान कर, वे छिटककर वाली की पकड से निकले और लडखड़ाकर गिर पड़े। राम समझ नही सके कि यह मात्र संयोग था कि सुग्रीव का हाथ, पास के किसी वृक्ष से टूटकर गिरी हुई एक सूखी शाखा पर पड गया, अथवा उन्होंने सायास उसे प्राप्त किया था। शाखा पकड़कर खड़े होते ही जैसे वे आविष्ट हो उठे। उन्होंने अपनी सपूर्ण शक्ति तथा अद्भुत स्फूर्ति से वाली पर आघात करने आरंभ किये। इन विकट आघातो के सम्मुख वाली की गति अवरुद्ध हो गयी और वह कुछ क्षणों तक पिटता ही दिखायी पड़ा। कई स्थानों से उसकी त्वचा फट गयी थी और रक्त बह रहा था।.. सहसा शाखा वाली की पकड़ मे आ गयी। उसने झटके से शाखा खींची। न केवल वह शाखा सुग्रीव के हाथो से निकल गयी, वरन् वे औंधे मुह भूमि पर आ गिरे। वाली ने वह शाखा घुमाकर दूर फेंकी और जब तक कि सुग्रीव सीधे हों, वह कूदकर उनके वक्ष पर जा चढा और उसने घूसो, मुक्कों, थप्पड़ों से पीटना आरंभ किया। सुग्रीव नीचे पड़े पिटते रहे।

"यह युद्ध अब बंद करवाना होगा।" राम धीरे से बोले।

"मै जाऊं क्या ?" लक्ष्मण ने पूछा।

किंतु तब तक सुग्रीव वाली को अपने ऊपर से हटा चुके थे।

"रुक जाओ।" राम ने कहा।

तभी वाली सुग्रीव पर कूदा और उसने अपना घुटना सुग्रीव के वक्ष पर रख अपने बलिष्ठ पंजों से सुग्रीव का गला दबाना आरंभ किया, "मैं

तुझे मार डालूंगा !"

सुग्रीव का प्रतिरोध टूटता दिखायी दिया।

"भैया !..." लक्ष्मण ने कुछ कहना चाहा।

पर, तब तक राम का बाण चल चुका था, "अब तो युद्ध रुकवाने का भी समय नहीं रहा, सौमित्र !"

बाण वाली के वक्ष में लगा और वाली उलटकर भूमि पर आ गिरा। सुग्रीव फुर्ती से उठकर खड़े हुए और अपने कंठ को टटोलने लगे।

"आओ, सौमित्र !" राम ने कहा,"वाली का खेल समाप्त हो गया।"

राम और लक्ष्मण के वृक्षों की ओट से निकलते ही हनुमान, नल, नील तथा तार भी प्रकट हो गये। दूसरी ओर, वाली को बाण के आघात से गिरते देख नगर-द्वार के प्रहरी तथा वाली-पक्ष के कुछ सैनिक प्राचीर के भीतर विलुप्त हो गये...

राम वाली के निकट आए।

असाधारण रूप से बलिष्ठ शरीर का स्वामी वाली पृथ्वी पर निष्क्रिय पड़ा था। उसके वक्ष से रक्त बह रहा था और उसके चेहरे तथा आंखों में यातना के चिह्न स्पष्ट थे। अपनी जिह्वा से वह बार-बार होंठों को गीला कर रहा था...

"तो तुम हो राम !" वाली कराहते-से स्वर में बोला, "सुना था कि तुमसे सुग्रीव की मैत्री हो गयी है।" सहसा उसका स्वर आक्रोशपूर्ण हो उठा, "यह कौन-सा न्याय है तुम्हारा? किसी अन्य व्यक्ति से लड़ते हुए तुमने छिपकर मुझे मारा। क्या इसी को वीरता कहते हैं ?"

"न्याय की बात करने का अधिकार तुमको नहीं है, पापी !" राम तेजोद्दीप्त स्वर में बोले, "असहाय, निरीह रुमा का अपहरण तुमने किस न्याय और वीरता से किया था ?" राम क्षण भर रुके, "अत्याचारियों द्वारा अपनी सुविधा के लिए किये गये उद्घोषों के समूह का नाम न्याय नहीं है। तुमने अपनी निरीह प्रजा पर जो अत्याचार किये हैं, उनके पीछे कौन-सा न्याय था ?...न्याय सदा जनहित में होता है। मैं तुम्हारे द्वारा परिभाषित न्याय और वीरता के जड़ स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए, तुम्हारे हाथों, तुमसे दुर्बल सुग्रीव को मरते हुए देखता रहता तो वह न्याय

होता ?...तुम जैसे पापियों को तो न्याय मांगने का अधिकार भी नही है। तुम्हारा न्याय तुम्हारी मृत्यु ही है।"

सहसा वाली के वक्ष में पीड़ा का वेग बढ़ा। उसने अपनी पीडा मे हाथ-पैर पटके और धीमे-से स्वर मे बोला, "तुमने मुझसे कहा होता, राम ! मैं तुम्हारी पत्नी की खोज ही नही करवा देता, रावण से छीनकर उसे तुम्हारे सम्मुख उपस्थित कर देता।"

राम के अधरों पर एक कटु मुसकान उभरी, "एक अपहरणकर्त्ता अन्य अपहरणकर्त्ता का क्या विरोध करता ! एक रावण दूसरे रावण से सीता को कैसे मुक्त कराता !" राम का स्वर कठोर हो गया, "और तुम कर भी देते, तो भी तुम्हारी सहायता मेरे लिए वाछनीय नही थी। मेरी सहायता कर तुम अपने समस्त पापों, अत्याचारो तथा अनाचारों के होते हुए भी, मेरे बाणो से सुरक्षित हो जाते।...राम अपनी सुविधा तथा लाभ के लिए भी अत्याचारियो की सगति नही चाहता। तुम चाहे कितना सद्भाव और सौहार्द लेकर मेरे पास आते, तुम्हारा और मेरा सबंध केवल एक ही हो सकता था—विरोध का।"

वाली पुन. तडपा, "मेरे वक्ष से बाण खींच लो, राम ! इस पीड़ा से मुझे मुक्त करो। इतनी कृपा तो कर ही दो।"

"पीडा से मुक्त करना ही राम का लक्ष्य है।" राम शात स्वर में बोले, "किंतु बाण के निकलते ही बहुत अधिक मात्रा में तुम्हारा रक्त बह जाएगा और तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। मृत्यु से पूर्व यदि किसी को देखना चाहते हो—पुत्र को, पत्नी को अथवा किसी और को तो उनके आने तक यह पीड़ा सहो।"

"अगद को देखना चाहता था, किंतु यह पीड़ा नही सही जाती।" वाली पीड़ा से छटपटाता हुआ बोला, "अंगद को मैं तुम्हें सौंपता हू, राम ! इतने ही न्यायी हो तो देखना, सुग्रीव उसका कोई अनिष्ट न करे..."

पीड़ा के कारण वाली का शरीर भूमि से ऊपर उठ आया, "इस बाण को निकालो, राम !"

राम ने आगे बढ़, बाण को उसके पृष्ठ भाग से पकड़, क्षण भर के लिए साधा और झटके से बाहर खींचा। बाण का फल ऋजुतापूर्वक निकल

आया—मांसपेशियां अथवा अंतड़ियां उसके साथ नहीं आयीं; रक्त का स्रोत फूट निकला।

वाली ने पूरी खुली आंखों से राम को देखा; उनके निकट खड़े लक्ष्मण और तनिक हटकर खड़े सुग्रीव, हनुमान, नल, नील तथा तार को देखा।... वे सब वाली को इसी प्रकार रक्त तथा धूल में लोटता हुआ देखने की आकांक्षा लेकर आये होंगे; उनके प्राण इसी दृश्य को देखने के लिए टंगे होंगे, उन्होंने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कितने दिन परिश्रम किया होगा, कितनी रातों की नींद को उनींदा किया होगा—किंतु इस समय वे दु:खी लग रहे थे; उन सबके चेहरे उतरे हुए थे।...वाली के शरीर की पीड़ा समाप्त हो गयी थी। शरीर में जैसे कोई संवेदन-शक्ति ही शेष नहीं बची थी। केवल मस्तिष्क जाग रहा था। किंतु यह स्थिति भी दो क्षणों से अधिक नहीं रही। मस्तिष्क जैसे सो रहा था, आंखों के सम्मुख अंधकार छा रहा था...पृथ्वी घूम रही थी, या कदाचित आकाश ही चक्कर खा रहा था। नहीं, दोनों ही घूम रहे थे...और अब सब कुछ स्थिर हो गया था।

...वाली निष्प्राण हो चुका था।

सुग्रीव ने चीत्कार कर वाली के वक्ष पर अपना सिर टेक दिया, "भैया!"

राम ने सुग्रीव की बांह पकड़कर उन्हें उठाया, "उठो, सुग्रीव! शोक करने का समय नहीं है। तत्काल किष्किंधा में जाओ। रुमा को मुक्त कर, उसे सम्मानपूर्वक ग्रहण करो। अपहरण से वह दूषित नहीं मानी जा सकती।...और वाली के वध की घोषणा कर, सत्ता ग्रहण करो। अंगद को युवराज-पद दो तथा न्यायपूर्ण प्रजा का पालन करो।" राम रुककर, लक्ष्मण की ओर मुड़े, "सौमित्र! तुम भी साथ जाओ। देखना, अनावश्यक हिंसा न हो। दोषी और अपराधी बंदी हों; किंतु प्रतिहिंसा का जन्म न हो।"

"और आप, भैया?"

"मैं अपने इस शत्रु के सम्मान की रक्षा के लिए यहीं रुकूंगा।" राम बोले, "व्यवस्था कर शीघ्र लौटो। अपने साथ अंगद और तारा को भी लेते आना।"

वर्षा की बूंदें सघन हो गयी, तो राम शिला से उठकर गुफा के भीतर आ खड़े हुए। अपने स्थान से खड़े-खडे उन्होंने देखा—सारा-का-सारा प्रस्रवण-गिरि वर्षा में भीग रहा था। अव तो नियमित वर्षा-ऋतु आरभ हो गयी थी। प्रहर-प्रहर भर वर्षा होती रहती थी। आठ प्रहरों में से तीन प्रहर वर्षा के होते ही थे।...दूर-दूर तक फैली इस पर्वत श्रेणी के अन्य शिखर—ऋष्यमूक तथा मलयगिरि तो इन मेघो के मारे दिखायी भी नही देते थे।

राम के चारो ओर इस समय ऐसे ही सघन मेघ छाये हुए है, जिनके पार वे देख नहीं पा रहे। अपने निकट-पास की वस्तुएं और व्यक्ति भी कहीं खो गये है और राम उन तक पहुच नही सकते। मुखर ने वीरगति पायी, जटायु ने भी सीता को बचाने के लिए रावण से लडते-लडते अपने प्राण दे दिये...और सीता, जाने कहा खो गयी। जीवित है, या वे भी इस लोक में नही हैं...यदि उनकी मृत्यु हो गयी है तो कैसे हुई? उस दुष्ट रावण ने वध कर दिया, या व्याकुल होकर स्वय वैदेही ने ही, ऋषि शरभग के समान आत्मदाह कर लिया; अथवा अपनी असहायता, दु ख और क्षोभ में घुट-घुटकर प्राण दे दिये।...कैसे असहाय है राम भी! जटायु ने सीता के अपहरणकर्ता का नाम बताया। ..सुग्रीव के पास सुरक्षित, सीता के आभूषणों से पुष्टि हो गयी कि रावण इसी मार्ग से गया है...किंतु नीले आकाश-सा विस्तृत, निराकार प्रश्न आज भी वैसा-का-वैसा ही है—सीता कहा है? यदि वे जीवित है तो किस स्थान पर छिपा रखा है उस दुष्ट ने उन्हे! जब तक सीता का निश्चित पता-ठिकाना मालूम न हो जाए, रावण से युद्ध की नीति भी तय नही हो सकती...रावण के अड्डों, शिविरों, स्कधावारों तथा अधीनस्थ क्षेत्रों का दूर-दूर तक एक जाल-सा फैला हुआ है।. .राम को लगता है कि उन्हे नीले आकाश के सम्मुख खडा कर, कहा गया है कि वे खोज लें कि सीता किस ग्रह-नक्षत्र पर छिपायी गयी है। जहा सारा आकाश तक देखना सभव न हो, बडे-बड़े नक्षत्र तक आखो से दिखायी न पड़ते हों, वहां वे कैसे खोज लें कि सीता किस ग्रह-नक्षत्र पर ब. न यदि जानकी जीवित हैं, तो रावण से प्रतिशोध लेने के पूर्व ज.

सुरक्षा और मुक्ति अधिक आवश्यक है...आक्रमण वहीं होना चाहिए, जहां सीता हो; ताकि न सीता का वध हो सके और न उन्हें स्थानांतरित किया जा सके।

सुग्रीव किष्किंधा के शासन की व्यवस्था में व्यस्त हैं। स्थान-स्थान पर विरोधी शक्तियां सिर उठाती रहती हैं; और सामान्य जनता के दैनिक जीवन की असख्य उलझी हुई गांठें हैं। जाने कब से गांठें उलझाई-ही-उलझाई गयी है, उन्हें सुलझाने का कोई प्रयत्न नही किया गया।...और, लोग भी कैसे-कैसे होते है।...अब तक शिकायत को विरोध माना जाता था, और प्रत्येक विरोध को दडनीय अपराध। तब तो किसी के मुख से स्वर तक नहीं फूटा; परिवाद तो कोई क्या करता। हनुमान कहता है कि असाधारण प्रयत्नो के साथ वाली को सुना-सुनाकर उसकी प्रशंसा की जाती थी। ..और अब, जब सुग्रीव ने उनके कष्टों, समस्याओं तथा परिवादों की ओर ध्यान दिया है तो चारों ओर शिकायतें-ही-शिकायतें है। इस किष्किंधा मे शताब्दियों से जो परिवर्तन नहीं हुए, उन परिवर्तनों को अब लोग एक दिन मे पूरा होते देखना चाहते हैं।...यह किष्किंधा को उन्नत तथा आत्म-निर्भर होते देखने की उनकी हार्दिक इच्छा है, अथवा सुग्रीव को कलंकित करने का प्रयत्न मात्र?...

सुग्रीव के विरोधी बहुत शक्तिशाली नही है, किंतु धूर्त अवश्य हैं। वे खुलकर उपद्रव नहीं करते; किंतु अवसर मिलने पर चूकते भी नहीं हैं। कुछ तो वे अपने पिछले कृत्यों के कारण, जन-सामान्य से भयभीत हैं; और दूसरी ओर वे प्रस्रवणगिरि को नहीं भूल पाते। प्रस्रवण गिरि पर राम और लक्ष्मण अपने जन-सैनिकों के साथ ठहरे हुए है।...और वे सुग्रीव के मित्र हैं।...वानरो मे एक-से-एक बढ़कर योद्धा हैं। उनके युवक कैसे परिश्रमी, हृष्ट-पुष्ट तथा उद्यमी है...किंतु सैनिक प्रशिक्षण तथा शस्त्रों के अभाव मे वे सदा पिटते ही रहे हैं। अधिकांश वानरो ने धनुष कभी देखा ही नही है। उनके लिए धनुष अत्यंत भयंकर दिव्यास्त्र है, जिसके एक वार ने उनके पराक्रमी सम्राट वाली को धराशायी कर दिया था...किंतु सैनिक-कर्म के प्रति उनमें उत्साह है। सामान्य वानर युवक विलासी अथवा आलसी नहीं हैं, अत: वे अच्छे सैनिक बन सकते हैं।

सैनिक-प्रशिक्षण का कार्य तो सुग्रीव ने सत्ता संभालते ही आरंभ कर दिया था। वानर युवकों ने बड़े उत्साह से उसमें भाग लिया है। नगर-प्राचीर के साथ-साथ लगते अनेक केंद्रों मे उनको शस्त्र-शिक्षा दी जा रही है। नये-नये शस्त्रों से उनका परिचय कराया जा रहा है और उन शस्त्रों के निर्माण की विधि सिखायी जा रही है। किंतु, शस्त्र-निर्माण के मार्ग में सबसे बडी बाधा धातु-उद्योग का अभाव है। जब तक धातु-उद्योग विकसित नही होगा—तब तक शस्त्रास्त्रों के लिए धातुए कहां मिलेंगी...

अनिन्द्य के ग्राम तथा ज्ञानभृत्य के आश्रम से कुछ धातुज्ञानी और धातुकर्मी किष्किंधा मे आये है। वे लोग प्रयत्न कर रहे है; किंतु भूगर्भित धातुओं की खोज, खानो के विकसित होने तथा धातुओ को शुद्ध होकर शस्त्र-उद्योग के लिए उपलब्ध होने में भी समय लगता है...

और इधर इस वर्षा के मारे सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये है। नदी-नाले जल से भर गये है। पहाड़ो पर कीचड़ और फिसलन है। वर्षा के कारण, बिना आश्रय के कही रुका नही जा सकता।...सीता की खोज के लिए सुग्रीव अपने साथियों को भेजे भी तो कैसे...अब कोई मार्ग नही है, कोई विकल्प नही है ..वर्षा ऋतु की समाप्ति तक रुकना ही होगा...वर्षा के समाप्त होते ही पथो और मार्गों के निर्माण की ओर भी ध्यान देना होगा। वानरों की परिवहन तथा यातायात व्यवस्था का निर्माण भी शून्य से आरंभ करना होगा...

खर और दूषण की सेना को पराजित करने के पश्चात, शत्रु के आक्रमण के संबध मे जब विचार-विमर्श हो रहा था, तब एकमत से सबने स्वीकार किया था कि वर्षा-ऋतु की समाप्ति से पूर्व, रावण अपनी सेना लेकर जनस्थान मे नही पहुच सकेगा। वर्षा-समाप्ति की प्रतीक्षा उसे करनी ही पड़ेगी, तब तक जन-सेना अपनी शक्ति बढ़ा लेगी।...कौन जानता था कि रावण ऐसी युक्ति खोज निकालेगा कि उसे अपनी सेना लंका से बाहर लानी ही न पड़े, स्वय राम अपनी पत्नी को खोजते-खोजते इधर-उधर भटकते फिरें। उनकी जन-सेना पड़ी-की-पडी रह जाए और उनके किसी भी काम न आए। 'वह वर्षा-ऋतु जो रावण को रोकने वाली थी, आज

राम को रोके बैठी है। राम अपनी गुफा मे से वर्षा को देखते खड़े हैं...और उनकी जानकी, यदि जीवित हुई तो, अपने वीर पति तथा देवर की बाट देख रही होगी, कि शायद वे लोग उसे खोजकर रावण के कारागार से मुक्त करें .

राम का मन कल्पना में खो गया—जब मुक्त हो जाएंगी तो कैसे भागती हुई आकर वे राम के कंठ से लग जाएंगी। राम बार-बार सीता को देखेंगे, आलिंगन मे भर-भर लेंगे; और स्वयं को विश्वास दिलाने का प्रयत्न करेंगे कि सीता अभी जीवित ही नही है, स्वतंत्र भी हैं और उनके पास भी।...फिर सीता उन्हे बताएगी कि कैसे रावण ने उनका हरण किया। कैसे उन्होने सघर्ष किया। कहा-कहा उन्होने अपने आभूषण गिराये। रावण ने उनसे क्या-क्या कहा। डराया, धमकाया, लुभाया, अपमानित किया.. सीता की बातो का अत नही होगा। वे अपने एक-एक क्षण की धडकनो की कहानिया उन्हे सुनाना चाहेंगी। सही हुई पीड़ा को शब्द मे दोहराते हुए, उसके स्मरण मे ही रो उठेंगी। राम का रक्त खौल-खौल उठेगा...दुष्ट रावण .! ..आवश्यक नही है कि सीता सदा दीन ही रही हों। यदि उनके हाथ कोई शस्त्र लग गया होगा तो सभव है उन्होने युद्ध का भी प्रयत्न किया हो। किंतु शत्रु नगरी में अनेक राक्षस महारथियो से घिरी हुई अकेली सीता क्या कर लेंगी...कही ऐसा न हो कि किसी ऐसे ही जोखिम के काम मे उनके प्राण ही चले जाए, या उनका अंग-भग हो जाए।... राम लंबी तैयारी के पश्चात विश्व के आतंक को समाप्त भी करें और उनके अपने मन की शांति ही खो जाए...पर नही ! राक्षस सीता का वध नहीं करेंगे। कोई कितना ही हृदयहीन क्यों न हो, उस रूप को देखने के पश्चात इतनी क्रूरता नही कर सकता.. सीता का वध कोई नही कर सकता। वध ही करना होता तो रावण पंचवटी में ही उनका वध कर देता...अपहरण का जोखिम ही क्यों उठाता ? उसने मुखर का वध किया, जटायु का वध किया...वह सीता का भी वध कर सकता था...किंतु नहीं। वह व्यभिचारी कामुक राक्षस, ऐसी सुंदरी नारी को अपने वश मे पाकर, उसकी हत्या नही कर सकता...बाली ने रुमा तक की हत्या नही की, जो सुग्रीव की सूचना के अनुसार उसे कभी नही भायी थी...तो रावण सीता का वध

किस हृदय से करेगा...

कैसा संयोग है सुग्रीव तथा राम की मैत्री ! दोनों का चिंतन एक समान, दोनो का लक्ष्य एक ही; और अंततः दोनों का संकट भी एक ही... सौमित्र ने बताया था कि जब वे लोग वाली के प्रासाद के प्रहरियों को हटाकर भीतर पहुंचे थे तो सूचना पाकर रुमा दौड़ती हुई गलियारे में ही आ गयी थी। सुग्रीव को देखते ही वे उनकी ओर लपकी थी, किंतु कंठ से लग जाने के पूर्व ही रुक गयी थी—मूर्तिवत् ! सुग्रीव सोचते ही रह गये कि रुमा रुक क्यों गयी कि रुमा ने झुककर उनके पैर पकड़ लिये थे, "मेरा कोई दोष नही है, स्वामि ! मैं बाध्य थी ! हर रात मेरे शरीर पर सैकड़ों विच्छू रेंगते रहे, मुझे दंशित करते रहे, मेरे शरीर को विषाक्त करते रहे, किंतु मैं सर्वथा बाध्य थी, स्वामि ! मेरी तनिक भी सहमति नही थी। मै असहाय थी।"

सुग्रीव ने रुमा को उठाकर वक्ष से लगा लिया था, "दोष तुम्हारा नही था, रुमा ! दोष तो मेरा था। मैं ऐसा कायर और निर्बल न होता तो तुम्हें इतना क्यो सहना पड़ता। वाली, तुम्हें नही, मुझे दंडित करता रहा है। जब-जब उसने तुम्हे अपने आलिंगन में लिया होगा, तब-तब स्वयं को बार-बार याद दिलाया होगा कि तुम मेरी पत्नी हो और तुम्हारे माध्यम से वह मुझे पीड़ित कर रहा है; मुझसे प्रतिशोध ले रहा है...दोष मेरा है, रुमा ! मैं तुम्हारी रक्षा का समुचित प्रबंध नही कर सका।"

...और राम के मन मे बार-बार प्रश्न उठता है कि क्या जब सीता मुक्त होंगी, तो वे भी इसी प्रकार आकर अपनी निर्दोषिता, बाध्यता और असहायता का विश्वास दिलाएंगी...अथवा वे राम और लक्ष्मण को दोषी ठहराएंगी कि वे लोग उन्हें असुरक्षित छोड़कर चल दिये...या वे बताएंगी कि उन्होने रावण से शस्त्र मांगा था और उसका प्रतिरोध किया था; शरीर पर घाव खाये थे और क्षोभ की आग की जलन सही थी; कष्ट सहे थे और वीरतापूर्वक उनका सामना किया था।

...पर सुरक्षा का पूरा प्रबंध न कर पाने के कारण क्या सुग्रीव दोषी है ?...पुरुष-प्रधान समाज मे, जहां नारी को सौन्दर्य और मर्यादा के नाम पर इतना कोमल तथा सुकुमार बना दिया गया है, वहां जब तक आत्मरक्षा

में समर्थ नही हो जाती, उसकी रक्षा का दायित्व पुरुष पर ही है।

रुमा को वाली ने सुग्रीव से वियुक्त कर दिया था, फलतः सुग्रीव ने तारा को सदा के लिए वाली का वियोग दिया। कैसा स्पष्ट प्रतिशोध है . राम की आंखें वह दृश्य भूल नही सकतीं—अपने खुले बालों को चेहरे और कंधों पर बिखेरे हुए, छाती पीटती, हाहा खाती हुई तारा आयी थी और वाली के शव पर लोट गयी थी—"अंततः तुम्हारी कामुकता तुम्हारे सारे कुटुंब को खा गयी। मैं अब उपालंभ भी दूं तो किसे दूं?" वह चिल्ला-चिल्लाकर रोयी थी, "सुग्रीव तुम्हारी मृत्यु का निमित्त बना। पर मैं उसे दोष नही दे सकती। जब मैं उसे उसकी रुमा नही दिला सकी तो उससे तुमको वापस कैसे मांगूं? ..राम के बाण ने तुम्हारे प्राण ले लिये, पर राम का क्या दोष! पत्नी के अपहरण की पीड़ा का प्रतिशोध लेने वाला बाण कोमल तो नही हो सकता।"

सिर पटक-पटककर रोयी थी तारा अपने पति के शव पर, "...अहंकारी थे, कामुक थे, स्वार्थी थे...मुझसे रुष्ट थे...पर मेरे पति तो तुम ही थे..." और अंत में उसने राम से कहा था, "या तो अपने बाण से मेरे भी प्राण ले लो या फिर मेरे पति का शव मुझे सौंप दो। मैं उनके साथ ही सती हो जाऊंगी।"

किंतु अंगद ने आगे बढ़कर मां को उठाकर कंठ से लगा लिया था, "धैर्य रखो, मां! प्रत्येक शोक धैर्य और विवेक से ही टाला जा सकता है। पिताजी के साथ तुम भी सती हो गयी, तो तुम्हारा अंगद किसके सहारे जियेगा। पति के लिए ही नही, मा! नारी को कभी-कभी पुत्र के लिए भी जीना पड़ता है।"

अंगद ने तारा को मना लिया था। अधिक बखेड़ा नही किया था तारा ने...वाली के शव के निकट मिले थे अंगद और सुग्रीव। कैसी विचित्र स्थिति थी—सुग्रीव के मन में ग्लानि थी और अंगद तथा तारा, सुग्रीव का दोष जानते हुए भी उसे दोषी नही मान रहे थे...कैसे गिड़गिड़ाकर सुग्रीव ने तारा से कहा था, "भाभी! इसमें मेरा कोई दोष नही है। मैंने कभी नही सोचा था कि मैं भ्रातृ-हंता बनूंगा, किंतु भैया ने मेरे लिए और कोई विकल्प ही नही छोड़ा था...बताओ, मैं क्या करता, भाभी! मेरे और रुमा

के साथ जो व्यवहार भैया ने किया, उसके बदले में मैं और कर ही क्या सकता था। यदि फिर भी मेरा दोष मानो तो अंगद के हाथ में खड्ग दो, वह मेरा वध कर दे—मैं अपना सिर भी नहीं उठाऊंगा।"

राम के सम्मुख चित्रकूट में उनसे मिलने आए भरत का रूप उभर आया था—कैसे रो-रोकर उन्होंने अपनी बात कही थी—"निमित्त मैं अवश्य बना हूं, भैया! किंतु मेरी उसमें तनिक भी सहमति नहीं थी। मैंने कभी निमिष भर के लिए भी अपने मन में ऐसी इच्छा को स्थान दिया हो तो आप मेरा वध करवा दें...पर फिर भी वन तो आप मेरे ही कारण आए, भैया! मैं इस कलंक को कैसे मिटाऊंगा?"

भरत रोते जाते थे और कैकेयी के मुख पर यातना के चिह्न प्रकट होते जाते थे। राम को बार-बार लगा है कि माता कैकेयी भी यही कहना चाहती थी, "निमित्त तो मैं ही बनी, राम! पर इच्छा मेरी भी यह नहीं थी..." किंतु कैकेयी ने कहा कुछ नहीं। सिर झुकाए चुपचाप खड़ी रही। केवल जाते-जाते कह गयी थी, "इस विश्वास को लेकर जा रही हूं, राम! कि चाहे भरत भी मेरे मन को न समझे, पर मेरा राम अवश्य समझ रहा होगा!"

राम तो समझ ही रहे थे...तब भरत और कैकेयी के मन को समझ रहे थे, अब सुग्रीव, अंगद और तारा के मन को समझ रहे थे. .समझ नहीं पा रहे थे तो केवल रुमा के मन को। वह क्या-क्या सोचती होगी...और क्या सीता भी वही सब सोचती होंगी?...

वर्षा कुछ धीमी हो गयी थी और सामने से हनुमान के साथ लक्ष्मण आ रहे थे। वे दोनों ही पूरी तरह भीगे हुए थे, जैसे वर्षा में भी इधर-उधर घूमते रहे हों।

"सौमित्र को कहां-कहां घुमा लाए, हनुमान?" राम ने मुसकराकर पूछा।

"आर्य! मुझे इतना ज्ञान कहां है कि मैं सौमित्र को घुमाऊं।" हनुमान अत्यंत नम्र स्वर में बोले, "मैं तो केवल उनकी आज्ञाओं का पालन करता घूम रहा था।"

"क्यों? इस सारे क्षेत्र का ज्ञान तुमसे अधिक और किसे होगा? मैंने तो सुना है कि यहां के भूगोल के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक ज्ञान में तुम पारगत हो।"

"भूगोल का ज्ञान तो मुझे है।" हनुमान ने अत्यंत शालीन भाव से उत्तर दिया, "किंतु मेरी शिक्षा ने उस भूगोल का उपयोग मुझे नहीं सिखाया। वह तो सौमित्र ही बता रहे थे। शिक्षा, सेना, उद्योग, व्यापार, कृषि तथा नवनिर्माण के संदर्भ में, उनकी जिज्ञासाओं के अनुसार, उन्हें विभिन्न स्थान दिखा रहा था।"

राम का ध्यान हनुमान के हाव-भावों, वाणी की मृदुलता तथा उनके व्यवहार की शालीनता की ओर कई बार गया था। इतने कठोर शरीर का यह व्यक्ति अपने व्यवहार में इतना मृदु तथा कोमल था कि आकार तथा व्यवहार का यह भेद देखने वाले को चौंकाए बिना नहीं रहता था। निश्चित रूप से यह हनुमान के कठोर आत्मसंयम का ही परिणाम था।

"भैया! शिक्षा-संस्थान तो पहले ही बना हुआ था; उसमें वाली ने वेश्यालय तथा मदिरालय स्थापित कर दिये थे।" लक्ष्मण बोले, "वह भवन तो शिक्षा-सस्थान को वापस मिल गया है। किंतु, यहां की समस्याएं और आवश्यकताएं बड़ी जटिल है।"

"आओ! बैठो तुम लोग।" राम एक शिला की ओर बढ़े।

वे तीनों बैठ गये। यद्यपि हनुमान का राम के सम्मुख बैठने का संकोच अत्यंत स्पष्ट था, किंतु राम के प्रत्येक वाक्य को वे आदेश के रूप में ही ग्रहण करते थे।

"दडक वन में जिस समाज का निर्माण करना था, वह सारा समाज एकसार और एकरूप था। उसमे एक ही वर्ग के लोग थे।" लक्ष्मण बोले, "वे सब-के-सब अभावग्रस्त थे, उसमे किसी के पास कुछ नहीं था। किसी से कुछ लेना नहीं था—जो कुछ लेना था, प्रकृति से ही लेना था। उनके लिए केवल निर्माण करना था, ध्वस की आवश्यकता नहीं थी। उनके शत्रु उनके समाज से बाहर थे, भीतर का शत्रु अपवाद था।" लक्ष्मण रुके, "यहां का समाज मिश्रित है। इसमें विभिन्न स्तर हैं। अनेक वर्ग है। विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक वर्गों का इतना अन्तर्मिश्रण है

इस समाज में कि एक का कल्याण दूसरे के लिए हानि का कारण वन जाता है और किसी एक वर्ग की ओर से उसका विरोध आरंभ हो जाता है। परिणामत: कल्याण के उस विचार को नि.सकोच कर्म-रूप में परिणत नही किया जा सकता...उसमें अनावश्यक द्वन्द्व उठते है, अत: अनावश्यक विलंब होता है।"

"मैं समझ रहा हूं।" राम सोच में थे, "यहा ध्वंस के बिना निर्माण हो नही सकेगा। और ध्वंस के लिए अभी सुग्रीव प्रस्तुत नही होंगे। क्यों, हनुमान !"

"आर्य ! हनुमान क्या कहे।" हनुमान अपने कोमल ढंग से बोले, "हनुमान के पास तो न धन है, न भूमि, न स्वर्ण, न भवन। अत: किसी वस्तु का मोह नहीं है; किंतु वाली के ही प्रिय सभासद अब सम्राट सुग्रीव के भी सभासद हो गये हैं। वे पहले भी स्वामिभक्त थे, अब भी है। सम्राट अपने स्वामिभक्त सभासदों के विरुद्ध नही जा सकते, उन्हें रुष्ट नही कर सकते। और वे सभासद, मत्री, सामत, यूथपति, सेनानायक अपनी इच्छा से न अपने अधिकार छोड़ना चाहते है, न अपनी सपत्ति।"

"ठीक कहते हो, हनुमान ! जहा मात्र सत्ता का हस्तातरण हो और प्रशासन का ढाचा वही रहे, वहा इस प्रकार की समस्याए होंगी ही। सुग्रीव को उन लोगो के साथ कुछ कठोर होना पड़ेगा।"

"वे भी इस बात को समझते है; किंतु मुझे ऐसा लगता है कि अब वे कठोर हो नहीं पाएगे।" हनुमान दूसरी ओर देख रहे थे; सहसा वे मुड़े, "आर्य ! सम्राट हमारे पथ-प्रदर्शक और नेता रहे है। मैं उनकी शिकायत नही कर रहा; किंतु मुझे लगता है कि भाई के वध से उनमें कुछ परिवर्तन-सा आ गया है। अब वे कठोर होना नही चाहते। कदाचित वाली के वध के पश्चात अभी तक वे ग्लानिमुक्त नही हो पाए है; उनका अपराध-बोध मिट नही रहा।"

"निराश मत हो, हनुमान !" राम का भी स्वर अधिक सावधान और कोमल था, "सर्जक मन का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसमें वितृष्णा बहुत जल्दी जागती है। तनिक-सी बाधा से वह अपना मोर्चा छोड भागता है। तुम अपने मन को अपने मोर्चे पर लगाये रखो—राम, सुग्रीव की शिथिलता

के हाथों तुम्हारे सपनों को चूर नही होने देगा। सुग्रीव यदि अपने पथ मे भटका, तो राम उसे वापस लौटा लायेगा।" राम रुके, "मुझे बताओ, सैनिक प्रशिक्षण की क्या नयी व्यवस्था की गयी है? मैंने सुना है कि सुग्रीव नये शस्त्रों, युद्ध-कौशल तथा सैनिक संगठन के लिए बहुत लालायित थे. .और हनुमान ! सुग्रीव रावण से लडना चाहे, न चाहे; वर्षा ऋतु की समाप्ति पर राम चाहेगा कि सीता की खोज आरंभ की जाए। और सीता का पता मिल जाने पर, सेना के निर्माण के लिए राम रुका नही रहेगा। ...सेना के निर्माण का कार्य अभी से आरंभ होना चाहिए।"

"मुझे इस बात का पूरा ध्यान है, आर्य !" हनुमान ने अपना सिर झुकाकर कहा, "मुझे पूरा विश्वास है कि आपको मुझसे निराशा नहीं होगी।" सहसा हनुमान रुक गये, क्षण भर असमंजस मे राम को देखते रहे कि कहे या न कहें; और फिर जैसे कहने का निर्णय कर, धीरे-धीरे बोले, "सम्राट के प्रासाद में आज एक छोटा-सा समारोह है। उन्होने इच्छा प्रकट की है कि यदि आप अपनी उपस्थिति से उन्हें कृतज्ञ कर सकें. ."

राम के अधरो पर विषादयुक्त मुसकान उभरी, "हनुमान ! सम्राट से कहना, अपने वनवास की अवधि मे मैं किसी नगर मे प्रवेश नही करूंगा, और सम्राट का प्रासाद नगर से बाहर नही हो सकता..." राम के स्वर मे हल्का-सा आवेश घुल गया, "और सम्राट को याद दिला देना कि उन्हें रुमा मिल गयी है, किंतु मुझे अभी सीता की खोज-खबर तक नही मिली।"

"अच्छा, भद्र !" हनुमान खडे होकर धीरे-से बोले,"मैं पहले ही समझ रहा था कि ऐसा निमंत्रण युक्तियुक्त नही है। और सत्य तो यह है कि यह समारोह ही अपने-आप मे एक भूल है।"

हनुमान ने हाथ जोड़ दिये और मुड़कर पर्वत की ढलान की ओर बढ़ गये।

संध्या समय जन-सेना के लोग अपने काम से लौटकर आए तो प्रस्रवणगिरि पर राम की गुफा के सम्मुख एक सभा जुट गयी।

सुग्रीव के राज्याभिषेक के पश्चात राम तथा लक्ष्मण के रहने के स्थान और व्यवस्था का प्रश्न भी सुग्रीव के सम्मुख आया था। उन्होंने बहुत

चाहा था कि राम और लक्ष्मण भी उनके साथ किष्किधा मे चलें तथा उन्ही के प्रासाद मे, अथवा किसी अन्य सुदर प्रासाद में रहे, किंतु राम ने अपने वनवास की वात कहकर किष्किधा मे प्रवेश अस्वीकार कर दिया था। राम को छोड़कर लक्ष्मण का कही अन्यत्र जाना तो सभव ही नहीं था; जन-सैनिको ने भी राम से अलग होने में अपनी अरुचि ही प्रकट की थी।

तभी प्रस्रवणगिरि को राम के आश्रम के रूप में चुना गया और राम अपने शस्त्रागार, लक्ष्मण तथा जन-सैनिको के साथ वही निवास कर रहे थे। सुग्रीव तथा उनके साथियों ने बहुत चाहा कि राम की सेवा मे राजकीय परिचारिकाए नियुक्त कर दी जाएं; और यदि राम को यह स्वीकार्य न हो तो वानरो के जन-सगठनो के स्वयसेवक उनकी सहायता के लिए वहा वर्तमान रहें। पर, राम को इनमें से कोई भी प्रस्ताव मान्य नही था। उन्होंने अपने जन-सैनिकों के साथ अपना स्वतंत्र आश्रम बना रहने देने की इच्छा प्रकट की थी।

प्रात. वे सब लोग सामूहिक व्यायाम, शस्त्र-अभ्यास तथा अल्पाहार करते थे। उसके पश्चात लक्ष्मण किसी-न-किसी कार्य के लिए वन में, विभिन्न प्रशिक्षण-केंद्रों में, शस्त्र-निर्माताओ की भट्ठियों अथवा कार्य-स्थानों पर चले जाया करते थे। जन-सैनिको के भी दो दल हो गये थे। आधे व्यक्ति अनिन्द्य के नेतृत्व में मधुप की सहायता करने चले जाते थे। मधुप ज्ञानभृत्य के आश्रम से आया हुआ भूगर्भशास्त्री था, जो इस क्षेत्र में धातुओ की खोज कर रहा था। अन्य जन-सैनिक भूलर के नेतृत्व मे किष्किधा से लगते ग्रामों में कृषि-सबंधी सहायता तथा शिक्षा का प्रचार करने चले जाते थे।

किंतु कोई भी दिनचर्या स्थायी नहीं हो पायी थी। एक सप्ताह मे ही सैनिक-प्रशिक्षण केन्द्रो ने आरभिक शस्त्र-शिक्षा के पश्चात कुछ लोगों को आयुध-ज्ञान के लिए प्रस्रवणगिरि पर भेज दिया। उन आगंतुको की सख्या क्रमश. बढती जा रही थी। धीरे-धीरे कुछ यूथपति भी अपने यूथों के चुनें हुए सैनिकों के साथ प्रस्रवणगिरि के चरणों में शिविर लगाकर रहने लगे थे। वे भी इस प्रशिक्षण में सम्मिलित हो जाते थे। परिणामत: प्रात: शस्त्र-

शिक्षा की, विभिन्न स्तरों के अनुसार अनेक कक्षाएं लगती थी और बीसियो जन-सैनिकों के साथ-साथ राम तथा लक्ष्मण पृथक-पृथक कक्षाओं मे विभिन्न प्रकार की जानकारी देते तथा अभ्यास कराते रहते थे।

प्रातः के प्रशिक्षण के पश्चात सबके अपने-अपने कार्यक्रम हो जाते थे। प्रायः राम ही शस्त्रागार के निकट आश्रम में रहते थे। एक तो उन्होंने स्वय ही आश्रम से बाहर जाना बहुत कम कर रखा था; दूसरे, दिन भर अनेक सदर्भों में विभिन्न प्रकार के लोग उनसे मिलने के लिए आते रहते थे। अपने साथियों से फिर वे सध्या-समय ही मिल पाते थे।

शाम की सभा जुटी तो सबसे पहला प्रश्न भूलर ने किया, "आज भोजन-व्यवस्था किस टुकडी की है ?"

भोजन के नाम पर, राम का ध्यान सीता की ओर चला गया। सीता के अपहरण के पश्चात से भोजन का स्थायी नियंत्रण समाप्त हो गया था। भोजन-व्यवस्था की दृष्टि से तीन-तीन व्यक्तियों की टुकड़ियां थीं, जो प्रतिदिन बदलती थीं। इन दिनों राम का आश्रम आश्रम कम, सैनिक शिविर ही अधिक था। उसमें से कौटुंबिक वातावरण लुप्त हो चुका था और सैनिक व्यवस्था ही शेष रह गयी थी।

"आज बड़ी भूख लग रही है तुम्हे !" मधुप ने भूलर से कहा।

"तुम्हे नही लगी ?" भूलर बोला, "हा, भाई ! तुम्हे अब भूख क्यों लगेगी !"

"क्यों ? मधुप को क्या हुआ ?" लक्ष्मण ने पूछा, "इसके यकृत में कोई दोप आ गया है क्या ?"

"नही, सौमित्र !" भूलर ने बताया, "आज मधुप ने भूमि के नीचे का धातु-भंडार खोज निकाला है। कल से वहां खुदाई होगी।"

"अच्छा !" राम की भी रुचि जाग गयी, "यह तो तुमने बहुत अच्छा समाचार दिया है, भाई। मैं इस धातु को लेकर कुछ अधिक ही चिंतित था। पिछले दिनों से जो कुछ मैंने देखा है, उससे तो लगता है कि जन-शक्ति की यहा कोई कमी नही है। सुग्रीव की राजकीय सेना के साथ-साथ यूथ-पतियों की स्वतंत्र सेनाएं हैं। कदाचित राक्षसों की सारी सेनाओ से भी

अधिक सैनिक, सुग्रीव की एक आज्ञा पर तैयार हो जाएगे; किंतु उसके साथ-ही-साथ, राक्षस-विरोधी भावनाओं के कारण, सारा जन-सामान्य युद्ध के लिए उठ खड़ा होगा। पर शस्त्र...! जब तक धातु की खोज नहीं होगी, शस्त्र कैसे बनेंगे?" राम ने रुककर मधुप की ओर देखा, "यह धातु किस श्रेणी की हो सकती है, मधुप?"

"अभी से कुछ निश्चित कहना कठिन है, राम!" मधुप बोला, "पर कल से खुदाई आरंभ हो जाए, तो सप्ताह भर में हम धातु का सर्वांगीण परीक्षण कर आपको ठीक-ठीक बता सकेंगे। वैसे मुझे आशा है कि यहां धातु का बहुत बड़ा भंडार है, और कदाचित धातु अच्छी श्रेणी की ही होगी।"

"यह कार्य तुम कर लो।" राम बोले, "उसके पश्चात किष्किंधा के शिक्षा-संस्थान में तुम्हें शिक्षक नियुक्त कर दिया जाए। किष्किंधा राज्य के पास कोई अच्छा भूगर्भशास्त्री नहीं है। क्यों, सौमित्र?"

लक्ष्मण राम के कथन से उत्साहित नहीं हुए। धीमे-से स्वर में बोले, "प्रस्ताव तो अच्छा है। यह विषय उपयोगी भी है। किंतु, किष्किंधा का शिक्षा-संस्थान स्थापित तो हो ले!"

"क्यों? शिक्षा-संस्थान को क्या हुआ?" राम ने चकित होकर पूछा।

तभी उन लोगों के सम्मुख भोजन परोस दिया गया।

लक्ष्मण ने पत्तल को अपनी ओर सरकाया और बोले, "अपराह्न में हनुमान ने संकेत किया था, कदाचित आपका ध्यान उधर नहीं गया।"

"ध्यान गया तो था।" राम ने उत्तर दिया, "किंतु हनुमान और तुम—दोनों ही मुझे कुछ उदास-से लगे थे, इसलिए मैंने बात को अधिक कुरेदा नहीं। तुम लोग शिक्षा-संस्थान को लेकर ही उदास हो?"

"उदास क्या होना।" लक्ष्मण सायास हल्के-से हंसे, "पर उसी से हम दोनों विचलित हो गये थे।...बात यह है कि उस शिक्षा-संस्थान के सारे आचार्यों और अध्यापकों ने वाली के सम्मुख अपमानजनक समर्पण किया था। अब, जबकि संस्थान की पुनर्स्थापना हो रही है, उन अध्यापकों ने अपनी पुनर्नियुक्ति की मांग की है। अंगद, हनुमान, नल तथा नील उनकी नियुक्तियों के पक्ष में नहीं हैं। उनका विचार है कि जिन लोगों ने तनिक-सा

संकट आते ही अपनी वास्तविकता प्रकट कर दी; जो अपने व्यवसाय के आदर्शों की तनिक भी रक्षा नहीं कर सके; जिनमें अकल्याणकारी अन्यायी शक्तियों के विरोध का तनिक भी साहस नहीं है—वे लोग इस दायित्व के योग्य नहीं हैं। उन लोगों के हाथों में अपनी अगली पीढ़ी का भविष्य सौंपना तनिक भी समझदारी का काम नहीं है।"

"तो उनके पक्ष में कौन है?" राम ने पूछा।

"एक तो कटाक्ष ही है। कुछ उसके साथी हैं।" लक्ष्मण बोले, "...और थोड़े-बहुत स्वयं सुग्रीव भी हैं।

"ये सुग्रीव भी मुझे बहुत ढीले आदमी लगते हैं।" अनिन्द्य बोला, "हर काम में टाल-मटोल कर रहे हैं।"

"तो तुम्हें भी सुग्रीव से शिकायत है?" राम बोले, "पर तुम यह क्यों नहीं सोचते कि उनके मार्ग में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां होंगी।"

"व्यावहारिक कठिनाइयां तो अपनी नीतियों की जड़ता में बंध जाने से होती है।" अनिन्द्य ने उत्तर दिया।

"तुम ठीक कह रहे हो, अनिन्द्य!" लक्ष्मण बोले, "कटाक्ष तथा उसके साथी उन अध्यापकों का समर्थन अपनी वाली-भक्ति तथा निहित स्वार्थों के कारण कर रहे हैं; और सुग्रीव व्यावहारिक कठिनाई नामक जड़ता में फंसे हैं।"

"देखो! जैसे-जैसे सौमित्र का क्षोभ अभिव्यक्त होता जाता है, उनकी वाणी का प्रवाह सधता जाता है।" राम मुसकराए, "नहीं तो प्रातः से ही एकदम चुप्पे बैठे थे।"

"मैं सच कह रहा हूं, भैया!" लक्ष्मण बोले, "सुग्रीव की व्यावहारिक कठिनाई यह है कि यदि वे उन अध्यापकों को नियुक्त नहीं करेंगे तो लोग कहेंगे कि सुग्रीव भी वाली के ही समान अपने विरोधियों को आतंकित कर रहे है, और सुग्रीव कलंकित होना नहीं चाहते। वे अपनी प्रजा को विश्वास दिला देना चाहते है कि वे अपने शत्रु और मित्र को एक ही दृष्टि से देखते हैं। वे अपने राज्य में न्याय की स्थापना करेंगे। न्याय का अर्थ है कि वे मित्रों की कोई बात नहीं मानेंगे और शत्रुओं का विरोध नहीं करेंगे।'

"सुग्रीव, न्याय का ठीक-ठीक अर्थ समझ नहीं रहा।" राम ने जैसे

अपने-आप से कहा, "जब व्यक्ति इस बात की चिंता औचित्य से अधिक करने लगता है कि लोग क्या कहेंगे, तो वह वस्तुतः स्वयं को अपने ही बंधनों में बांधता चलता है और अंततः निष्क्रिय जड़-पत्थर हो जाता है।"

"स्थिति यह है, भैया!" लक्ष्मण पुन. बोले, "कि न तो वे पुराने अध्यापकों को नियुक्त कर पा रहे है, न नयी नियुक्तिया हो रही हैं। फिर शिक्षा-सस्थान अपना कार्य कैसे करे?"

"इस प्रकार तो ये लोग शिक्षा की कोई व्यवस्था ही नही कर पाएगे।" भूलर बोला।

"लगता तो मुझे भी यही है।" लक्ष्मण अपने प्रवाह में कहते गये, "और केवल एक यही समस्या नही है। एक शिक्षा-सस्थान सारी वानर-जाति के लिए पर्याप्त नहीं है। इन्हें और बहुत-से आचार्य और अध्यापक चाहिए। वानरो मे एक तो पढे-लिखे युवक-युवतिया कम है। जो हैं, उनमे अध्यापक बनने की न योग्यता है और न इच्छा। कुछ युवक जो दूसरे राज्यो मे गये हुए है, उन्हें वापस नही बुलाया जा सकता, क्योंकि एक तो उनको उतनी भारी-भरकम वृत्तियां देने के लिए वानर राज्य के पास धन नही है; दूसरे, वे लोग जो धन वहा कमा रहे हैं, वानर राज्य उस धन से वचित नही होना चाहता। यदि अन्य जातियो के अध्यापकों को बुलाने का प्रस्ताव रखा जाता है तो यह कहकर विरोध किया जाएगा कि इतर जातियों के अध्यापको के कारण वानरों का धन अन्य राज्यों में चला जाएगा तथा वे अध्यापक हमारे युवको में मानसिक दासता के बीज बोएगे।"

"यह तो अच्छा-खासा षड्यंत्र है।" मधुप बोला, "ऐसे तो वानर सदा के लिए अशिक्षित रह जाएगे और अंततः किसी अन्य जाति के दास हो जाएगे।"

"सुग्रीव यदि अपने अनिर्णय मे मुक्त न हो पाए, तो सकट की स्थिति आ जाएगी।" राम धीरे मे बोले।

प्रातः हनुमान, अंगद और नील—तीनों ही राम मे मिलने आए।

राम ने मुसकराकर उनका स्वागत किया, "शिक्षा-संस्थान की

नियुक्तियों की समस्या ही तो तुम्हें परेशान नहीं कर रही ?"

"वह परेशानी तो है ही।" हनुमान अपने शालीन-स्वर में बोले, "कदाचित हम उसके विषय में भी आपका परामर्श चाहेंगे; किंतु कल सध्या से अब तक एक नया बवडर उठ खड़ा हुआ है।"

"क्या हुआ ?"

लक्ष्मण, अनिन्द्य, भूलर, मधुप तथा आस-पास उपस्थित अन्य जन-सैनिक भी समीप आ गये।

"इतने दिनों के अथक परिश्रम के पश्चात कल हमारे भूगर्भशास्त्री ने जिस भूमि में धातु-भंडार का अन्वेषण किया है," अंगद बोले, "वह वृद्ध यूथपति असिगुल्म की भूमि है; और वे अपनी भूमि राज्य को देने के सर्वथा विरुद्ध है।"

"फिर वही बात !" लक्ष्मण आवेश मे बोले।

"वह भूमि उनकी कैसे है ?" राम का स्वर शांत था।

"स्वर्गीय सम्राट ऋक्षरजा ने उनकी सेवा के प्रतिदान में वह भूमि उन्हें दान-स्वरूप दी थी।" अंगद बोले।

"और वे उसे राज्य को देना क्यों नही चाहते ?"

"उनकी इच्छा ! वे अपनी भूमि से प्रेम करते हैं।" नील खीझे हुए स्वर मे बोले।

"ऐसे तो अनर्थ हो जाएगा।" मधुप घबराए हुए स्वर में बोला, "हमारा परिश्रम तो व्यर्थ जाएगा ही, उस बूढ़े यूथपति को कदाचित यह ज्ञात ही नही है कि वह किष्किंधा राज्य की कितनी क्षति कर रहा है तथा अपनी सेनाओं को कितना दुर्बल बना रहा है।"

"ठहरो, मधुप !" राम का स्वर अब भी शांत था, "चिंतित मत हो। तुम्हारी आशकाएं सत्य नही होंगी।" वे अंगद की ओर घूमे, "अपनी धरती से प्यार सभी को होता है; किंतु किसकी धरती पर हल नही चलता या उसकी खुदाई नही होती। मूल कारण कुछ और होना चाहिए।"

'मूल कारण बड़ा सीधा है, आर्य !" हनुमान बोले, "जब तक किष्किंधा-राज्य में अपना धातु-उत्पादन नही होगा, तब तक अपने उपयोग के लिए धातुएं हम राक्षस-व्यापारियों से खरीदेंगे। अपना माल बेचने के

लिए राक्षस व्यापारी यूथपति असिगुल्म को उत्कोच के रूप में पुष्कल धन अर्पित करेंगे; क्योंकि अन्य राज्यो से वस्तुओ के क्रय-विक्रय के अधिकारी यूथपति असिगुल्म हैं; तथा अपने पुत्र के नाम से धातु खरीदकर, राज्य को बेचने में लाभ अलग कमाएंगे।"

"कैसे-कैसे देशभक्त हैं यहा !" लक्ष्मण ने टिप्पणी की।

"क्या सुग्रीव इस बात को नही जानते ?" राम ने पूछा।

"जानते हैं, पर विधान से बधे हैं।" नील ने उत्तर दिया।

"विधान क्या कहता है ?"

"किष्किंधा के शासन की परपराओं के अनुसार राजा द्वारा दी गयी भूमि राजाज्ञा से लौटायी नही जा सकती !" अगद बोले।

"इस विधान को सुग्रीव अपनी राजाज्ञा से बदल नही सकते क्या ?" राम ने पुन प्रश्न किया।

"उनका विचार है कि यह अनुचित होगा।"

"विधान और औचित्य पर्याय नहीं हैं।" राम के स्वर मे आवेश फूटा, "जिन लोगो के पास न्याय की मौलिक कल्पना नही है, वे लोग रूढ़ियों के जड़ अनुचर ही हो सकते है। एक बूढ़ा स्वार्थी पशु अपनी लोलुपता मे एक पूरी जाति को आगे बढ़ने से रोक रहा है और औचित्य के नाम पर सुग्रीव उसका समर्थन कर रहा है। उसे धरती दी गयी थी, धरती के नीचे का राष्ट्रीय धन नही। उससे कहो कि उस धरती के बराबर अन्य कोई भी धरती ले ले।"

"राजपरिषद के अधिकांश पार्षद राज्य को यह अधिकार देने के लिए तैयार नही हैं।" हनुमान धीरे से बोले, "उन सबके पास धरती के विशाल खड निजी सपत्ति के रूप में पड़े हैं। कहीं वन-सपदा है, कही कृषि-सपदा। अब भूगर्भ-संपदा की संभावनाएं भी जाग रही है।' हनुमान मुसकराए, "आज यदि राज्य को यह अधिकार दे दिया जाता है और वह यूथपति असिगुल्म से उनकी धरती, उनकी इच्छा के विरुद्ध ले लेता है, तो कल राज्य अन्य लोगों की भूमि भी उनसे उनकी इच्छा के विरुद्ध ले लेगा।' अत. पार्षद इस अधिकार तथा इस मत का समर्थन नही करते।"

"विकट स्थिति है !" राम चिंतित हो उठे, "सुग्रीव से ऐसी

की आशा नहीं थी। उन्होंने अपनी राजपरिषद में जाति और राज्य के शत्रु ही भर रखे हैं क्या ?"

"वे उन लोगों से उनके पद छीन क्यों नहीं लेते ?" लक्ष्मण बोले, "यह प्रतिदिन की बाधा दूर हो।"

"विरोधियों को हटाने में उन्हें अपयश का भय है।" नील बोले, "इन दिनों उन्हें अपने सुयश की बहुत चिंता है।"

"सुनो, मित्रो !" राम का स्वर धीमा था, "सुग्रीव हमारे मित्र हैं। हममें से एक हैं। उनके विचार, आदर्श और लक्ष्य हमारे अपने हैं। इसलिए हमें उनके विरुद्ध धारणा बनाने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। संभव है कि शासन की आरंभिक अवस्था तथा इन जटिल परिस्थितियों में उनके सम्मुख वास्तविक व्यावहारिक कठिनाइयां हों और वे कुछ शिथिल पड़ गये हों। इसलिए हमें इतनी जल्दी उनके प्रति सहानुभूतिशून्य नहीं हो जाना चाहिए। किंतु हम इन तथ्यों के प्रति असावधान भी नहीं हो सकते। हमारा मूल दायित्व राजा, अपने मित्र अथवा व्यक्ति सुग्रीव के प्रति नहीं है—हमारा दायित्व असंख्य जनसाधारण के प्रति है। जन-सामान्य के हित का शत्रु हमारा भी शत्रु है। इसलिए हमें सुग्रीव को सावधान करना होगा।"

"और यदि कोई सावधान न होना चाहे तो ?" लक्ष्मण बोले।

"तो उसके विरुद्ध जनता का दबाव बनाना होगा, बनाए रखना होगा।" राम बोले, "इस विषय में कोई भ्रांति नहीं होनी चाहिए। सत्ता प्राप्त कर लेने के पश्चात हमारे जन-संगठन अनावश्यक नहीं हो जाते। तुम लोग देख ही रहे हो कि अनेक बार अपने भीतरी विरोधों के कारण शासन कितना असमर्थ हो जाता है। और दूसरी बात यह है कि जन-संगठनों का समर्थन प्राप्त न हो तो शासन कोई निर्माण-कार्य कर भी नहीं पाएगा।"

"तो ?" अंगद पूछ रहे थे।

"शासन के माध्यम से निर्माण-कार्य का तुम्हारा आयोजन असफल रहा।" राम बोले, "वापस अपने जन-संगठनों में लौटो। उन्हें प्रबल तथा प्रभावी बनाओ। उनके द्वारा शासन पर जनहिताय निर्माण के लिए दबाव

डालो; तथा स्वय उनके माध्यम से निर्माण-कार्य आरभ करो। शासन शिक्षा-सस्थान स्थापित नही कर पाता तो तुम गली-गली अपने विद्यालय खोल दो। सगठन और सैनिक-प्रशिक्षण अपने हाथ मे ले लो, और कल से भूगर्भशास्त्री मधुप की देख-रेख मे धातु प्राप्त करने के लिए खुदाई का कार्य आगे बढाओ।"

"यदि सम्राट आपत्ति करें?"

"जन-न्याय सम्राट के न्याय से बड़ा होता है।" राम बोले, "जड़ परिस्थितियों में गति लाने के लिए जन-न्याय को सम्राटों के लिए भी आदर्श स्थापित करने पड़ते है।"

३

सुग्रीव का दिन झगडो से ही आरभ हुआ।

राजपरिषद में जाने से पूर्व ही प्रतिहारी ने सूचना दी कि प्रजाजनो का एक शिष्ट-मंडल उनसे मिलने आया है। इन दिनों किसी भी शिष्ट-मंडल से मिलने में सुग्रीव की कोई रुचि नही थी; किंतु आगतुकों मे सबसे ऊपर स्वर्गीय मंत्री मलयवन की पत्नी सुपताका का नाम था। वाली के हाथों मलयवन की यातनापूर्ण मृत्यु को सुग्रीव भूल नही सकते थे; न ही वे इस तथ्य की उपेक्षा कर सकते थे कि सुग्रीव के मंत्री होने ही के कारण मलयवन को इस प्रकार की मृत्यु और उसके परिवार को यातना तथा अपमान मिला।

उन्हे शिष्ट-मंडल से मिलने की अनुमति देनी पड़ी।

शिष्ट-मडल के लोग आकर सम्राट के सम्मुख खड़े हो गये। केवल सुपताका को एक छोटे मच पर बैठा दिया गया।

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति ने सम्राट का अभिवादन करते हुए, उनके स्वास्थ्य के विषय मे जिज्ञासा प्रकट की और उसके लिए मंगल कामना की।

'मेरे सम्राट बन जाने के पश्चात लोगों को मेरे स्वास्थ्य की बहुत चिंता रहने लगी है।' सुग्रीव सोच रहे थे।

"आप लोग अपना प्रयोजन कहिये।" सुग्रीव ने उन्हें मूल बात की ओर प्रेरित किया।

"सम्राट ! देवी सुपताका आपको यह याद दिलाने के लिए आयी हैं कि आपका पक्ष ग्रहण करने के कारण स्वर्गीय सम्राट वाली के हाथों हमें अनेक कष्ट सहने पड़े हैं। लोगों ने अपने प्राणों का बलिदान किया है; कारागार तथा अंधकूपों की यत्रणाएं सही है। अनेक लोगों को धन की हानि उठानी पड़ी है। अनेक लोगों के भवन भूमिसात और अग्निसात हुए हैं। सम्राट से निवेदन है कि वे अपने अनुचरों को विस्मृत न करें।"

"विस्मृत करने का प्रश्न ही कहां उठता है।" सुग्रीव बोले. "जब कभी सोचता हूं तो एक-एक कर, उन सब लोगों के चेहरे मेरी आंखों के सम्मुख घूम जाते हैं। वस्तुत. उन लोगों ने कितना कष्ट सहा है मेरे लिए। मेरे मित्र, समर्थक तथा सहचर होने का कैसा विकट मूल्य चुकाया है लोगों ने।"

"मूल्य तो हम लोगों ने चुकाया है, सम्राट !" शिष्ट-मंडल का एक सदस्य बोला, "और फल उन लोगों को मिल रहा है, जो आपके उन यातनापूर्ण दिनों में भी न केवल अपने पर्यंकों पर सोये हुए थे, वरन आपके समर्थकों को पीड़ित करवाने में अगुआ बनकर पुरस्कार-रूप में धन-संपत्ति और सुविधाएं प्राप्त कर रहे थे।"

"मैं समझा नहीं।" सुग्रीव चौंक उठे, "आप लोगों का मंतव्य क्या है ?"

"सम्राट ! अपने उन शत्रुओं को उनके पदों से हटाएं, जिन्होंने आपके अनुचरों पर अत्याचार किये हैं। उन लोगों के अधिकार छीन लिये जाएं, जिन्होंने आपके मित्रों और समर्थकों पर अत्याचार करने के पुरस्कार के रूप में अधिकार तथा ऐश्वर्य प्राप्त किया है।"

"अर्थात् मैं भी अपने विरोधियों के साथ वही व्यवहार करूं, जो वाली ने अपने विरोधियों के साथ किया था !" सुग्रीव कुछ आवेश में बोले, "तो फिर मुझमें और वाली में अंतर ही क्या होगा ?"

सुग्रीव मौन हो गये। वे चुपचाप उन लोगों को देखते रहे।

"आर्य मलयवन का परिवार यदि आज भी गली-गली बिलखता फिरे तो हम कैसे मान लें कि अब वाली का राज्य नहीं रहा।" सुपताका ने पहली बार अपना मुख खोला।

"तुम लोग ठीक कह रहे हो!" सुग्रीव कुछ सोचते हुए बोले, "मुझे विचार-विमर्श और चिंतन-मनन के लिए थोड़ा-सा समय दो। मुझे अपने साथियों से भी पूछना पड़ेगा कि इस विषय में हम क्या कर सकते हैं।"

"सम्राट! हम आपके सम्मुख कुछ प्रस्ताव रखना चाहेंगे!" एक व्यक्ति बोला, "निर्णय का अधिकार आपका है, किंतु आशा है, हमारे प्रस्ताव-ज्ञापन पर आपको कोई आपत्ति नहीं होगी।"

"बोलो।" सुग्रीव ऊबे-से स्वर में बोले।

"सम्राट! जिन लोगों ने पिछले दिनों कष्ट सहे हैं, उनकी क्षतिपूर्ति की जाए। जिनके धन की हानि हुई है, उनके लिए राज्य की ओर से उस हानि की भरपाई हो। जिनके भवन गिराये गये हैं, अथवा जलाये गये हैं, उनके लिए भवनों का निर्माण हो। जिनके परिवारों के जन की हानि हुई है, उन परिवारों के लिए वृत्तियों, राजकीय सेवाओं, व्यापार-सुविधाओं तथा अन्य सुविधाओं से उस जन-हानि की यथासंभव पूर्ति की जाए।...और सम्राट! आपकी विपत्ति के दिनों में जिन्होंने आपका विरोध किया, आपके समर्थकों पर अत्याचार किया तथा अन्य प्रकार से लाभ उठाया—उन लोगों को दंडित किया जाए।"

अवाक् सुग्रीव उनकी बात सुनते रहे, 'इनके सारे प्रस्ताव मान लिये जाएं तो सारे राज्य को सिर के बल खड़ा कर देना होगा।'

"अच्छा! आप लोग जाएं।" अंततः सुग्रीव धीरे से बोले, "आपके प्रस्तावों पर विचार किया जाएगा।"

राज्य परिषद् की कार्यवाही आरंभ ही हुई थी कि वृद्ध यूथपति असिगुल्म उठकर खड़ा हो गया, "सम्राट! दुहाई है। मैं न्याय की मांग करता हूं।"

"आपके साथ क्या अन्याय हो गया, यूथपति?" सुग्रीव ने अपने खीझे हुए मन को संतुलित करने का प्रयत्न किया।

"सम्राट ! किष्किधा के निकट वनों में जो भूमि सर्वथा अनुपजाऊ तथा मूल्यहीन समझकर स्वर्गीय सम्राट ऋक्षरजा ने मुझे दान में दी थी, आज किष्किधा के कुछ उपद्रवी तत्त्व उसे भी मुझसे छीन लेना चाहते हैं।"

"क्या आपकी भूमि पर किसी अन्य व्यक्ति ने आधिपत्य स्थापित कर लिया है?" सुग्रीव को स्मरण हो रहा था कि इसी भूमि की चर्चा अगद और हनुमान दोनों ही उनसे कर चुके थे।

"आधिपत्य तो स्थापित नहीं किया गया, सम्राट !" वृद्ध यूथपति वावेला मचाने के-से ढग से बोला, "आधिपत्य कोई क्यों स्थापित करेगा? ससार जानता है कि वह पथरीली, वंध्या तथा अनुपजाऊ भूमि है। किंतु मुझे क्लेश पहुचाने के लिए उसकी खुदाई आरंभ कर दी गयी है। मेरे यूथ के दडधर उस भूमि की रक्षा के लिए गये तो उन उपद्रवियो ने उन्हे पीटा भी है। दुहाई है सम्राट की। मेरी भूमि की रक्षा की जाए। मेरे दंडधरों की रक्षा राजकीय सेना करे अथवा मुझे अनुमति मिले कि मैं अपने यूथ की सेनाओं द्वारा अपनी रक्षा करू।"

असमंजस में फंसे सुग्रीव कुछ क्षण मौन रहे—क्या कहे, क्या करें सुग्रीव ? सहसा किसी निष्कर्ष पर पहुचते हुए, शांत स्वर मे बोले, "कोटपाल ! क्या आपने इस घटना की जाच की है?"

इससे पहले कि कोटपाल कोई उत्तर देता, अंगद अपने स्थान पर खड़े हो गये, "सम्राट ! यदि अनुमति हो तो मैं इस विषय में विस्तार से कुछ कहना चाहता हूं। मेरा विचार है कि कोटपाल इस विषय मे विशेष जानकारी देने में असमर्थ होंगे।"

सुग्रीव ने कोटपाल की ओर देखा।

कोटपाल ने सिर झुकाकर कहा, "युवराज का विचार सत्य है, सम्राट ! वह स्थान किष्किधा की प्राचीर से बाहर है; अतः मेरा अधिकार-क्षेत्र वहां तक व्याप्त नहीं है।"

सुग्रीव ने अंगद की ओर दृष्टि घुमाई, "युवराज ही कहें।"

"सम्राट ! यूथपति असिगुल्म पर मेरा आरोप है कि उन्होंने जान-बूझकर तथ्यों को छिपाया है और एकांगी जानकारी देकर सम्राट तथा राज-परिषद् को भ्रमित करने का प्रयत्न किया है।"

"युवराज अपना आरोप प्रमाणित करें।" सुग्रीव बोले।

"सम्राट इस बात से अनभिज्ञ नहीं है कि सैनिक तथा असैनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किष्किंधा राज्य को धातुओं की कितनी भीषण आवश्यकता है। अपने पास कोई भूगर्भशास्त्री न होने के कारण हमने अपने मित्र आश्रमों से अनुरोध कर कुछ भूगर्भ-विशेषज्ञ आमन्त्रित किये हैं। उन लोगों ने अपने अथक परिश्रम से जिस स्थान पर धातु का पता लगाया है, वह क्षेत्र यूथपति असिगुल्म की भूमि में पड़ता है। अब एक देशभक्त तथा कर्तव्य-निष्ठ नागरिक के समान वह भूमि राज्य को अर्पित करने के स्थान पर यूथपति ने अपनी जाति को उस संपदा से वंचित रखने के लिए अनेक प्रकार के पाखंड आरंभ कर रखे हैं..."

"हम इस प्रकार के निराधार आरोपों का विरोध करते हैं।" कटाक्ष खड़ा हो गया, "आरोप लगाने से पूर्व उनका आधार भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए। आरोप लगाने वाले चाहे स्वयं युवराज ही क्यों न हों।"

"मैं बीच में बोलना नहीं चाहता था, सम्राट !" हनुमान बोले, "किंतु आर्य कटाक्ष के व्यवहार के पश्चात मैं भी निवेदन करना चाहता हूं कि सम्राट से अनुमति प्राप्त कर, युवराज इन आरोपों को प्रमाणित ही कर रहे थे, जब आर्य कटाक्ष ने विघ्न डाला है। यह सम्राट की भी अवहेलना है और युवराज की भी।"

सुग्रीव ने हाथ के संकेत से हनुमान को बैठने का आदेश दिया, "युवराज अपनी बात कहें।"

"मैं कह रहा था, सम्राट ! कि यूथपति असिगुल्म जाति की संपत्ति जाति को देने से इनकार कर रहे हैं। वह भूमि यूथपति की अवश्य है, किंतु उस भूमि के नीचे की संपदा या तो किष्किंधा राज्य की है, अथवा वानर जाति की। इस संपदा को अपना बताना राजद्रोह भी है और जातिद्रोह भी। इसके लिए यूथपति असिगुल्म को दंडित किया जाए, ऐसा मेरा अनुरोध है।"

असिगुल्म अपने स्थान पर बैठा ऐंठ रहा था। कुछ कहने और न कहने का द्वन्द्व उसके चेहरे से स्पष्ट लक्षित हो रहा था।

"यूथपति इस विषय में क्या कहना चाहते हैं?" सुग्रीव ने पूछा।

"सम्राट !" असिगुल्म को बोलना ही पड़ा, "मेरी भूमि के नीचे जाति अथवा राज्य की संपदा है या नहीं, इसका निर्णय कौन करेगा। कोई समझदार आदमी इस बात को प्रमाणित कर दे तो और बात है; ऐसे ही किसी राह चलते कंगले ब्रह्मचारी के कह देने से मैं अपनी भूमि नहीं छोड़ सकता।"

"यूथपति किसके द्वारा इस तथ्य को प्रमाणित करवाना चाहते हैं?" हनुमान ने पूछा।

"कोई भी विद्वान हो—लंका का, अशिमपुर का, भोगपुर का।" असिगुल्म कटु स्वर में बोला, "ऐसा नहीं होना चाहिए कि कुछ शोहदे किष्किंधा की संकीर्ण गलियों की गंदी झुग्गियों में बच्चों को बैठाकर उनका नाम विद्यालय रख दें; और कल इन्हीं गंदी झुग्गियों के वे आवारा बच्चे हमारे भाग्य का निर्णय करने बैठ जाएं।"

सुग्रीव को लगा, हनुमान तमतमाकर कोई बहुत कठोर बात कह बैठेंगे। असिगुल्म तर्क छोड़कर अब जनविद्यालयों और उनमें पढ़ने वाले बच्चों का अपमान करने पर उतर आया था। किंतु हनुमान ने अद्भुत आत्मसंयम का परिचय दिया। वे अत्यन्त मृदु स्वर में बोले, "वृद्ध यूथपति की भाषा घृणा का प्रचार करने वाली, शब्द सामान्य जन के लिए अपमान-जनक तथा वाक्य सर्वथा तर्कशून्य हैं। यदि मैं यह कहूं कि साफ कपड़े पहनकर ऊंचे महलों में बैठने वालों को क्या अधिकार है कि वे किसी जाति अथवा राज्य के भविष्य का निर्णय करें, जबकि उनके मस्तिष्क सड़े हुए हैं और आत्माएं दुर्गंध फैला रही है।"

"सम्राट! हनुमान हमारा अपमान कर रहे हैं।" दुर्मुख चीत्कार कर उठा, "कृपया इसे आदेश दें कि यह तनिक संयम सीखे।"

"मेरा विचार है, मेरे पुत्र से बढ़कर संयम सारी किष्किंधा में और किसी में नहीं है।" वृद्ध यूथपति केसरी सारे विवाद में पहली बार बोले।

"होगा।" दुर्मुख अपनी बात आगे बढ़ा ले गया, "गली-गली खुलने वाले इन विद्यालयों के प्रति मैं भी सम्राट को सावधान करना चाहता हूं। इस राज्य में ज्ञान का स्तर गिराने का एक घृणित षड्यंत्र रचा जा रहा

है। जिन परिवारों से ये गदे, अस्वस्थ तथा नासमझ बच्चे आ रहे हैं, और जैसे मूर्ख अध्यापक उन्हें पढ़ा रहे है, उससे ज्ञान का प्रचार नहीं हो रहा है। अयोग्य लोगो को योग्य बनाने का पाखड किया जा रहा है। कल ये ही लोग उन बच्चो से योग्यता की समकक्षता का दावा करेंगे—जो पुष्कल धन व्यय कर, अच्छे अध्यापकों से ज्ञान अर्जित कर रहे है। अतः निवेदन है कि इन विद्यालयों को वद किया जाए।"

"इतना ही नही, सम्राट !" कटाक्ष पुन उठ खड़ा हुआ, "विद्यालयों के नाम पर ये लोग सार्वजनिक स्थानो, भवनो, मदिरो तथा समाधियों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर रहे है। यह षड्यंत्र साधारण लोग नहीं कर रहे हैं। इसके पीछे शासन के बडे-बडे अधिकारी हैं, जिनमें से कुछ तो आपकी राजपरिषद के सदस्य भी है।"

"जब बात यहां तक आ ही गयी है तो मैं भी कुछ स्पष्ट बातें कहने की अनुमति चाहूगा।" नील उठकर खडे हो गये।

सुग्रीव ने बोलने का सकेत किया।

"सम्राट !" नील बोले, "हमारे सामने एकाधिक बातें गड्डमड्ड रूप में प्रस्तुत की गयी है। स्पष्टता की माग है कि उन्हे पृथक-पृथक कर दिया जाए। पहली बात है यूथपति असिग्रुल्म की भूमि, दूसरी है खनिज पदार्थों सबधी ज्ञान देने का अधिकार, तीसरी नगर अथवा सारे राज्य में जन-विद्यालय खोलने का अधिकार, और चौथी बात है सार्वजनिक स्थानों पर विद्यालय खोलने का अधिकार। कृपया इन बातो पर पृथक-पृथक निर्णय लिये जाएं। सर्वप्रथम हम यूथपति की भूमि की समस्या सुलझा लें। यूथपति का आरोप है कि कुछ उपद्रवी तत्त्व बलात् उनसे उनकी भूमि छीन रहे है और युवराज का यूथपति पर आरोप है कि वे राज्य और जाति को उसकी सपदा देना नही चाहते, अतः राजपरिषद तथा सम्राट को भ्रमित कर रहे है। परिषद से निवेदन है कि पहले इसका दो-टूक निर्णय कर, फिर किसी अन्य विषय पर विचार करे।"

नील अपनी बात समाप्त कर बैठ गये।

"सम्राट अपना निर्णय देने से पहले मेरी बात सुन लें।" वृद्ध यूथपति पुनः बोला, "यदि मेरी भूमि के गर्भ मे खनिज-सपदा निकल भी आए, तो,

यह खोज किसी उपयुक्त अधिकारी के आदेश से होनी चाहिए। मेरी भूमि पर खुदाई किसके आदेश से आरंभ हुई? प्रस्रवणगिरि पर बैठे निष्कासित राजकुमारों के बहकावे..."

"यूथपति!" सुग्रीव पहली बार कठोर स्वर में बोले, "आर्य राम तथा लक्ष्मण के सम्मान के विरुद्ध कोई बात नही सुनी जाएगी। अपनी मर्यादा पहचानिए। वे सम्राट के मित्र तथा राज्य के अतिथि हैं।.. हां! यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि आपकी भूमि मे खुदाई किसके आदेश से आरंभ हुई?"

"मेरे आदेश से, सम्राट!" अंगद बोले, "और धातु-अनुसधान के अधिकार स्वय सम्राट ने मुझे दिये थे। धातु-अनुसधान-मंडल के अध्यक्ष के रूप में मैं राज्य के किसी भी स्थान की खुदाई का आदेश दे सकता हूं।"

"तो क्या युवराज को यह अधिकार है कि वे किसी का भी घर खोद-कर फिंकवा दें?" कटाक्ष ने पूछा।

"नही! नही! नहीं!" उनके अनेक साथियों ने आवाजें लगायी।

"मुझे यह अधिकार है कि धातु-अनुसंधान के लिए किसी भी भूमि की खुदाई का आदेश दूं।" अंगद एक-एक शब्द चबाकर बोले, "हां! यदि वहां धातु न निकले और उस भूमि के स्वामी की यदि कोई क्षति हुई हो, तो उसकी भरपाई करना मेरा कर्तव्य है।"

"वंध्या और बंजर भूमि की खुदाई से भूमि के स्वामी को जो लाभ होगा, खनिज-पदार्थ न मिलने पर उस लाभ का मूल्य उससे वसूल किया जाना चाहिए।" नल ने टिप्पणी की।

"नही!" असिगुल्म ने सहसा अपना तर्क बदला, "प्रश्न यह है कि यदि सपदा निकल आयी, तो वह किसकी है? जिसका खेत होता है, उपज उसकी होती है। उसी प्रकार जिसकी भूमि है, खनिज संपदा उसी की है। शासन को हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है? विधान की दृष्टि से किसी सम्राट द्वारा दान की गयी भूमि शासन द्वारा लौटाई नही जा सकती। यदि वर्तमान सम्राट इस विधान का उल्लघन करना चाहते हैं तो न्याय के नाम पर मेरा निवेदन है कि उस भूमि का उचित मूल्य चुकाया जाए; किंतु ध्यान रखा जाए कि वस्तु का मूल्य वही मान्य होता है, जो विक्रय करने

वाला लगाता है। क्रय करने वाला उतना मूल्य न देना चाहे तो क्रय न करे।"

"सम्राट ! मैं इन प्रस्तावों का विरोध करता हूं।" हनुमान ने अपना तर्क प्रस्तुत किया, "सम्राट किसी को भूमि दान करते हैं, तो वह मात्र उस भूमि का ही स्वामी हो सकता है; अतः उसे उतनी ही भूमि अन्यत्र देकर उसकी क्षतिपूर्ति की जा सकती है। भूमि की उपज एक भिन्न विषय है। प्रथम तो भूमि का दान करते हुए सम्राट जानते हैं कि वह भूमि उपज के योग्य है और उसमें उपज होगी। दूसरे, वह उपज कृषक के अपने श्रम से पैदा होती है। यहा स्थिति यह नही है। स्वर्गीय सम्राट ऋक्षरजा ने जिस समय यह भूमि यूथपति को दान की थी, उन्हें यह ज्ञात नही था कि इस भूमि के नीचे खनिज संपदा है, और वह कितनी मूल्यवान है। दूसरी बात यह है कि यह सपदा न तो यूथपति ने अपने श्रम से उत्पन्न की है और न अपने उद्यम से खोजी है। अत. विधान की आड में वे राज्य और जाति को उनकी सपत्ति से वचित नही कर सकते। जैसे-जैसे मनुष्य का ज्ञान विकसित होगा, वैसे-वैसे न्याय का स्वरूप भी बदलेगा। न्याय कोई जड़ वस्तु नही है, वह जीवन्त अवधारणा है, जो समय के साथ विकसनशील है।"

"यह हमारे सम्राटों के विधान का अपमान है।" दुर्मुख बीच में ही खड़ा होकर बोला।

साथ ही उसके अनेक साथी भी शोर मचाने लगे, "अपमान है ! अपमान है !!"

राजपरिषद में ऐसा कोलाहल अभूतपूर्व था। सुग्रीव ने दो-एक बार कुछ कहने का प्रयत्न किया, किंतु उस कोलाहल में उनका स्वर किसी ने सुना नही। अंततः सुग्रीव ने कोप में से अपना खड्ग खींच लिया।

परिषद मे शांति हो गयी।

"विधान का निर्णय बाद में होगा।" सुग्रीव बोले, "किंतु एक निर्णय अभी दे रहा हूं—सम्राट का अपमान विधान के अपमान के ही समान दण्डनीय है।"

मौन और भी सघन हो गया।

सुग्रीव ने भी स्वयं को संयत किया, "विधान परिवर्तनशील है अथवा

नहीं, इस विषय में सोचने का मुझे कुछ समय दें। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय में तत्काल निर्णय नहीं हो सकता।" सहसा सुग्रीव रुक गये, उन्होंने सारी परिषद पर एक दृष्टि डाली और धीरे-से बोले, "शेप विचार-विमर्श फिर होगा। सभा की कार्यवाही यही स्थगित की जाती है।"

सभा से उठकर आने के पश्चात सुग्रीव का मन कुछ अधिक ही विचलित हो गया था। प्रात का वह शिष्ट-मडल। वे लोग चाहते थे कि उन लोगों को अधिक-से-अधिक लाभ और सुविधाएं दी जाए। और उसके विपरीत राजपरिषद का यह विवाद! अभी तो उन्होंने विवाद आगे चलने नहीं दिया था, नहीं तो सध्या भी बीत जाती। पता नहीं, ये लोग इतना विवाद क्यों करते है.. विवाद वे करते हैं और जान सुग्रीव की फसती जा रही है। . .आज यदि सुग्रीव विधान बदलने की अनुमति दे दें तो उनके विरोधी उन्हें कलकित करना आरंभ कर देंगे कि सुग्रीव प्रजा की चिंता नहीं करता, विधान की चिंता नहीं करता—वह अहंकारी है, स्वेच्छाचारी है, अन्यायी है, उसके और वाली के शासन में कोई अतर नहीं है। उसने अपने भाई का वध इसलिए नहीं करवाया कि वह अन्याय को समाप्त कर, प्रजा को न्याय-पूर्ण शासन देना चाहता था। उसे तो अपने भोग-विलास के लिए शासन का अधिकार चाहिए था, इसलिए भाई पर झूठे आरोप लगाकर उसकी हत्या करवा दी...वह भ्रातृ-हंता, सत्तालोभी और हत्यारा है...

सुग्रीव जब भी अगद को देखते हैं अथवा तारा के समक्ष पड़ जाते हैं, तो बार-बार उनकी आखो मे झांककर देखते हैं—क्या है उनके मन में? क्या वे सचमुच सुग्रीव को निर्दोष मानते है अथवा उनके मन में कहीं सुग्रीव के प्रति कोई सदेह है...सुग्रीव किसी भी क्षण भूल नहीं पाते कि यह सत्ता उन्होंने अपने भाई की हत्या करवाकर प्राप्त की है...

और यदि वे अपने विरोधियों के प्रचार को शांत करने के लिए उनकी बात मान लेते हैं तो किष्किंधा में नव-निर्माण नहीं हो सकेगा। प्रजा को न्याय नहीं मिल सकेगा। वे अपने सहयोगियों द्वारा ही देशद्रोही मान लिये जाएंगे। तब अंगद और हनुमान यह पूछेंगे कि यदि प्रजा का पालन नहीं करना था तो भाई का वध क्यों करवाया?...वाली को न्याय के मार्ग

की बाधा माना था, तो अब न्याय क्यों नही करते ? भाई का वध कर सत्ता हथियाने भर का शौक था...

इन्ही सब चिंताओ से सुग्रीव के मस्तिष्क की शिराओं का तनाव इतना बढ जाता है कि वे सोचने-समझने के अयोग्य हो जाते है। ऐसे क्षणों में उनका मन पागलो के समान अधाधुंध चीत्कार करने लगता है, "मुझे समय दो। मुझे सोचने दो। .."

सोच-सोचकर सिर में पीडा होने लगी तो सुग्रीव का ध्यान इधर-उधर भटकने लगा। किष्किधा के नगरश्रेष्ठि ने अपने प्रासाद मे एक समारोह का आयोजन किया था। नगर के सारे व्यापारियो ने मिलकर सम्राट से समारोह मे पधारने की प्रार्थना की थी। मन मे आया, वही चले चलें। इन राजनीतिक उलझनों से तो मुक्ति मिलेगी।...व्यापारी लोग राजनीति-संबंधी वार्तालाप मे रुचि नही रखते...किंतु वहा भी उन लोगो ने क्रय-विक्रय, भीतरी व्यापार, बाहरी व्यापार, करों मे कटौती—या ऐसे ही विषयो में सुविधाए मागनी आरभ कर दी तो...

सुग्रीव को लगा, वे वहा भी स्थिरचित्त नही रह पाएंगे;...फिर वहां जाने का क्या लाभ ?

किंतु अपने समय से नगरश्रेष्ठि उन्हे लिवा ले जाने के लिए आ गया।

"आज मेरी इच्छा नही है, नगरश्रेष्ठि !" सुग्रीव ने उसे टालना चाहा, "यदि मैं न जाऊं तो तुम्हारे समारोह में कोई न्यूनता तो नही आएगी ?"

"सम्राट कैसी बात कहते है।" नगरश्रेष्ठि ने हाथ जोड़ दिये, "आकाश पर चद्रमा न हो तो तारो की सभा फीकी कैसे नही पड़ेगी। आप विश्वास कीजिये, सम्राट ! आपका मन वहा अवश्य बहल जाएगा। ऐसी कोई बात नही होगी, जो आपकी इच्छा के प्रतिकूल हो।"

कदाचित नगरश्रेष्ठि को भी सम्राट की चिंताओ की सूचना थी।

सुग्रीव का मन कुछ संभला—यह व्यक्ति कितना मीठा बोलता है।

"वहां कोई विचार-विमर्श तो नही होगा, कोई विवाद...?" सुग्रीव का विचार-विचलित मन अपने भीरु स्वर में बोला।

"नहीं, सम्राट !कदापि नहीं।" नगरश्रेष्ठि ने अपनी जिह्वा को दांतो से काटा और कानों को हाथ लगाये, "यह तो सहमिलन का उत्सव मात्र है।"

"कोई प्रस्ताव ?"

"नही, सम्राट !"

"कोई मांग ?"

"नही, सम्राट !"

"किसी की निंदा ? किसी की शिकायत ?"

"नही, सम्राट !"

सुग्रीव चलने के लिए तैयार हो गये। देखें, क्या सचमुच वह स्थान इतना निर्दोष है ? क्या आज की विचलित परिस्थितियों में भी किष्किंधा में कोई ऐसा स्थान है, जहां सुख और शांति हो ? सत्य ही वहां मन बहल जाएगा क्या ?

समारोह में सब कुछ नगरश्रेष्ठि के वचनों के ही अनुकूल था। विभिन्न व्यापारी छोटी-छोटी टुकड़ियों में वार्तालाप कर रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति सम्राट के सम्मुख पड़ते ही मौन हो जाता था और हाथ जोड़कर उन पर अपना माथा टिका देता था। किसी ने कोई शिकायत नही की। सब ओर सम्राट की प्रशंसा ही प्रशंसा थी। किसी ने कुछ मागा नही, उलटे बहुत डरे-डरे लोगों ने प्रस्ताव किये कि यदि सम्राट अनुचित न समझें तो वे लोग अपने धन से देशी-विदेशी चित्रकारों और मूर्तिकारों द्वारा सम्राट के चित्र और मूर्तियां बनवाकर अपने भवनों पर लगवा लें। उनका कहना था कि किसी सुंदर भवन में सम्राट की मूर्तियां और चित्र न हों, तो भवन बड़ा सूना-सूना लगता है।

सुग्रीव को लगा, जैसे किसी ने उनके उत्ताप पर चंदन का लेप कर दिया हो। वे कहां-कहां भटकते रहे और क्या-क्या सोचते रहे। उन्हें तो ऐसी जगह की आवश्यकता थी। यहा आना चाहिए था उन्हें...घर-घर में, वीथियों और चतुष्पदों पर, निजी और सार्वजनिक स्थानों पर उनके चित्र टांगे जाएं, उनकी मूर्तियां स्थापित की जाएं। लोगों के मन मे उनके

लिए श्रद्धा और पूज्य भाव होगा। कोई उनसे प्रश्न न करे, कोई उन पर अविश्वास न करे, कोई उनका विरोध न करे, कोई उनसे कुछ न मांगे... ऐसा ही तो चाहते हैं वे...कोई उन्हें परेशान न करे...। यहां सब कुछ कितना सुखद था !

सारे व्यापारी सम्राट से भेंट कर चुके तो खान-पान आरंभ हुआ।

नगरश्रेष्ठि परिचारक द्वारा दो बड़े-बड़े थाल उठवाकर लाया। एक में फल तथा मिठाइयां थीं तथा दूसरे मे पशु मांस के अनेक व्यंजन।

सुग्रीव ने खाने के प्रति अनिच्छा प्रकट की, तो नगरश्रेष्ठि चिंतित हो उठा, "यह तो हमारे लिए सुखद नहीं है, सम्राट ! इस यौवन में, इतना परिश्रम करने पर भी सम्राट को खाने के प्रति अरुचि है। सम्राट को थोड़ी-सी माधवी पीनी चाहिए...।"

"वह क्या है ?" सुग्रीव के मुख से अनायास निकल गया, जैसे वे जानते ही न हों कि माधवी क्या होती है—पर जब मुख से निकल ही गया था तो उसका परिहार करने की क्या आवश्यकता थी...

"थके मन का आहार, सम्राट !"

सुग्रीव के मन में मायावी जीवित हो उठा—उसने भी वाली से कहा था कि उसका अपराध है थके हुए मन को विश्राम देना। तो क्या यह नगरश्रेष्ठि भी मायावी का ही कोई नया संस्करण है ?

"मदिरा ?"

जाने क्यों सुग्रीव का मन अज्ञान का अभिनय कर रहा था—जैसे उनका मन आज विवेक से मुक्त हो, अपनी स्वतंत्र क्रीड़ा कर रहा हो।

"नहीं, सम्राट !" नगरश्रेष्ठि ने अपने अभ्यास के अनुसार दांतों से जीभ काटी और कानों को हाथ लगाये, "यह हल्का-सा मद्य है—थके मन का आहार। इससे व्यक्ति न उग्र होता है, न हिंस्र। इससे व्यक्ति हल्की-सी तंद्रा का अनुभव करता है और मन के ऊहापोह से बच जाता है।"

सुग्रीव का मन ललक उठा। वे यही तो चाह रहे थे। कदाचित वाली का मन भी ऐसा ही थक गया हो...पर सुग्रीव को तीव्र मदिरा नहीं चाहिए...वे वाली नहीं बनना चाहते...किंतु मानसिक तनाव से मुक्ति उन्हें भी चाहिए...

उन्होंने माधवी का एक चषक ले लिया। पीते ही उन्हें कुछ आराम मिला। उन्होंने दूसरा चषक भी ले लिया।

थोडी देर सुग्रीव वहां और बैठे और व्यापारियों के मुख से अपनी प्रशसा सुनते रहे और माधवी पीते रहे। उनका मन अब पूर्णतः शांत था। सारा तनाव मिट गया था और उन्हें हल्की-हल्की नीद आ रही थी।

रुमा आज उन्हे बहुत ही सुदर लगी थी—ऐसी, जैसी वह विवाह के समय थी। तन्वगी, चपल और चचल किशोरी। कितना तडपे थे रुमा के बिना सुग्रीव अपने निष्कासन के दिनों में। क्या जीवन था वह कि वनों-पर्वतों पर मारे-मारे फिर रहे थे। न खाने की व्यवस्था थी, न आराम करने की। न माधवी और न रुमा।...जीवन तो यह है। वास्तविक जीवन। स्त्री कितनी सुदर होती है और कितना सुख देती है पुरुष को!... जितनी अधिक स्त्रिया होंगी, सुख भी उतना ही अधिक मात्रा मे मिलेगा. .। व्यर्थ ही जा बैठते हैं वे राजपरिषद मे। अनावश्यक खीचतान, वाद-विवाद, पक्ष-विपक्ष, आपत्ति-विपत्ति, विरोध-शिकायत...माथे मे पीड़ा होने लगे और छाती पर जैसे कोई बडी-सी शिला रख दे...राजपरिषद मे बैठने से तो अच्छा है, कि सुग्रीव व्यापारियो के समारोह में चले जाएं. . या.. या रुमा के पास पहुच जाएं...जीवन कितना सुखी होता है...पति-पत्नी.. पति और पत्नी...पत्नी और पति...कोई कभी किसी से अलग न हो...सुग्रीव रुमा से अलग हुए थे...अब तारा बिछुड गयी है वाली से .. तारा को यह दु ख नही मिलना चाहिए था...तारा को भी पति-सुख मिलना चाहिए...सुग्रीव ने ही उसे पति से विलगाव का दु.ख दिया है...सुग्रीव के लिए उचित है कि उसे पति-सुख भी दें...कितनी सुदर है तारा भाभी. . नही, तारा...केवल तारा...वाली ने कभी उसका महत्त्व ही नही समझा.... अभागा वाली!

अगद को मालूम हुआ तो उन्हे अच्छा नही लगा। वे स्वयं समझ नही पा रहे थे कि उन्हे क्यो अच्छा नहीं लगा। यदि मा की यही इच्छा थी और चाचाजी को भी यही स्वीकार्य था, तो अंगद को उसमे क्या आपत्ति है?...

कोई नयी बात तो है नही, न ही इससे वानरो की मर्यादा और परपरा का कोई अतिक्रमण हुआ है। वानरो मे विवाह-विच्छेद भी होते है, पुर्नविवाह भी और बहुविवाह भी।...फिर अगद को अच्छा नही लगने की क्या बात है ?

अंगद अपने ही मन का विश्लेषण नही कर पाते . क्या है यह सब ? मा का वय ही क्या है ..चालीस वर्ष की विधवा महिला को क्या पुर्नविवाह नही करना चाहिए ? यदि उसे सौ वर्ष जीना है, तो शेष साठ वर्ष वह अकेली ही काट दे ?...पर मा अकेली है क्या ? एक पिता ही तो नही रहे।...पति के ही बिना तो स्त्री अकेली हो जाती है.. बाईस वर्ष का एक बेटा होने से स्त्री क्या अकेली नही हो जाती ?.. हा ! यदि वह चाहती तो अंगद के सहारे अपना जीवन काट सकती थी। स्त्रिया अपने बच्चो के पालन-पोषण मे जीवन नही काट देती क्या ? और जब मां, पिता के शव के साथ सती होने जा रही थी, तो अगद ने उन्हे यही कहकर तो रोका था कि स्त्रियां पति के लिए ही नही, पुत्र के लिए भी जीवित रहती है। मा को अंगद के लिए जीवित रहना चाहिए था...कल अगद का विवाह होगा... घर मे बहू आएगी, सतान होगी ..मां के लिए एक भरा-पूरा परिवार नही हो जाएगा क्या ?

पर वह परिवार तो अंगद का होगा। मा का उसमे क्या होगा ? यदि मां अंगद को देखकर अपना जीवन काटना चाहे, और अगद क्रमश: अपनी पत्नी और बच्चों का होता जाए, तो क्या मा फिर अकेली नही हो जाएंगी ? अगद क्या मा के लिए अच्छा साथी हो सकेगा ? कोई भी बेटा अपनी मा के लिए अच्छा साथी हो सकता है क्या ?...शायद नही ! अंगद को मा की बातो मे रुचि नही होगी, उनकी संगति अगद के लिए सरस नही होगी। वह तो क्रमश: अपनी पत्नी और बच्चों की ओर झुकता जाएगा... मनुष्य का जीवन तो नदी की धारा के समान है। वह आगे ही बढ़ता जाता है, पीछे लौटकर नही देखता...मां पिछली-पीढ़ी की हैं, अंगद अपनी पीढ़ी के साथ जीना चाहेगा, वह लौटकर मा के साथ नही चल सकता...

तो फिर मां को क्यों यह अधिकार नही है कि वे अपना मार्ग स्वयं चुनें...अपने साथी चुनें...अपनी जीवन-पद्धति चुनें...

क्यों नही है अधिकार ! मां को पूरा अधिकार है। अंगद मां के इस अधिकार का तिरस्कार नहीं कर सकता...उसका तर्क मां के अधिकार को स्वीकार करता है; पर उसका हृदय नही मानता...उसे अच्छा नहीं लगता...

ऐसी स्थितियों में मन कुछ आदर्शों और सिद्धांतो की ओर आकृष्ट होता है ..यदि मा ने अपना सुख न देखा होता, अपनी सुविधा न देखी होती, वह स्वयं को अपने पुत्र और उसके भावी परिवार मे ही कहीं खपा देती, अपने पौत्र-पौत्रियों को ही अपने बच्चों के समान गले से लगा लेती तो क्या मानव-स्वभाव के बहुत प्रतिकूल होता ? नही ! ऐसा तो नहीं है...यदि मां ऐसा कर पाती तो अंगद के मन में उनके प्रति कितना सम्मान होता, किष्किंधा की प्रजा, सारी वानर जाति, उन पर कितनी श्रद्धा करती... भौतिक सुख-सुविधाओं को छोड़, यदि मां इन सूक्ष्म उपलब्धियों की ओर बढतीं...पर शायद स्थूल का ग्रहण सरल है। स्थूल को त्याग सूक्ष्म की ओर बढ़ना कठिन है। मा ने भी सरल मार्ग चुना है...और सरल मार्ग भौतिक सफलता तो देता है, सूक्ष्म उपलब्धियां उससे नहीं होती। न मानसिक सुख मिलता है, न श्रद्धा, न सम्मान, न यश !

कुछ संबंध है, जिन्हें अंगद ने अपनी चेतना के पहले दिन से देखा और स्वीकार किया है...मा और पिता का संबंध। उन दोनों को उसने एक इकाई के रूप में देखा है। उन दोनों का संबध उसके लिए नैसर्गिक था... पिता कोई 'पुरुष' नहीं थे, जिनकी पत्नी के रूप में उसने अपनी मां को देखा हो...पर अब वह 'चाचा' की 'पत्नी' भी होंगी...माता-पिता के यौन-संबधों के विषय में उसके मन में कभी कोई बात नही उठी थी...किंतु अब अंगद बड़ा हो गया है, सोचता-समझता है, जानता है.. उसकी दृष्टि चाचा और मां के यौन-संबंधो पर भी पडेगी...और यह उसे अच्छा नही लगेगा... 'मा' के विषय में बच्चे के मन मे कभी ये बातें नही आती, नही आनी चाहिए ..किंतु अंगद की आंखो के सम्मुख 'मां' की गरिमा भग हो रही है...वह मां को कामिनी बनी चाचा के पास जाती देखेगा, उसकी शृंगार-चेष्टाओं को समझेगा...चाचा को देखते ही उसे स्मरण आ जाएगा कि इस पुरुष के उसकी मा के साथ कैसे संबंध हैं...कैसा अनुचित-सा लगता है

उसे, जैसे अवैध संबंध हों...

पर इन संबंधों की आवश्यकता ही क्यों पड़ी? कामासक्ति के कारण? किसको किसकी आवश्यकता थी?...मा को चाचा की? या चाचा को मा की?...अंगद को ये दोनों ही स्थितिया अच्छी नही लगती। अपने मन को कहा ले जाए अंगद?...

यह भी तो सभव है कि चाचा ने भाई के वध की आत्मग्लानि से बचने के लिए यह प्रस्ताव किया हो। इस सबधों के पश्चात मा के लिए वे पर-पुरुष नहीं रह गये, अतः चाचा को मा के सम्मुख लज्जित होने की कोई आवश्यकता नही रहेगी...पर यह भी तो हो सकता है कि मा को सम्राट की पत्नी बने रहने का मोह अब भी हो...क्यो यह सभव नही हो सकता... साम्राज्ञी के अपने विशिष्ट अधिकार हैं, अनेक सुविधाएं हैं। मा उन सुविधाओं की अभ्यस्त रही हैं—पति के देहांत के पश्चात वे अभाव खले होंगे। क्या मात्र उन सुविधाओं के लिए मा ने चाचा को अपने पति के रूप मे स्वीकार कर लिया है?

किंतु रुमा चाची ने तो संकट के उस काल मे भी पिता को अपने पति के रूप मे स्वीकार नही किया था। रुमा चाची के प्राण सकट मे थे—ऐश्वर्य तो दूर, जीवन की सामान्य सुविधाएं भी उन्हें उपलब्ध नही थी। इतनी यातना में थी चाची...बदिनी...फिर भी चाची ने कोई समझौता नही किया। दिखावे के लिए भी, झूठे मुह नाटक तक नही किया...रुमा चाची को साम्राज्ञी बन जाने का मोह क्यो नही हुआ?...किसमे अतर है—पिता ऐसे व्यक्ति नही थे, जिन्हे कोई पर-स्त्री स्वेच्छा से स्वीकार कर सके, अथवा रुमा चाची ऐसी स्त्री है, जो किसी पर-पुरुष को कभी स्वीकार नही कर सकती...चाचा मे ऐसे गुण है कि अन्य स्त्रिया भी उन्हें स्वीकार कर सकें, अथवा मा ही ऐसी स्त्री है, जो अन्य पुरुषों की ओर आकृष्ट हो जाती है...

...अगद को लगा, इस नये सबंध के विषय मे जैसे वे सोच रहे है, संभवतः रुमा चाची भी सोच रही हों...इस नये संबंध से वे भी अंगद के ही समान प्रभावित होंगी...क्या सोचती होंगी वे? इस संबंध को वे सहर्ष स्वीकार करेंगी? बहु-पत्नीत्व की प्रथा वानरों में बहुव्याप्त है। चाचा ने

कोई नयी बात नही की है। रुमा चाची को मां से विरोध भी क्या होगा...पिता ने चाची के साथ अत्याचार अवश्य किया था, किंतु चाचा के प्राण बचाने में मा के इस पुत्र का हाथ था। यदि अंगद ने समय से सूचना न भिजवायी होती, तो चाचा अवश्य ही बंदी होते। उनके बंदी होने का अर्थ था, उनका वध! चाचा का वध हो जाता तो चाची को पिता के चंगुल से कौन मुक्त कराता? सारा जीवन वे पिता के शोषण का पात्र बनी रहती और जब मुक्त होतीं तो जीवन का कोई अर्थ शेष नहीं रह जाता।...चाची अवश्य ही अंगद तथा अंगद की मा के प्रति कृतज्ञ होंगी। फिर चाचा मां के वैधव्य के निमित्त कारण थे...चाची को मा से सहानुभूति भी होगी...किंतु क्या उसका प्रतिकार वे इस रूप में करने को सहमत थी?...

चाची की प्रतिक्रिया क्या रही होगी? क्या मां के प्रति उनके मन में आक्रोश नही जागा होगा कि अब, जब चाची के अच्छे दिन आये थे, वे उनकी सौत बनकर आ गयी और साम्राज्ञी के समस्त अधिकार हस्तगत कर लिये? क्या चाचा के प्रति उनके मन में क्षोभ नहीं जागा होगा, कि अब, जब अपनी दुखिनी पत्नी को कुछ सुख देने का समय आया है—उन्होंने नया विवाह रचा लिया और उन्हें पुन: उपेक्षा के गर्त में धकेल दिया। ...पर अपने आक्रोश और क्षोभ का क्या करेंगी चाची? वे चाचा को किसी बात के लिए बाध्य नही कर सकती। चाचा पुरुष हैं, उनके पति हैं, और फिर सम्राट हैं। मां, जिनका पिता पर इतना प्रभाव था, वे उनसे अपनी एक बात न मनवा सकी तो चाची क्या कर सकेंगी—सरल, निरीह तथा अमहत्त्वाकांक्षिणी चाची! इस समाज में स्त्री कर ही क्या सकती है? एक ही मार्ग है—अपनी बाध्यता को समझकर, अपने अधिकारों की कटौती कर, अपने पति से एक नया समझौता कर, पुन: प्रार्थना करें कि उस पर दया कर उसके रहे-सहे अधिकार भी उससे न छीने जाएं...यही रुमा चाची करेंगी...और कोई विकल्प उनके पास नहीं है...

किंतु अंगद किस-किससे समझौता करेगा? मा और चाचा के एक हो जाने से वह अंगद जो पहले दोनों का था, अब किसी का भी नहीं रहा... जो केवल उसके थे, वे पिता तो अब रहे नहीं...चाचा को अब वह पिता कहा करेगा, किंतु वे उसके लिए सदा एक अन्य पुरुष रहेंगे, जिन्होंने उसके

पिता का ही वध नही किया, उससे उसकी मां भी छीन ली है, और सुग्रीव उसे अपना पुत्र मानते हुए भी यह कभी नही भूलेंगे कि वह एक अन्य पुरुष का पुत्र है. .जब-जब अगद के मन में ये भाव जागेंगे, उसके मन मे सुग्रीव के प्रति दुर्भावना जागेगी...कदाचित चाचा के मन मे भी अगद के लिए बार-बार सशय जागेगा। संभव है, वह सशय कभी विरोध मे भी बदल जाए...ओह ! यह क्या किया मा तुमने ? अपने इस नये विवाह से तुमने नये संबंध नही जोडे—पुराने संबधों को भी तोड दिया ..

पर क्या अगद सुग्रीव के विरोधी पक्ष मे खड़े होंगे ?...नही ! ये तो व्यक्तिगत सबंध हैं.. इनसे ऊपर सामाजिक और राजनीतिक सबध हैं .. उसके पिता के हत्यारे होने पर भी राम ने वानर जाति को पूर्ण सुरक्षा दी है...राम से सुग्रीव का भी सबध है और अगद का भी। अगद सुग्रीव के विरोधी कैसे हो सकते है...अभी तो राम के साथ मिलकर वानर-जाति के लिए एक नये समाज का निर्माण करना है...और स्वय आर्य राम का निजी काम...देवी सीता की खोज तथा समस्त मानवता का सामूहिक काम—रावण के साथ युद्ध...

प्रात. ही हनुमान ने सुग्रीव को सूचना दी, "सम्राट ! नगर में आपके द्वारा बनवाये गये श्रमिको के जो आवास वाली द्वारा तुड़वा दिये गये थे, उनके निर्माण के लिए अभी तक शासन की ओर से कुछ नही किया गया है। श्रमिक परिवार खुले आकाश के नीचे पडे है और उनमें उत्कट असंतोष है। इससे पहले कि कोई भयंकर बवडर उठ खडा हो, आपको कोई-न-कोई सार्थक प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा न हो कि वे सारे श्रमिक, जिनका आज तक आप मे विश्वास बना हुआ है, आपको जन-शत्रु मानकर आपके विरुद्ध हो जाएं।"

"मैं इस विषय में सोच रहा हूं।" सुग्रीव ने उन्हें टाल दिया, "दो-एक दिनों मे आदेश दूगा।"

हनुमान इस सरलता से टल जाएगे—सुग्रीव को ऐसी आशा नही थी; पर हनुमान के बिना कुछ कहे लौट जाने से सुग्रीव को लगा—कदाचित हनुमान उनके पास कोई आशा लेकर ही नही आए थे—वे तो सूचना भर

अपेक्षा की जाती है। बिना किसी पक्ष के भी न्याय होता है क्या ? विरोधी पक्षो का न्याय परस्पर-विरोधी नही होता क्या ? न्याय का आधार बदल देने से न्याय नही बदल जाता ?...जब से वे सम्राट हो गये है, वे यह मानकर नही चल सकते कि हनुमान, अंगद, नल, नील और तार या ऐसे ही अन्य लोग उनके साथी हैं, अत. वे उन्ही की बात मानेंगे। उन्हें उन लोगों की भी बात सुननी और माननी पड़ती है, उनके प्रति भी न्याय करना पड़ता है, जो वाली के समर्थक थे और निश्चित रूप से सुग्रीव तथा उनके साथियों के विरोधी थे, और कदाचित आज भी हैं। उनको हवा का ठंडा झोंका भी लगता था तो वे चीत्कार कर उठते हैं कि उनके साथ अत्याचार हो रहा है। कभी-कभी तो सुग्रीव को यहा तक लगता है कि ये लोग जान-बूझकर उग्र हो रहे हैं, ताकि सुग्रीव उनका कुछ भी अनिष्ट करने मे संकोच करें; और यदि उनके विरुद्ध कुछ हो ही जाए, तो वे अनुपातरहित कोलाहल कर सम्राट के स्वेच्छाचारी, अत्याचारी तथा अहकारी होने का ढिंढोरा पीट सकें...दूसरी ओर यह एक और वर्ग उत्पन्न हो गया था, जिसने आजकल स्वय ही अपने बलिदानों की गौरव-गाथा का बखान आरंभ कर रखा था। उस वर्ग को अब प्रत्येक प्रकार की उचित-अनुचित सुविधा चाहिए। उनको सुविधाएं देने के लिए अन्य लोगो की सुविधाओं का अपहरण अनिवार्य है। जिनकी सुविधाए छिनेंगी, वे अपना विरोध प्रकट करेंगे ही...और फिर क्या प्रमाण है कि इन लोगों की सचमुच क्षति हुई है और अब नित नयी सुविधाओ की माग, उनकी अवसरवादिता और लोलुपता नही है. .ये लोग वाली के उन समर्थको से कहां और कैसे भिन्न है, जो वाली के राज्य-काल मे प्रजा को लूटकर अपना घर भर रहे थे। आज ये लोग भी तो उसी प्रकार प्रजा का शोषण कर अपने लिए सुख-सुविधा और विलास के साधन एकत्रित कर लेना चाहते है। यदि सुग्रीव इन दोनों वर्गों के युद्ध मे किसी एक का पक्ष लेते अथवा उनके बीच में पड़कर कोई न्यायपूर्ण निर्णय करने का प्रयत्न करते हैं, तो वे एक भयकर दलदल मे फंसते जाते है—जहां से निकल आना उनके वश का नही है...दूसरी ओर उनका और उनके साथियों का निर्माण-कार्य, नये प्रकार की सामाजिक व्यवस्था, युग-युगों से पददलित लोगो के उत्थान का स्वप्न...कहां छूट

गया वह सब ? उन स्वप्नों के साथ-साथ सुग्रीव के अपने साथी भी जैसे उनसे छूटते जा रहे हैं...और सुग्रीव भली प्रकार जानते हैं कि यदि ये साथी उनसे छूट गये तो वे सर्वथा-अकेले पड़ जाएंगे और कोई भी कार्य नहीं कर पाएंगे ..

एक विचित्र द्वन्द्व में फस गये हैं सुग्रीव !...व्यक्ति यह जानता हो कि क्या करना उसका धर्म है, वह अपना धर्म निभाना भी चाहता हो और फिर भी कर्म का साहस न जुटा पाए, तो कैसी पीड़ा होती है उसे ! कई बार सुग्रीव के मन में आया कि वे भूल जाएं कि उन्होंने कुछ सपने पाले थे, वे नये समाज के निर्माण का कार्य भूल जाएं और केवल अपना शासन चलाएं—न्याय-अन्याय, औचित्य-अनौचित्य को भूलकर अपना स्वार्थ देखें, अपना सुख, अपनी सुविधा, अपना विलास...

पर उनका मन यह भी तो नहीं कर पाता...वे एक ओर नहीं हो पाते, वे द्वन्द्व में फसे हैं...और तब उन्हें लगता है कि बहुत दिनों तक वे सुख से वंचित रहे हैं, उन्हें सुख चाहिए, केवल सुख। वह सुख, जो व्यापारियों के उत्सवों में मिलता है, जो अपना समर्थन और अपनी प्रशंसा सुनने में मिलता है, अपनी मूर्तियों, चित्रों और अपनी जयजयकार में मिलता है, माधवी में मिलता है, या रुमा अथवा तारा के पास मिलता है...

४

राम नील को पर्वत से नीचे उतरते हुए देखते रहे, जैसे क्रमश: दूर होती जाती उस आकृति में वे अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयत्न कर रहे हों।

राम को अब चिंता होने लगी थी। प्रस्रवणगिरि पर रहते हुए, उन्हें कई मास हो गये थे। वर्षा ऋतु आरंभ हुई, अपने यौवन पर आयी और क्रमशः मंद होकर समाप्त हो गयी। अपनी गुफा के द्वार पर बैठे हुए राम

मेघाच्छन्न आकाश तथा मेघाच्छादित पर्वत-शिखरों को देखते रहे थे। पर्वत की ऋतु का कुछ पता नहीं चलता था—कब मेघ घिर आएंगे और कब वर्षा हो जायेगी। पर्वतों पर पानी ठहर नहीं पाता था, अतः स्थान-स्थान पर जलधाराएं दिखायी पड़ती थीं। घिरते मेघों, बरसते पानी, इठलाती धाराओं के बीच राम, कभी सीता की खोज के विषय में सोचते, कभी सैनिक अभियानों के विषय में। कभी अपने विषय में सोचते, कभी लक्ष्मण के विषय में। ..और सुग्रीव तक आते ही चिंतनधारा अवरुद्ध हो जाती थी।

सुग्रीव के सम्राट बन जाने के पश्चात किष्किंधा की स्थिति कुछ विचित्र-सी हो गयी थी। वाली के राज्य के विषय में राम ने जो कुछ सुना था, उसमें स्पष्ट था कि वाली क्या चाहता था और वह वानरों को किस मार्ग पर चलाना चाहता था...किंतु सुग्रीव ! सुग्रीव से जो बातें हुई थीं; और हनुमान, अंगद, नल तथा नील इत्यादि से भी बातें होती रहती थीं—उनसे यह तो स्पष्ट था कि सुग्रीव वाली की अपेक्षा, राजनीतिक दृष्टि से कहीं अधिक जागरूक थे। उनके मन में अपनी प्रजा के लिए प्रेम भी था। उनके मन में 'मानवता' की कल्पना 'समता' से भिन्न नहीं थी। दलितों, शोषितों तथा पीड़ितों के उत्थान के लिए उनके मन में अनेक स्वप्न थे। निर्माण के क्षेत्र में भी, वे अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी थे...किंतु किष्किंधा में हो क्या रहा है ? सुग्रीव के सम्राट बन जाने पर भी जन-सामान्य के जीवन में कहीं कोई प्रसन्नता प्रकट नहीं हुई थी। उनकी सुविधाओं के लिए, जिन निर्माण-योजनाओं की चर्चा थी—वह चर्चा ही रह गयी है, उस पर कहीं भी कार्य आरंभ नहीं हुआ...राम स्वयं कभी किष्किंधा के भीतर नहीं गये हैं...और सुग्रीव का भी बहुत दिनों से इधर आना नहीं हुआ है। अपने सम्राटत्व के आरंभिक काल में वे प्रतिदिन राम से मिलने आया करते थे। पर राम भी जानते थे कि यह व्यावहारिक नहीं था। यह आवश्यक भी नहीं था। राम वनवास कर रहे थे, अपनी अपहृता पत्नी के संधान के लिए यहां रुके हुए थे, वर्षा के कारण उनके मार्ग अवरुद्ध थे...किंतु सुग्रीव वानरों के सम्राट थे, उन पर पूरे राज्य का तथा समस्त वानर-यूथों का दायित्व था। राम कैसे यह अपेक्षा कर सकते थे कि सुग्रीव नित्य

उनसे मिलने आया करें...उससे तो कहीं आवश्यक था कि जन-कल्याण के लिए सुग्रीव ने जो संकल्प किये थे, वे उन्हें ही पूरा करते...

पर हनुमान, अंगद, नल, नील, तार तथा जाम्बवान यदा-कदा राम के पास आते ही रहते थे। लक्ष्मण भी उन लोगों से मिलते ही रहते थे—किष्किंधा नगरी के भीतर कम, किष्किंधा के बाहर इन पर्वतों और वनों में ही अधिक। उन लोगों ने मिलकर, राम के अनेक स्वप्न पूरे किये थे। अनेक आर्य आश्रमों से विभिन्न विषयों के विद्वान आचार्यों को किष्किंधा में आमंत्रित किया गया था। उन लोगों ने अपने-अपने क्षेत्रों में अनेक निर्माण-कार्य आरंभ कर दिये थे। वानरों की भूमि में धातुओं का संधान उनका पहला कार्य था। अंगद ने अपने उत्साह में खनिजों के लिए खुदाई आरंभ करवा दी थी...उसने आकर राम को असिगुल्म की भूमि के झगड़े के विषय में बताया था। राम को सुग्रीव की राजपरिषद् में हुए विवाद की सूचना भी मिली थी। सुग्रीव ने उस विषय में भी अभी अपना निर्णय नहीं दिया था; किंतु अंगद अपनी धुन का पक्का था। वह अपना काम करता जा रहा था...

शिक्षा की स्थिति भी किष्किंधा में काफी सुधर गयी थी, किंतु उसमें भी सुग्रीव का कोई योगदान नहीं था। उस विषय में हनुमान बहुत उत्साही था। सारी जन-पाठशालाएं उसी के उद्यम और उत्साह से चल रही थीं। लोगों में जागृति आ रही थी। हनुमान की विभिन्न व्यायामशालाओं से वानर-युवक आकर प्रस्रवणगिरि की तलहटी में स्थापित शिविरों में राम, लक्ष्मण तथा जन-सैनिकों से सैनिक-प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। अब तक इन प्रशिक्षण-शिविरों ने सैकड़ों युवकों को विभिन्न प्रकार के शस्त्रों के परिचालन का ज्ञान दिया था। किंतु उनके लिए शस्त्रों की व्यवस्था सुग्रीव अभी नहीं कर पाये थे।

नल ने बताया था कि सार्वजनिक लाभ के विभिन्न निर्माण-कार्यों के लिए धन उपलब्ध नहीं हो रहा है। उसके विषय में सम्राट अभी निर्णय नहीं कर पाये हैं। विभिन्न स्रोतों से यह बात भी राम तक पहुंची थी कि सुग्रीव विकट अनिर्णय की अवस्था में सर्वथा निष्क्रिय पड़े हैं। उनके सम्मुख

उठायी गयी प्रत्येक समस्या के उत्तर में वे सोचने का समय चाहते है और समय की वह अवधि समाप्त होने पर ही नही आ रही है। इस अनिर्णय के कारण किष्किधा की शासन-व्यवस्था में सुखद परिवर्तन की अपेक्षा करने वाले लोगो का सुग्रीव सबधी विश्वास डोल रहा था। उनके मन में निराशा तथा हताशा बढ़ रही थी और कोई बड़ी बात नही थी कि कुछ दिनो में वे सुग्रीव का प्रत्यक्ष विरोध करने लगें।...दूसरी ओर जनहितकारी योजनाओं के विरोधी सामंत और पार्षद क्रमश· निर्भीक तथा उद्दंड होते जा रहे थे। उनका मत था कि सुग्रीव में उनके विरुद्ध कोई कठोर कार्यवाही करने का साहस ही नही था। तो फिर भय किस बात का ! उनका शोपण-चक्र और अधिक क्रूर होता जा रहा था। और अनेक सूचनाओं से तो ऐसा अनुमान हो रहा था कि सुग्रीव क्रमश. अनेक देशी और विदेशी व्यापारियो के जाल में फंसते जा रहे हैं। .व्यापारियों ने अभी तक राज्य से कोई विशेप सुविधा नही मागी थी। अभी तक तो वे वानर सम्राट को अपना निर्बाध समर्थन ही दे रहे थे। उनके प्रयत्नों से किष्किधा की वीथियों और चतुष्पथो पर सुग्रीव की प्रस्तर मूर्तिया स्थापित हो गयी थी।.. किष्किधा मे इन दिनो चित्रकारो की सख्या भी बहुत बढ गयी लगती थी और उनके पास सस्ते दामों मे सुग्रीव के विभिन्न प्रकार के चित्र उपलब्ध हो रहे थे। उन चित्रकारो का आश्रयदाता और उनके चित्रों का ग्राहक वर्ग भी किष्किधा का व्यापारी समुदाय ही था...और परिणाम यह था कि किष्किधा के हाटो-पर्ण्यो में सुग्रीव के चित्रो के सिवाय शेप प्रत्येक वस्तु महंगी होती जा रही थी...

राम को सूचनाएं मिलती थी। उनके मन में विभिन्न प्रतिक्रियाएं उठती थीं...क्या कर रहे है सुग्रीव ? पता चलता कि वे माधवी-सेवन के रसिक हो गये है...उन्हें रुमा से बहुत प्रेम हो गया है, अत दिन का बहुत सारा समय अपनी पत्नी के पास व्यतीत करते है ..तारा से उन्होने विवाह कर लिया है, अतः कुछ समय वहा भी बीतता है...

और राम का मन अपने ही द्वन्द्वो से उलझता रहता।

राम ने जब सुग्रीव की रक्षा करने के लिए वाली का वध किया था और सुग्रीव को सम्राट बनने में सहायता की थी तो यह तो नही सोचा था

कि सुग्रीव एक अन्य प्रकार का वाली बन जाएगा। किष्किंधा का धनाढ्य वर्ग और अधिक सपन्न होता जाएगा और निर्धन वर्ग और अधिक धन-हीन। प्रजा पशुओं का-सा जीवन व्यतीत करने को बाध्य होती रहेगी और सम्राट माधवी पीकर अपनी पत्नियों के पास पड़ा रहेगा।

...किंतु क्या राम को हस्तक्षेप करने का अधिकार है? यदि वे सुग्रीव पर कोई दबाव डालें, तो क्या वह यह नही कहेगा कि यह वानरों का अपना आतरिक मामला है। वह प्रभुसत्ता-सपन्न सम्राट है और उसे अपनी स्वतत्र नीतिया चलाने का पूर्ण अधिकार है।...सुग्रीव को ही नहीं, अन्य वानर यूथपतियो को भी यह आपत्ति हो सकती है। आज जो राम वानरो के सहायक और मित्र माने जा रहे है, तनिक-सी भ्राति अथवा भ्रमित प्रचार से वे आक्राता, अन्य राज्यों की भूमि पर आधिपत्य जमाने के इच्छुक और मित्र के वेश मे बैठे हुए अमित्र के रूप में देखे जा सकते है। अभी तक वानरो के किसी भी वर्ग की ओर से सुग्रीव के अन्यायी, अत्याचारी अथवा अनाचारी होने की कोई शिकायत नही आयी है। यदि राम से सहायता की इच्छा ही नही की जाएगी तो वे किसकी सहायता करने जाएगे.. पर जब सुग्रीव ने उनसे सहायता मागी थी, तो मित्र के रूप में उनकी भी पूरी सहायता करने का वचन दिया था...मित्र की सहायता का यह कौन-सा रूप है कि सुग्रीव माधवी पीकर अपनी पत्नियो के महलो मे पडा रहे और राम इस प्रस्रवणगिरि की गुफाओं मे अपनी पत्नी के संधान की प्रतीक्षा मे निष्क्रिय बैठे हुए, अपनी असहायता को कोसते रहें। जाने कहा होगी सीता—जीवित होगी अथवा विपरीत परिस्थितियो मे आत्म-रक्षा करती हुई आततायियो के हाथो मारी गयी होंगी। जीवित भी होगी तो जाने किन परिस्थितियों मे होगी! अपमानित...पीड़ित...

सहसा राम का तेज जाग उठा। कब तब वे धैर्य धारण करें? कब तक वे सुग्रीव के कर्तव्य-बोध के जागने को प्रतीक्षा करें? कब तक वे ऐसे ही असहाय-निष्क्रिय बैठे रहे?...वर्षाकाल समाप्त हो चुका है। मार्ग प्राय सूख रहे हैं। आवागमन सरल और सहज होता जा रहा है। राम सुग्रीव के भरोसे यहां बैठे रहेगे, सीता किसी अज्ञात स्थान पर पीड़ा और अपमान के घूट पीती रहेगी, और रावण अपनी सेनाएं लेकर, जनस्थान पर आक्रमण

कर न केवल जनस्थान और पंचवटी, वरन दंडक वन के समस्त आश्रमों को नष्ट करने का प्रयत्न करेगा...राम का आवेश अपने ही विरुद्ध जागा। यह क्या किया राम ने? एक अपरिचित व्यक्ति के वचन पर इतना भरोसा कर लिया कि सारी वर्षा ऋतु अकर्मण्यता में, आकाश के मेघों, वर्षा की फुहारों और बहते हुए जल की धाराओ को देखने मे व्यतीत कर दी। कितना जानते है राम सुग्रीव को? किस संकट मे उन्होंने परख की है अपने इस मित्र की? संकट सुग्रीव का था---उसमें राम की परख हुई है। राम ने सुग्रीव की सहायता के लिए अपने प्राणों को दाव पर लगाया था। उसमें सुग्रीव की परख कैसे हुई! सुग्रीव भी यदि अपने भाई के ही समान कामुक, आलसी और विलासी निकला तो? यदि वह भी उन लोगों के समान निकला, जिन्हें अपने मुख से उच्चरित शब्दो की सार्थकता का बोध नही होता?...यदि सुग्रीव के लिए अपने मुख से उच्चरित शब्दों का कोई महत्त्व नही है, यदि वह मैत्री के नाम पर भ्रम पालने का अभ्यस्त है, यदि प्रजा के चीत्कार की ध्वनि उसके कानो तक नही जाती, यदि अत्याचारी यूथपति उसके भी वैसे ही मित्र हैं जैसे कि वे वाली के मित्र थे, तो राम को हस्तक्षेप करना ही पड़ेगा, सुग्रीव को उसका कर्तव्य स्मरण कराना ही होगा...

और अब नील उन्हे बताकर गया था कि सारी किष्किंधा नगरी मे भयंकर तनाव बना हुआ था। किसी भी समय दंगा होने की पूरी संभावना थी। वाली जब मायावी से युद्ध करने के लिए गया था, तब सुग्रीव ने अपने शासनकाल में किष्किंधा के श्रमिको के लिए अनेक आवास बनवाए थे। उस भूमि को लेकर नगर के अनेक प्रभावशाली और धनाढ्य लोगो ने कोलाहल मचाया था। वे लोग उस भूमि पर अपना आधिपत्य भी मानते थे और नगर के मुख्य और महत्त्वपूर्ण स्थानों पर श्रमिकों के लिए आवासगृह बनाये जाने की योजना को भी वे पचा नही पा रहे थे। किंतु सुग्रीव की दृढ़ता के सम्मुख उनकी एक नही चली थी।...पर वाली ने लौटते ही उनको तुड़वाकर यह भूमि अपने प्रिय यूथपतियों के हवाले कर दी थी...तब से आज तक उन श्रमिको को आवास के लिए न अपनी पुरानी भूमि मिली थी, न उसकी स्थानापन्न कोई अन्य भूमि।

नील ने बताया था कि सब ओर से हताश होकर वे श्रमिक पुनः अपनी उसी पुरानी भूमि पर पहुंच गये है और वे अब दृढ़-प्रतिज्ञ हैं कि यदि राज्य उनकी सहायता नही करता तो, वे स्वयं इसी भूमि पर अपने आवास बनाएंगे।...दूसरी ओर जिन यूथपतियों को वह भूमि मिली थी, वे अपने दडधरो के बल पर उन श्रमिकों की हत्याओं की तैयारी कर रहे है...यह भी सुनने मे आया था कि अनेक यूथपतियों ने आगामी झगडे के अवसर के लिए, सम्राट की अनुमति लिये बिना, गोपनीय रूप से अपनी यूथ सेनाओं की विभिन्न टुकडियों को, सामान्य नागरिकों के वेश मे नगर के भीतर और नगर की प्राचीर के निकट ही ठहरा रखा था। यदि श्रमिकों ने इस भूमि पर बलात् अधिकार जमाने का प्रयत्न किया तो यूथ सेनाओं की ये टुकडिया, यूथपतियों के दंडधरों के साथ मिलकर, श्रमिकों का संपूर्ण नाश कर देंगी...श्रमिको के पक्ष से भी पूरी तैयारी थी। उनमें से अधिकाश, राम तथा उनके जन-सैनिकों द्वारा स्थापित विभिन्न प्रशिक्षण शिविरो में सैनिक प्रशिक्षण ले चुके थे और युद्ध-विद्या तथा शस्त्र-परिचालन से पूर्णतः अभिज्ञ थे। यूथ सेनाओं का आतंक उनके मनोबल को क्षीण करने में तनिक भी प्रभावकारी सिद्ध नहीं हुआ था...श्रमिक संगठनो को पूर्ण विश्वास था कि यदि सचमुच युद्ध की स्थिति आयी तो हनुमान के समस्त जन-संगठन तथा अखाड़े उनके पक्ष से लड़ेंगे...

नील बता गया था कि इस झगडे की आशंका से हनुमान और अगद भी बहुत चिंतित थे...किंतु वे कुछ कर नहीं पा रहे थे। इस समय यह अनिवार्य था कि सम्राट सुग्रीव सचेष्ट हों और उस भूमि पर श्रमिकों का एकाधिकार घोषित कर दें और यूथपतियों को प्रताड़ित करने के साथ-साथ उन्हें यूथ सेनाओं को उनके मूल स्थानो पर वापस भेज देने की आज्ञा दें।...यदि सम्राट तुरंत सचेष्ट नही होते तो यह संघर्ष अवश्यम्भावी था; और इस सघर्ष में कितनी जन-क्षति होगी, यह कहना कठिन था।

राम स्पष्ट देख रहे थे कि यदि सुग्रीव ऐसे ही निश्चेष्ट रहे और किष्किंधा की स्थिति नही सुधरी तो किष्किंधा का यह प्रथम भीतरी संघर्ष अपने-आप में ही समाप्त नहीं हो जाएगा। इसके पश्चात यूथ सेनाओ के बल के कारण, यूथपतियों तथा उनके सहायक धनाढ्य वर्ग का साहस और

बढेगा। वे अन्य स्थानों पर भी अपना नियंत्रण दृढ़ करना चाहेंगे। श्रमिकों तथा जन-संगठनों तथा अन्य वर्गों को बाध्य होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा...किष्किंधा के पथो-वीथियो मे अनवरत युद्ध होंगे ..वानर-राज्य अपने आतरिक संघर्षों मे उलझ जाएगा। एक ओर साधनहीन निहत्थे लोगों की असंख्य निरीह हत्याएं होंगी और दूसरी ओर रावण वानरो की ओर से निश्शक होकर अपने क्रूर हाथ-पैर और अधिक पसारने लगेगा...

और सीता ?

राम के सम्मुख अनेक प्रश्नचिह्न थे। सुग्रीव की जडता के कारण, राम इस प्रकार निश्चेष्ट होकर बैठे रहें?...वानर जाति को परस्पर लडकर मरने दें? अथवा सारा वानर राज्य इन राक्षस-मित्र यूथपतियो के पेट मे समा जाने दें? सीता यदि जीवित हैं, तो उन्हें सदा के लिए रावण की बंदिनी अथवा दासी बने रहने दें? राक्षसत्व के अंधकार द्वारा संसार के समस्त ज्योतिर्कणों को निगले जाते हुए, अवाक् खडे देखते रहें?

यदि यही होना है तो धिक्कार है राम की वीरता को...उनके शस्त्रों को, उनके सकल्पों को, उनकी संगठन-शक्ति को !

तो क्या करें राम ?...

हनुमान को शिखर की चढ़ाई चढते देखकर, राम का चिंतन-प्रवाह थम गया। हनुमान आ रहा है—कोई आवश्यक काम होगा। एक यह ऐसा व्यक्ति है, जो सदा आशावान और सक्रिय है। ऐसे-ऐसे साथी हैं सुग्रीव के पास और फिर भी सुग्रीव अनिर्णय, जडता और भ्रांतियों की दलदल मे धंसता जा रहा है।...और उसी की जड़ता के कारण उसके सारे साथी निस्तेज, प्रभावशून्य होते जा रहे हैं। उनकी ऊर्जा उनके अपने ही भीतर ऐंठ-ऐंठकर दम तोड़ती जा रही है...क्या हनुमान, क्या अंगद, क्या नल-नील और क्या तार और जाम्बवान ..

पर उन सबके साथ-ही-साथ राम की अपनी ऊर्जा भी तो उनके भीतर ऐंठ ही रही है। पंचवटी मे क्या राम इस प्रकार पराङ्मुखी थे? क्या उन्हे सोचना पड़ता था कि कोई सुग्रीव सक्रिय तथा सचेष्ट हो और राम

का कार्य करे.. वह सुग्रीव जो किष्किधापुरी के भीतर अपने प्रासाद के विश्राम-कक्ष मे माधवी के पात्र में बंदी है। कितने बंधन हैं सुग्रीव के चारो ओर ! राम किस-किस वधन से उन्हे मुक्त करेंगे...कितना स्वतंत्र और स्वावलत्री जीवन था पचवटी मे। राम के समस्त साथी सदा उन्हें लभ्य थे और उन लोगों के लिए राम सदा उनकी पहुच के भीतर थे।. .यहा तो राम को इस पर्वत शिखर पर अपने वचनो का बंदी बनाकर एक सम्राट अपने प्रासाद और प्रमाद में खो गया है ..कैसे विवश हैं राम ! क्यों फंसे वे राज्यो और सम्राटो के षड्यत्र मे...उन्हे क्या सामान्य जन की शक्ति पर विश्वास नही था ?..

हनुमान ने निकट आकर उन्हे प्रणाम किया।

"कैसे हो, हनुमान !" राम ने उन्हे बैठने का सकेत किया, "मैं आज दिन भर तुम्हारे सम्राट के विषय मे सोचता रहा हू। बीच-बीच में तुम्हारे विषय मे भी कई बातें मन मे आयी।"

हनुमान ने हाथ जोड़े और सकुचित-से होकर बैठ गये, "आर्य ! कोई विशेष प्रयोजन था ?"

"मैं सुग्रीव के प्रमाद से दु.खी हो रहा हू, हनुमान !"

हनुमान ने लज्जित-सी दृष्टि से राम की ओर देखा, "सम्राट की मन-स्थिति ठीक नही है।" उनका स्वर अत्यत मृदु था, "किंतु उसके कारण आपका कोई कार्य नही रुकेगा, भद्र राम !" स्वर को कुछ अधिक आश्वस्त बनाते हुए वे बोले, "आप मुझे आदेश दें।"

राम हस पड़े, "तुम्हारे जैसा साथी भी मैंने नही देखा, हनुमान ! सब और सुग्रीव की जड़ता और प्रमाद की निंदा हो रही है; किंतु तुम अपने मुख से कभी स्वीकार नही करोगे।"

"आर्य ! आप जानते हैं," हनुमान अत्यत शालीन स्वर में बोले, "वे हमारे साथी हैं, मार्ग-निर्देशक हैं, सम्राट है। तनिक-सा प्रमाद हो — हम उनका साथ तो नही छोड़ सकते। ... मन भ्रातृवध की पीड़ित है; अकस्मात ही अनेक उ... हुई हैं; दीर्घकाल तक कष्टकर ... उनके सम्मुख उनके घबराए हुए अस्थिर मन के ... त करने के ... आ उप

हैं। ऐसे में यदि सम्राट अस्थायी रूप से अपना संतुलन खो बैठे हैं, तो हमें उनके प्रति इतना कठोर नहीं हो जाना चाहिए, आर्य !"

"ये सारी बातें मैंने भी सोची हैं हनुमान !" राम का स्वर कोमल था, "सुग्रीव की इस मानसिक अवस्था के कारण यदि किष्किंधा में इतनी जटिलताएं न उठ खड़ी होतीं तो कदाचित हम सुग्रीव का मानसिक संतुलन लौटने के लिए अधिक समय तक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर सकते थे।" राम ने रुककर हनुमान को देखा, "किंतु क्या तुम्हारा ध्यान इस ओर नहीं गया कि एक-एक क्षण हमारे लिए कितना मूल्यवान है। सुग्रीव का विलास, उनकी व्यक्तिगत बात न रहकर, आज हमारे सामूहिक कल्याण का घातक शत्रु हो गया है। एक-एक दिन के बीतने पर स्थितियां जटिल से जटिलतर होती जा रही हैं। यदि सुग्रीव सचेष्ट नहीं हुए तो उनकी निष्क्रियता ही अपने-आप में किष्किंधा ही नहीं, संपूर्ण वानर-राज्य के लिए घातक वज्र बनकर गिरेगी। किष्किंधा के पथों-वीथियों में वानर ही वानरों का रक्त बहाएंगे और एक नये समाज के निर्माण के तुम्हारे सारे स्वप्न चूर-चूर हो जाएंगे, हनुमान !" राम के कंठ में कुछ फंसता-सा लगा, "जब वानर आपस में जूझ-जूझकर मर रहे होंगे, तो मेरी वैदेही की खोज करने के लिए कौन जाएगा...कभी-कभी तो मेरे मन में आता है, हनुमान ! कि मैं वापस पंचवटी लौट जाऊं और वहीं से अपने साथियों की टोलियां भेज-भेजकर सीता का संधान करूं।"

हनुमान का संकोच पूर्णतः विलीन नहीं हुआ था, किंतु फिर भी उनका कंठ अपेक्षाकृत कुछ अधिक मुक्त हो गया, "आर्य ! मैं आपकी बात से असहमत तो नहीं हूं। स्थिति वस्तुतः अत्यंत शोचनीय है। किंतु आप देवी वैदेही की खोज को लेकर इतने निराश न हों। सम्राट ने जिन दक्ष खोजियों को विभिन्न वानर-यूथों से बुलवाया था, प्रायः वे सब अब किष्किंधा में उपस्थित हैं। एक बार उन्हें सम्राट का आदेश मिल जाए तो देखिये ये वानर, रावण के राज्य के किस कोने में नहीं जा पहुंचेंगे...मैं तो स्वयं देवी की खोज में जाने के लिए अत्यंत व्यग्र हूं, राम ! किंतु सम्राट की मनःस्थिति तथा यहां की परिस्थितियों को देखते हुए उनकी आज्ञा के अभाव में किष्किंधा को छोड़ना मुझे उचित नहीं लगता..."

"ठीक कहते हो, हनुमान !" राम एक तिक्त मुसकान अपने अधरों पर ले आये, "विलंब तो केवल तुम्हारे सम्राट की आज्ञा का ही है। पर यदि वे आज्ञा दें तो..."

"आर्य ! मैं प्रयत्न करूंगा कि सम्राट इस विषय में शीघ्र आज्ञा जारी करें !" हनुमान उठ खड़े हुए, "अनुमति दें। मैं यहां से सीधा सम्राट के पास ही जाऊंगा।"

राम सहज होकर हंसे, "तुम तो उठ भागे, हनुमान ! अभी तक तुमने अपने आने का प्रयोजन तो कहा ही नहीं।"

"कुछ विशेष नहीं है, भद्र !" हनुमान खड़े-खड़े ही बोले, "किष्किंधा तथा सम्राट की मनःस्थिति के विषय में सोचते-सोचते व्यग्र होकर आपके पास चला आया था कि आपसे चर्चा कर यदि कोई समाधान मिल सके।"

"पर वह चर्चा तो हुई ही नहीं।" राम बोले, "तुम तो उसके पूर्व ही चल दिये, फिर समाधान कहां से मिलेगा ?"

"मिल गया, राम ! समाधान मिल गया।"

"क्या ?"

"सम्राट की मनःस्थिति के स्वतः संतुलित हो जाने की प्रतीक्षा करना भूल है।" हनुमान बोले, "उनके शुभेच्छुओं का कर्तव्य है कि वे उन्हें परिस्थितियों के प्रति सजग करें। वही करने का प्रयत्न करूंगा।"

हनुमान ने हाथ जोड़ प्रणाम किया और जाने के लिए मुड़ गये।

हनुमान के जाने के पश्चात भी राम उन्हीं के विषय में सोचते रहे। सुग्रीव की समस्या कहीं पीछे छूट गयी थी। सुग्रीव तो फिर अपने निजी कारणों से बाध्य थे, किंतु हनुमान कैसे हो रहे हैं। वे जानते हैं कि क्या ठीक है, क्या गलत। वे जानते हैं, दुर्बलता कहां है; कहीं सुग्रीव की अकर्मण्यता में हनुमान भी बंध गये हैं और अन्य लोग भी।...वर्षा रुक गयी है, जल बह गया है और कीचड़ सूख गया है...हनुमान बता गये हैं कि खोजियों के दल भी किष्किंधा में आ गये हैं; पर सब कुछ रुका पड़ा है—सुग्रीव के कारण। सुग्रीव को खोज के लिए आदेश देने तक का अवकाश नहीं है...अवकाश नहीं है, या होश नहीं है ?...

राम को लगा, उनके मन में सुग्रीव के विरुद्ध आक्रोश संचित हो रहा है—कैसा नीच और स्वार्थी है यह व्यक्ति ! जब स्वयं कठिनाई में था तो कैसे घिघियाता था ! मैत्री के पक्ष मे कैसी-कैसी बातें कही थी उसने । तब उसकी पत्नी रुमा वाली के वश में थी और सुग्रीव के प्राणों को वाली की ओर से विकट सकट था ..किंतु वाली के वध के पश्चात रुमा ही नही, किष्किंधा का राज्य और तारा के रूप मे उसे एक अतिरिक्त पत्नी भी मिल गयी थी । और तब यह व्यक्ति भूल गया कि राम की पत्नी सीता भी रावण के वश में है, राम के प्राणों को भी राक्षसों की ओर से विकट सकट है ..

राम को लगा, उनका आक्रोश इसी प्रकार स्फीत होता रहा, तो सुग्रीव से उनकी मैत्री अधिक समय तक नही टिक पाएगी। पर ऐसा कार्य अकस्मात ही बिना सोचे-समझे, आक्रोश के ज्वार में नहीं होना चाहिए। ऐसी मैत्री का त्याग तो ठडे मस्तिष्क से सोच-समझकर, भली प्रकार, विचार-विवेचन करने के पश्चात होना चाहिए. .कही ऐसा न हो कि उनका व्यक्तिगत स्वार्थ इतना प्रबल हो उठे कि वे अपने मित्र की समस्या को समझ ही न पाए। वह वस्तुतः अपने मानसिक ऊहापोह, अपनी भौतिक परिस्थितियो, विभिन्न शक्तियो के सतुलन की समस्या मे उलझा हुआ हो और राम अपने आग्रह से उसे और अधिक पीड़ित कर दें...राम अपने मित्र की उलझनों में वृद्धि नही करना चाहते...वे नहीं चाहते कि वानरो के राज्य में अभी-अभी सत्ता में आयी जन-समर्थक राज-शक्ति किसी भी कारण से दुर्बल हो जाए...

किंतु कही राम सचमुच ही तो भ्रमजाल मे नही फस गए है। यदि वस्तुतः ही सुग्रीव इतना प्रमादी हो कि वह अपने विलास मे सब कुछ भुला बैठा हो, तो राम की यह शिथिलता और सीता की खोज मे होने वाला यह विलब अत्यत हानिकारक हो सकता है...कौन-सी समस्या बड़ी है—किष्किंधा के जन-जीवन की प्रशासनिक समस्याए अथवा सीता की खोज ?...

राम का मन कोई निर्णय नही कर पाता...

लक्ष्मण के आने का आभास, प्रतिदिन के समान, आज भी उनके साथियों मे होते हुए वार्तालाप की ध्वनियों से ही हुआ। किंतु आज उनका वार्तालाप चिंताविहीन, उन्मुक्त तथा हास-विलास का-सा भाव लिये हुए नही था। स्वर अतिरिक्त रूप से गहरे और गभीर थे, जैसे सामान्य वार्तालाप न हो, कोई गंभीर चर्चा चल रही हो।

लक्ष्मण के साथ अनिन्द्य, भूलर तथा कुछ अन्य लोग थे। मधुप उनके साथ नही था। कदाचित आज वह किसी और दिशा मे, अन्य लोगो के साथ अथवा अकेला गया हुआ था।

आश्रम में पहुचते ही लक्ष्मण ने शिला पर बैठते हुए, यह नही पूछा कि आज भोजन का दायित्व किस टुकडी का है; न ही वे इस प्रकार आए, जैसे दिन भर का कार्य समाप्त कर, सध्या समय थके हुए अपने डेरे पर लौटे हों। वे लोग तो इस प्रकार राम की ओर बढे, जैसे किसी कार्यवश उनसे ही मिलने आये हों।

"क्या बात है, सौमित्र ?" राम ने विस्मय से पूछा।

"बात बडी गभीर है, भैया !" लक्ष्मण और उनके साथी राम के सम्मुख अर्द्धवृत्ताकार रेखा मे बैठ गये।

"सुग्रीव की राजपरिषद का संघर्ष अब वानरों की राजकीय सेना में पहुंच गया है।"

"स्पष्ट कहो।" राम कुछ चिंतित हुए।

"सुग्रीव के अनेक यूथपतियों ने, जिनमें असिगुल्म, धूम्र और दुर्मुख प्रमुख हैं, राजकीय सेना में अपना प्रभाव बढा लिया है। उनकी अपनी यूथ सेनाएं तो किष्किंधा के निकट आ ही गयी हैं, राजकीय सेना का भी एक बड़ा भाग उनके कहने में आ गया है।"

राम कुछ बोले नही, चुपचाप लक्ष्मण की ओर देखते रहे।

"उन लोगों ने सेना मे प्रचार किया है कि हनुमान, अंगद, नल, नील, तार और जाम्बवान इत्यादि लोग राम के प्रभाव मे है और अपने निजी स्वार्थों की सिद्धि के लिए सम्राट सुग्रीव पर इतना दबाव डाल रहे हैं कि सम्राट विक्षिप्त हो गये हैं और कोई कार्य नही कर पा रहे। राम को उनके पिता ने अपने राज्य से निष्कासित कर दिया है, इसलिए राम

वानरों के इस राज्य पर आधिपत्य जमाने के लिए यहां शिविर लगाये बैठे है। वाली का वध तो उन्होंने कर ही दिया है, अब वे किसी दिन सुग्रीव की भी हत्या कर देंगे; और अंगद तथा हनुमान को अपने मंत्री बनाकर वे किष्किंधा के सम्राट बन जाएंगे।"

"और सुग्रीव की सेना उसको सच मान बैठी है?"

"सारी सेना तो नहीं, किंतु एक काफी बड़ा भाग इस प्रकार की बातों के प्रभाव में आ गया है। यह भाग न केवल हमें, हमारी जन-सेना तथा हनुमान इत्यादि को अपना शत्रु मान बैठा है, वरन हमारे सैनिक शिविरों में प्रशिक्षित, राजकीय सेना की टुकड़ियों को भी अपना शत्रु समझता है।"

"सैनिक टुकड़ियों में इस प्रकार का विरोध और द्वेष स्पृहणीय नहीं है।" राम जैसे अपने आप से बोले।

"इसमें जो भयंकर बात है, वह तो मैंने अभी बताई ही नहीं।"

"क्या?" राम सहसा अपने चिंतन से उबरे।

"सेना के इन दोनों दलों में युद्ध की संभावना..."

"एक ही सेना के दो दलों में युद्ध की संभावना!" राम चकित थे, "पर क्यों? उससे किसको लाभ होगा?"

"अग्निगुल्म और उसके साथियों का विचार है कि हनुमान तथा अंगद की अनुचर सैनिक टुकड़ियों पर आक्रमण कर उनके नेताओं का वध कर सैनिकों को अपने साथ मिला लेने से, किष्किंधा में हमारा समर्थक कोई नहीं रहेगा। तब वे सुग्रीव को भी अपने प्रभाव में कर लेंगे। परिणामतः किष्किंधा में आरंभ की गयी अनेक जनहितकारी योजनाएं तो अपनी मौत आप ही मर जाएगी, मधुप तथा उनके साथियों द्वारा खोजी गयी सारी खनिज संपदा भी उनके अधिकार में चली जाएगी। किष्किंधा के उद्योग-धंधों पर उनका स्वामित्व स्थापित हो जाएगा और भीतरी तथा बाहरी व्यापार तो अभी भी उन्हीं के हाथों में है।"

"अपने विरोधी सैनिकों पर आक्रमण की यह योजना तथ्य है, या यूं ही किसी के मन की निराधार कल्पना?" राम अतिरिक्त रूप से गंभीर थे, "यदि यह सत्य है तो हमारे ही सम्मुख नहीं, संपूर्ण वानर जाति के

जाएगी।" राम बोले, "किंतु क्या आक्रमण का क्षण आ पहुचा है?"

"नही!" लक्ष्मण बोले, "अभी दो-तीन दिन शांति रहेगी, फिर वे आक्रमण करेंगे। इतना समय हमारे पास भी है कि हम यह निश्चय कर सकें कि हम प्रतिरक्षात्मक युद्ध लड़ेंगे अथवा आक्रामक।"

सहसा राम मुसकराए, "एक बात मेरी मान लो।"

"क्या?"

"चुनाव प्रतिरक्षात्मक अथवा आक्रामक युद्ध मे से न होकर, अयुद्ध तथा आक्रामक युद्ध में से होना चाहिए।"

"अयुद्ध की स्थिति अब अधिक दिन नही रह सकती भद्र राम!" अनिन्द्य बोला, "युद्ध अनिवार्य है।"

"युद्ध अनिवार्य है तो वह आक्रामक युद्ध ही हो।" राम बोले, "प्रातः तक का समय मुझे दो, और इस चिंतन को यही छोड़ दो। रात भर के लिए इन विचारो से तुम्हारी मुक्ति।"

लक्ष्मण मुसकराए, "भैया के मन में कुछ है, पर बताएंगे अब प्रातः ही।"

"यही समझ लो।"

सब लोग मुसकरा पड़े।

रात के भोजन के पश्चात् राम अकेले ही एक ओर चल पड़े।

दिन भर उन्होंने अपने इस आश्रम को नहीं छोडा था—कुछ शस्त्रागार की सुरक्षा के विचार से, कुछ अभ्यागतों से भेंट-वार्ता के विचार से; और कुछ आश्रम के अन्य कार्यक्रमो के कारण।...किंतु, इस समय, अब और किसी के आने की संभावना नही थी और शस्त्रागार की रक्षा के लिए लक्ष्मण तथा जन-सैनिको की पूरी टुकड़ी थी।

...प्रातः हनुमान भी कदाचित यही कहने आए थे—सुग्रीव अपनी उलझनों के बंदी होकर जड़ हो गये थे और इस जड़ता को भूलने का एकमात्र उपाय उन्होंने विलास मे खोज निकाला था। सम्राट की इस जड़ता के कारण उनके सहयोगी अनुपयोगी हो गये थे, और उनके शत्रु बल पकड़ते जा रहे थे। उस समय राम के मन में आया था कि इस प्रक्रिया को यदि

जाएगी।" राम बोले, "किंतु क्या आक्रमण का क्षण आ पहुचा है ?"

"नहीं !" लक्ष्मण बोले, "अभी दो-तीन दिन शांति रहेगी, फिर वे आक्रमण करेंगे। इतना समय हमारे पास भी है कि हम यह निश्चय कर सकें कि हम प्रतिरक्षात्मक युद्ध लड़ेंगे अथवा आक्रामक।"

सहसा राम मुसकराए, "एक बात मेरी मान लो।"

"क्या ?"

"चुनाव प्रतिरक्षात्मक अथवा आक्रामक युद्ध में से न होकर, अयुद्ध तथा आक्रामक युद्ध में से होना चाहिए।"

"अयुद्ध की स्थिति अब अधिक दिन नही रह सकती भद्र राम !" अनिन्द्य बोला, "युद्ध अनिवार्य है।"

"युद्ध अनिवार्य है तो वह आक्रामक युद्ध ही हो।" राम बोले, "प्रातः तक का समय मुझे दो, और इस चिंतन को यही छोड़ दो। रात भर के लिए इन विचारो से तुम्हारी मुक्ति।"

लक्ष्मण मुसकराए, "भैया के मन में कुछ है, पर बताएंगे अब प्रातः ही।"

"यही समझ लो।"

सब लोग मुसकरा पड़े।

रात के भोजन के पश्चात् राम अकेले ही एक ओर चल पड़े।

दिन भर उन्होंने अपने इस आश्रम को नही छोड़ा था—कुछ शस्त्रागार की सुरक्षा के विचार से, कुछ अभ्यागतो से भेंट-वार्ता के विचार से; और कुछ आश्रम के अन्य कार्यक्रमों के कारण।...किंतु, इस समय, अब और किसी के आने की संभावना नही थी और शस्त्रागार की रक्षा के लिए लक्ष्मण तथा जन-सैनिकों की पूरी टुकड़ी थी।

...प्रातः हनुमान भी कदाचित यही कहने आए थे—सुग्रीव अपनी उलझनों के बंदी होकर जड़ हो गये थे और इस जड़ता को भूलने का एकमात्र उपाय उन्होंने विलास में खोज निकाला था। सम्राट की इस जड़ता के कारण उनके सहयोगी अनुपयोगी हो गये थे, और उनके शत्रु बल पकड़ते जा रहे थे। उस समय राम के मन में आया था कि इस प्रक्रिया को यदि

जाएगी।" राम बोले, "किंतु क्या आक्रमण का क्षण आ पहुंचा है?"

"नही!" लक्ष्मण बोले, "अभी दो-तीन दिन शांति रहेगी, फिर वे आक्रमण करेंगे। इतना समय हमारे पास भी है कि हम यह निश्चय कर सकें कि हम प्रतिरक्षात्मक युद्ध लड़ेंगे अथवा आक्रामक।"

सहसा राम मुसकराए, "एक बात मेरी मान लो।"

"क्या?"

"चुनाव प्रतिरक्षात्मक अथवा आक्रामक युद्ध मे से न होकर, अयुद्ध तथा आक्रामक युद्ध में से होना चाहिए।"

"अयुद्ध की स्थिति अब अधिक दिन नही रह सकती भद्र राम!" अनिन्द्य बोला, "युद्ध अनिवार्य है।"

"युद्ध अनिवार्य है तो वह आक्रामक युद्ध ही हो।" राम बोले, "प्रातः तक का समय मुझे दो, और इस चिंतन को यही छोड़ दो। रात भर के लिए इन विचारों से तुम्हारी मुक्ति।"

लक्ष्मण मुसकराए, "भैया के मन मे कुछ है, पर बताएंगे अब प्रातः ही।"

"यही समझ लो।"

सब लोग मुसकरा पड़े।

रात के भोजन के पश्चात् राम अकेले ही एक ओर चल पडे।

दिन भर उन्होंने अपने इस आश्रम को नही छोडा था—कुछ शस्त्रागार की सुरक्षा के विचार से, कुछ अभ्यागतो से भेंट-वार्ता के विचार से, और कुछ आश्रम के अन्य कार्यक्रमो के कारण।...किंतु, इस समय, अब और किसी के आने की संभावना नही थी और शस्त्रागार की रक्षा के लिए लक्ष्मण तथा जन-सैनिकों की पूरी टुकड़ी थी।

...प्रातः हनुमान भी कदाचित यही कहने आए थे—सुग्रीव अपनी उलझनों के वंदी होकर जड हो गये थे और इस जडता को भूलने का एकमात्र उपाय उन्होंने विलास में खोज निकाला था। सम्राट की इस जड़ता के कारण उनके सहयोगी अनुपयोगी हो गये थे, और उनके शत्रु बल पकड़ते जा रहे थे। उस समय राम के मन में आया था कि इस प्रक्रिया को यदि

यही नहीं रोका गया तो अंततः जन-समर्थक शक्तियों के हाथों में आयी यह नवागत सत्ता उनके हाथों से निकल जाएगी। किंतु इस प्रक्रिया को रोकने का उपाय ?...

पहले तो उन्होंने यही सोचा था कि वे अपनी व्यक्तिगत उतावली में ऐसा कोई काम न कर बैठें, जिससे उनके मित्र सुग्रीव के लिए कोई विघ्न-बाधा उपस्थित हो जाए, अथवा उनकी चिंताओं में किसी प्रकार की वृद्धि हो। उनके मन में द्वन्द्व इस बात को लेकर था कि पहले सीता की खोज हो अथवा वानरों की अपनी प्रशासनिक समस्याएं सुलझाई जाए ?...किंतु अब तो स्थिति बदलती जा रही थी। यदि राम निष्क्रिय बैठे प्रतीक्षा करते रहे, और सुग्रीव अपनी जड़ता तथा प्रमादवश अपने विलास में डूबा रहा तो सीता का संधान न केवल टलता जाएगा, वरन शनैः-शनैः कठिन होता जाएगा और अंततः कदाचित असंभव ही हो जाएगा. .व्यक्तिगत रूप से वंचित तथा अपमानित होकर क्रमशः राम का समस्त तेज भी नष्ट हो जाएगा; अन्याय के विरुद्ध अभी तक किया गया संघर्ष व्यतीत होते हुए समय के साथ क्षीण होकर, अंततः शून्य में परिणत हो जाएगा . जिन वंचितों, शोषितों तथा असहायों के भविष्य को लेकर उन्होंने अनेक स्वप्न देखे हैं और जिन स्वप्नों के प्रति उन जातियों में चेतना और आकांक्षा जाग उठी है, वे सारे स्वप्न अकालमृत्यु को प्राप्त होंगे...और दूसरी ओर अदंडित रावण इसे अपनी सफलता मानकर और भी प्रोत्साहित होगा। लंका के रावण के समान ही प्रत्येक राज्य में अपने-अपने रावण पैदा होंगे। प्रत्येक गली-मुहल्ले में मनुष्य के रूप में ऐसे पशु न केवल पनपेंगे, वरन शक्तिशाली होकर अपनी उद्दंडता और उच्छृंखलता से, अपने पापों और अत्याचारों से समस्त मानवता को पीड़ित करेंगे...नहीं ! राम यह नहीं होने देंगे...

यही नहीं ! कल तक के वानरों के मित्र राम को आज आक्रांता तथा आधिपत्य का इच्छुक बताकर, उनके विरुद्ध प्रचार किया जा रहा है...ऐसे में राम का तनिक-सा भी हस्तक्षेप इस प्रचार को बल देगा और यह भावना सारे वानरों में दावानल के समान प्रचंड हो उठेगी...सुग्रीव के शत्रु सचमुच राजनीतिक धूर्त्तताओं में पगे हुए हैं, वे युद्ध के साथ-साथ राजनीति के हथकंडे भी जानते हैं। वे ऐसा जाल रच रहे हैं कि राम प्रस्रवणगिरि

पर बैठे भी रहे तो बद्धहस्त व्यक्ति के समान कुछ कर भी न सकें।

और यदि राम बद्धहस्त बैठे रहे तो चाहे अंगद-गुल्म समर्थक सैनिक आक्रमण करें, अथवा हनुमान तथा अंगद समर्थक सैनिक, वानरों की सेना में युद्ध आरंभ हो जाएगा। अपनी परंपरा के अनुसार इस अथवा उस पक्ष का समर्थन करते हुए वानर-यूथ युद्ध में भाग लेंगे और अंततः वानरों का यह गृह-युद्ध समस्त वानर जाति को ग्रस लेगा...राम चुपचाप बैठे यह देखते रहेंगे क्या?...जिन वानरों से उन्होंने मैत्री स्थापित की, जिन्हें उन्होंने अपमानजनक और शोषित स्थिति से मुक्ति दिलानी चाही, जिनसे स्वयं उन्हें सहायता की आशा है—उस संपूर्ण जाति को वे षड्यंत्र और मूर्खता की ज्वाला में जलकर क्षार हो जाने देंगे क्या? राक्षसों के हाथों वध से उनकी रक्षा के प्रयत्न में लगे राम, अब उन्हें आत्महत्या करते देखते रहेंगे?..

नहीं! राम यह नहीं होने देंगे...

तो क्या करें राम?

ऐसा क्या हो कि राम को वानरों के किसी भी वर्ग से युद्ध न करना पड़े, राम को कोई वानर-शत्रु न कह सके।...वे वस्तुतः स्वयं को वानर-मित्र सिद्ध कर सकें। और ऐसा क्या हो कि वानरों का यह आसन्न गृह-युद्ध भी रुक जाए।

राम चलते-चलते रुक गये...वे अपने आश्रम से काफी दूर निकल आए थे। गजपुष्पी की वह लता उनके सामने थी, जिसकी छाया उन्हें अत्यन्त प्रिय थी। राम उसी के निकट एक शिला पर बैठ गये।

सहसा राम का मन भीत हरिण के समान चौंक उठा।...क्या हो रहा है राम के जीवन में...वे कौन-सा लक्ष्य लेकर चले थे और क्या हो रहा है यहां? संसार में इतने व्यापक रूप में हो रहे अत्याचार तथा व्यक्ति रूप में अपनी क्षति और अपमान को भूलकर, वे वानर-राजनीति की वंचना में फंसते जा रहे हैं...क्या राम के जीवन का यही लक्ष्य था कि वे आदर्शों, सिद्धांतों, न्याय-अन्याय के विचारों को भूलकर एक राज्य के विभिन्न वर्गों के द्वेषवश होने वाले षड्यंत्रों की दलदल में फंसकर रह जाएं...कदापि नहीं!

...राम यह भी नहीं होने देंगे...

राम उठ खड़े हुए। उन्हे इस दलदल से निकलना होगा और उसके लिए आवश्यक है कि सुग्रीव की जडता टूटे, उनका प्रमाद नष्ट हो...यदि सुग्रीव की जड़ता नही टूटी तो राम इस दलदल मे गहरे-से-गहरे धसने के लिए वाध्य हो जाएगे...अब वे और प्रतीक्षा नही कर सकते...हनुमान ने ठीक ही कहा था, "सम्राट की मन:स्थिति के स्वतः संतुलित हो जाने की प्रतीक्षा करना भूल है। यह उनके शुभेच्छियों का कर्तव्य है कि वे उन्हे परिस्थितियों के प्रति सजग करें। वही करने का प्रयत्न करूंगा..." ठीक कहा था हनुमान ने, सुग्रीव को जगाना होगा। उनके शुभेच्छियों का कर्तव्य है कि वे उन्हे जगाएं, जैसे भी हो, जिस भी प्रकार।

राम अपने आश्रम की ओर लौट पड़े।

नहा-धोकर लक्ष्मण आश्रम में लौटे, तो उन्होंने राम को देखा—वे बहुत पहले से ही तैयार होकर वहां बैठे लग रहे थे...या तो वे रात भर सोये ही नही हैं, या फिर आधी रात से ही उठकर बैठे हुए है। रात भर जागरण करने के चिह्न भी उनके चेहरे पर नही थे...वे पर्याप्त स्वस्थ, जागरूक तथा स्फूर्तिपूर्ण लग रहे थे।

"आज अपना कोई कार्यक्रम मत बनाना, सौमित्र !" राम बोले, "या इससे पूर्व ही तो निश्चित नही कर लिया ?"

"नही, भैया !" लक्ष्मण ने आश्चर्य से राम की ओर देखा—उनके चेहरे पर कुछ कौतुक का-सा आभास था, "आपने कल सध्या ही प्रातः तक कुछ न करने अथवा सोचने का आदेश दिया था। आपने कुछ सोच लिया है क्या ?"

"सोचा तो है।" राम बोले, "किंतु उसे कार्यान्वित करने का दायित्व तुम्हारा ही है।"

"कहिए।"

राम ने अब तक निकट आ गये अन्य आश्रमवासी जन-सैनिको की ओर देखा, "सारे आश्रमवासी उपस्थित है या कोई अन्यत्र गया हुआ भी है ?"

निरीक्षण हुआ। सारे आश्रमवासी उपस्थित थे।

"मेरी बात सुनो, बंधुओ !" राम बोले, "और यदि तुम लोगों को मेरा

प्रस्ताव स्वीकार्य लगे तो उसे कार्यान्वित करने के लिए तत्काल प्रस्थान करो। हमारे पास समय बहुत कम है।"

"आप आदेश दें, भद्र राम !" अनिन्ध बोला।

"मुझे लगता है कि कर्म का क्षण आ गया है। अब तनिक भी विलब अथवा असावधानी घातक है।" राम बोले, "अतः तुम सब लोग सौमित्र के साथ जाओ। जितने शस्त्रास्त्र संभव हों, अपने साथ ले जाओ। उन शस्त्रों का जितना अधिक प्रदर्शन कर सको, करो। और तुम लोग जाकर सुग्रीव का राजप्रासाद घेर लो। तुममें से कोई भी रंच मात्र भय अथवा सकोच प्रकट न करे। यदि मार्ग मे तुम्हें कोई रोकने का प्रयत्न करे तो उसे बलात् मार्ग से हटा दो। राजप्रासाद मे तुम्हारे जाने से जितना आतक फैल सके, तुम उतने ही सफल माने जाओगे। सब लोग प्रासाद के बाहर रुक जाए। अकेले सौमित्र प्रासाद के भीतर प्रवेश करें। किसी का निषेध न मानें और किसी का वर्जन न सुनें। सौमित्र सीधे सुग्रीव के सम्मुख उपस्थित हो और अधिक-से-अधिक उग्र रूप में उस तक मेरा सदेश पहुंचाए कि, 'जिस मार्ग से वाली गया था, वह मार्ग अभी बंद नही हुआ है।' "

कुछ क्षणो तक सब लोग चुप रहे, जैसे राम की बात को मन-ही-मन तोल रहे हों।

"मैं प्रस्तुत हूं।" लक्ष्मण ने आश्वस्त स्वर मे कहा।

"एक शका मेरे मन मे है, भद्र राम !" भीखन बोला।

राम ने भीखन की ओर देखा।

"कही ऐसा न हो कि इस प्रकार के व्यवहार से हम सुग्रीव की मैत्री से वंचित हो जाएं।"

"संभव है, ऐसा ही हो।" राम बोले, "वस्तुतः बहुत सोचने के पश्चात् मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि किन्हीं कारणो से सुग्रीव की जड़ता ऐसी स्थिति तक जा पहुंची है कि हितैषियों द्वारा समझाया-बुझाया जाना उन पर कोई प्रभाव नही डालेगा। हनुमान सुग्रीव के व्यवहार से कितने चिंतित हैं, यह मैं निजी रूप से जानता हूं। नील कल ही परिवाद के रूप में अनेक बातें कहकर गया है। पिछले कुछ दिनो से अंगद से मेरी भेंट नही हुई, पर तुम लोगों की उसके संबंध मे भी यही धारणा है। अन्य लोग

द्वन्द्व-युद्ध नहीं करेगा। सेना सहित युद्ध करना चाहेगा तो वह केवल असिगुल्म-समर्थक टुकड़ियों को ही अपने पक्ष में पाएगा। मैं कह नहीं सकता कि वे लोग भी उसका साथ देंगे अथवा नहीं।"

और कोई आपत्ति न होते देख राम ने पूछा, "सब लोग सहमत हैं?"

"सहमत हैं।" एक स्वर से सबने कहा।

५

रुमा को अपने पति में एक स्पष्ट परिवर्तन दिखायी पड़ रहा था—सुग्रीव ऐसे नहीं थे। उसका वह सहज प्रेमी पति अब कैसा हो गया था। सुग्रीव अब पहले से कहीं अधिक समय अपने प्रासाद में व्यतीत करते थे; सत्य तो यह है कि अब वे बाहर बहुत कम जाते थे। यदि कहीं कोई भव्य पान-गोष्ठी होती, तो ही वे बाहर निकलते थे, अन्यथा माधवी में डूबे हुए प्रासाद में ही पड़े रहते थे। अपने भाई के राज्यकाल में जो व्यक्ति संपूर्ण वानर-राज्य में मदिरा को वर्जित पदार्थ घोषित करवाने के लिए अपने प्राणों पर खेल रहा था, अब वही व्यक्ति सदा माधवी में डूबा दिखायी पड़ता है।

रुमा का मन बार-बार रोने को हो आता था; वही पति पहले अपनी राजनीतिक-सामाजिक गतिविधियों की भाग-दौड़ में से कुछ समय छीन-झपटकर घर आता था तो घर में कैसी चहल-पहल हो जाती थी। उनके एक-एक शब्द में से प्यार टपकता था। इतनी कम अवधि के लिए पति के साथ रहकर भी रुमा को लगता था कि सुग्रीव कितना प्रेम करते थे उससे। अब सुग्रीव प्रायः आठों पहर प्रासाद में ही पड़े रहते हैं। हां! प्रासाद में उनकी उपस्थिति को 'रहना' मात्र नहीं कहा जा सकता था, वह 'पड़ा रहना' ही था। जो व्यक्ति उठ न सके, बैठ न सके, चल-फिर न सके—पलंग पर बस औंधा-सीधा लेटा रहे, उसे पड़ा रहना ही तो कहा जाएगा। ...अब वे रुमा को देखते ही प्रेम-निवेदन कर बैठते हैं, उसे बांहों में भर

चिंतित नही होंगे—यह स्वीकार नही किया जा सकता। प्रश्न है, क्या इन लोगों ने सुग्रीव को समझाया नही होगा ?...मैं समझता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति ने सुग्रीव को भरसक समझाया होगा। पर सुग्रीव क्रमशः हम सबसे असपृक्त होता जा रहा है। न केवल वह हमारी कोई सहायता नहीं कर पा रहा, वरन वह वानर जाति तथा अपने लिए भी उपयोगी नही रह गया है। ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जाए तो सत्य यह है कि वह वानरों की प्रगति के मार्ग में बाधा-स्वरूप अड गया है और उनके गृह-युद्ध का कारण बन गया है। ऐसे में मैंने उसकी मैत्री को दांव पर लगाने का निश्चय किया है।"

"पर मैत्री टूटने का परिणाम ?"

"पहली बात तो यह है कि सुग्रीव मैत्री तोड़ने का साहस नही करेगा।" राम बोले, "यदि हमें उसकी आवश्यकता है, तो उसे भी हमारी आवश्यकता है। यद्यपि वाली का वध हो चुका है और सुग्रीव वानरों के सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित है, पर यह नही कहा जा सकता कि उसे अब किसी ओर से कोई भय ही नही है। असिगुल्म तथा वाली के अनेक यूथपति उसके विरोधी हैं। राक्षस-विरोधी नीतियों के कारण, राक्षस लोग उसके शत्रु हैं और समय तथा अवसर देखकर, वे लोग अपनी घात अवश्य लगाएंगे। और .." राम क्षण भर के लिए रुके, "जिस अंगद ने कल तक सुग्रीव की नीतियों के कारण, अपने पिता के विरुद्ध भी उसका साथ दिया, उन नीतियों के त्यागने के कारण, अंगद सुग्रीव का विरोधी भी हो सकता है। मैं तो यहा तक कहने को प्रस्तुत हू कि यदि सुग्रीव ने अपना यह प्रमाद नही छोड़ा, तो उसके अन्य साथी भी उसे छोड जाएंगे।" राम तनिक रुककर बोले, "इसलिए सुग्रीव इतनी सुविधा से हमारी मैत्री का त्याग नही कर सकता। और यदि ऐसा कुछ हुआ भी, तो हम सैनिक शक्ति तथा जन-समर्थन की दृष्टि से किष्किंधा में उससे दुर्बल नही पडेंगे।"

"आपने युद्ध तक की स्थिति की बात सोच डाली है ?" भूलर आश्चर्य से बोला।

"हा, भूलर !" राम मुसकराए, "सुग्रीव मुझसे अथवा लक्ष्मण से

द्वन्द्व-युद्ध नहीं करेगा। सेना सहित युद्ध करना चाहेगा तो वह केवल असिगुल्म-समर्थक टुकड़ियों को ही अपने पक्ष में पाएगा। मैं कह नहीं सकता कि वे लोग भी उसका साथ देंगे अथवा नहीं।"

और कोई आपत्ति न होते देख राम ने पूछा, "सब लोग सहमत हैं?"

"सहमत हैं।" एक स्वर से सबने कहा।

५

रुमा को अपने पति में एक स्पष्ट परिवर्तन दिखायी पड़ रहा था—सुग्रीव ऐसे नहीं थे। उसका वह सहज प्रेमी पति अब कैसा हो गया था। सुग्रीव अब पहले से कहीं अधिक समय अपने प्रासाद में व्यतीत करते थे; सत्य तो यह है कि अब वे बाहर बहुत कम जाते थे। यदि कहीं कोई भव्य पान-गोष्ठी होती, तो ही वे बाहर निकलते थे, अन्यथा माधवी में डूबे हुए प्रासाद में ही पड़े रहते थे। अपने भाई के राज्यकाल में जो व्यक्ति संपूर्ण वानर-राज्य में मदिरा को वर्जित पदार्थ घोषित करवाने के लिए अपने प्राणों पर खेल रहा था, अब वही व्यक्ति सदा माधवी में डूबा दिखायी पड़ता है।

रुमा का मन बार-बार रोने को हो आता था; वही पति पहले अपनी राजनीतिक-सामाजिक गतिविधियों की भाग-दौड़ में से कुछ समय छीन-झपटकर घर आता था तो घर में कैसी चहल-पहल हो जाती थी। उनके एक-एक शब्द में से प्यार टपकता था। इतनी कम अवधि के लिए पति के साथ रहकर भी रुमा को लगता था कि सुग्रीव कितना प्रेम करते थे उससे। अब सुग्रीव प्रायः आठों पहर प्रासाद में ही पड़े रहते हैं। हां! प्रासाद में उनकी उपस्थिति को 'रहना' मात्र नहीं कहा जा सकता था, वह 'पड़ा रहना' ही था। जो व्यक्ति उठ न सके, बैठ न सके, चल-फिर न सके—पलंग पर बस औंधा-सीधा लेटा रहे, उसे पड़ा रहना ही तो कहा जाएगा। ...अब वे रुमा को देखते ही प्रेम-निवेदन कर बैठते हैं, उसे बाहों में भर

घृणा वाली की ओर मुड़ गयी हो...

कितनी सफलता से सुग्रीव ने अपने शत्रु को समाप्त करवा दिया था .. तब तो मानसिक विकृति नहीं थी कहीं...तो क्या रुमा के मन का संदेह सत्य है ?

वाली के वध के पश्चात् जब सुग्रीव प्रासाद में आये थे तो रुमा अपने प्रेम तथा स्वतंत्रता की मिश्रित भावनाओं की ऊर्जा में दौड़ी थी कि सुग्रीव के वक्ष से जा लगे। किंतु वक्ष से लगने से पूर्व ही वह ठिठक गयी...अब स्थिति पहले-जैसी नहीं थी, सुग्रीव और उसका संबंध मात्र पति-पत्नी का नहीं था—थे तो वे अब भी पति-पत्नी ही; किंतु बीच में एक घटना आ खड़ी हुई थी। वह सुग्रीव की पत्नी ही नहीं थी, धर्षिता पत्नी थी। वाली ने उसका अपहरण कर, इतने दिनों तक बलात् उसका भोग किया था...वह वाली की भोग्या रह चुकी थी...क्या सुग्रीव उसे अंगीकार करेंगे ?...

रुमा ने सुग्रीव के वक्ष मे लगने का विचार त्याग दिया था, वह उनके पैरों पर गिर पड़ी थी।

सुग्रीव ने उसे अंगीकार कर लिया था, पर क्या रुमा को अपनी बांहों में लेते ही सुग्रीव को याद नहीं आ जाता कि यह वही रुमा है, जिसका वाली ने हरण किया था.. अपने विवेक के तर्क के हाथों बाध्य होकर उन्होंने रुमा को अंगीकार किया था, किंतु पुरुष की ईर्ष्या से आहत होकर बिना माधवी में डूबे, वे रुमा के निकट भी नहीं आ सकते थे...क्या वे रुमा के प्रति अपनी घृणा को धोने में असमर्थ होकर, उसे माधवी में डुबोने का प्रयत्न कर रहे हैं ?

लगता था, सुग्रीव भीतर से कहीं टूट गये हैं और अपने टूटे हुए खंडों को माधवी से जोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं; पर ऐसा भी कहीं हुआ है...

और तारा के साथ विवाह ?...यह क्या था—तारा के प्रति आकर्षण ? वाली के प्रति अपनी शत्रुता का निर्वाह ? अंगद के मन में पितृ-हत्या की भावना को धोने का प्रयत्न ?...या रुमा के प्रति जुगुप्सा से भर जाने के कारण अपनी कामुकता की संतुष्टि के लिए एक अन्य पात्र की खोज ?...

रुमा की दृष्टि कक्ष में प्रवेश करती हुई प्रतिहारिणी पर पड़ी।

"देवि ! आर्य हनुमान द्वार पर खड़े हैं।" अभिवादन कर प्रतिहारिणी

लेते हैं, सदा स्वयं को उस पर न्यौछावर कर देने की बातें करते रहते हैं; किंतु रुमा को उन शब्दों में प्रेम का तनिक भी आभास नहीं मिलता। उनमें कामुकता की तीव्र गंध होती है।

वह अच्छी-भली प्रिया थी अपने प्रिय की, पत्नी थी अपने पति की; और अब वह एक कामुक की भोग्या मात्र रह गयी है। क्या कहे रुमा इस परिवर्तन को, इस प्रक्रिया को और इस व्यक्ति को...

कैसे-कैसे स्वप्न थे सुग्रीव के मन में, एक नये समाज के निर्माण के लिए—किंतु तब उनके पास अधिकार नहीं था...अब क्या नहीं है उनके पास? किंतु वे स्वप्न ही कहीं खो गये हैं। उनके साथी आते हैं और उनकी स्थिति देखकर बिना कुछ कहे ही लौट जाते हैं। सुग्रीव के पास किसी की बात सुनने का अवकाश नहीं है...क्या हो गया है उन्हें? क्या यह सब कुछ मात्र विलास की इच्छा और काम-लिप्सा ही है? क्या वाली के भय से ऋष्यमूक पर जो वंचित जीवन बिताना पड़ा, यह उसी की प्रतिक्रिया है? यह भूखे व्यक्ति का, नाना व्यंजनों को उपलब्ध जानकर, उन पर टूट पड़ना है, या...

या यह परिवर्तन रुमा के अपहरण के कारण हुआ है? सुग्रीव को बहुत प्रेम था रुमा से। रुमा के बिना वे जीवित नहीं रह सकते थे।...तो क्या रुमा के छिन जाने से उनका मस्तिष्क असंतुलित हो उठा है?...किंतु नहीं! ऐसी बात होती तो रुमा के अपहरण के पश्चात् ही सुग्रीव को असंतुलित हो जाना चाहिए था; पर ऋष्यमूक पर अपने प्रवास की अवधि में उन्होंने अपनी मानसिक विकृति का तनिक भी आभास नहीं दिया। वे पूर्व कौशल से अज्ञातवास करते रहे; वाली के गुप्तचरों, खोजियों से छिपते ही नहीं रहे, उनमें से कुछ का तो उन्होंने वध ही कर डाला था...क्या कोई विकृत-मस्तिष्क व्यक्ति राम जैसा सहायक ढूंढकर ला सकता था? इतनी राजनीतिक चतुराई...इतनी दूरदर्शिता...एक ऐसा सहायक ढूंढ लेना, जो स्वयं उसी कष्ट से पीड़ित था, जिससे सुग्रीव पीड़ित थे। राम को वाली से क्या सहानुभूति होती? राम के मन में तो वाली के प्रति कदाचित उतना ही आक्रोश जागा होगा, जितना आक्रोश उनके मन में रावण के प्रति रहा होगा; या यह भी संभव है कि रावण के प्रति उनके मन में जमी समस्त

घृणा वाली की ओर मुड़ गयी हो...

कितनी सफलता से सुग्रीव ने अपने शत्रु को समाप्त करवा दिया था ...तब तो मानसिक विकृति नहीं थी कहीं...तो क्या रुमा के मन का संदेह सत्य है ?

वाली के वध के पश्चात् जब सुग्रीव प्रासाद में आये थे तो रुमा अपने प्रेम तथा स्वतंत्रता की मिश्रित भावनाओं की ऊर्जा में दौड़ी थी कि सुग्रीव के वक्ष से जा लगे। किंतु वक्ष से लगने से पूर्व ही वह ठिठक गयी.. अब स्थिति पहले-जैसी नहीं थी, सुग्रीव और उसका संबंध मात्र पति-पत्नी का नहीं था—थे तो वे अब भी पति-पत्नी ही; किंतु बीच में एक घटना आ खड़ी हुई थी। वह सुग्रीव की पत्नी ही नहीं थी, धर्षिता पत्नी थी। वाली ने उसका अपहरण कर, इतने दिनों तक बलात् उसका भोग किया था ..वह वाली की भोग्या रह चुकी थी...क्या सुग्रीव उसे अंगीकार करेंगे ?...

रुमा ने सुग्रीव के वक्ष से लगने का विचार त्याग दिया था, वह उनके पैरों पर गिर पड़ी थी।

सुग्रीव ने उसे अंगीकार कर लिया था, पर क्या रुमा को अपनी बाहों में लेते ही सुग्रीव को याद नहीं आ जाता कि यह वही रुमा है, जिसका वाली ने हरण किया था . अपने विवेक के तर्क के हाथों बाध्य होकर उन्होंने रुमा को अंगीकार किया था, किंतु पुरुष की ईर्ष्या से आहत होकर बिना माधवी में डूबे, वे रुमा के निकट भी नहीं आ सकते थे ..क्या वे रुमा के प्रति अपनी घृणा को धोने में असमर्थ होकर, उसे माधवी में डुबोने का प्रयत्न कर रहे हैं ?

लगता था, सुग्रीव भीतर से कहीं टूट गये हैं और अपने टूटे हुए खंडों को माधवी से जोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं; पर ऐसा भी कहीं हुआ है...

और तारा के साथ विवाह ?...यह क्या था—तारा के प्रति आकर्षण ? वाली के प्रति अपनी शत्रुता का निर्वाह ? अंगद के मन में पितृ-हत्या की भावना को धोने का प्रयत्न ?...या रुमा के प्रति जुगुप्सा से भर जाने के कारण अपनी कामुकता की संतुष्टि के लिए एक अन्य पात्र की खोज ?...

रुमा की दृष्टि कक्ष में प्रवेश करती हुई प्रतिहारिणी पर पड़ी।

"देवि ! आर्य हनुमान द्वार पर खड़े हैं।" अभिवादन कर प्रतिहारिणी

बोली, "कहते हैं, बहुत आवश्यक कार्य है।"

"बुला लाओ।"

प्रतिहारिणी चली गयी और रुमा के विचार हनुमान की ओर मुड़ गये—हनुमान के सारे आवश्यक कार्य, सम्राट की इस मन:स्थिति के कारण रुके पड़े हैं। किंतु रुमा क्या कर सकती है...

हनुमान ने कक्ष में प्रवेश कर अभिवादन किया।

"बैठो, हनुमान !"

"बैठने का अवकाश नहीं है, साम्राज्ञी !" हनुमान खड़े-खड़े ही बोले, "किष्किंधा की प्राचीर के बाहर की सैनिक चौकियों से समाचार आया है कि राम के छोटे भाई लक्ष्मण अपने जन-सैनिकों के साथ, द्रुत गति से किष्किंधा की ओर बढ़ते देखे गये हैं। वे सब-के-सब सशस्त्र हैं और उन लोगों की मुद्रा आक्रामक है। उनका यह कृत्य असाधारण, है देवि !...वे सम्राट के मित्र हैं, अत: हम नहीं जानते कि उनका किष्किंधा में इस प्रकार सशस्त्र प्रवेश रोका जाना चाहिए अथवा नहीं। कृपया आप सम्राट से इस विषय में कोई आदेश प्राप्त करें, अन्यथा अनर्थ हो जाएगा।"

"किंतु राम और लक्ष्मण से भयभीत होने का कोई कारण तो नहीं है, हनुमान ?" रुमा चकित होकर बोली।

"वैसे तो कोई कारण नहीं है।" हनुमान धीरे से बोले, "कल ही मैं आर्य राम से मिला भी था; तब तक ऐसी कोई बात नहीं थी। पर, देवि ! हमने उनकी पत्नी की खोज के लिए अभी तक कुछ नहीं किया है। यह अपने दिये हुए वचन का उल्लंघन है।"

रुमा ने हनुमान की ओर देखा—हनुमान यह नहीं कह रहे थे कि सम्राट ने अपना वचन-भंग किया है, वे 'हम' शब्द का प्रयोग कर रहे थे।

"आओ, हनुमान !" रुमा आगे-आगे चली।

सुग्रीव अपने पलंग पर औंधे पड़े सो रहे थे। दो परिचारिकाएं व्यजन से हवा कर रही थीं और उनके पलंग के निकट ही माधवी का एक खाली भांड़ तथा अनेक चषक रखे हुए थे। कदाचित सुग्रीव ने यह भांड अभी-

अभी ही खाली किया था।

रुमा ने उनके कान के पास मुख ले जाकर धीरे से कहा, "प्रिय ! सम्राट !"

किंतु सुग्रीव की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। वे प्रगाढ़ निद्रा में सोये लग रहे थे।

रुमा ने उनके कंधे पर हाथ रखकर धीरे से हिलाया और पुकारा, "प्रिय सुनो ! हनुमान आये है।"

सुग्रीव ने रुमा का हाथ झटक दिया और करवट बदल ली।

ये ही सुग्रीव थे—रुमा के मन में आया—जिन्हें वाली के आक्रमण से पूर्व सावधान करने के लिए अंगद ने शिल्पी को भेजा था, और एक हल्की-सी आवाज से आधी रात को उठकर वे बाहर चले गये थे।.. आज अभी दिन आरंभ ही हुआ है और वे माधवी की ऐसी प्रगाढ़ निद्रा में है कि उठाये नहीं उठते। इस बार तो उन्होंने रुमा का हाथ ही झटका है। यदि जगाने का और अधिक प्रयत्न किया गया और वे रुष्ट हो गये तो जाने सम्राट की क्या इच्छा हो...

रुमा ने निराश दृष्टि से हनुमान की ओर देखा।

हनुमान भी कदाचित कुछ ऐसे ही निष्कर्ष पर पहुंचे थे।

वे दोनों चुपचाप कक्ष से बाहर निकल आये।

"यदि लक्ष्मण इधर आयें तो मेरा विचार है कि सम्राट के स्थान पर आप ही उनसे बात कर लें।" हनुमान कुछ सोचते हुए बोले, "ऐसा नहीं हो सकता कि बिना किसी संवाद के लक्ष्मण आक्रमण आरंभ कर दें।"

"हनुमान ! यदि तुम ही बात कर लो तो...?"

तभी अंगद प्रायः भागते हुए-से आए, "सम्राट कहां है ?"

"क्या बात है, युवराज ?"

"लक्ष्मण !" अंगद अधिक नहीं कह पाए।

"कहां है ?"

"उनके सशस्त्र जन-सैनिक प्रासाद के चारों ओर फैल गये हैं और वे स्वयं बाहरी ड्योढ़ी पर खड़े धनुष टंकार रहे हैं।"

"हमारे द्वारपाल ?"

"सब भयभीत होकर भाग गये है।"

"ऐसा करो, अंगद !" रुमा बोली, "तुम बहन तारा से कहो, वे जाकर लक्ष्मण का स्वागत करें और उन्हें भीतर लिवा लाएं। तब तक मैं सम्राट को जगाती हू।"

अंगद तारा को बुलाने के लिए भागे और रुमा सुग्रीव के कक्ष की ओर बढ़ गयी। हनुमान वही खड़े-के-खड़े रह गये। क्या करें हनुमान ? वे तो कब से अपने मन में इसी प्रकार की आशंकाएं पाल रहे थे और डर रहे थे कि कहीं सचमुच ही ऐसी स्थिति न आ जाए कि जिन्हें वे अपने मित्र मानते है, जिनके प्रति उनका मन श्रद्धा तथा विश्वास से आप्लावित है, उन्ही से विरोध की स्थिति आ जाए।...आज प्रायः वही स्थिति आ गयी है। लक्ष्मण द्वार पर खड़े धनुष टंकार रहे हैं और कोई नही जानता कि उनके मन में क्या है।...धनुष टकारना, प्रेम का सकेत तो है नही। ऐसे में हनुमान का क्या कर्तव्य है ? यदि लक्ष्मण ने सचमुच ही सुग्रीव पर आक्रमण किया तो क्या करेंगे हनुमान ? क्या वे लक्ष्मण का विरोध करेंगे ?...ऐसे समय में लक्ष्मण के विरोध का अर्थ था उनसे द्वन्द्व-युद्ध ! सशस्त्र सघर्ष ! अपने सम्राट की रक्षा के लिए लक्ष्मण से युद्ध !...पर दोष सरासर सम्राट का है। राम और लक्ष्मण ने कुछ भी अनुचित नही किया है। बाली के आतंक की समाप्ति तथा किष्किंधा के निर्माण में कितनी सहायता की है उन्होंने। फिर लक्ष्मण से वैर का क्या अर्थ ? और बिना वैर के युद्ध कैसा ?...और यदि हनुमान लक्ष्मण से युद्ध नहीं करेंगे, तो उसका अर्थ होगा—निष्क्रिय खड़े-खड़े, स्वयं अपनी आंखों के सम्मुख, अपने प्रिय सम्राट की हत्या का पीड़ादायक युद्ध देखना...

यह कैसे सह सकेंगे हनुमान ?

सम्राट दोषी ही सही ! पर क्या हनुमान इस प्रमाद के लिए अपने सम्राट की हत्या होने देंगे ?...और नही तो क्या सम्राट को बचाने के लिए लक्ष्मण की हत्या करेंगे ?...

युद्ध-रत दोनों पक्ष ही अपने मित्र हों तो क्या करे कोई ?...

तारा का मस्तिष्क मधुपान और रात्रि-जागरण से तंद्राग्रस्त था। उनकी इच्छा हो रही थी कि थोड़ी देर के लिए निर्विघ्न शातिपूर्ण नीद मिल जाए। थोड़ी-सी नींद ले लें तो मन कुछ सोचने-समझने योग्य हो सकेगा।

किंतु अगद के मुख से ड्योढ़ी पर खड़े, धनुष टकारते, लक्ष्मण के क्रुद्ध आक्रामक रूप की चर्चा सुनते ही उनके मन से मधु का मद और निद्रा की तद्रा—सब कुछ उड़ गया।...उन्होंने आज तक लक्ष्मण अथवा राम—दोनों में से किसी को भी धनुष से प्रहार करते नही देखा था। उन्होंने उनका क्रुद्ध नही, सौम्य रूप ही देखा था, किंतु वक्ष में राम का बाण खाये वाली को तारा नहीं भूल सकती।...तब राम क्रुद्ध हुए थे...आज लक्ष्मण क्रुद्ध होकर आए हैं। अगद कह रहा है कि उनके हाथ में धनुष है और वे धनुप की प्रत्यचा को टंकार रहे है...तो क्या आज सुग्रीव के वक्ष में बाण लगेगा?...

तारा ने अपने विवेक को साधा और डगमगाते पगों से अंगद के साथ चल पडी। मार्ग मे स्थान-स्थान पर घबरायी हुई परिचारिकाएं, प्रतिहारिणिया, भयभीत दंडधर, प्रहरी तथा अगरक्षक अस्त-व्यस्त खडे मिले। तारा को लगा, लक्ष्मण ने जान-बूझकर ऐसी मुद्रा धारण कर रखी है, जिससे सब लोग आतंकित तो हों, किंतु लक्ष्मण ने अब तक न तो किसी पर प्रहार किया है और न ही उन्होंने बलात् प्रासाद में प्रवेश कर सुग्रीव तक पहुंचने का प्रयत्न किया है।

कदाचित लक्ष्मण अपना तथा अपने भाई का रोष जताने ही आये है।

लक्ष्मण ने तारा को आज दूसरी बार देखा था—पहली बार वाली के वध के अवसर पर विलाप करती हुई तारा, वाली के शव पर पछाड़ खा-खाकर गिरी थी। तब उसके केश खुले हुए, वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। आंखों से अनवरत अश्रु बह रहे थे; और कंठ से रह-रहकर चीत्कार फूटता था। उस मन.स्थिति और वेश में भी तारा के व्यक्तित्व की गरिमा और रूप का आकर्षण सर्वथा अदृश्य नही था। किंतु आज उसके चेहरे पर शोक की वह छाया नही थी। आखों में मद की लाली थी और अधरों पर एक कौतुकपूर्ण हास्य था। वेश में परिष्कार तथा संभ्रांतता दोनों ही थी और यद्यपि वह

शृंगार करके नहीं आयी थी—कदाचित उसका अवकाश ही नहीं मिला था; किंतु रात्रि के प्रसाधन का अवशेष अब भी था। केश-विन्यास में कलात्मकता तथा सुरुचि स्पष्ट झलक रही थी, यद्यपि उसमें शैथिल्य आ चुका था।...यह थी उनके सहायक अंगद की मां, जो अब सुग्रीव की पत्नी भी थी। अंगद जैसे तरुण की मां की दृष्टि से तारा का वय अधिक दिखना चाहिए था; किंतु उसे प्रौढ़ युवती ही कहना होगा, युवती के वय को वह पार कर चुकी थी। किंतु सुग्रीव के वय के पुरुष के लिए वह अब भी कदाचित अत्यन्त आकर्षक स्त्री थी।

तारा को सम्मुख देख लक्ष्मण ने अभिवादन तो नहीं किया; किंतु अपने आक्रोश को अप्रकट रखने के लिए अपनी आंखें अवश्य झुका ली।

तारा की आशंकाएं कुछ शिथिल हुई। उतने भय की बात नहीं थी—जितना वे समझ बैठी थी। लक्ष्मण क्रोध में अवश्य थे, उन्होंने धनुष टंकार कर चेतावनी भी दी थी; किंतु वे प्रहार करने नहीं आए थे। अपना रोष जताने के लिए उन्होंने सहास अभिवादन नहीं किया था, किंतु अपना विरोध जताने के लिए कोई अपशब्द भी नहीं कहा था।

"क्या बात है, राजकुमार?" तारा सायास मुसकराई, "आपने हमें एक मधुर स्वागत का भी अवसर नहीं दिया?"

"मैं सम्राट से मिलने आया हूं।" लक्ष्मण शुष्क-रुक्ष स्वर में बोले।

"सम्राट से मिलने आने के लिए अपने चेहरे को इतना कठोर बनाकर विकृत करना अनिवार्य तो नहीं है, कुमार!" तारा की वाणी और आंखों में चचलता के पीछे कहीं ममता थी, "यद्यपि हम अधिक नहीं मिले हैं, किंतु सारी किष्किंधा जानती है कि आर्य राम तथा कुमार लक्ष्मण सम्राट के परिवार के सदस्य-से हैं। फिर भृकुटियां कुंचित कर, धनुष टंकारने की क्या आवश्यकता थी, सौमित्र?"

तारा को लगा, लक्ष्मण की आंखों का तेज कुछ अधिक उग्र हो उठा है—कदाचित वे कोई कठोर बात कहने से स्वयं को रोक रहे थे। तारा का वार लक्ष्य से कुछ आगे जा पड़ा था।

तारा स्नेह और मैत्री के भाव से बोली, "अंगद सदा आपकी चर्चा एक वरिष्ठ मित्र के रूप में करता है और सम्राट सदा आपको अपने छोटे

भाई के रूप में याद करते हैं।" उसने रुककर लक्ष्मण के भावों को टटोला, "मुझे आप बड़ी भाभी की मर्यादा देंगे न, कुमार !"

लक्ष्मण कुछ नहीं बोले, चुपचाप खड़े उसे देखते रहे।

"बड़ी भाभी ! जो संबंध प्रदत्त पद में ही नहीं, वय की दृष्टि से भी आपसे बहुत बड़ी है", तारा पुनः बोली, "वात्सल्य का भाव रखने वाली, मा के समान भाभी !"

लक्ष्मण के माथे की रेखाएं कुछ कम हुईं—क्या कहते वे इस गौरवमयी सुंदरी नारी से, जो उनसे देवर का संबंध जोड़, परिहास का अधिकार भी पा लेना चाहती है और मा का-सा रूप बनाकर श्रद्धा भी मांग रही है। पर क्या गलत कहा तारा ने ! लक्ष्मण ने मैत्रिया भी तो वैसी ही पाली है—अंगद के संबंध से उन्हें तारा को मा का-सा भाव देना होगा, और सुग्रीव के संबंध से बड़ी भाभी का.. किंतु वह दुष्ट सुग्रीव...

"देवि !" लक्ष्मण का स्वर कोमल, किंतु सधा हुआ था, "संबंध तो हमारा कुछ ऐसा ही है, स्पृहणीय भी यही है, किंतु इस संबंध को क्या कहें कि भैया राम और मैं प्रस्रवणगिरि पर बैठे, देवी वैदेही की खोज की प्रतीक्षा में एक-एक क्षण गिन-गिनकर व्यतीत कर रहे हैं और भाई कहलाने वाला सम्राट, यह दुष्ट सुग्रीव माधवी पी-पीकर केलि-क्रीड़ा में आकंठ डूबा अपनी सुध-बुध खो बैठा है।"

"ठीक कहते हो, कुमार !" तारा का स्वर कुछ गंभीर हो गया, "यह सम्राट का प्रमाद है। उनके इस व्यवहार का अनुमोदन कोई नहीं करेगा।" तारा का स्वर कुछ और गहरा हुआ, "वस्तुत: हम सब ही इस विषय में बहुत चिंतित हैं—मैं, अंगद, रुमा, हनुमान—सब ही लोग।"

"तो फिर, देवि ! आप सम्राट को समझाती क्यों नहीं ?" लक्ष्मण का रोष पुनः उभरा।

क्षण भर तारा अवाक्-सी उन्हें देखती रह गयी; फिर जैसे स्वयं को सायास संभालकर मुसकरायी, "आइए ! आप भीतर तो आइए। यह तो आप नहीं ही चाहेंगे कि माधवी में डूबे, अचेत सम्राट को उठाकर हमें यहां तक लाना पड़े।"

"हां ! भीतर तो आइए, कुमार !" अंगद पहली बार बोले; किंतु

उनका स्वर सदा के समान सुहृद का-सा न होकर, भय और औपचारिकता लिये हुए था।

"तुम चलो, अंगद ! वहा हनुमान अकेले हैं।" तारा ने कहा और अंगद तेजी से अंत पुर की ओर चल गये।

लक्ष्मण ने जैसे अपने विरोध को बलात् दबाकर आगे बढ़ने के लिए पग उठाया।

"आपने सम्राट को समझाने की बात कही है।" तारा का स्वर अत्यन्त आत्मीय था, जैसे अपने किसी प्रियजन के सम्मुख अपनी व्यथा-कथा खोल बैठी हों, "बड़ा द्वन्द्व है, कुमार, मेरे मन में।"

लक्ष्मण ने प्रश्नसूचक दृष्टि से तारा की ओर देखा।

"आपसे क्या छिपाना; वरन आप न आते तो कदाचित मुझे ही आपके आश्रम तक जाना पड़ता।" तारा बोली, "अपने भाई से द्वेष हो जाने के कारण बहुत कष्ट में दिन बिताये थे सम्राट ने। राजप्रासाद से दूर वन में, अपनी पत्नी से वचित, आठो प्रहर मृत्यु के त्रास से पीड़ित, आखेटक कुत्तों से घबराए हुए मृग के समान समय काटा था उन्होंने। कदाचित यही कारण है कि अब विलास के लिए इतनी तृषा जागी है उनके भीतर कि वे कोई मर्यादा ही नही मानते। अपना संतुलन तक खो बैठे हैं। सम्राट बनने से पूर्व वे कदापि ऐसे नही थे। जिन दिनों वाली मायावी की खोज मे गये हुए थे, और सुग्रीव किष्किंधा के सम्राट बनाये गये थे, तब उन्होंने विलास की ओर कोई प्रवृत्ति नही दिखायी थी। तब उन्होने अपना सतुलन नही खोया था...।"

"आपको चाहिए कि यह सब आप उन्ही से कहें।" लक्ष्मण बोले।

"चाहिए तो।" तारा सहज स्वर मे बोली, "वैसे भी मैं घर मे बडी हूं। रुमा बेचारी बड़ी भीरु है और सम्राट से डरती भी बहुत है। अपने अपहरण के बाद से तो वह जाने कैसी हो गयी है। स्वय को सर्वथा अपदार्थ ही मान बैठी है। जाने कैसे-कैसे ऊहापोह है उसके मन मे।"

"और आप?"

"मैं!" तारा झेंप भरे स्वर मे बोली, "मेरे सम्मुख भी कुछ सकट है, कुमार ! मैं परिवार में बड़ी अवश्य हूं; किंतु मैं सम्राट की नव-विवाहिता

हू।...मेरे निषेध अथवा अनुशासन को जाने वे किस रूप मे ग्रहण करें। आप अविवाहित हैं, कुमार ! कामासक्ति की दुर्निवार शक्ति से अपरिचित हैं, और सम्राट इस समय कामासक्ति की अधम स्थिति तक पहुंचे हुए है। ...मैं उनकी नव-परिणीता हू। इस समय वे रुमा से भी अधिक मेरा ध्यान रखते है। आज रात भी वे मेरे ही साथ थे...किंतु कुमार ! उन्होंने वाली की हत्या कर, मुझे प्राप्त किया है।...कामासक्ति मे डूबे विकृत मस्तिष्क को मेरा उपदेश जाने कैसा लगे...।" वे क्षण भर मौन रहीं, "हमारा परिवार इस समय सबंधों के एक विचित्र तनाव मे से संचरण कर रहा है।...परिवार मे जो कुछ हुआ है, वह सहज नही था। किंतु उन परिस्थितियो में कदाचित वही अनिवार्य था...अत. हम सबने उसे स्वीकार कर, परस्पर सद्भाव बनाये रखने का प्रयत्न किया है। परिणामत. प्रत्येक व्यक्ति अतिरिक्त रूप से सजग है कि वह किसी का मन न दुखाये।"

"ऐसी बात है तो आपकी सहायता मैं करूगा।" लक्ष्मण का स्वर वक्र हो गया, "सम्राट को मैं समझाऊंगा।"

"अवश्य !" तारा भी कौतुक से मुसकराईं। लगता था, अब तक उनका सारा भय समाप्त हो चुका था, "यदि यह प्रस्ताव आपकी ओर से न आता तो कदाचित हमे ही निवेदन करना पडता।" तारा का स्वर कुछ अधिक कोमल हो गया, "किंतु कुमार ! समझाते हुए यह न भूलियेगा कि आप अपने भाई को ही समझा रहे हैं; यद्यपि वह प्रमाद और शैथिल्य का अपराधी है।"

चलते-चलते लक्ष्मण रुक गये, "देवि ! यह सारा भ्रातृत्व हम पर ही क्यों आरोपित किया जा रहा है ? आपने सम्राट को क्यो नही समझाया कि उनका एक वचित और अपमानित भाई प्रस्रवणगिरि पर उनकी सहायता की अपेक्षा मे चार मास से बैठा है।"

"उसकी ओर से सम्राट पूर्णत: असावधान नही है।" तारा ने चलने के लिए पग बढ़ाया, "सम्राट ने वानरो के विभिन्न यूथों तथा अंचलों से अच्छे खोजियों को बुलवाया था। उनमे से अधिकांश तो किष्किंधा में आ भी पहुंचे हैं। देवी वैदेही की खोज में उन्हे तत्काल भेजा जा सकता है।"

लक्ष्मण मौन ही रहे—यह सूचना उन्हे राम से मिल चुकी थी।

"क्यों ? कुमार को विश्वास नहीं होता ?" तारा ने एक भीत मुसकान के साथ पूछा।

"नहीं ! अविश्वास की कोई बात नहीं है।" लक्ष्मण धीरे से बोले, "किंतु समझ नहीं पा रहा हूं कि खोजियों को किष्किंधा में बुलवाने के लिए सम्राट के प्रति कृतज्ञता का प्रदर्शन करूं, अथवा खोजियों को बुलवाकर, उन्हें खोज के लिए जाने का आदेश न देने के प्रमाद पर अपना रोष प्रकट करूं।"

"नहीं ! कृतज्ञता की कोई बात नहीं है, सौमित्र !" तारा का स्वर अत्यंत शालीन था, "किष्किंधा का राजपरिवार आप दोनों भाइयों के आभार से इतना दबा है कि आपके लिए कुछ भी कर पाने से हम धन्य होंगे।"

सुग्रीव का कक्ष आ गया था। द्वारपालों ने एक ओर हटकर भीतर जाने का मार्ग दे दिया।

तारा ने पहले प्रवेश किया और फिर एक ओर हटकर लक्ष्मण को भीतर आने के लिए मार्ग देते हुए, उनके स्वागत का-सा अभिनय किया।

लक्ष्मण प्रविष्ट हुए।

सुग्रीव अपने पलंग पर लेटे थे और रुमा उनकी भुजा को अपने कंधे पर रख, बलात् उन्हें उठाने का प्रयत्न कर रही थी। सुग्रीव स्वयं तो नहीं ही उठ पा रहे थे, रुमा को ही बार-बार बलात् पलंग पर घसीट लेते थे। अनेक परिचारिकाएं, हनुमान तथा अंगद खड़े असहाय-से देख रहे थे।

लक्ष्मण के शरीर का रक्त उनके मस्तिष्क की ओर झपटा। तारा के समस्त निवेदन तथा संबंधों की मृदुलता उनके मन में से तिरोहित हो गयी। उनके मस्तिष्क में केवल एक ही विचार अंगारे के समान दहक रहा था—इस सुग्रीव के लिए राम ने वाली का वध किया और यह कृतघ्न मदिरा पीकर अपनी कामासक्ति का निर्लज्ज प्रदर्शन कर रहा है। उसे इतना भी चेत नहीं है कि वह कहां है; उसके आस-पास कितने लोग खड़े हैं; वह अपनी पत्नी से कैसा व्यवहार कर रहा है, जैसे वह मनुष्य न होकर वस्तुत: शाखामृग हो, जिसकी मर्यादा तो कोई है ही नहीं, उसमें संकोच और लज्जा की भी कोई चेतना ही न हो।

सहसा लक्ष्मण का हाथ उठा और उन्होंने अपने धनुष को जोर की टंकार दी।

धनुष की टंकार सुनते ही रुमा तड़प उठी और सिर झुकाकर, संकुचित सी खड़ी हो गयी। परिचारिकाए और दासिया भयभीत-सी, कक्ष की दीवारो से जा लगी। हनुमान और अगद के चेहरों पर असमजस के भाव कुछ और गहरे हो गये। तारा का आश्वस्त चेहरा पुन भयभीत हो उठा। किंतु सबसे अधिक प्रभाव स्वयं सुग्रीव पर हुआ। इस ध्वनि को जाने उन्होंने क्या समझा कि चौंककर उस दिशा मे देखा, जिधर से ध्वनि आयी थी। वे उठकर बैठ गये और क्रोध मे पलंग के निकट रखी चौकी पर पड़े माधवी के रिक्त भांड तथा चपक उठाकर कुट्टिम फर्श पर पटक दिये और फिर डोलते-डगमगाते-से शरीर से यथासभव तनकर खड़े होते हुए उनके हाथों ने अपने गले में पड़ी, सद्यःविकसित पुष्पों तथा मणियों से पिरोई हुई दीर्घ माला को पकड़कर तोड डाला। फर्श पर बिखरते हुए पुष्पो तथा मणियो की ओर से दृष्टि हटाकर उन्होने लक्ष्मण की ओर देखा और कुछ कहने के लिए मुख खोला...

उसी क्षण लक्ष्मण ने पुनः अपने धनुष को टकारा और कड़कते हुए स्वर में कहा, "वानरराज सुग्रीव !"

इस वार की टंकार और लक्ष्मण के स्वर का सुग्रीव पर अद्भुत प्रभाव हुआ। कुछ कहते-कहते उनके अधर रुक गये, जैसे वे लक्ष्मण को पहचान गये हों और उनके स्वर के क्रोध को समझ रहे हों। फिर उन्होने पलकें झपकाकर लक्ष्मण को देखा, जैसे पहचान की पुष्टि करना चाहते हो और धीरे-से फुसफुसाए, "सौमित्र लक्ष्मण !..."

"हां, मैं हूं।" लक्ष्मण क्रोधपूर्वक बोले, "अग्नि को साक्षी रख, तुमसे मैत्री करने वाले आर्य राम का भाई। निर्लज्ज मद्यप ! आज तुझे हमे पहचानने मे भी असुविधा हो रही है। भूल गया, जब तू वाली के भय से वृकों द्वारा प्रताड़ित भयभीत मृग के समान अपने प्राणों की रक्षा के लिए मारा-मारा फिरता था। भैया राम ने तेरी सहायता न की होती तो वाली ने तुझे भूमि पर पटककर अपने पगों की ठोकरों से निर्जीव मास का लोंदा बना दिया होता और तेरी बोटियां चील-कौवों को खिला दी होतीं।...कृतघ्न !

तेरा वही मित्र अपनी पत्नी के वियोग में वंचित और अपमानित, प्रस्रवण-गिरि पर तेरी सहायता की बाट जोह रहा है। तेरे मित्र और सहायक असिगुल्म तथा उसके साथियों के सैनिकों के भय से त्रस्त हैं। तेरी प्रजा वाली के आतक से मुक्ति पाकर नये जीवन की राह देख रही है, और तू मदांध और कामुक बना, अपने प्रासादों में पड़ा है। नीच ! तेरी रक्षा और सहायता करने वाले तेरे उसी मित्र आर्य राम ने कहलवाया है कि 'सुग्रीव ! जिस मार्ग से वाली गया था, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ है। तू सावधान नहीं हुआ, तो बहुत शीघ्र ही तुझे भी वहीं पहुंचा दिया जाएगा'...।"

लक्ष्मण मौन हुए तो उनका सारा शरीर क्रोध और आवेश से थर-थर कांप रहा था।

सुग्रीव के मन की विचित्र स्थिति थी।

उन्होंने सम्राट बनकर न अपनी प्रजा के साथ न्याय किया था, न अपने साथियों के साथ और न अपने मित्र इस राम के साथ ! उन्होंने सब का भला करना चाहा था, किंतु उलझनों के बीच से कोई राह नहीं खोज पाये थे...और आज वे ही मित्र राम कहलवा रहे हैं कि जिस राह से वाली गया था...वाली किस राह पर गया था !...मायावी ने वाली को यह राह दिखायी थी। वाली ने मदिरा पीनी आरंभ की थी...वाली मदिरा के साथ-साथ प्रत्येक विलास की राह पर बढ़ता चला गया था।...कामुकता प्रमुख थी उसमें। अलका के पीछे वाली का मायावी से विरोध हुआ...अपनी विलासिता के कारण वाली किष्किंधा के वानरों के लिए कुछ नहीं कर सका, किसी का भला नहीं कर सका...अंततः उसका अपना सगा भाई सुग्रीव ही वाली का विरोधी हो गया...कैसे बढ़ता गया विरोध ?...अंततः वाली मारा गया।

सुग्रीव भी उसी मार्ग पर बढ़ रहे हैं...ठीक कहलवाया है राम ने—वाली जिस मार्ग से गया है, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ है...कहां बंद हुआ है वह मार्ग ? सुग्रीव भी माधवी में डूबकर सब कुछ भूल गये हैं—प्रजा, मित्र, साथी, राज्य। यदि सुग्रीव इसी मार्ग पर बढ़ते गये तो वे भी अपने स्वार्थ, विलास, कामुकता, लंपटता इत्यादि के सिवाय और कुछ नहीं साध पाएंगे...वे अपने स्वार्थों के लिए अपनी प्रजा के शत्रु हो जाएंगे, उनके

अपने मित्र और साथी उनके वैरी हो जाएंगे...ये ही अंगद और हनुमान उनका वध कर डालेंगे अथवा करवा डालेंगे...

राम ने कहलवाया है कि जिस मार्ग से वाली गया है, वह मार्ग अभी बंद नही हुआ ?...क्या राम ने उस मार्ग की ओर संकेत किया है, जिस मार्ग के द्वार उनके बाण खोलते हैं ?...शक्तिशाली वाली, जो वज्र का आघात हंसकर झेलता था, राम के एक बाण को नही सह पाया...एक ही बाण से वह यम के द्वार तक जा पहुंचा...राम के बाण अभी समाप्त नही हुए, राम की शक्ति कम नही हुई...यदि अपने मित्र की पत्नी को लौटा लाने के लिए वे वानरराज वाली का वध कर सकते है, तो अपनी पत्नी की खोज मे विघ्न-स्वरूप अड गये सुग्रीव को वे जीवित छोड देंगे क्या ?... और जब राम के बाण से वाली की रक्षा नहीं हो सकी, तो सुग्रीव की रक्षा कौन करेगा !

सुग्रीव को लगा, उन्हें किसी ने पुन. एक बार उठाकर उनके अतीत मे ला पटका है। पहले जैसे आधी रात के समय, अपनी पत्नी को अकेली और निस्सहाय छोड़कर वे एक लंबे समय तक वनों और पर्वतों की गुफाओं मे भटकते फिरे थे, वैसे ही वे फिर एक बार राम के बाणों के भय से भूखे-प्यासे असहाय वन-वन भटकते फिरेंगे। वाली के विरुद्ध तो अनेक लोगो ने उनका साथ दिया था, इस बार शायद कोई उनका साथ भी न दे. .तब उनमे न्याय के पक्ष का आत्मबल तो था, आज वह भी नही है। राम से त्राण पाने के लिए, उनके विरुद्ध सुग्रीव को उन लोगों का संबल ग्रहण करना पडेगा, जिनसे उन्होने सदा घृणा की है...रावण-जैसे लोग...

सुग्रीव को लगा, उनके मस्तिष्क मे कही कण भर भी माधवी का मद नही रह गया है। सारा प्रमाद जाने कहा उड गया है। वे वस्तुस्थिति को आमने-सामने देख रहे हैं। वे किष्किंधा के सम्राट हैं। यह उनका प्रासाद है और उनका अपना कक्ष है। उनकी दोनो पत्नियां उनके समीप खडी है। अगद जैसा वीर और समर्थ पुत्र तथा हनुमान जैसा बलशाली साथी—दोनों विद्यमान है। उनके अगरक्षक, द्वारपाल, सेवक, परिचारक सब है...और उन सब के बीच निर्भीक खडे लक्ष्मण, 'नीच' तथा 'कृतघ्न' जैसे विशेपणों

से उन्हें संबोधित कर रहे हैं और युद्ध की चुनौती-स्वरूप अपना धनुष टंकार रहे है...

राम और लक्ष्मण के बाणों से वे तनिक भी सुरक्षित नहीं है...सुग्रीव का शरीर भय से कांप उठा। उन्हें लगा, उनका मस्तिष्क अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर पा रहा है...

लक्ष्मण की फटकार से तारा भी पर्याप्त विचलित हो गयी थीं। उन्हे लगा कि अब तक लक्ष्मण के साथ हुई वार्ता के कारण, लक्ष्मण के व्यवहार मे उत्पन्न हुई कोमलता नष्ट हो चुकी है और उसका कोई प्रभाव लक्ष्मण के हाव-भाव पर शेष दिखायी नही दे रहा...लक्ष्मण ने यह तो कहा था कि यदि सुग्रीव को कोई समझा नही सकता, तो लक्ष्मण उन्हें समझाएंगे; किंतु समझाने का ढंग इतना कठोर होगा, यह तारा ने नहीं सोचा था।...यहा तक भी कोई हानि नहीं है, किंतु यदि लक्ष्मण ने सुग्रीव का और भी अपमान किया, अथवा जिस धनुप को वे बार-बार टंकार रहे है, उस पर बाण चढा लिया, तो समझाने की वह पद्धति अत्यधिक क्रूर हो जाएगी।

लक्ष्मण की फटकार के उत्तर मे सुग्रीव कुछ सोचते-से चुप खड़े थे। वह मौन मद के कारण नही, किसी अन्य चिंता के कारण लग रहा था।

सुग्रीव की ओर से कोई उत्तर नहीं आया तो अंततः तारा ही बोली, "कुमार! सम्राट से प्रमाद अवश्य हुआ है; किंतु उनका अपराध इतना गम्भीर नहीं है कि उनकी मर्यादा की चिंता किये विना—उनकी प्रजा के सम्मुख उनका अपमान किया जाए। वे वानरों के सम्राट हैं।" तारा रुकी, किंतु इससे पूर्व कि लक्ष्मण कुछ कहते, वे पुनः बोलीं, "किसी वस्तु से वंचित हो जाने के कारण उसके प्रति सामान्यतः हमारा आकर्षण बढ़ जाता है। कठोर प्रवास के पश्चात् यदि सुग्रीव के मन में विलास के प्रति आसक्ति जाग ही गयी है, तो सम्राट से कोई अक्षम्य अपराध नहीं हो गया। राम ने यदि सुग्रीव की सहायता की है तो सुग्रीव भी राम की सहायता करेंगे। विभिन्न वानर यूथों से सम्राट ने जो खोजी बुलवाये हैं, वे उन्हें आज ही देवी जानकी की खोज में विभिन्न दिशाओं मे भेजेंगे। और..." तारा का स्वर कुछ आवेशपूर्ण हो उठा, "इतने पर भी यदि राम समझते हैं कि उन्हें अब

सुग्रीव की आवश्यकता नही है, तो वे आकर सुग्रीव का वध कर दें। किंतु इतनी बात मेरी सुनते जाओ, राजकुमार ! कि संसार में ऐसा कोई मनुष्य नही है, जिसे किसी अन्य व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं है। मैं कभी लका नही गयी हूं; किंतु मैंने वीरवर वाली से सुन रखा है कि रावण की राक्षस सेनाओं की गणना भी सभव नही है। उस सेना से युद्ध कोई हंसी-खेल नही है। यदि राम चाहे तो सुग्रीव को अपना मित्र मानें—सुग्रीव अपनी समस्त वानर सेनाओ के साथ, उनके पक्ष से रावण के विरुद्ध युद्ध करेंगे, अन्यथा राम सुग्रीव का वध कर, अपनी पत्नी की खोज मे इन वनो, पर्वतो तथा समुद्र की लहरों पर अपना कपाल पटकने को पूर्णतः स्वतंत्र है।"

तारा की वात ने लक्ष्मण को अप्रभावित नहीं छोड़ा। अपना आक्रोश प्रकट कर चुकने के पश्चात अब वे उतने कठोर भी नही रह गये थे। तारा के तर्क ने उन्हें और भी कोमल कर दिया। बोले, "हम हत्याओं का व्यापार करने वाले क्रूर और हिंस्र जीव नही हैं, साम्राज्ञी ! और न ही पूज्य-पूजन के अयोग्य है। किंतु सम्राट ने न केवल अपने शैथिल्य से हमें व्याकुल किया है; वरन अपने राज्य में अनेक संकटों को जन्म दिया है। यदि इन्होंने अब भी सक्रियता न दिखायी तो विभिन्न वानर-यूथ परस्पर ही लड़कर नष्ट हो जाएगे। तब कहां रहेगा वानर-राज्य और कहा रहेंगे वानर-सम्राट !"

लक्ष्मण को मित्र-भाव से बोलते देख, सुग्रीव के शरीर मे भी प्राण लौटे। वे सकोचपूर्वक लक्ष्मण के निकट आए और बहुत धीमे स्वर में बोले, "तुम ठीक कहते हो, सौमित्र ! मैंने अपने प्रमाद और शैथिल्य से अपने हितैषियों तथा प्रजा के प्रति अपराध किया है। न केवल मैं अपनी प्रजा के प्रति अपने धर्म को भूल गया था, वरन अपने प्रति किये गये आर्य राम के उपकार को भी विस्मृत कर बैठा था। तुम मुझे क्षमा करो, सौमित्र !" सुग्रीव का स्वर ग्लानि-विगलित हो उठा, "और आर्य राम से भी क्षमा प्राप्त करने में मेरी सहायता करो। तुम्हारे कठोर शब्दों तथा व्यवहार के प्रति मेरे मन में तनिक भी प्रतिवाद नही है। यदि तुमने ऐसा कठोर व्यवहार न किया होता, तो कदाचित मेरा प्रमाद भी न मिटता...व्याधि

जितनी गंभीर होगी, औषधि भी उतनी ही कटु होगी। मुझे लगता है कि मैं एक लंबी मोह-निद्रा से जागा हूं।" सुग्रीव ने रुककर कहा, "देवी जानकी के संधान के लिए खोजियों के प्रस्थान के लिए मैं शीघ्र व्यवस्था करूंगा।"

"पहले अपनी किष्किंधा की व्यवस्था तो कर लो, सम्राट! अपने खोजियों को अपनी सेना और यूथों की शांति की खोज में भेज लो।" लक्ष्मण का स्वर पुनः कटु हो गया, "देवी जानकी के संधान के लिए हमने चार मास प्रतीक्षा की है। एक दिन और कर लेंगे; किंतु तुम्हारे यूथों और वाहिनियों में यदि गृह-युद्ध आरंभ हो गया तो देवी जानकी की खोज में जाने वाला कोई खोजी बचेगा भी नहीं।"

"गृह-युद्ध?" सुग्रीव साकार प्रश्न-चिह्न बने हुए थे।

"सम्राट!" उत्तर हनुमान ने दिया। अपने सम्राट को फिर से जागा हुआ पाकर वे अत्यन्त प्रफुल्लित लग रहे थे, "यूथपति असिगुल्म-समर्थक सैनिक आपकी अनुचर वाहिनियों पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधीन करने अथवा नष्ट करने की योजनाएं बना रहे हैं।"

सुग्रीव का पुराना तेज उनके चेहरे पर लौटा, "हनुमान! तत्काल कुछ आदेश प्रचारित करवा दिये जाएं। राजद्रोह के अपराध में यूथपति असिगुल्म को अपने समस्त पदों से पदच्युत किया जाता है और उनकी समस्त चलाचल संपत्ति राजकोष में सम्मिलित की जाती है। कोटपाल को मेरा आदेश दो कि वे असिगुल्म को तत्काल बंदी करें।...बहुत हो चुका, अब मैं अपने अन्तर्द्वन्द्व की जड़ता के कारण वानरों को नष्ट नहीं होने दूंगा।" सुग्रीव जैसे अपने-आपसे बोले, "युवराज! खनिज-पदार्थों वाली भूमि के स्वामियों को उचित मूल्य देकर उन भूमियों की तत्काल खुदाई आरंभ की जाए; और यदि भूपति राज-पुरुषों के कार्य में बाधा डालें तो सशस्त्र वाहिनी की सहायता से उन्हें उचित दंड दिया जाए। साथ ही नल और नील को मेरा आदेश दो कि वे विवादास्पद भूमि पर श्रमिकों का ही अधिकार स्वीकार करें और वहां उनके आवासों के निर्माण का कार्य तत्काल आरंभ करवा दें।"

"जो आज्ञा, सम्राट!"

"चंचला !" सम्राट ने एक नये प्रकार के आवेश में, अंत.पुर की प्रधान परिचारिको को आदेश दिया, "राजप्रासाद मे जहा भी कही, किसी भी प्रकार, जाति तथा श्रेणी की मदिराएं हो, उन्हें नष्ट कर दिया जाए। मदिरा के भांड़ और चपक भग कर दिये जाएं। अब से राजप्रासाद में मदिरा अथवा अन्य कोई भी मादक पदार्थ प्रवेश नही पा सकेगा।" वे पुनः हनुमान की ओर मुड़े, "हनुमान ! महेन्द्र, हिमवान, विंध्य, कैलास, मदराचल, अंचन पर्वत, मेरु पर्वत तथा अन्य पर्वतो की गुफाओं अथवा अन्य दुर्गम स्थानो मे प्रच्छन्न रूप से वास करने वाले वानरो के पास शीघ्रगामी दूत भेजो ! उन्हे मेरा सदेश दो कि राक्षसो के अत्याचारो से पीड़ित होकर अपने स्थान को छोड़, सुरक्षित स्थानों की खोज मे गये वानरो को सुग्रीव का आह्वान है कि अब रावण का भय मानने की आवश्यकता नही है। अब कहीं भी कोई राक्षस उन्हे व्याकुल करने का साहस नही करेगा। अब हम निरीह प्राणी बनकर, राक्षसो के अत्याचारों से डरकर मारे-मारे फिरने वाले, विभिन्न जातियों, राज्यो अथवा पृथ्वी के दुर्गम स्थानो मे अपनी सुरक्षा के लिए शरण मागने वाले भीरु लोग नही है। अब आर्य राम और लक्ष्मण जैसे वीर योद्धा और प्रशिक्षक हमारे सहायक है। सुग्रीव उन सभी प्रवासी वानरों को किष्किधा राज्य में लौट आने के लिए आमन्त्रित करता है। हम राक्षसो से उनके अब तक के अत्याचारो का प्रतिशोध लेंगे। अब किसी को प्राण-रक्षा के लिए अपना मूल स्थान छोड़कर भागना ही हुआ तो राक्षस भागेंगे। हम आक्रामक युद्ध करेंगे और राक्षसो द्वारा होने वाले वानरो के विभिन्न अंचलों, क्षेत्रों और यूथों के शोषण को सदा के लिए समाप्त कर देंगे। अपनी जाति या राज्य पर होने वाले अत्याचार के विरुद्ध लड़ने वाले प्रत्येक वानर का वानरराज सुग्रीव किष्किधा में स्वागत करेगा।" सुग्रीव ने क्षण भर रुककर अपने अधरों को जिह्वा से गीला किया, "और जो लोग वीरवर वाली के आतंक से भयभीत होकर वानर-यूथो तथा वानर-क्षेत्रो को छोड़कर चले गये है, उन्हे भी अपने क्षेत्रो और यूथो मे लौट आने के लिए आमन्त्रित करो। उनसे कहो, अब किष्किधा में जन-कल्याणकारी राज्य की स्थापना कर दी गयी है। अब हम परस्पर नही लड़ेंगे, एकजुट होकर अपने शत्रुओं

से लड़ेंगे; एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण नही करेगा, हम सब मिलकर अपने लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रकृति से अर्जन करेंगे।...उनसे भी लौट आने के लिए कहो, जो आजीविका के अभाव में अपना स्थान छोड़कर देश-विदेश मे भटक रहे हैं। उन वानरों से कहो कि उन्हें अब अपना पेट भरने के लिए विदेशों मे अपमानजनक जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता नही है—वानर-राज्य अब समस्त वानरों के लिए अपना घर है और अपने घर मे मिलने वाली समस्त सुविधाएं उन्हें अब मिलेंगी।"

सुग्रीव के चारों ओर उल्लास का वातावरण था, जैसे मृत सम्राट फिर से जीवित हो उठा हो। हनुमान, अंगद, तारा, रुमा—सब ही लोग जैसे कोई अद्भुत चमत्कार देख रहे थे। कुछ क्षण पहले तक जो लक्ष्मण उनके लिए आतंक बनकर आए थे; वे अब कैसे प्रिय और आत्मीय लग रहे थे। एक बार अपने बाण से वाली का वध कर राम ने सुग्रीव को जीवन-दान किया था; और आज लक्ष्मण ने अपनी उग्रता से सुग्रीव के प्रमाद की हत्या कर उन्हें पुनर्जीवन दिया था।

और लक्ष्मण हैरान थे कि सचमुच सुग्रीव में कोई अब तक मूर्च्छित प्रेत जाग उठा था, या वे उन्हें प्रसन्न करने के लिए बिना सोचे-समझे, राम और लक्ष्मण के भय में आविष्ट, आदेश पर आदेश देते जा रहे थे। पर सत्य यही था कि वे आदेश दे रहे थे।

"सम्राट!" अततः सस्मित लक्ष्मण सौहार्दपूर्ण स्वर में बोले, "इन समस्त आज्ञाओं की प्रतीक्षा हम लंबे समय से कर रहे थे; इसलिए हमारे लिए आज महोत्सव का दिन है। किंतु इतनी सारी कठोर आज्ञाएं एक साथ देने से पूर्व इस विषय मे विचार कर लें कि कही कल आपके आलोचक यह न कहें कि ये सारी आज्ञाएं राम की धमकी से भीत होकर सुग्रीव ने आत्मरक्षा के भाव से प्रेरित होकर दी हैं। ऐसा न हो कि निकट भविष्य में इन आक्षेपों के कारण आपके लिए कोई समस्या खड़ी हो जाए।"

"यदि मेरे मित्र हो तो मुझे पुनः उस संकट में न डालो, सौमित्र!" सुग्रीव अत्यन्त दीन स्वर में बोले, "तेजस्वी पुरुष अपने तेज के साथ ही सहज होकर जी सकता है। जब इस प्रकार के ऊहापोह, अन्तर्द्वन्द्व और

चिंतन-मनन उसकी तेजस्विता को बदी बनाने लगते है तो उसका दम घुटने लगता है। मैंने यह राज्य अपने भाई का वध करवाकर पाया है— इस विचार ने मेरी स्वतत्र विचार-शक्ति को ग्रस लिया था। मैंने अपनी अन्तरात्मा से आदेश लेने बद कर, यही सोचना आरंभ कर दिया था कि मेरे किस कार्य की आलोचना किस रूप मे होगी, और उस आलोचना से बचने के विचार से स्वय को पूर्वाग्रह-रहित, पक्षपात-शून्य तथा स्वतत्र विचारक सिद्ध करने की चिंता मे, मैं अपनी तेजस्विता का दम घोटता रहा तथा अपनी पीड़ा से बचने के लिए विलास के गर्त्त मे गहरे से गहरे उतरता रहा।...किसी के समझाने-बुझाने और उपदेश का मुझ पर कोई प्रभाव नही हुआ। अब, जब तुमने मेरे प्राणो के लिए भय उत्पन्न कर दिया तो मेरी आत्मा अपने समस्त बधन तोड़कर जाग उठी है; अब पुनः उसे अनिर्णय की ओर मत धकेलो।"

"आपने सत्य कहा, वानरराज! तेजस्वी पुरुष अपने तेज से जाज्वल्यमान होकर न जी सके तो उसकी आत्मा कुंठित होने लगती है। भीतर-भीतर घुटना लक्ष्मण का भी स्वभाव नही है..." लक्ष्मण उन्मुक्त मन से हसे, "इसलिए मैं आपसे भी इस प्रकार जीने को नही कहूगा। जीना तो अपनी प्रकृति के अनुकूल होकर ही जीना है, अपनी अन्तरात्मा के संकेत पर।" लक्ष्मण ने रुककर विषय बदला, "तो सम्राट! यदि आप स्वस्थ हो और किष्किंधा के बाहर निकल सकते हों तो कृपया प्रस्रवण-गिरि पर पधारने का कष्ट करें और अपने मित्र की व्याकुलता कम करें।"

"तुम चलो, सौमित्र!" सुग्रीव का पूर्ण आत्मविश्वास उनके स्वर में बोल रहा था, "मैं आवश्यक व्यवस्था कर थोड़ी ही देर में उपस्थित होता हूं।"

"जैसी आपकी इच्छा, आर्य!" लक्ष्मण बोले, "इस जागरण-प्रक्रिया में मुझसे जो अनुचित कहा गया हो, आपके प्रति जो अभद्र व्यवहार हुआ हो, उसके लिए क्षमा कीजिएगा। आपका अपमान करना मेरा लक्ष्य नही था।"

"तुम धन्य हो, मित्र!" सुग्रीव हंसे, "मैं न तो कभी तुम्हारे हृदय की कठोरता को पा सका और न कोमलता को।"

राम ने सारा विवरण सुना।

सब कुछ कितना विचित्र था—ऋष्यमूक पर मिलने वाला सुग्रीव कितना भयातुर था। उसके साथियों ने बताया था कि मायावी की खोज में गये वाली की अनुपस्थिति में सुग्रीव ने अद्‌भुत जन-समर्थक नीतियों को अपनाया था, और थोड़े ही समय में किष्किंधा का रूप बदल दिया था। और वाली के वध के पश्चात सम्राट बनते ही कैसा आलसी, जन-विमुख, कामुक और विलासी हो गया था सुग्रीव।...और अब...उसके विषय में राम की धारणा ठीक थी। प्रकृति से नीच नहीं है सुग्रीव। नीच व्यक्ति को उदात्त कार्य करने से पीड़ा होती है और उदात्त व्यक्तित्व अपनी प्रकृति के अनुकूल कार्य न कर सकने के कारण तड़पता है।...पिछले दिनों, जब सुग्रीव के सभी साथी और स्वयं राम अपने मन में सुग्रीव के विरुद्ध अनेक धारणाएं पाल रहे थे, कि वह कामुक और विलासी हो गया है—उन दिनों सुग्रीव अपने मन की यातना को माधवी से धोने का प्रयत्न कर रहा था...अर्थात् यह व्यक्ति केवल तेजस्वी निर्णय ले सकता है, और तेजस्वी बनकर जी सकता है। आत्ममंथन की यातना सहने का सामर्थ्य नहीं है सुग्रीव में। जीवन की विघ्न-बाधाओं तथा संसार के छलछंद से कभी आत्ममंथन का अवसर आया तो यह व्यक्ति टूटने लगेगा। इसके सम्मुख विकल्प आने ही नहीं चाहिए। उसे केवल सीधा मार्ग दिखायी पड़ना चाहिए, जिस पर वह अपनी पूर्ण गति से बढ़ता जाए, जहां दोराहा आया कि यह व्यक्ति वहां बैठकर अपना सिर धुनने लगेगा।

राम की दृष्टि प्रस्रवणगिरि के चरण प्रदेश पर गयी। वानरों की अनेक सैनिक टुकड़ियां उनके आश्रम की ओर आ रही थीं। उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि इस असाधारणता के कारण, राम के माथे पर भी चिंता की दो-एक रेखाएं खिंच आयीं।

"प्रातः हमारे जन-सैनिकों ने सुग्रीव के प्रासाद को घेरा था, भैया। यह उसी का प्रतिकार तो नहीं है।"

"सुग्रीव इतना मूर्ख नहीं हो सकता।"

"किंतु हमें सावधान तो रहना ही चाहिए।"

लक्ष्मण ने अनिन्द्य को संकेत किया। पलक झपकते ही समस्त

आश्रमवासी शस्त्रबद्ध हो गये। किंतु, सशय की स्थिति अधिक देर तक नहीं टिक पायी। वे टुकडिया वानर सैनिको की ही थी, किंतु उनमें से किसी के भी हाथ मे कोई शस्त्र नही था। फिर, वे टुकड़िया आश्रम के बाहर ही, कुछ दूरी पर रुक गयी थी। लगा, जैसे वे लोग किसी की प्रतीक्षा कर रहे है। थोड़ी ही देर मे प्रस्रवण के पग-प्रदेश में एक शिविका आकर रुकी और उसमे से सुग्रीव उतरे। लक्ष्मण को दिये गये अपने वचन के अनुसार वे आ पहुचे थे।

पर्वत के ऊपर सुग्रीव पैदल ही चढे और सबसे पहले उन्होने आश्रम में प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे नीचे रुक गयी वानर टुकड़ियों ने भी आश्रम में प्रवेश किया। वे सारे सैनिक, सुग्रीव के ही समान, राम के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

"यह क्या कर रहे हो, वानरराज ?" राम ने कुछ विस्मय के स्वर मे कहा।

"आर्य ! मेरी श्री, कीर्ति और सदा से चला आने वाला वानरों का यह राज्य प्रायः नष्ट हो चुका था। आप तथा आपके वीर भाई के प्रताप से इन सबकी पुनर्प्रतिष्ठा हुई है। कृतज्ञता तथा उपकार को न मानने वाला मनुष्य पशु है। मैं अपने प्रमाद में ग्रस्त होकर अब तक जो पाप कर चुका हू, आपसे उसकी क्षमा-याचना करने तथा अब यथासभव आपकी सेवा करने के लिए उपस्थित हुआ हू।"

सुग्रीव राम के सम्मुख घुटनो के बल बैठ गये और अपने जुड़े हुए हाथो पर उन्होने अपना माथा टेक दिया।

राम तत्काल आगे बढे और उन्होने कधों से पकड़कर सुग्रीव को उठाया और हृदय से लगा लिया, "मैं सौमित्र से सब कुछ सुन चुका हूं, मित्र ! आत्मग्लानि से अपने तेज को क्षीण मत करो। मैत्री समानता के आधार पर होती है। हम दोनो मित्र हैं। यदि इस प्रकार दीन व्यवहार करोगे, तो मैत्री टिक नहीं पाएगी।"

सुग्रीव प्रकृतस्थ होकर राम के निकट एक शिला पर बैठ गये, "राम ! मैं दो कार्य साथ-साथ करना चाहता हूं—एक देवी जानकी की खोज में

विभिन्न दिशाओं मे खोजियों को भेजना और दूसरे वानर-यूथों को आसन्न राक्षस-युद्ध मे, रावण की सेनाओं से युद्ध कर सकने योग्य प्रशिक्षण देना।"

"तीन कार्य एक साथ करो, मित्र !" राम सस्मित बोले, "दो जो तुमने कहे हैं और तीसरा—वानर प्रजा के हित कल्याण-कार्यों तथा किष्किधा के निर्माण-कार्यों को पूर्णता की ओर बढाना।"

"हां, वह भी !" सुग्रीव बोले, "किंतु देवी जानकी की खोज के लिए विभिन्न दिशाओं मे भेजे जाने वाले वानरों का चयन महत्त्वपूर्ण कार्य है।" वे निमिष भर रुककर बोले, "मेरा ऐसा विचार है कि हम सधान-टोलियों को यथासंभव प्रत्येक दिशा में भेजें; किंतु अधिक संभावना यही है कि जानकी को रावण लंका में ही ले गया होगा। ऐसा मैं दो कारणों से समझता हू—एक तो लंका की सुरक्षा-व्यवस्था की दृष्टि मे और दूसरे, रावण सीता को अपने निकट ही रखना चाहेगा। इस समय उसके लका में ही होने की सभावना अधिक है; क्योंकि अन्यत्र कही से भी उसके किसी उत्पात के समाचार नही आ रहे है। इसलिए सबसे महत्त्वपूर्ण संधान-दल लंका की ओर ही जाना चाहिए और उसमें सबसे योग्य व्यक्ति सम्मिलित होने चाहिए। मेरे विचार से हनुमान, अंगद, नील, तार, जाम्बवान, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, वृषभ, मैंद, द्विविद, गंधमादन, उल्कामुख तथा असंग को इस दल में होना चाहिए।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।" राम ने सहमति प्रकट की, "मेरे विचार से भी दक्षिण दिशा की ही अच्छी प्रकार खोज होनी चाहिए; और उसमें भी विशेष रूप से लका की। जनस्थान से भागकर शूर्पणखा भी वही गयी थी। रावण भी सीता का हरण कर किष्किधा के निकट से होकर गया है, तो सभवतः लका ही गया होगा। लंका की भली प्रकार खोज हो, मित्र ! किंतु इस दल में तुमने अपने अनेक प्रिय जन रखे हैं। विचार कर लो, इन्हें शत्रुओं के घर मे घुसकर जानकी का अन्वेषण करना है। यह न हो कि ये लोग किसी कठिनाई में फंस जाएं।"

"वह मैंने सोच लिया है।" सुग्रीव बोले, "मुझे चिंता उस बात की नही है। चिंता इस बात की है कि यदि ये सब लोग अन्वेषण के लिए चले गये, तो पीछे से राक्षस-युद्ध के लिए सेना-निर्माण का कार्य कौन करेगा ?"

"सैनिक-प्रशिक्षण का कार्य मेरा, सौमित्र का और मेरे जन सैनिकों का है।" राम आश्वस्त स्वर में बोले, "मेरे ये जन-सैनिक अब तक सैन्य-प्रशिक्षण में इतने अनुभवी हो चुके हैं कि उनसे श्रेष्ठ प्रशिक्षक कदाचित ही कहीं मिलें।"

"तो फिर यही हो ! देवी जानकी के अन्वेषण का दायित्व मुझ पर रहा और राक्षसों को सम्मुख युद्ध में पराजित करने में समर्थ वानर-सेना के निर्माण और प्रशिक्षण का कार्य आपका।" सुग्रीव बोले और वे प्रधान चर की ओर मुड़े, "नीचे जाकर मुख्य यूथपतियों तथा समस्त पार्षदों को आश्रम में बुला लाओ।"

राम का आश्रम सुग्रीव के यूथपतियों और पार्षदों से भर गया। राम को ऐसा आभास नहीं था कि सुग्रीव इस प्रकार पूर्ण तैयारी के साथ आये हैं।

"अंगद !" सुग्रीव बोले, "मेरे पुत्र और युवराज होने के नाते, मेरे दायित्वों के निर्वाह का सर्वाधिक बोझ तुम्हारे ऊपर है, इसलिए देवी जानकी के अन्वेषण में मैं सबसे अधिक दायित्व का कार्य तुम्हें सौंप रहा हूं। मैं और आर्य राम प्राय. सहमत हैं कि रावण सीता को लंका में ही ले गया होगा। अत: तुम लंका की दिशा में ही जाओ। तुम्हारे साथ हनुमान, जाम्बवान, तार, नील, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, वृषभ, मैंद, द्विविद, गंधमादन, उल्कामुख तथा असंग होंगे। खोजियों की एक पूरी टोली तुम्हारे साथ जाएगी, जो तुम्हें मार्ग खोजने, मार्ग की वनस्पतियों, जीव-जंतुओं इत्यादि के विषय में सूचनाएं देने, मार्ग में रुकने की व्यवस्था करने तथा अन्य प्रकार की कठिनाइयों में सहायता पहुंचाएगी। यदि चाहो तो अपने साथ सशस्त्र वाहिनियां भी ले जा सकते हो।" सुग्रीव रुके, "मुझे पूर्ण विश्वास है कि देवी जानकी लंका में ही होंगी, अत: उन्हें खोजने का पूर्ण दायित्व तुम्हारा ही है, पुत्र ! राक्षस लोग बलवान और मायावी हैं; और मार्ग तुम्हारे लिए अनजाना है, इसलिए सावधान होकर जाना। हनुमान, जाम्बवान, तार तथा नील तुमसे अधिक अनुभवी हैं, अत. उनके परामर्श का पूरा लाभ उठाना; किंतु युवराज होने के नाते, दल के नायक

तुम्ही रहोगे। निर्णय का अधिकार तथा अन्वेपण का दायित्व तुम्हारा ही होगा।"

अगद ने हाथ जोड़ दिये, "आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन होगा, सम्राट !"

"और पुत्र ! एक बात का ध्यान रखना।" सुग्रीव का स्वर कुछ आर्द्र हो उठा, "तुम इकलौते पुत्र हो मेरे। और वानर राज्य के युवराज को अपने प्राणो की रक्षा पूर्ण चतुराई से करनी होगी। लका में प्रवेश के लिए समुद्र पार करना होगा। ऐसे स्थान से समुद्र पार मत करना, जहा से राक्षसो का आवागमन होता हो, अथवा जहा निकट ही उनका जलपत्तन हो। उनकी दृष्टि तुम लोगों पर पड़ गयी तो हमारे लिए संकट खड़ा हो जाएगा। सारा अन्वेपण गोपन रीति से हो और एक मास के भीतर वापस लौटकर अपनी खोज की सूचना दो। एक मास की अवधि के पश्चात असफल लौटने वाले दल के लिए मैं मृत्यु-दंड प्रस्तावित कर रहा हूं... समझ रहे हो न ?"

"सम्राट की आज्ञा पूरी होगी।"

"जाओ, पुत्र ! अपने साथियों को सूचना दे दो और आर्य राम से आवश्यक निर्देश लेकर यथाशीघ्र प्रस्थान करो।"

अगद के पश्चात् सुग्रीव ने किष्किधा के प्रसिद्ध योद्धा-वैद्य तथा तारा के पिता, सुषेण को बुलाया, "आर्य ! पश्चिम दिशा मे देवी जानकी के अन्वेपण का दायित्व आप ग्रहण करें। आप अपने साथ अपने मत्रियों को ले लें। खोजियों का एक दल आपके साथ भी जाएगा ही। आवश्यक समझें तो अपनी इच्छानुसार सशस्त्र वाहिनियो को भी साथ ले लें। एक मास के भीतर आकर अपनी खोज की सूचना दें।"

"सम्राट की इच्छा पूरी होगी।" सुषेण बोले।

"पश्चिम दिशा मे पड़ने वाली राक्षस बस्तियो, रावण के शिविरों और स्कधावारों, उसके अधीनस्थ राजाओं के प्रासादों तथा राक्षस नगरों को अच्छी प्रकार देखिएगा। और जहा भी आपको देवी जानकी के छिपाये जाने की संभावना दिखे, उस स्थान का पूर्ण परीक्षण कीजिएगा।"

"अपनी क्षमता भर मैं पूर्ण अन्वेषण करूगा, सम्राट !"

पूर्व दिशा में जाने वाले दल का नायकत्व सुग्रीव ने विनत तथा उत्तर में जाने वाले दल का नायकत्व शतबलि को सौंपा।

सम्राट का आदेश पाकर चारों दलों के नायक राम के सम्मुख उपस्थित हुए।

राम ने उन्हें जाने को प्रस्तुत देखा तो उनका मन भर आया। आर्द्र स्वर मे बोले, "मित्रो ! इस समय आप लोग मुझे अपने भाइयो से भी बढ़कर है। जो कार्य मैं स्वय नही कर सका, सौमित्र नही कर सके—वह कार्य करने के लिए आप लोग जा रहे है। मेरे इस कथन में तनिक भी अतिरजना नही है कि मेरा मानापमान ही नही, सीता की उपलब्धि और उसके माध्यम से मेरे प्राणों की रक्षा आपके इस अनुसधान-कार्य पर निर्भर है। मेरे मन मे इस समय आप लोगों के प्रति क्या भाव है, यह मैं शब्दों में अभिव्यक्त नही कर सकता।" क्षण भर के लिए वे रुके, जैसे अपने स्वर की थरथराहट को साध रहे हो, "यद्यपि अधिक संभावना इसी बात की है कि दक्षिण की ओर जाने वाला दल ही कदाचित सीता तक पहुच पायेगा, फिर भी यह निश्चित नही है कि आपमें से कौन लक्ष्य तक पहुंचेगा। जो भी सीता को खोज पाये, और उन तक पहुच पाये, उसे चाहिए कि वह उन्हें विश्वास दिलाये कि उन्हे मुक्त कराने के लिए हम कटिबद्ध है और उनकी सूचना मिलते ही उनकी मुक्ति के लिए सैनिक अभियान आरंभ कर देंगे। उसके लिए आवश्यक होगा कि सीता को कोई ऐसा प्रमाण दिया जाए कि उन तक पहुचने वाला दूत मेरी ओर से ही आया है।"

राम ने रुककर लक्ष्मण की ओर देखा।

लक्ष्मण उठकर राम की गुफा के भीतर गये और अगले ही क्षण मुट्ठी मे कुछ दबाये हुए बाहर आये। वह वस्तु उन्होने राम की फैली हुई हथेली पर रख दी।

राम ने अपनी मुट्ठी बद नही की। सबने देखा—वे किसी विशिष्ट घास की बनायी हुई चार मुद्रिकाएं थी।

"वनवास की अवधि मे मेरे पास कोई आभूषण नही रहे। एक वनवासी के समान मैंने सदा गवद घास की ऐसी मुद्रिकाएं बना-बनाकर स. समय पर सीता को पहनाई थी। अपनी प्रिया से ि.

विषय मे कोई सूचना नही है।"

सुग्रीव थोडी देर तक सोचते रहे, "जाओ ! उसके राज्य-निष्कासित किये जाने के आदेश को प्रचारित करवा दो। समस्त सीमा-चौकियों को यह सूचना भिजवा दो। राज्य के भीतर जहा कहो असिग्नुल्म देखा जाए, उसे बदी किया जाए। स्वय खेती कर भरण-पोषण के लिए पर्याप्त भूमि उसके परिवार के लिए छोडकर, शेष सारी चल और अचल सपत्ति राज्य द्वारा अधिकृत कर ली जाए।"

कोटपाल प्रणाम कर लौट गया।

सुग्रीव ने अन्य उपस्थित यूथपतियो को राम के निकट प्रस्तुत होने का सकेत किया।

"राम ! ये हनुमान के पिता कपिश्रेष्ठ यूथपति केसरी है। ये भयंकर पराक्रमी महाराज गजाक्ष हैं। ये अत्यन्त वेगशाली धूम्र है। ये यूथपति पनस है। ये यूथपति सवय है। ये वानरों के बलवान यूथप दरीमुख है। ये तेजस्वी और बलवान रुमण्वान हैं। ये वीर यूथपति इद्रजानु हैं। ये रभ है। ये यूथपति दुर्मुख है। ये महापराक्रमी नल है—इन्हे आप जानते ही हैं। ये दधिमुख है। ये शरभ, कुमुद, वह्नि और रंह है। ये लोग अपनी समस्त वाहिनियो के साथ उपस्थित हैं। किष्किधा में केवल राजकीय सेना है। इनकी वाहिनियां किष्किधा के निकट के वन-पर्वतों में अपने स्कधावार डाले पड़ी हैं। हम सब आपकी सेवा मे तत्पर है। आप आदेश दें और जिस प्रकार चाहे हमारा उपयोग करें।"

"बैठो, मित्रो !" राम ने सबको बैठने का सकेत किया और सुग्रीव की ओर देखकर मुसकराए, "इस सहायता के लिए कृतज्ञ हू। पहले मेरे मन में जो कुछ भी रहा हो, किंतु आज स्पष्ट देख रहा हू कि तुमने मेरे कार्य को सर्वथा अपना ही कार्य समझा है।" राम कुछ रुके और फिर सबसे सबोधित होकर बोले, "आज सपूर्ण जंबुद्वीप उस राक्षस-शक्ति द्वारा पीड़ित और शोषित है, जिसका केंद्र लका मे है, और जिसका नायक रावण है। आर्यावर्त्त में वह शक्ति बहुत प्रबल नहीं हो पायी है; किंतु विंध्य के नीचे-नीचे उनके अत्याचार अपनी चरम सीमा पर थे। यहा आकर मुझे मालूम हुआ कि यद्यपि वानरों का इतना बड़ा और विस्तृत अपना राज्य है, जन-

वीरवर वाली के द्वन्द्व-युद्धों की बात अलग है। ऐसी स्थिति में लंका पर आक्रमण करना..."

"दरीमुख !" सुग्रीव का क्रुद्ध स्वर गूंजा।

राम ने सुग्रीव के कंधे पर हाथ रख उन्हे शांत किया, "सम्राट ! यह युद्ध-परिषद है, अत. अपना विचार प्रकट करने की सबको पूरी स्वतंत्रता है।...आप रुष्ट न हों। यह दरीमुख की कायरता नही, एक युद्ध-वीर की सावधानी है।"

दरीमुख ने सहमति मे सिर हिला दिया।

"यह असिगुल्म का प्रभाव-शेष भी हो सकता है।" सुग्रीव के स्वर में अब भी फुफकार थी।

"*यह बात आज सदा के लिए स्पष्ट हो जानी चाहिए, सम्राट !*" दरीमुख विनीत किंतु दृढ स्वर मे बोला, "यदि आप अनुमति दें तो अपने सभी साथियों की ओर से निवेदन कर दू कि अपने मन मे हमारे प्रति सशय न रखें। असिगुल्म का प्रभाव असिगुल्म के साथ गया। अब आप हमें अपने प्रिय साथियों के समान ही विश्वसनीय समझें तो युद्ध मे सम्मिलित करें, अन्यथा परस्पर का यह सदेह किसी भी समय अनर्थ कर सकता है।"

"तुम्हारा कहना ठीक है, दरीमुख !" सुग्रीव से पहले राम बोले, "परस्पर का संदेह अनर्थ कर सकता है; अत. सम्राट से निवेदन है कि वे अपने सदेह का शमन करें और यूथपति दरीमुख के वचन को एक वीर का वचन मानकर उसका विश्वास करें, किंतु.." राम का स्वर कुछ कठोर हो गया, "यह भी स्पष्ट रूप से समझ लिया जाए कि विश्वासघाती को कभी क्षमा नही किया जाएगा।"

सुग्रीव ने सहमति मे सिर हिला दिया।

राम का स्वर पुनः सहज हो गया, "वस्तुतः हमे बात यही से आरभ करनी चाहिए कि अब तक वानर राक्षसों से पराजित क्यों होते रहे है—क्या इसलिए कि उनमे वीरता अथवा शौर्य की कमी थी ?"

"नही !" सबने एक स्वर मे कहा।

"क्या उनके पास जन-बल नही था ?"

"नही !"

"क्या वे अपनी विरोधी जनसंख्या के मध्य लड़ रहे थे ?"

"क्या युद्ध-क्षेत्र की प्रकृति और भूगोल उनके विरुद्ध था ?"

"नही !"

"तो फिर क्या कारण था ?" राम बोले, "वस्तुतः युद्ध तो जन-बल से ही जीते जाते हैं, किंतु कुछ अन्य उपकरण भी होते हैं, जिनसे जय-पराजय का निर्माण होता है। उनमें से एक है—शस्त्र-बल; शस्त्रों की जानकारी, शस्त्र-परिचालन का कौशल। उसके लिए आवश्यक है शस्त्र-उद्योग। युद्ध एक विद्या है; अतः व्यूहों की योजना भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। सैनिक नेतृत्व की दक्षता भी युद्धों की जय-पराजय का निर्माण करती है। इसके साथ आवश्यक है—खाद्य-सामग्री तथा यातायात के साधन।" राम निमिष भर रुककर बोले, "आपके साधारण सैनिकों के पास कौन-से शस्त्र है—दंड तथा गदा। आपके सैनिकों के पास साधारण असि, परशु तथा धनुष-बाण तक नही हैं—जबकि राक्षसों के पास इन साधारण शस्त्रास्त्रों के साथ-साथ भयकर दिव्यास्त्र भी हैं। उनके पास अश्व तथा रथ हैं।"

"तो क्या, हम इनके बिना लड़ ही नही सकते ?" सुग्रीव के मुख से अनायास निकला।

"नही ! ऐसी बात नही है।" राम बोले, "मैंने जो कुछ कहा है, वह आप लोगों को निराश अथवा भयभीत करने के लिए नहो है। युद्ध जीतने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण आत्मबल है; और मुझे आप लोगो मे उसका अभाव नही दीखता। फिर भी हमें युद्ध करना है, आत्महत्या नहीं; अतः युद्ध मे जाने से पूर्व हमे अपनी और अपने शत्रु की शक्ति को भली प्रकार तौलना होगा; अपने और शत्रु के अभावो, कमियो और दुर्बलताओ को जानना होगा; साथ ही अपने अभावों को अन्य उपकरणों की सहायता से यथासंभव पाटना होगा, ताकि हमारे पक्ष के जन-बल की हानि कम-से-कम हो।"

"आप ठीक कह रहे हैं, आर्य !" इस बार भी दरीमुख ही बोला।

"अतः मेरी योजना बहुमुखी है।" राम पुनः बोले, "मधुप ने आर्यकी भूमि मे पर्याप्त खनिज पदार्थ खोज निकाले है। यहा हमारे पास अनिन्द्य

है, जो खानों की खुदाई मे दक्ष है। लक्ष्मण की देख-रेख में शस्त्र-निर्माण होगा। धनुर्विद्या का अभ्यास यहां हमारे आश्रम में होगा और अन्य लौकिक शस्त्रों का प्रशिक्षण तथा अभ्यास, गिरि-तल के सभी आश्रमों मे तथा हनुमान द्वारा स्थापित समस्त अखाड़ों में होगा। किष्किंधा मे स्थापित किये गये जन-विद्यालयों की देख-रेख अंगद और हनुमान की अनुपस्थिति मे मुनि आनन्दसागर करेंगे तथा किष्किंधा मे आवासों, पथों तथा सेतुओं का निर्माण नल के अधीन होगा; और वानरराज सुग्रीव समग्र रूप से इन सारे कार्यों के निदेशक होंगे।"

"ठीक है।" सुग्रीव ने अपनी सहमति प्रकट कर दी।

"एक बात और है।"

सबने राम की ओर देखा।

"प्रस्रवणगिरि पर हमारे प्रवास के पिछले इन चार महीनों में वानर युवकों का पर्याप्त सैनिक प्रशिक्षण हुआ है। अभी एक मास का समय हमारे पास और है। मुझे आशा है कि इस अवधि में हम एक शक्तिशाली, सुगठित सेना का निर्माण करने में सफल होंगे। किंतु हमें यह स्मरण रखना होगा कि यह युद्ध शत्रु से एक-आध झड़प में समाप्त होने वाला नहीं है। यह युद्ध एक-आध दिन का भी नहीं है। यदि जानकी लंका मे ही हुई, और यह युद्ध लंका मे ही हुआ तो हमें यहां से सागर-तट तक यात्रा करनी होगी। सागर को पार कर लंका मे पहुंचने के लिए, कुछ दिन सागर-तट पर रुकना भी पड़ सकता है; फिर युद्ध की अवधि के बीच हमें अन्न की आवश्यकता भी पड़ेगी। मैं नहीं जानता कि किष्किंधा राज्य के पास अन्न का कितना भंडार है। किंतु यदि पर्याप्त भंडार नहीं है, तो हम एक मास मे अन्न उपजा नहीं सकते। उसके लिए हमें जनस्थान में आदित्य से संपर्क करना होगा। वहीं से अन्य आश्रमों से भी संपर्क होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि हमें आवश्यकतानुसार पर्याप्त अन्न मिल जाएगा। अन्न की पर्याप्त मात्रा बहुत आवश्यक है, अन्यथा हमारे सैनिक अपनी भूख मिटाने के लिए व्यर्थ की लूटपाट कर सामान्य जन को पीड़ित करेंगे और अपने लिए अनावश्यक जटिलताएं उत्पन्न करेंगे।"

"आर्य का कहना सर्वथा उचित है।" नल ने अनुमोदन किया।

राम ने देखा—अन्य यूथपतियों के चेहरों पर नल के समान सहज अनुमोदन नही था। उनके भाव को विरोध भी नही कहा जा सकता; वह कदाचित उनका विस्मय-भाव था। उन्होने शायद पहले इस प्रकार के युद्ध की कभी कल्पना नही की थी, जहां सेना मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों को लूटने के बदले अपने लिए आवश्यक सामग्री स्वयं ढोए।

"हमे शल्य-चिकित्सकों की भी आवश्यकता होगी।" सहसा राम का स्वर कुछ भारी-सा होता गया, "अनिन्द्य ! किसी को गुरु अगस्त्य के पास भेजो। मैं जानता हूं, इस युद्ध में स्वयं आर्या प्रभा साथ नही जा सकतीं; किंतु उनके शिष्य-शल्य-चिकित्सकों की टोलीं भी आ जाए, तो यथेष्ट होगा।"

"युद्ध के लिए तो बहुत सारा प्रबंध करना पड़ता है, राम !" सुग्रीव परिहास तथा गभीरता की बीच की स्थिति मे थे।

राम समझ रहे थे कि युद्ध के लिए इस प्रकार की व्यवस्थाएं, वानर-राज को भी विस्मित कर रही थी।

६

पिछले कई दिनों से अंगद और उनके साथी लगातार चलते जा रहे थे। मार्ग मे पडने वाले वनों में जहां कही मनुष्य के बसने की संभावना होती, उसी के आस-पास वे लोग खोज करने लगते। किंतु किसी मनुष्य से पूछ-ताछ करने से पूर्व उन्हे भली प्रकार यह देख लेना पड़ता था कि कही वह व्यक्ति राक्षसों से ही तो संबद्ध नही है। सुग्रीव का निर्देश उन्हें स्मरण था, कि सारी खोज पर्याप्त गोपनीय रीति से होनी चाहिए। ऐसा न हो कि राक्षसों को ज्ञात हो जाने पर वे लोग उनके किसी षड्यंत्र मे फसकर या तो अपने मार्ग से भटक जाएं या फिर अपने प्राण गवा बैठें। यह भी सभव था कि उन्हें कोई सूचना-सूत्र मिले; किंतु रावण को इस संधान-दल का

ज्ञान हो जाए, और वह सीता को कहीं अन्यत्र स्थानांतरित कर दे।

फिर भी, जहां कहीं कोई ग्राम, बस्ती, आश्रम, पुरवा, टोला—यहा तक कि कोई कुटीर भी मिला; बिना उसका सूक्ष्म निरीक्षण किये हुए, वे लोग आगे नही बढे। यह पद्धति समय-साध्य तो थी; किंतु उसके बिना खोज पूरी नही हो सकती थी।

अंगद अपने साथ खोजियों का एक दल तो लाये थे, किंतु न तो वे अपने साथ सशस्त्र वाहिनी लाये थे और न ही खाद्य-सामग्री। उनके मन मे आरंभ से ही स्पष्ट था कि अन्वेषण-दल मे जितने अधिक व्यक्ति होगे, उसकी गति उतनी ही मथर होती जाएगी। खाद्य-सामग्री साथ लाने का भी यही अर्थ होता कि विभिन्न लोग उसे बारी-बारी ढोते; और अन्न का यह परिवहन भी उनकी तीव्र गति में बाधा बनता।...किंतु अन्न, साथ न लेकर चलने के कारण, बीस व्यक्तियों के दल के लिए खाद्य सामग्री और जल जुटाने के लिए भी काफी समय नष्ट करना पडता था। दल के सभी सदस्य हृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ जीव थे। थोडे-से फलों से उनका पेट भी नही भरता था। मार्ग में भूख मिटाने के लिए उन्हे फलो के वृक्षों को ढूढते देखकर कई बार अगद के मन मे आया था कि वे लोग सीता की कम, फलो से लदे वृक्षो की ही अधिक खोज कर रहे है।...इस प्रकार समय नष्ट होने की समस्या की चिंता मे केवल हनुमान ही अगद के सहभागी थे, शेष लोग इस विषय मे तनिक भी चिंतित प्रतीत नही होते थे।

आठ व्यक्तियो का वह खोजी दल भी अंगद को कोई विशेष सहायतापूर्ण प्रतीत नही हो रहा था। उनका अपना उपयोग अवश्य था—वे लोग समस्त प्रचलित मार्गों से पूर्णत. परिचित थे। उन्हे उस क्षेत्र के भूगोल का अच्छा ज्ञान था। वनस्पतियो तथा वनवासी पशु-पक्षियों की अच्छी जानकारी थी। किंतु उन्हें इन जानकारियों से सीता की खोज तनिक भी सरल नही हो रही थी—वे लोग पूर्व-परिचित निश्चित लक्ष्य तक पहुंचाने मे तो सहायता कर सकते थे; किंतु इस प्रकार के एक अनिश्चित अन्वेषण मे, जिसमें प्रचलित मार्गों पर चलना तनिक भी लाभ-दायक नही था—खोजियों का दल उपयोगी सिद्ध नही हो रहा था। जैसे ही वे लोग प्रचलित मार्ग छोड़कर, वन की अनजान पगडंडियो के जाल में

भटकने के लिए उतरते, खोजियों का सारा ज्ञान अनावश्यक हो जाता था; और वे लोग व्यर्थ का एक बोझ भासित होने लगते थे।

वनो को पार कर जब वे पर्वत-प्रदेश में पहुंचे, तो अंगद को लगा कि उनकी कठिनाई बढ गयी है। वन मे रहने के लिए तो मनुष्य को अपने लिए किसी-न-किसी प्रकार का आवास बनाना ही पडता था; और वह आवास दूर से ही दिखायी भी पड़ जाता था। किंतु पर्वतों में प्रकृति की बनायी हुई इतनी गुफाएं थी कि बिना उन गुफाओ में प्रवेश किये हुए यह अनुमान करना भी कठिन हो जाता था कि कहा मनुष्य का वास है और कहां नही।

पर्वतों के ऊबड़-खाबड़ मार्गो तथा प्रकृति द्वारा निर्मित इन असख्य बेढब गुफाओ की व्यर्थ, निष्फल खोज से दल के लोगो का उत्साह भी क्षीण होता जा रहा था। साथ ही समय भी हाथ से ऐसे खिसकता जा रहा था, जैसे मुट्ठी मे पकड़ने के प्रयत्न मे जल निकल जाये।

अब तो सामान्यत: यह स्थिति हो गयी थी कि किसी पर्वत-कदरा के निकट पहुचते ही जाम्बवान और तार जैसे समर्थ लोग भी किसी छायादार स्थान पर इस मुद्रा मे बैठ जाते थे कि जिसे ढूंढ़ना हो ढूढ लो—इन पत्थरो में भी कही जानकी हो सकती है क्या!

एक हनुमान थे, जिनका उत्साह तनिक भी क्षीण नही हुआ था। जब सब लोग पर्वत के पगतल पर ही बैठ जाते थे, वे अकेले ही पर्वत पर चढ जाते और इधर-उधर भटकते फिरते। गुफाओं और कंदराओं का अव-लोकन करते। कही जलाशय दिख जाता तो उसके आस-पास देखते; कही अग्नि अथवा धुएं का आभास मिलता तो उसके विषय मे अपनी जिज्ञासा शात करने चल पड़ते।

"यह हनुमान व्यर्थ ही पत्थरों और ढूहो में हमारा समय नष्ट करा रहा है। यह ऐसे ही भटकते-भटकते एक मास बिता देगा और हम सबका वानरराज के हाथो वध करवायेगा।" हनुमान के जाने के बाद द्वैन्द ने दबे स्वर में कहा।

"इतने उत्साही लोग भी हितकर नही होते।" गंधमादन ने उसका अनुमोदन किया, "आधा समय तो व्यतीत भी हो चुका है; और दूर-दूर तक लंका का कही पता ही नही है। आखिर हमे वापस लौटने में भी तो

समय लगेगा।"

"तुम क्या समझते हो, हनुमान !" उनके लौटने पर गंधमादन ने उन्हे छेड़ा, "कि रावण जानकी को यहां छोड गया होगा और वे यहा बैठी अपना भोजन पका रही होंगी, जो तुम कही भी आग अथवा धुए का आभास पाते ही भाग निकलते हो।"

"नही ! ऐसी बात नही है।" शरारि ने कटाक्ष किया, "केसरीकुमार का विचार है कि अपनी सोने की लका छोड़कर, रावण भी वनवासी हो गया है और यही कही सीता के साथ बस गया है !"

हनुमान की आंखों में वह पीडा उभरी, जो गभीर तथा ईमानदार प्रयत्न के प्रति हलके परिहास के कारण उत्पन्न होती है, "मैं इन दोनो बातों में से कुछ भी नही सोचता।" हनुमान का स्वर गंभीर था, किंतु उन्होंने सायास अपने रोप को उसमे मिश्रित नही होने दिया था, "आग, धुआं या जल, अपने आस-पास मानव के बसने का आभास देते है। मैं यह तो नही मानता कि देवी सीता को रावण ने यहा रख छोड़ा होगा; किंतु मेरी यह मान्यता अवश्य है कि रावण जहा कही से भी सीता को लेकर गया होगा, कही-न-कही, किसी-न-किसी व्यक्ति ने उसे देखा होगा। किसी ने तो वैदेही का चीत्कार सुना होगा। अथवा किसी को तो उनका कोई आभूपण पडा मिला होगा, जैसे ऋष्यमूक पर निवास करते हुए हमे मिला था।" हनुमान कुछ रुककर पूरे उत्साह से बोले, "यदि कोई ऐसा व्यक्ति हमे मिल जाए, तो हम निश्चित होकर आगे बढ़ सकते है कि हम ठीक मार्ग पर जा रहे हैं—व्यर्थ भटककर अपना समय नप्ट नही कर रहे।...वन के पशु बोल नही पाते, नही तो मैं उनसे भी पूछता कि क्या उन्होने ऐसा कुछ देखा है।"

हनुमान की गंभीरता का प्रभाव सारे दल पर हुआ। उनकी बात का उत्तर किसी ने नही दिया। कदाचित इस उत्तर के पश्चात् परिहास आगे नही बढ़ सकता था और गंभीर चर्चा के लिए वे लोग प्रस्तुत नही थे।

अंगद हनुमान की मनःस्थिति समझ रहे थे। उनको भावना के साथ अंगद पूर्णतः सहमत थे। दल के नेता का दायित्व भी उन पर था—जब कोई भी हनुमान का साथ नही देता था, तब भी अंगद हनुमान के साथ-साथ कुछ

दूर तक जाते थे। दो-एक क्षेत्रो का निरीक्षण भी करते थे, किंतु वे स्वयं भी अनुभव कर रहे थे कि हनुमान जैसा उत्साह और लगन उनके भीतर कही जाग नही रही थी। कदाचित मन-ही-मन कही बहुत गहरे इस अभियान के निस्सार सिद्ध होने की भावना उनके उत्साह का दम घोट रही थी..

"भूख-तो-भूख, अब तो प्यास के मारे तनिक भी चला नही जाता।" वृद्ध जाम्बवान ने कहा और रुक गये।

आज प्रातः से उन्हें कही भी खाद्य पदार्थ अथवा जल नही मिला था। पिछले कुछ दिनो से खाने-पीने की व्यवस्था अधिक-से-अधिक अनियमित होती गयी थी। किंतु आज प्रातः से उन्हें कुछ भी नही मिला था; और उन लोगो ने इस आशा पर अपनी यात्रा आरंभ कर दी थी कि मार्ग में कहीं कुछ-न-कुछ मिल ही जाएगा। किंतु चलते-चलते प्रहर-भर बीत गया था, सूर्य आकाश पर दो बांस ऊपर चढ आया था, पर अभी तक कही जल भी दिखायी नहीं पड़ा था...

इससे पूर्व कि कोई कुछ कहता, वे एक वृक्ष के तने से पीठ लगाकर, उसकी छाया मे बैठ गये।

जाम्बवान का बैठना जैसे अन्य लोगों के लिए संकेत था। सुहोत्र, शरारि तथा शरगुल्म तत्काल उनके निकट ही बैठ गये। देखते-ही-देखते अन्य लोग भी बैठ गये। केवल अंगद, हनुमान तथा नल खड़े रह गये।

"क्यों, मित्रो ! क्या विचार है ?" अंगद ने हताश-से स्वर में पूछा।

"युवराज ! अब तो चलना कठिन है।" असग ने कहा, "अब या तो भोजन और जल का कोई समुचित प्रबंध हो, अथवा अपने खड्ग से हमारा वध कर दो।"

अंगद को लगा, जितनी दूर तक वे समझ रहे थे—निराशा उससे भी आगे बढ चुकी थी। उन्होंने हनुमान की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

हनुमान की आखों में रुद्ध क्रोध और विवशता के भाव थे, पर देखते-ही-देखते वे जैसे अपने क्रोध को गटक गये और अपने चेहरे पर बलात् मुसकान लाकर बोले, "निष्फल वृक्ष के तने से लगकर बैठ जाने से तो मुख में खाद्य पदार्थ आ नही पड़ेगा। न ही अभी कोई वर्षा होने वाली है कि

बैठे-बैठे आपके मुंह में मेघ जल टपका जाएंगे। खाने-पीने को कुछ चाहिए, तो उठो, कुछ उद्यम करो।"

"उद्यम से क्या होगा?" मैंद खीज-भरे स्वर में बोला, "यह वृक्ष अपना रूप बदलकर केले का वृक्ष बन जाएगा, अथवा यह शिला जलाशय में परिणत हो जायेगी? उद्यम कोई वहां करता है, जहां उसे आशा दीखे। तुम्हारे समान धैर्य हम कहां से लायें, भाई! तुम तो कहोगे कि शिलाएं तोड़कर हम यहां खेत बनाएंगे और उनमें अन्न बोएंगे। वह उगेगा, फलेगा, पकेगा तो हम खाएंगे। यहां तो इतना ही पर्याप्त है कि उस खेत के लिए कुछ बीज ले आओ; हमें वे बीज ही खिला दो।"

हनुमान के जी मे आया कि मैंद की भुजा पकड, घसीटकर उसे खड़ा कर दें और धकेलते हुए ले चलें। किंतु उसके सूखे हुए होंठ, जल्दी-जल्दी उठता-गिरता वक्ष, तेजी से चलती सांस बता रही थी कि वह सचमुच बहुत पीड़ित और निढाल है। उस समय तनिक-सी असावधानी से शेष लोग भी उसके पक्ष में हो जाएंगे। तब समस्या और भी जटिल हो जाएगी।

कुछ क्षणों के लिए हनुमान असहाय-से खड़े रह गये; फिर कुछ सोचकर बोले, "यहां अन्न उपजाने की स्थिति तो नहीं है; किंतु इस प्रकार बैठ जाने या लेट जाने से क्या होगा। आस-पास कुछ पक्षियों के स्वर सुनायी पड़ रहे हैं। मेरा विचार है कि यदि हम खोज करें तो हमें कोई-न-कोई उपयोगी वस्तु अवश्य मिल जायेगी।"

"क्या? उन पक्षियों का अन्न-भंडार?" तार उपहास करते हुए-से हंसकर बोले।

"हां! पक्षियों का अन्न-भंडार!" हनुमान गंभीर स्वर में बोले, "आखिर वे पक्षी भी तो कुछ-न-कुछ खाते ही होंगे। संभव है कि आस-पास ही कुछ फलों के वृक्ष भी हों।"

"पक्षी खाते हैं कीड़े-मकोड़े।" असंग ने उत्तर दिया, "अब हनुमान चाहेंगे कि हम लोग पहले उन पक्षियों को खोजें। फिर देखें कि वे लोग अपना भोजन पाने के लिए कहां चोंच मारते हैं; और फिर वहीं से उन कीड़ों को चुन-चुनकर हम भी खाएं।"

कोई लाभ नहीं था।

उस पर्वत के विभिन्न भागों में घूमते-घूमते जब प्रहर भर बीतने को आया और फिर प्यास से थक-हारकर उनके बैठ जाने की संभावना जागने लगी, तभी उन्हें जाम्बवान के पुकारने का-सा स्वर सुनायी पड़ा। किंतु उनका स्वर उस वृक्ष की दिशा में से नहीं आ रहा था, जहां से खोज आरंभ हुई थी और कुछ मिल जाने पर जहां से पुकारना निश्चित हुआ था।

अन्य किसी स्थान से पुकारने का क्या अर्थ ?—हनुमान ने सोचा—क्या वृद्ध जाम्बवान किसी कठिनाई में फंस गये हैं ? किंतु उनके आह्वान में संकटग्रस्त होकर, असहायता में पुकारने के स्थान पर, कुछ उपलब्धि का-सा ही भाव था।

"मुझे लगता है कि जाम्बवान ने कुछ पा लिया है।" हनुमान बोले।

"मेरा भी यही अनुमान है।" अंगद ने सहमति प्रकट की।

वे दोनों झपटते हुए-से उसी दिशा में चले।

जाम्बवान और तार एक बड़ी-सी गुफा के सम्मुख खड़े थे। उनकी आंखों में विस्मय और उपलब्धि का भाव था। थोड़ी-थोड़ी देर में वे लोग अपने साथियों को पुकार लेते थे, और फिर उसी प्रकार चकित भाव से उस गुफा की ओर देखने लगते थे। दल के कुछ अन्य लोग भी आकर उनके निकट उसी मुद्रा में खड़े थे।

"क्या बात है, तात जाम्बवान ?" अंगद ने आगे बढ़कर पूछा।

"वह गुफा, युवराज !" जाम्बवान ने, बिना अंगद की ओर देखे ही, तर्जनी से उस गुफा की ओर इंगित कर दिया।

"गुफाएं तो इस पर्वत में भरी पड़ी हैं।" अंगद कुछ रोष से बोले, "आप हम लोगों को गुफा देखने के लिए बुला रहे हैं क्या ?"

जाम्बवान कुछ सचेत हुए। उन्होंने आंखें झपकाकर अंगद को देखा, जैसे स्वयं को संतुलित न कर पा रहे हों।

किंतु उनके कुछ बोलने से पूर्व ही तार ने कहा, "नहीं, युवराज ! तुम्हें गुफा देखने के लिए नहीं बुला रहे। हमने इस गुफा में से अनेक पक्षी उड़कर बाहर आते देखे हैं। उनमें से चक्रवाकों का एक जोड़ा ऐसा भी था,

न चाहते हुए भी हनुमान कुछ खीझ उठे, "बुद्धि तो तुम लोगों की चचल हरिण के समान कुलाचें भर रही है; और शरीर तनिक नही हिलता। उठकर सब लोग थोड़ा इधर-उधर घूमो। पास के थोड़े-से क्षेत्र में फैलकर ढूढो—और कुछ नही तो कोई जलाशय तो होगा ही। पक्षी भी जल तो पीते ही हैं।"

"हनुमान ठीक कह रहा है।" जाम्ववान उठकर खड़े हो गये, "इस प्रकार बैठे-बैठे तो भूख मिटेगी नही।" सहसा वे असंग और मैंद की ओर घूमे, "मैं तो वृद्ध हूं, इंद्रियों में उतनी सहनशीलता नही रही। इसलिए थककर बैठ गया। तुम लोगों को क्या हुआ है, युवको! सराहो अपने मित्र हनुमान को, जो तुम लोगो का साहस बनाये रखता है; नही तो तुम लोग कही भी समाधि लगाकर बैठ जाओगे।"

जाम्बवान ने आगे बढकर तार की भुजा पकडकर झटका दिया, "उठो! तुम भी बच्चा बनकर बैठ गए। तुमको सम्राट ने इसलिए साथ भेजा था कि युवराज का उत्साह बनाये रखो, या इसलिए भेजा था कि उनके साहस और धैर्य की परीक्षा लेते रहो और उनका रहा-सहा उत्साह भी नष्ट कर दो।"

जाम्बवान की इस फटकार का सब लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। एक-एक कर, जैसे-तैसे सब उठकर खडे हो गये।

हनुमान का साहस जाग उठा और मुख उल्लसित हो गया। उन्होंने कृतज्ञता भरी दृष्टि से जाम्ववान की ओर देखा और बोले, "हम लोग दो-दो व्यक्तियों की टोलियों में आस-पास के क्षेत्र का निरीक्षण करें। जिसे भी खाद्य-पदार्थ अथवा जल का कोई आभास मिले, वह टोली यही आकर इस वृक्ष के नीचे से अन्य लोगों को पुकारे।"

दो-दो व्यक्तियों की दस टोलियां बन गयी और वे लोग अपने पाव घसीटते हुए इधर-उधर बिखर गये। कुछ लोगों के मन में सचमुच आशा जाग उठी थी कि यहां यदि कोई भी जीव है तो खाद्य मिले न मिले, जल तो मिलेगा ही; किंतु शेष लोग इसे अब भी हनुमान के उत्साह का अतिरेक ही मान रहे थे। फिर भी इतना तो निश्चित था कि एक व्यक्ति के अनुत्साह से शेष लोगों में भी अनुत्साह ही जागता था—और अनुत्साह से

कोई लाभ नही था।

उस पर्वत के विभिन्न भागों में घूमते-घूमते जब प्रहर भर बीतने को आया और फिर प्यास से थक-हारकर उनके बठ जाने की संभावना जागने लगी, तभी उन्हे जाम्बवान के पुकारने का-सा स्वर सुनायी पड़ा। किंतु उनका स्वर उस वृक्ष की दिशा में से नही आ रहा था, जहा से खोज आरभ हुई थी और कुछ मिल जाने पर जहा से पुकारना निश्चित हुआ था।

अन्य किसी स्थान से पुकारने का क्या अर्थ ?—हनुमान ने सोचा—क्या वृद्ध जाम्बवान किसी कठिनाई मे फस गये है ? किंतु उनके आह्वान मे सकटग्रस्त होकर, असहायता मे पुकारने के स्थान पर, कुछ उपलब्धि का-सा ही भाव था।

"मुझे लगता है कि जाम्बवान ने कुछ पा लिया है।" हनुमान बोले।

"मेरा भी यही अनुमान है।" अगद ने सहमति प्रकट की।

वे दोनो झपटते हुए-से उसी दिशा मे चले।

जाम्बवान और तार एक बडी-सी गुफा के सम्मुख खड़े थे। उनकी आखों मे विस्मय और उपलब्धि का भाव था। थोडी-थोडी देर मे वे लोग अपने साथियों को पुकार लेते थे; और फिर उसी प्रकार चकित भाव से उस गुफा की ओर देखने लगते थे। दल के कुछ अन्य लोग भी आकर उनके निकट उसी मुद्रा मे खडे थे।

"क्या बात है, तात जाम्बवान ?" अंगद ने आगे बढ़कर पूछा।

"वह गुफा, युवराज !" जाम्बवान ने, बिना अंगद की ओर देखे ही, तर्जनी से उस गुफा की ओर इगित कर दिया।

"गुफाए तो इस पर्वत मे भरी पड़ी हैं।" अंगद कुछ रोष से बोले, "आप हम लोगो को गुफा देखने के लिए बुला रहे हैं क्या ?"

जाम्बवान कुछ सचेत हुए। उन्होंने आखें झपकाकर अंगद को देखा, जैसे स्वय को सतुलित न कर पा रहे हों।

किंतु उनके कुछ बोलने से पूर्व ही तार ने कहा, "नही, युवराज ! तुम्हे गुफा देखने के लिए नही बुला रहे। हमने इस गुफा मे से अनेक पक्षी उड़कर बाहर आते देखे है। उनमें से चक्रवाको का एक जोड़ा ऐसा भी था,

जिनके पख जल से भीगे हुए थे। और हमारा तो विचार है कि उनके पखों पर कमल का पराग भी अवश्य छिटका हुआ था।"

अगद ने हनुमान की ओर देखा।

"आप लोगों ने ठीक-ठीक देखा है न, तात !" हनुमान गंभीरता और विनोद की मध्य-स्थिति मे थे, "*ऐसा तो नही कि अपनी प्यास की पीड़ा* आपको पक्षियों के पख भी भीगे हुए दिखा रही हो।"

"नही, हनुमान ! हमने ठीक-ठीक देखा है।" जाम्बवान अब पर्याप्त स्थिर लग रहे थे, "मेरे साथ आओ।"

जाम्बवान के पीछे-पीछे वे लोग गुफा के मुख के निकट आ गये। *जाम्बवान झुककर मिट्टी में कुछ खोज रहे थे।* उन्हें अधिक खोजना नही पडा। थोडी देर मे ही वे तनकर सीधे खडे हो गये और तर्जनी से उन्होंने एक विशिष्ट स्थान की ओर सकेत किया, "यह देखो !"

हनुमान और अंगद—दोनों ने झुककर देखा—निश्चित रूप से वहा पानी की दो-चार बूदें टपकी थी, जिन्हे मिट्टी ने सोख तो लिया था, किंतु बूंदों के चिह्न अभी मिटे नही थे।

अब तक उनके दल की दसों टोलिया वहां एकत्रित हो चुकी थी, और प्रायः सभी सहमत थे कि धरती पर के वे चिह्न पानी की बूदों के ही चिह्न थे; अतः जाम्बवान और तार ने ठीक ही देखा था कि उस गुफा में से भीगे पखो वाले चक्रवाक अवश्य निकले होगे। ऐसी स्थिति में गुफा के भीतर कही जलाशय भी होना चाहिए।

थोड़े-से विचार-विमर्श के पश्चात, वे लोग जल-संधान के लिए गुफा मे प्रवेश करने को सहमत हो गये; किंतु गुफा के भीतर सघन अंधकार था। जाने गुफा कितनी लबी थी और उसमे किस प्रकार के जीव-जंतु निवास करते थे।

"*यदि यह गुफा किसी जलाशय तक ले जाती है,*" *सहसा शरगुल्म ने* कहा, "तो वह इस गुफा के उस पार होगा। क्यो न हम पर्वत के ऊपर चढ़कर दूसरी ओर उतर जाए और वहां जलाशय को खोजें ?"

हनुमान को लगा, यदि फिर इस प्रकार के विकल्पों की चर्चा होने लगी तो अनेक लोगों के मन मे अनुत्साह जागने लगेगा और गुफा में प्रवेश

धरा-का-धरा रह जाएगा।"

"और यदि वह जलाशय, पृथ्वी से फूटने वाले जल के किसी उत्स का परिणाम हुआ और वह उत्स गुफा के मध्य मे ही हुआ तो हमे दूसरी ओर से भी इस अंधकारमय गुफा मे प्रवेश तो करना ही पड़ेगा; उलटे पर्वत लाघने का अतिरिक्त परिश्रम भी उठाना पड़ेगा। फिर यह भी संभव है कि यह गुफा दूसरी ओर से खुली हुई न हो। ऐसी स्थिति मे हम पर्वत लाघकर दूसरी ओर तो जाएगे ही, गुफा का दूसरा द्वार न खोज पाने की असफलता से थक-हारकर पुन: पर्वत को लाघकर इस ओर वापस लौटेंगे और फिर इसी गुफा मे ऐसे ही प्रवेश करेंगे।"

"तुम्हारी बात तो ठीक है, हनुमान!" असंग बोला, "किंतु गुफा सर्वथा प्रकाश-शून्य है। उसके भीतर हिंस्र अथवा घातक जतुओं के होने की पूरी सभावना है। संभव है कि विपधर सर्प इत्यादि भी हों।"

"सभावनाएं तो सब प्रकार की है—भली भी और बुरी भी।" हनुमान ने उत्तर दिया, "प्रवेश न करने पर अहितकर संभावनाओं से तो हम मुक्त रहेंगे ही, किंतु हितकर संभावनाओं का भी कोई लाभ नही उठा सकेंगे। क्यों, युवराज?"

अंगद ने कुछ कहा नही, किंतु वे हनुमान से सहमत प्रतीत हो रहे थे।

"मेरा प्रस्ताव है कि हम सब लोग एक-दूसरे का हाथ पकड़कर गुफा मे प्रवेश करें।" हनुमान बोले, "यदि युवराज की अनुमति हो, तो सबसे पहले मै प्रवेश करूगा। इससे हम अंधकार में एक-दूसरे का सहारा भी ले सकेंगे; अपने अनुभव का लाभ भी दे सकेंगे और परस्पर निकट भी बने रहेंगे।"

"उत्तम प्रस्ताव है।" जाम्बवान ने अपनी सहमति प्रकट कर दी।

हनुमान ने अगद की ओर देखा।

"स्वीकार है।" अगद ने सक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

सबसे पहले हनुमान ने प्रवेश किया। उसका हाथ पकडकर उनके पीछे अंगद गये। अंगद का हाथ नील ने पकड़ा, नील का तार ने। तार के बाद जाम्बवान आए। फिर तो एक-एक कर सब लोग आ गये। अब खोजियो का स्वतंत्र महत्त्व समाप्त हो चुका था। यह क्षेत्र उनके लिए भी सर्वथा

जिनके पख जल से भीगे हुए थे। और हमारा तो विचार है कि उनके पंखो पर कमल का पराग भी अवश्य छिटका हुआ था।"

अगद ने हनुमान की ओर देखा।

"आप लोगों ने ठीक-ठीक देखा है न, तात !" हनुमान गंभीरता और विनोद की मध्य-स्थिति मे थे, "ऐसा तो नही कि अपनी प्यास की पीड़ा आपको पक्षियों के पख भी भीगे हुए दिखा रही हो।"

"नही, हनुमान ! हमने ठीक-ठीक देखा है।" जाम्बवान अब पर्याप्त स्थिर लग रहे थे, "मेरे साथ आओ।"

जाम्बवान के पीछे-पीछे वे लोग गुफा के मुख के निकट आ गये। जाम्बवान झुककर मिट्टी मे कुछ खोज रहे थे। उन्हें अधिक खोजना नही पडा। थोडी देर मे ही वे तनकर सीधे खडे हो गये और तर्जनी से उन्होंने एक विशिष्ट स्थान की ओर सकेत किया, "यह देखो !"

हनुमान और अंगद—दोनों ने झुककर देखा—निश्चित रूप से वहा पानी की दो-चार बूदें टपकी थी, जिन्हे मिट्टी ने सोख तो लिया था, किंतु बूदों के चिह्न अभी मिटे नही थे।

अब तक उनके दल की दसों टोलिया वहां एकत्रित हो चुकी थी, और प्राय: सभी सहमत थे कि धरती पर के वे चिह्न पानी की बूदों के ही चिह्न थे; *अत: जाम्बवान और तार ने ठीक ही देखा था कि उस गुफा में से भीगे* पखो वाले चक्रवाक अवश्य निकले होंगे। ऐसी स्थिति में गुफा के भीतर कही जलाशय भी होना चाहिए।

थोड़े-से विचार-विमर्श के पश्चात्, वे लोग जल-संधान के लिए गुफा मे प्रवेश करने को सहमत हो गये; किंतु गुफा के भीतर सघन अंधकार था। जाने गुफा कितनी लंबी थी और उसमें किस प्रकार के जीव-जतु निवास करते थे।

"यदि यह गुफा किसी जलाशय तक ले जाती है," सहसा शरगुल्म ने कहा, "तो वह इस गुफा के उस पार होगा। क्यों न हम पर्वत के ऊपर चढ़कर दूसरी ओर उतर जाए और वहा जलाशय को खोजे ?"

हनुमान को लगा, यदि फिर इस प्रकार के विकल्पों की चर्चा होने लगी तो अनेक लोगों के मन मे अनुत्साह जागने लगेगा और गुफा मे प्रवेश

धरा-का-धरा रह जाएगा।"

"और यदि वह जलाशय, पृथ्वी से फूटने वाले जल के किसी उत्स का परिणाम हुआ और वह उत्स गुफा के मध्य में ही हुआ तो हमें दूसरी ओर से भी इस अंधकारमय गुफा में प्रवेश तो करना ही पड़ेगा; उलटे पर्वत लांघने का अतिरिक्त परिश्रम भी उठाना पड़ेगा। फिर यह भी संभव है कि यह गुफा दूसरी ओर से खुली हुई न हो। ऐसी स्थिति में हम पर्वत लांघकर दूसरी ओर तो जाएंगे ही, गुफा का दूसरा द्वार न खोज पाने की असफलता से थक-हारकर पुनः पर्वत को लांघकर इस ओर वापस लौटेंगे और फिर इसी गुफा में ऐसे ही प्रवेश करेंगे।"

"तुम्हारी बात तो ठीक है, हनुमान !" असंग बोला, "किंतु गुफा सर्वथा प्रकाश-शून्य है। उसके भीतर हिंस्र अथवा घातक जंतुओं के होने की पूरी संभावना है। संभव है कि विषधर सर्प इत्यादि भी हों।"

"संभावनाएं तो सब प्रकार की है—भली भी और बुरी भी।" हनुमान ने उत्तर दिया, "प्रवेश न करने पर अहितकर संभावनाओं से तो हम मुक्त रहेंगे ही, किंतु हितकर संभावनाओं का भी कोई लाभ नहीं उठा सकेंगे। क्यों, युवराज ?"

अंगद ने कुछ कहा नहीं, किंतु वे हनुमान से सहमत प्रतीत हो रहे थे।

"मेरा प्रस्ताव है कि हम सब लोग एक-दूसरे का हाथ पकड़कर गुफा में प्रवेश करें।" हनुमान बोले, "यदि युवराज की अनुमति हो, तो सबसे पहले मैं प्रवेश करूंगा। इससे हम अंधकार में एक-दूसरे का सहारा भी ले सकेंगे; अपने अनुभव का लाभ भी दे सकेंगे और परस्पर निकट भी बने रहेंगे।"

"उत्तम प्रस्ताव है।" जाम्बवान ने अपनी सहमति प्रकट कर दी।

हनुमान ने अंगद की ओर देखा।

"स्वीकार है।" अंगद ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

सबसे पहले हनुमान ने प्रवेश किया। उसका हाथ पकड़कर उनके पीछे अंगद गये। अंगद का हाथ नील ने पकड़ा, नील का तार ने। तार के बाद जाम्बवान आए। फिर तो एक-एक कर सब लोग आ गये। अब खोजियों का स्वतंत्र महत्त्व समाप्त हो चुका था। यह क्षेत्र उनके लिए भी सर्वथा

अपरिचित ही था। वे भी अन्य लोगो के ही समान हाथ पकडे-पकड़े गुफा मे प्रवेश कर गये।

आरंभ मे हल्का-हल्का दिखायी देता रहा; किंतु कुछ आगे बढने पर पूर्णत अधकार छा गया।

पैरों के नीचे शुष्क और कठोर धरती थी, जिसमें स्थान-स्थान पर ककड भी थे। ऐसा नही लगता था कि इस कठोर धरती में आस-पास कही कोई जल-स्रोत भी होगा। थोड़ी दूर चलने पर हनुमान का सिर, नीचे झुक आयी किसी शिला से टकराया। वे धरती को पैरों से टटोल-टटोल-कर आगे बढ रहे थे, अतः गति बहुत ही धीमी थी। सिर में अधिक चोट नही आयी।

"क्या हुआ?" उन्हें रुकते देख अंगद ने पूछा।

"यहा से गुफा या तो संकरी हो गयी है," हनुमान बोले, "या फिर उसका स्वरूप कुछ बदला है।"

"तुम्हे कैसे मालूम?"

"मेरा सिर ऊपर टकराया है, युवराज!" हनुमान धीरे-से बोले। वे अपने एक हाथ से ऊपर की शिला को टटोल रहे थे।

"क्या हुआ?" अनेक लोगो का जिज्ञासामय स्वर गुफा मे गूजा।

"कोई सर्प तो नही है?" एक स्वर आया।

"नही! कुछ नही है।" हनुमान उच्च स्वर मे उनकी आशकाओं का निवारण करते हुए बोले, "यहा गुफा सीधी न रहकर कुछ आड़ी हो गयी है। यहा से अपना सिर तिरछा करके निकलना।"

एक-दूसरे का हाथ पकडे वे अधकार मे बढते जा रहे थे।

मार्ग में कोई हिंस्र पशु अथवा अन्य कोई बाधा नही थी। बस, एक अंधकार-ही-अंधकार था। उनकी आखें कुछ अभ्यस्त हो गयी तो अंधकार भी उतना कष्टकर नहीं रहा; किंतु पूरी तरह सब कुछ देख पाना तब भी संभव नही था।

बीच-बीच मे अपने किसी साथी को कोई अनुदेश देते हुए किसी का कोई स्वर सुनायी पड जाता था; अन्यथा कोई बात भी नही कर रहा था।

सब एक प्रकार से दम साधे, अपनी इस यात्रा के परिणाम को देखने को मन-ही-मन व्यग्र आगे बढते जा रहे थे।

हनुमान बार-बार अपने एक हाथ से गुफा की शिलाओं को छू-छूकर देख रहे थे और अनुमान लगाने का प्रयत्न कर रहे थे कि यह गुफा प्रकृति-निर्मित है अथवा मानव-निर्मित ? प्रकृति द्वारा निर्मित गुफाएं इतनी लंबी नही होती; और सामान्यत: वे दूसरी ओर से बद भी होती हैं। पर्वतो की शिलाओं में एक ओर से बद गुफा प्राय: वन्य-पशुओं की माद बन जाती है। कही-कही उसमे मनुष्य भी रहने लगता है। इस गुफा मे उन्हे न तो अभी तक कोई पशु अथवा मनुष्य ही मिला था, और न यह गुफा ऊपर अथवा नीचे से विशेष ऊबड़-खाबड ही थी। सिवाय इसके कि यह गुफा आडी थी और व्यक्ति को यदि यह ज्ञात न हो और वह सीधा चलने का प्रयत्न करे तो उसे बार-बार सिर पर चोट लगेगी—*अन्य कोई विशेष बाधा नही थी*

वे पक्षी भी कैसे इस अधकार मे बिना शिलाओ से टकराकर आहत हुए, सीधे निकल गये थे। ..अवश्य ही इसके निर्माण मे मानव का हाथ लगा होगा...

"क्या विचार है, युवराज !" हनुमान धीरे से बोले, "क्या यह गुफा प्रकृति-निर्मित लगती है ?"

"यदि प्रकृति-निर्मित है तो अद्भुत है।" अंगद बोले और अपने विचारों में खो गये।

सहसा हनुमान को लगा कि गुफा मे कुछ प्रकाश-सा भासित हो रहा है; किंतु आगे से गुफा खुली नही थी। तो फिर यह प्रकाश कहां से आ रहा है ? विचित्र बात थी, जहां तक गुफा थी, वहां तक अंधकार था; और जहा गुफा रुद्ध हो रही थी, वहा प्रकाश का आभास था।...और अकस्मात ही बात हनुमान की समझ में आ गयी। गुफा यहां से मुड़ रही थी और मोड़ के आगे निश्चित रूप से गुफा का द्वार था। वे अपने मन की बात अगद से कहने ही जा रहे थे कि उनके पैरो के नीचे की मिट्टी की नमी ने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। मिट्टी इतनी गीली थी कि आस-पास कही-न-कहीं कोई जल-स्रोत अवश्य होना चाहिए था।

"हनुमान !" अंगद उनसे पहले ही उल्लसित स्वर में बोले, "यहां की मिट्टी गीली है।"

"हा, युवराज ! मैं भी अनुभव कर रहा हूं।" हनुमान ने उत्तर दिया, "मुझे ऐसा लग रहा है कि गुफा के इस मोड़ के निकट ही कही इसका द्वार भी है।"

तब तक वे लोग मोड तक आ चुके थे और अनेक लोगो का ध्यान उस प्रकाश की ओर चला गया था।

अनेक कंठों ने एक साथ ही हर्ष-ध्वनि की।

सबसे पहले हनुमान गुफा से बाहर निकले और बाहर का दृश्य देखते ही ठगे-से खड़े रह गये।

एक-एक कर सब लोग बाहर आये, और सब की स्थिति हनुमान की-सी ही हुई।

गुफा का अंत किसी वन मे नही हुआ था। जहा वे लोग खडे थे, वह किसी भव्य प्रासाद का मानव-विकसित उपवन प्रतीत हो रहा था। अनेक प्रकार के फलों तथा फूलों के पेड़-पौधे पुंजीभूत रूप में वहां वर्तमान थे और उनके मध्य स्वच्छ जल की एक पुष्करिणी विद्यमान थी। भूख तथा प्यास से संज्ञा-शून्य-से होते हुए वानरों ने अपना चिंतन स्थगित कर, पुष्करिणी में से थोड़ा-थोड़ा जल पिया और तब वे फलो के वृक्षों की ओर उन्मुख हुए।

सूर्य पूरी प्रखरता से चमककर पश्चिम की ओर झुक चला था। हनुमान ने आकाश की ओर देखकर सोचा—वे लोग कम-से-कम डेढ़ प्रहर उस गुफा को पार करने में लगे रहे थे।

खा-पीकर जब मन कुछ स्वस्थ हुआ और चिंतन-मनन की प्रवृत्ति जागी तो इस उपवन के विषय में उनकी जिज्ञासा जागी। यह प्राकृत वन नही था, इतनी बात निश्चित थी। उस समय उसका स्वरूप ऐसा नही था, जिससे यह समझा जाता कि उपवन की देख-भाल ठीक से की जा रही है; किंतु उसे सवारने मे कभी-न-कभी मनुष्य की बुद्धि और हाथ सहयोग अवश्य देते है, यह स्पष्ट था। पुष्करिणी के नीचे कही जल का उत्स भी रहा होगा, क्योकि पुष्करिणी जल से आप्लावित थी और अतिरिक्त जल

अनेक छोटी-छोटी धाराओं के रूप में विभिन्न दिशाओं मे बह रहा था।

"यहा निकट ही कोई प्रासाद भी होना चाहिए।" अंगद धीरे से बोले।

"मेरा भी ऐसा ही विचार है, युवराज!"

"यदि यहां प्रासाद हो, तो उसमें देवी वैदेही को छिपाकर रखने की भी सभावना हो सकती है।" नील ने अपना विचार प्रकट किया, "इससे अधिक उत्तम और गोपनीय स्थान कौन-सा हो सकता है।"

"सभावना हो तो सकती है।" जाम्बवान बोले, "क्योंकि इतने गोपनीय स्थान पर बनाया गया प्रासाद इस प्रकार के कार्यों के लिए उपयुक्त समझा जा सकता है। किंतु मेरे मन में एक शका है।"

"क्या?"

सबकी दृष्टि जाम्बवान पर टिक गयी।

"यदि रावण ने देवी वैदेही को यहां बंदिनी बनाकर रखा होता, तो वह स्वय भी यहीं निकट ही कहीं वर्तमान होता। इन दोनों ही स्थितियों मे यह स्थान इस प्रकार असुरक्षित न छोड़ा गया होता।"

"दोनों ही संभावनाओं में कुछ-न-कुछ तथ्य प्रतीत होता है।" अंगद बोले, "पर हम पहले प्रासाद तो खोज लें।"

"युवराज ठीक कहते है।"

वृक्षावलियों के बीच मे से होते हुए वे आगे बढे। वृक्षों का आरोपण निश्चित योजनानुसार हुआ था। प्रत्येक झुरमुट के साथ कुछ पुष्पलताएं लगी थी और फूलों की कुछ क्यारियां थी। ऊंचे-ऊंचे वृक्षों की पंक्तियों की प्राचीर के पीछे विभिन्न प्रकार के फूलो के पौधे थे...और उनके केन्द्र में सचमुच एक बहुत बडा प्रासाद खड़ा था।

वानरों के पग थम गये। इस एकांत में, इतने गोपनीय ढग से बनाया गया, जाने, यह किसका इतना भव्य प्रासाद था; और वे लोग बिना जाने-बूझे, बिना किसी की अनुमति के भीतर घुस आए थे। संभव है कि प्रासाद का स्वामी शत्रु-पक्ष का हो। उसकी सैनिक शक्ति का [illegible] उन्हें कोई [illegible] नहीं था। कहीं ऐसा न हो कि स्वय से कहीं अधिक समर्थ [illegible]

शत्रु के अवरोध मे पड़कर वे यहां बंदी हो जाएं और किष्किंधा मे किसी को उनकी स्थिति की कोई सूचना ही न हो।

अंगद कुछ चिंतित दीखने लगे थे। वे दल के नायक थे। दल के प्रत्येक निर्णय और कर्म के लिए वे उत्तरदायी थे। दल की सुरक्षा का बोझ उन्ही के कधों पर था, "बिना जाने-बूझे हमें इस प्रकार भीतर नही घुस आना चाहिए था।"

"आप यहा ठहरें, युवराज !" हनुमान बोले, "मैं प्रासाद के भीतर जाकर देखता हू।"

"नही !" अगद बोले, "अब तो जो एक का भाग्य है, वही सबका है। हम सब इकट्ठे ही जाएगे।"

आगे-आगे हनुमान और अगद थे; दो-दो की पक्तियों मे शेष लोग उनके पीछे। उन्होंने प्रासाद के भीतर प्रवेश किया।

प्रासाद निर्जन पड़ा था—कही कोई मनुष्य अथवा पशु दिखायी नही पड़ रहा था। इतना बड़ा प्रासाद और सर्वथा मानव-शून्य। न कोई वहां बसने वाला, न प्रतिहारी, रक्षक अथवा दास-दासिया। टूटा-फूटा, खंडित प्रासाद होता तो वे लोग मान लेते कि खंडहर समझकर स्वामी द्वारा उसका परित्याग कर दिया गया होगा, किंतु वह खंडहर नही था...

सहसा हनुमान और अगद रुक गये। उनके साथ ही सारी पंक्तियां थम गयी।

उनके सामने थोड़ी दूर पर तपस्विनी वेश मे एक स्त्री बैठी थी। उसने वल्कल और मृग-चर्म धारण कर रखे थे। उसकी आंखें ध्यान में मुंदी हुई थी।

"क्या ये वैदेही है ?" अगद ने धीरे से पूछा।

"नही !" हनुमान बोले, "यह तो कोई वृद्धा तापसी है।"

तापसी का ध्यान भंग हो गया। उसके मुदे नेत्र खुल गये।

"आओ, वत्स ! कौन हो तुम लोग ?" स्त्री ने सहास उनका स्वागत किया, "यह स्थान तो अत्यन्त गोपनीय है, तुम लोग यहां तक कैसे पहुंच गये ?"

साहस कर हनुमान आगे बढ़े। हाथ जोड़कर उन्होंने तापसी को प्रणाम

किया और सादर बोले, "माता ! यदि प्रवेश वर्जित है तो हम अपराधी हैं। हमें क्षमा करना। वन मे भटकते हुए हम लोग भूख और प्यास से पीडित होकर, मार्ग-भ्रष्ट हो, इधर चले आए हैं।"

स्त्री ने क्षण भर कुछ विचार किया और बोली, "इतने लोगों के लिए भोजन तत्काल उपलब्ध नहीं हो सकेगा। हां, फलाहार पर्याप्त है। तुम लोग फलों और जल से अपनी व्याकुलता मिटा लो, तब तक मैं भोजन का प्रबंध करा देती हूं।"

"आप चिंतित न हों, माता !" अनपेक्षित स्वागत पा हनुमान उल्लसित होकर बोले, "अपनी व्याकुलता के कारण, हम आपकी अनुमति पाने तक धैर्य नहो रख सके...यत्किंचित मात्रा में कुछ-न-कुछ खा-पी चुके हैं। अब यदि आपका परिचय मिल जाता..."

"एक व्यग्रता मिटा चुके, दूसरी मिटाने का प्रयत्न कर रहे हो।" तापसी के वृद्ध अधरों पर एक वात्सल्यपूर्ण मुसकान आ विराजी, "मैं इस प्रासाद की सरक्षिका, मेरुसावर्णि की कन्या, स्वयंप्रभा हूं।"

"और यह प्रासाद किसका है, माता ?"

"यह प्रासाद किसी समय मय दानव ने अपनी संपूर्ण विद्या के चमत्कार से अपने निवास के लिए निर्मित किया था। वस्तुतः वनों तथा पर्वत-श्रेणियो की ओट मे यह उसकी विहार-स्थली थी। सागर-तट पर यह सुंदर प्रासाद कदाचित उसने स्वयं को गुप्त रखने के लिए ही बनाया हो। यहां वह अपनी अप्सरा पत्नी हेमा के साथ रहा करता था; किंतु हेमा के कारण ही इंद्र से उसका विग्रह हुआ। हेमा यहा से चली गयी। मय भी अधिक दिन यहा नही रहा। अपने बच्चों को लेकर जाने कहां चला गया। मैं उन दोनों के समय की इस प्रासाद की संरक्षिका हूं। उन दोनों में से कोई भी अब तक इस ओर नहीं लौटा है और मैं इस प्रासाद की संरक्षिका बनी, उनके आने की प्रतीक्षा कर रही हूं।"

हनुमान ने आश्चर्य भरी दृष्टि पहले रावण के श्वसुर मय दानव द्वारा बनाये गये उस प्रासाद पर डाली और पुनः स्वयं को प्रासाद की ; कहने वाली उस तपस्विनी पर !

"आप अकेली...?"

वृद्धा ने निर्मल अट्टहास किया, "कोई अकेला कैसे रह सकता है, पुत्र ! मेरा पूरा कुटुंब है। वे लोग प्रासाद की प्राचीर के साथ पर्वत श्रेणी के बीच बसे गांव में रहते हैं।"

"आप लोग..."

"तुम तो विकट जिज्ञासु हो, भाई !" वृद्धा पुनः हंसी, "अब थोड़ी देर तुम लोग विश्राम करो। मैं ग्राम में जाकर तुम्हारे भोजन का प्रबंध कराती हू। शेष प्रश्न वही पूछ लेना; और हा ! मुझे भी तुम्हारा परिचय जानना है। वह सब भोजन कराकर ही पूछूंगी।"

उन्हें अवाक्-सा वहीं खड़ा छोड़, अपनी सधी चाल में वृद्धा एक ओर निकल गयी।

"हम किसी षड्यंत्र में तो नही फंस गये ?" वृद्धा के दूर निकल जाने पर असग धीरे से बोला, "ऐसा न हो कि हमें भोजन का प्रलोभन देकर, यहां ठहरा, स्वयं सैनिकों को बुलाने गयी हो।"

"वैसे इतना तो उसने स्वीकार कर ही लिया है कि यह रावण के श्वसुर का प्रासाद है।" शरगुल्म ने कहा, "हम वस्तुत. शत्रु के घर के भीतर घुस आए हैं।"

"आप किष्किधा से इसी कार्य के लिए चले थे।" जाम्बवान का स्वर कुछ वक्र हो उठा था, "आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आप अपने लक्ष्य पर पहुच गये हैं।"

"मेरा अभिप्राय यह नहीं था, तात जाम्बवान !"

"तुम्हारा अभिप्राय मैं भली प्रकार समझ रहा हूं, वत्स !" जाम्बवान मुसकराये, "वैसे यह स्थान लंका से अत्यन्त निकट होना चाहिए; क्योंकि हेमा के वियोग से अत्यन्त पीड़ित होकर, मय दानव यहीं से मदोदरी को लेकर रावण के पास गया था।...इसलिए हमें प्रसन्न ही होना चाहिए कि हम लंका के निकट पहुंच गये हैं। यदि यह वृद्धा तापसी इतनी कृपा करे कि लंका तक का कोई सरल और सीधा मार्ग बताकर इस मायालोक में से बाहर निकलने में हमारी सहायता करे तो उसका पर्याप्त उपकार मानना चाहिए।...फिर भी एक षड्यंत्र में तो हम फंस ही गये हैं।"

"कैसा षड्यंत्र ?"

"काल का षड्यंत्र, पुत्र !" जाम्बवान गंभीर हो गये, "विभिन्न व्याकुलताओं और उत्तेजनाओं मे कदाचित तुम लोगो का ध्यान इस ओर नहीं गया कि वानरराज सुग्रीव की दी हुई एक मास की अवधि आज समाप्त हो रही है।"

"क्या ?" अगद जैसे निद्रा मे से जागे।

"हां, पुत्र !" जाम्बवान अपने धीर स्वर में बोले, "और अवधि के पश्चात हमें किसी भी अवस्था मे असफल नही लौटना है। अवधि के पश्चात असफल लौटने के अपराध का दड क्या निर्धारित किया गया है, ज्ञात है न?"

सब के चेहरो के रग उड गये—सचमुच उन लोगो ने इस ओर ध्यान नही दिया था।

अपने साथियों की व्याकुलता देखकर हनुमान भी विचलित हो गये।

"तात जाम्बवान ! आप आधी बात पर बल दे रहे है।" वे बोले, "अवधि समाप्त हो रही है, यह ठीक है; किंतु वानरराज ने अवधि के पश्चात असफल लौटने पर दड-विधान किया है। हम यदि कार्य पूरा कर, अवधि के पश्चात भी लौटें, तो सम्राट हमसे प्रसन्न ही होगे।"

"हनुमान ठीक कह रहे हैं।" अगद भारी स्वर में बोले, "अब हमें कार्य पूरा करके ही लौटना है, अन्यथा लौटने का कोई अर्थ नहीं है।"

"आप हताश न हों, युवराज !" हनुमान बोले, "हम अवश्य ही सफल-काम होकर लौटेंगे।"

अंगद कुछ नही बोले।

हनुमान स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि युवराज के मन में चिंता घर कर गयी है। अगद के साथ-ही-साथ तार भी उन्हे असाधारण ढंग से गंभीर लगे।

प्रासाद मे प्रवेश करने का उल्लास क्रमशः समाप्त हो गया था और सारे दल पर, अवधि के बीत जाने के साथ-साथ, इस प्रासाद मे घिर जाने की चिंता भी व्याप्त हो गयी थी। जाने वह वृद्धा तापसी कौन थी और कहां गयी थी। यदि वह कोई षड्यंत्र न भी कर रही हो, तो भी इस प्रासाद-

किंतु हनुमान की चिंता कम नही हुई। युवराज के मन मे कोई चिंगारी सुलग रही थी; यदि वह बुझी नही तो निश्चित रूप से भयकर विस्फोट करेगी। क्या अवधि समाप्त हो जाने के कारण ही वे इतने चिंतित हो उठे है? पर अवधि तो क्रमश बीतती रही है और एक एक दिन के साथ सबको आभास होता रहा है कि अवधि का कितना समय शेष रह गया है। .. वैसे सम्राट द्वारा दड-विधान का यह अर्थ भी नही था.. वह तो अन्वेषण-दलों को असावधानी से बचाने के लिए...

"चलो, वत्सगण! भोजन तैयार है।" वृद्धा ने निकट आकर कहा, "आशा है कि तुम लोग इतना सुस्ता चुके होगे कि थोडी दूर तक चल सको। वैसे भी अब सध्या उतरने वाली है। भोजन कर, विश्राम ही करना है।"

"कितनी दूर तक चलना होगा, माता?" हनुमान ने पूछा।

"अधिक नही, रे। पास ही मेरा ग्राम है, वही तक।" वृद्धा ने हनुमान को स्नेहमिश्रित स्वर में धमकाया, "इतना दीर्घकाय होकर भी चलने से डरता है, रे। कैसा युवक है तू। मुझ वृद्धा से भी गया-बीता।"

"नही, माता! यह बात नही है।" हनुमान भी अपनी गंभीरता छोड़कर हंस पड़े, "भोजन की जल्दी है।"

"अच्छा, चल! वह भी देखूगी, कितना खा सकता है तू।"

स्वयप्रभा उन्हें पर्वतों के बीच घिरे एक छोटे-से गाव में ले आयी। दस-बारह घरो से अधिक जनसंख्या नही थी। स्वयप्रभा उन सबको अपना कुटुम्ब ही बता रही थी। पांच-सात कुटीर थे और शेष परिवार प्राकृतिक गुफाओं मे ही रह रहे थे। इस दल के पहुचने पर, अनेक स्त्री-पुरुष और बच्चों ने अपनी उत्सुकता में उन्हें घेर लिया। संकोचवश बात किसी ने भी नही की।

उन्हें देखकर मन-ही-मन पाली गयी सबकी आशकाएं स्वतः विलीन हो गयी। वे लोग योद्धा नही थे। न उनके पास कोई शस्त्र थे। वे अल्पतम उपकरणों के साथ, प्रकृति के बीच रहने वाले साधारण वनवासी थे।

भोजन तैयार था। आधे से अधिक फल और कच्ची शाक-सब्जियां

रूपी कारागार से निकलने का मार्ग जाने वह जानती भी है या नहीं। आस-पास की पर्वतश्रेणियां तथा वन इस प्रकार एक-दूसरे में गुंथे हुए थे कि एक बार भटक जाने पर मार्ग पाना सहज नहीं था।

दल के नायक, युवराज अंगद की चिंता, अब खीझ का रूप ले चुकी थी। दल के साथ आये हुए खोजियों के प्रति वे अपनी खीझ अनेक प्रकार से प्रकट कर चुके थे—"विचित्र प्रकार के खोजी हैं ये। ये लोग वही मार्ग जानते है, जो पूर्व-ज्ञात और पूर्व-प्रचलित है। तो फिर खोजी क्या हुए भाई तुम। जो सबको मालूम है, वही आपको भी मालूम है और तिस पर आप खोजी कहलाते है। इन्ही के किष्किंधा आगमन तक वानरराज ने वैदेही की खोज स्थगित कर रखी थी।"

"खोज तो वर्षा ऋतु के कारण स्थगित थी।" हनुमान धीरे से बोले।

"हां-हां! वर्षा के कारण ही स्थगित थी।" अंगद बोले, "क्योंकि वर्षा के जल के कारण वे मार्ग लुप्त हो गये थे, जो इन खोजियों को मालूम थे। अरे, कुछ ऐसे मार्ग भी तो रहे होंगे, जो वर्षा के जल में विलुप्त नहीं हुए थे, किंतु वे मार्ग इन खोजियों को ज्ञात तो हों। इनसे तो हम वैसे ही अच्छे थे। मार्ग के वनवासियों को पूछ-पूछकर इनसे अधिक ज्ञान हो जाता हमें इन पथों और मार्गों का। इस अभियान से यदि हम सकुशल किष्किंधा लौट गये और किसी कारणवश सम्राट ने हमारा वध नहीं किया तो हम सब खोजी-पद के अधिकारी हो जाएंगे।"

"खोजी-पद कोई ऐसा ऊंचा पद तो नहीं है, जिसके लिए हम में से कोई अभिलाषी हो, युवराज।"

"न सही ऊंचा पद।" अंगद बोले, "सम्राट ने इन्हें सिर पर तो चढ़ा रखा है न। इनके बिना कोई अन्वेषण दल कहीं नहीं जाएगा। और इनसे पूछो, इन वृक्षों के पीछे से कोई मार्ग है या नहीं; तो ये कहेंगे कि ये वृक्ष कनेर के हैं, या जामुन के है, या ताड़ के हैं। अरे बाबा! तुमसे हम मार्ग के विषय में पूछ रहे है और तुम हमें वनस्पतिशास्त्र पढ़ा रहे हो। अच्छे खोजी हो तुम!"

सामने से वह वृद्धा तापसी लौटती दिखायी दी तो अंगद का प्रलाप सहसा थम गया।

किंतु हनुमान की चिंता कम नही हुई। युवराज के मन मे कोई चिंगारी सुलग रही थी; यदि वह बुझी नही तो निश्चित रूप से भयकर विस्फोट करेगी। क्या अवधि समाप्त हो जाने के कारण ही वे इतने चिंतित हो उठे है? पर अवधि तो क्रमश: बीतती रही है और एक एक दिन के साथ सबको आभास होता रहा है कि अवधि का कितना समय शेष रह गया है। ...वैसे सम्राट द्वारा दड-विधान का यह अर्थ भी नही था...वह तो अन्वेषण-दलों को असावधानी से बचाने के लिए ..

"चलो, वत्सगण ! भोजन तैयार है।" वृद्धा ने निकट आकर कहा, "आशा है कि तुम लोग इतना सुस्ता चुके होगे कि थोडी दूर तक चल सको। वैसे भी अब सध्या उतरने वाली है। भोजन कर, विश्राम ही करना है।"

"कितनी दूर तक चलना होगा, माता ?" हनुमान ने पूछा।

"अधिक नही, रे। पास ही मेरा ग्राम है, वही तक।" वृद्धा ने हनुमान को स्नेहमिश्रित स्वर मे धमकाया, "इतना दीर्घकाय होकर भी चलने से डरता है, रे। कैसा युवक है तू। मुझ वृद्धा से भी गया-बीता।"

"नही, माता ! यह बात नही है।" हनुमान भी अपनी गभीरता छोड़कर हस पडे, "भोजन की जल्दी है।"

"अच्छा, चल ! वह भी देखूंगी, कितना खा सकता है तू।"

स्वयंप्रभा उन्हे पर्वतों के बीच घिरे एक छोटे-से गांव में ले आयी। दस-बारह घरो से अधिक जनसख्या नही थी। स्वयंप्रभा उन सबको अपना कुटुम्ब ही बता रही थी। पाच-सात कुटीर थे और शेष परिवार प्राकृतिक गुफाओ मे ही रह रहे थे। इस दल के पहुंचने पर, अनेक स्त्री-पुरुष और बच्चो ने अपनी उत्सुकता मे उन्हें घेर लिया। संकोचवश बात किसी ने भी नही की।

उन्हें देखकर मन-ही-मन पाली गयी सबकी आशकाए स्वत: विलीन हो गयी। वे लोग योद्धा नही थे। न उनके पास कोई शस्त्र थे। वे अल्पतम उपकरणों के साथ, प्रकृति के बीच रहने वाले साधारण वनवासी थे।

भोजन तैयार था। आधे से अधिक फल और कच्ची शाक-सब्जियां

थी, और पत्तों को तिनको से जोडकर बनाये गये पत्तलों पर भात परोसा गया था।

"माता ! तुम सब लोग यहा रहते हो ?" हनुमान ने पुनः बात आरंभ की।

"तुझे अब भी कोई सदेह है ?" वृद्धा पोपले मुख से हंसी, "तू ये कुटीर देख रहा है, गुफाएं देख रहा है; मेरे कुटुम्ब के लोगों को देख रहा है; हमारे घर मे भोजन कर रहा है; फिर भी पूछता है कि हम यही रहते हैं क्या ?"

"नही ! मेरा तात्पर्य यह नही था।" हनुमान तनिक झेंपकर मुसकराए, "मै तो यह पूछ रहा था कि नगर बराबर फैला हुआ प्रासाद तुम्हारे पास है; फलों के इतने उद्यान और उपवन हैं; जल की बावलियां, पुष्करिणियां और सरोवर हैं—फिर तुम लोग यहां क्यों रहते हो ? वहां जाकर क्यो नही रहते ?"

इस बार वृद्धा गभीर हो गयी, "वह प्रासाद हेमा अप्सरा का है, या चाहे तो कह ले कि मय दानव का भी है। हम तो इन वनों मे इससे भी निरीह जीवन व्यतीत कर रहे थे। उसने हमे निकट बुलाकर यहां हमारा ग्राम बसा दिया। अपनी देख-रेख में इन पर्वतो के बीच धान के कुछ खेत बनवा दिये। फलों के वृक्ष लगवा दिये। हम यहां बस गए। इस कुटुम्ब की वृद्धा होने के कारण उसने मुझे अपने प्रासाद की संरक्षिका नियुक्त कर दिया। अब तू हमसे यह अपेक्षा तो मत कर कि हम उसके उपकार भुलाकर, कृतघ्नों के समान उसकी संपत्ति पर आधिपत्य जमाकर उसका भोग करेंगे।"

"इसमे कृतघ्नता कहा है, माता ?" हनुमान बोले, "वह प्रासाद खाली पडा है; और तुम्हारा सारा कुटुम्ब कितनी असुविधा में जी रहा है। तुम किसकी प्रतीक्षा कर रही हो, माता ? मय दानव अथवा हेमा अप्सरा मे से कोई नही लौटेगा। मय के जामाता रावण ने जब से वारुणेयो को पराजित किया है, हेमा और मय से पुनः मेल हो गया है और वे दोनो उरपुर मे सुख से रह रहे हैं। वैसे भी अब वे इतने वृद्ध हो गये है कि उन्हें किसी गुप्त विहार-स्थली की आवश्यकता नही है। मय का पुत्र मायावी वानरराज

वाली के हाथों मारा जा चुका है। मय की पुत्री मंदोदरी रावण की पट्टमहिषी बनी लका मे बैठी है—वह सोने की लंका छोड़ यहा वन में क्या करने आएगी? मय दानव का दुंदुभी नामक एक और पुत्र होना चाहिए; किंतु उसके विषय मे कभी कुछ सुना नही गया। वानरराज वाली ने दुदुभी नामक एक अरण्य-भैंसे का आखेट अवश्य किया था। पर भैंसे और मनुष्य में भेद होना चाहिए—नाम एक हो तो क्या हुआ?...अब यह प्रासाद तुम्हारा ही है, माता। उसके खडहर हो जाने की प्रतीक्षा मत करो। खंडहर हो गया तो तुम्हारी आने वाली पीढियां उस खडहर की रक्षा में अपना जीवन व्यतीत कर देंगी। प्रासाद मनुष्य के वास के लिए होते हैं—मनुष्य को खंडहर बनाने के लिए नहीं।"

"हम तपस्वी लोग है, रे!" वृद्धा ने हनुमान की वात बीच में ही काटकर कहा, "हम प्रासादों मे क्यों रहें?"

"अपने सारे कुटुम्ब को इस कष्ट और असुविधा में रखकर, उस सुंदर प्रासाद के खंडहर हो जाने की प्रतीक्षा मे अपना जीवन बिताना तपस्या नही, पाप है, माता!"

"अच्छा-अच्छा! तू अपनी वाचालता छोड़।" वृद्धा परिहास के स्वर में बोली, "मान गयी, तू बड़ा उपदेशक है, पर बूढा सुग्गा कभी उपदेश ग्रहण नही करता। तेरे पास सूचनाएं भी बहुत है। तू मय और हेमा के सारे कुटुम्ब के इतिहास से परिचित है। यहां तो कोई आता-जाता नहीं, वत्स! इसलिए हमें कोई सूचना नही मिलती। तूने बताया कि मंदोदरी रावण की पट्टमहिषी है। मायावी मारा गया और दुंदुभी का पता नही।" वृद्धा ने अट्टहास किया, "वह अरण्य-भैंसा, जो वाली के हाथों मारा गया, वह मय का ही पुत्र रहा होगा। मुझे याद है, वह अपने बालपन से ही अरण्य-भैंसा था रे। इधर-उधर फुफकारता फिरता था।" वृद्धा सहसा रुक गयी, "अब तू मुझे वता, तू कौन है और तेरे साथ कौन-कौन हैं? तुम लोग यहां क्या करने आए हो?"

प्रश्न इतनी आकस्मिकता से आया था कि हनुमान के सम्मुख विकट मानसिक संकट खड़ा हो गया। अपना और अपने अभियान का परिचय वे लोग अब तक अत्यन्त गुप्त रखे हुए थे...उनका लक्ष्य और गंतव्य प्रकट

चक्कर लग गये तो यह मायानगरी हो गयी। मायावी तो तुम लोग हो, जो इस गोपनीय स्थान में भी घुस आए।" वह रुकी, "अच्छा, भोजन कर लो। शीघ्र सागरतट तक जाने वाला मार्ग दिखा दूंगी।"

मार्ग बता देने के आश्वासन का सारे दल पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। अब तक का सारा वार्तालाप स्वयप्रभा तथा हनुमान मे ही हुआ था। दोनो ओर से अन्य किसी भी व्यक्ति ने इसमे भाग लेने की उत्सुकता नही दिखायी थी। तापसी के कुटुब वालो ने कदाचित अपने सकोच के कारण और हनुमान के साथियों ने अपनी चिताजन्य अरुचि के कारण.. किंतु इस आश्वासन के बाद अन्य लोग भी थोड़ा-बहुत बोलने लगे थे।

भोजन समाप्त करते ही, अगद ने चलने की इच्छा प्रकट की।

वृद्धा पुनः हसी, "क्यो रे ! भागने की बडी जल्दी है ?"

"हमे देवी वैदेही का पता लगाकर शीघ्र किष्किधा लौटना है।" अगद वृद्धा के समान हस नही सके, "देवि ! आप यदि हमे मार्ग..."

"मुझे देवी क्यो कहता है !" वृद्धा ने कुछ उग्र स्वर मे कहा, "माता क्यो नही कहता ? तू युवराज है, इसलिए ?"

"नहीं, माता !" अगद वृद्धा के रोष से तरल हो उठे, "तुम सचमुच माता हो वात्सल्यमयी ! मुझे क्षमा करना।"

"अच्छा, चल ! तुझे मार्ग दिखाऊं।" वृद्धा बोली, "तू बहुत ही उतावला हो रहा है। किंतु अंधकार घिर रहा है। कहीं मार्ग में भटक गये तो यह उतावली महगी पड़ेगी।"

अगद के साथ अन्य लोगों का भी ध्यान समय की ओर गया। सूर्यास्त हो चुका था और अधकार मे इन अनजाने तथा भ्रांति-तत्पर मार्गों पर यात्रा अनावश्यक थी।

थोड़े से विचार-विमर्श के पश्चात उन्होंने रात को वहीं विश्राम करने का निश्चय किया।

उनका निश्चय सुनकर वृद्धा जोर से हंसी, "क्यो रे हनुमान ! विश्राम मेरे गाव में करेगा या हेमा के प्रासाद में। तेरा मन उस प्रासाद में रहने को बहुत ललचाता है न !"

हो जाने पर हानि भी हो सकती थी...इन लोगों का निकट का न सही, दूर का कोई-न-कोई संबंध रावण से बनता ही था। यदि इस अनुसंधान दल की सूचना इनके माध्यम से राक्षसों तक पहुंच गयी?...वे लोग सरल-साधारण वनवासी है। किसी लालच अथवा लाभ की अपेक्षा में किसी को कुछ बताने न भी जाएं तो भी किसी व्यक्ति की असावधानी अथवा अज्ञान से यह सूचना गलत हाथो में पड सकती है।

तो क्या इस प्रश्न को टाल जाए या कोई काल्पनिक परिचय दे दें?

किंतु वृद्धा की सरलता तथा तत्परता उन्हे असत्य बोलने से रोक रही थी...और फिर सत्य बताने से वृद्धा से करुणा-विगलित हो, जिस सहायता की अपेक्षा थी, वह असत्य-कथन से प्राप्त नही हो सकती थी।

इस प्रकार आमने-सामने बैठकर प्रश्न का उत्तर वे अधिक समय तक टाल भी नही सकते थे, और अपने साथियो से इस सदर्भ में विचार-विनिमय भी नही कर सकते थे...सारा दायित्व हनुमान पर ही था—उन्ही का निर्णय, उन्ही का कर्म और परिणाम के लिए, वे ही उत्तरदायी!

हनुमान को लगा, द्वन्द्व मे सत्य-कथन उनके लिए अधिक उपयोगी होगा...वैसे भी इतने सरल लोगों से क्या दुराव...

हनुमान ने संक्षेप मे अपना और अपने साथियों का परिचय दिया और अपने अभियान के विषय में भी बताया।

वृद्धा गंभीर हो गयी। उसकी परिहास-मुद्रा विलीन हो गयी, "तो मेरी हेमा का जामाता, यह प्रतापी रावण परस्त्रीगामी है! वह दूसरों की स्त्रियों का हरण करता फिरेगा तो मदोदरी कैसे सुखी रहेगी?"

"हम रावण को खोजकर उसे ठीक मार्ग पर लाने के लक्ष्य से ही इन वनों पर्वतों में भटक रहे है, माता!" हनुमान आत्मीयता से बोले। वे अनुभव कर रहे थे कि उनका सत्य बोलने का निर्णय दोनो पक्षो के लिए हितकर ही था, "हम पर केवल इतनी कृपा कर दो कि कोई ऐसा सीधा और सरल मार्ग बता दो, जो हमे इस मायानगरी से तो बाहर निकाल ही दे, लका के निकट के किसी सागर-तट पर भी पहुंचा दे।"

वृद्धा मन खोलकर हसी, "तू इसे मायानगरी कहता है, रे! दो-चार

चक्कर लग गये तो यह मायानगरी हो गयी। मायावी तो तुम लोग हो, जो इस गोपनीय स्थान मे भी घुस आए।" वह रुकी, "अच्छा, भोजन कर लो। सीधे सागरतट तक जाने वाला मार्ग दिखा दूंगी।"

मार्ग बता देने के आश्वासन का सारे दल पर स्पष्ट प्रभाव पडा। अब तक का सारा वार्तालाप स्वयप्रभा तथा हनुमान मे ही हुआ था। दोनो ओर से अन्य किसी भी व्यक्ति ने इसमे भाग लेने की उत्सुकता नही दिखायी थी। तापसी के कुटुब वालो ने कदाचित अपने सकोच के कारण और हनुमान के साथियो ने अपनी चिताजन्य अरुचि के कारण...किंतु इस आश्वासन के बाद अन्य लोग भी थोड़ा-बहुत बोलने लगे थे।

भोजन समाप्त करते ही, अगद ने चलने की इच्छा प्रकट की।

वृद्धा पुन. हसी, "क्यों रे! भागने की बडी जल्दी है?"

"हमें देवी वैदेही का पता लगाकर शीघ्र किष्किधा लौटना है।" अगद वृद्धा के समान हस नही सके, "देवि! आप यदि हमें मार्ग..."

"मुझे देवी क्यो कहता है!" वृद्धा ने कुछ उग्र स्वर में कहा, "माता क्यो नही कहता? तू युवराज है, इसलिए?"

"नही, माता!" अगद वृद्धा के रोष से तरल हो उठे, "तुम सचमुच माता हो वात्सल्यमयी! मुझे क्षमा करना।"

"अच्छा, चल! तुझे मार्ग दिखाऊ।" वृद्धा बोली, "तू बहुत ही उतावला हो रहा है। किंतु अधकार घिर रहा है। कही मार्ग में भटक गये तो यह उतावली महंगी पड़ेगी।"

अगद के साथ अन्य लोगो का भी ध्यान समय की ओर गया। सूर्यास्त हो चुका था और अधकार मे इन अनजाने तथा भ्राति-तत्पर मार्गो पर यात्रा अनावश्यक थी।

थोड़े से विचार-विमर्श के पश्चात उन्होने रात को वही विश्राम करने का निश्चय किया।

उनका निश्चय सुनकर वृद्धा जोर से हंसी, "क्यो रे हनुमान! विश्राम मेरे गाव में करेगा या हेमा के प्रासाद में। तेरा मन उस प्रासाद में रहने को बहुत ललचाता है न!"

हनुमान किंचित सकुचित हुए, किंतु अंततः अपनी गंभीर वाणी में बोले, "माता ! यदि अपने कुटुंब के साथ तुम उस प्रासाद में रहना स्वीकार कर लो, तो मैं प्रासाद में विश्राम करूंगा; किंतु तुम लोगों को यहां छोड़कर, मुझसे प्रासाद में सोया नहीं जाएगा।"

"तो फिर आज रात अपनी इस निर्धन माता के कुटुंब का ही आतिथ्य ग्रहण कर।" वृद्धा प्रसन्न-वदन बोली।

प्रातः हलके-से अल्पाहार के पश्चात यात्रा के लिए तत्पर हो वृद्धा ने मुड़कर अपने कुटुंब की ओर देखा और बिना किसी विशेष व्यक्ति को संबोधित किये कहा, "मैं इन्हें मार्ग बताकर अभी आती हूं।"

वह आगे-आगे चली और अपने दल का नेतृत्व करते हुए अंगद उसके पीछे-पीछे चलते गये। वृद्धा ने उन्हें शिलाओं के अनेक घुमावदार मोड़ पार कराये, दो-एक छोटी-छोटी गुफाएं भी मार्ग में आयीं और वह रुक गयी, "इन दो पहाड़ियों के बीच का मार्ग तुम्हें सीधे सागर-तट तक पहुंचा देगा। नयन मूंदे, सीधे चलते जाना। जहां मोड़ सहज लगें, वहां भी मत मुड़ना। यदि एक भी मोड़ ले लिया, तो पुनः इसी मायानगरी में भटकते फिरोगे।"

दल के सारे सदस्यों ने हाथ जोड़कर वृद्धा को प्रमाण किया और आगे बढ़ गये।

स्वयंप्रभा ने ठीक कहा था। मार्ग में उन्हें अनेक सहज लगने वाले मोड़ मिले, यदि उन्हें पहले से सावधान न किया गया होता, तो वे लोग कहीं-न-कहीं अवश्य मुड़ गये होते। कदाचित मय दानव ने सायास ऐसे भ्रांति-तत्पर मोड़ बनाये थे। रात को स्वयंप्रभा के ग्राम में रुक जाना भी सार्थक ही था। यह मार्ग ऐसा नहीं था, जिस पर अंधकार में यात्रा की जा सके। भ्रामक मोड़ों के साथ-साथ अनेक आकस्मिक आरोह तथा अवरोह भी थे। वे लोग स्वयंप्रभा के निर्देशों के अनुसार धैर्यपूर्वक चलते रहे और वह मार्ग उन्हें सीधे सागर-तट पर ले गया। अनेक गुफाओं में से होती हुई उस पगडंडी को समाप्त कर, जब वे पहाड़ों से बाहर खुले आकाश के नीचे पहुंचे, तो उनके पांव सागर-तट की छोटी-बड़ी शिलाओं पर थे और सामने

अथाह-अनन्त सागर लहरा रहा था। एक के बाद एक मदांध लहर आती थी और चट्टानों पर पछाड खाकर गिरती थी तथा असख्य बूंदों मे विभाजित होकर कही जल और कही फेन के रूप में बिछ जाती थी।

अगद थोडी देर तक खड़े, चिंतित दृष्टि से उन लहरों को देखते रहे। लहरो मे कोई समाधान न पाकर उन्होंने दृष्टि घुमायी और दूर तक कुछ खोजने का प्रयत्न करते रहे। अन्य लोग भी आस-पास की भूमि और सागर का निरीक्षण कर रहे थे।

थोड़ी ही देर में अंगद के चेहरे पर हताशा के भाव उभर आए।

"इस वृद्धा तापसी ने हमे कही का नही रखा।" वे अत्यन्त उदास स्वर में बोले, "कहां है लंका ? यह तो अथाह सागर है। अब इस सागर मे हम लका को कहां खोजें ?"

"सागर-तट पर आ गये है, तो लंका भी खोज लेंगे !" हनुमान अपने आशावान स्वर मे बोले, "आप इतने हताश क्यों हैं, युवराज ?"

"उधर देखो !" अंगद ने चट्टानो के पीछे उगे एक वृक्ष की ओर संकेत किया, "देख रहे हो, हनुमान ! वृक्ष पर फूल खिल रहे है; अर्थात् शरद ऋतु बीतने को है। किष्किधा लौटने की अवधि समाप्त हो गयी है। मैंने तुम्हारी बात मान ली थी कि सफलकाम होकर किष्किधा लौटने मे कोई सकट नही है; किंतु अब तो सफलता की भी कोई आशा नहीं है।"

"युवराज ! एक तो अभी से हताश होने का मैं कोई कारण नही देखता। दूसरे, यदि अपने संपूर्ण प्रयत्न के पश्चात भी हम असफल ही रहे तो अपने निष्कपट प्रयत्न की सच्चाई बताकर हम सम्राट से दया की आशा कर सकते है। हम उनके सच्चे और उपयोगी अनुचर हैं तथा वानरराज सुग्रीव दयालु और धर्म पर चलने वाले राजा हैं।"

"सुग्रीव और दयालु !" अगद का मुख क्रोध और भय से विकृत हो उठा, "सुग्रीव जैसा क्रूर व्यक्ति देखा है कभी तुमने ? जिसने राज्य के लिए अपने भाई का वध करवा दिया, उसे दयालु कहते हो तुम ! जो अपने परोपकारी मित्र का कार्य भुलाकर, माधवी पीकर कामासक्ति में पड़ा रहा—उसे धर्मरत राजा कहते हो !...मैं तो पहले ही समझ रहा था कि सुग्रीव ने मेरे साथ धूर्तता की है।...वह जानता था कि दक्षिण दिशा में

कितनी कठिनाइयां है, इसलिए मुझे इस दल का नेता बना दिया और मामा तार को भी साथ कर दिया। वह तो चाहता ही था कि इन बीहड़ वनों और पर्वतों मे भटक-भटककर, हम अवधि का समय व्यतीत कर असफल किष्किधा लौटें, ताकि वह हमारा अपराध सिद्ध कर, हमारा वध कर सके। मेरा सदा का वैरी सुग्रीव !"

"युवराज !" हनुमान अपने मन की आशका सत्य होते देख चिंतित हो गये; किंतु शीघ्र ही स्वय को संभालकर बोले, "वानरराज आपसे प्रेम करते हैं। उन्होने आपको युवराज बनाया है। आपने उनके निष्कासन के समय उनकी सहायता की थी। फिर आपने यह वैर की बात कैसे सोच ली ?"

"युवराज मुझे सुग्रीव ने नही बनाया !" अंगद तमककर बोले, "युवराज मुझे बनाया, राम के अपराध-बोध ने। नही तो सुग्रीव मुझ शत्रु-पुत्र को युवराज क्यो बनाता। मैंने उसके निष्कासन के समय अपने पिता के विरुद्ध सुग्रीव की सहायता की, यह मेरी मूर्खता थी। सुग्रीव को तब सहायता की आवश्यकता थी, इसलिए वह मेरा कृतज्ञ हुआ। किंतु वह कभी नही भूला कि मैं बाली का पुत्र हूं। तभी तो सम्राट बनते ही मेरी माता को अपनी पत्नी बना लिया। मुझे कही का नही छोड़ा सुग्रीव ने। एक तो हृदय से क्रूर, फिर राजा के पद पर अधिष्ठित और अब अवधि की सीमा बनाकर मुझे अपराधी बना दिया।...मेरा किष्किधा जाना व्यर्थ है। मैं अपना वध करवाने के लिए किष्किधा जाना नही चाहता।...मैं यहीं उपवास कर अपने प्राण त्याग दूंगा।"

"सुनो, युवराज !" सहसा तार ने कहा, "मैं भी तुमसे सहमत हूं कि किष्किधा लौटना वस्तुतः एक अपमानजनक मृत्यु को प्राप्त होना है। इसीलिए किष्किधा जाने के पक्ष मे मैं भी नही हूं; किंतु उपवास कर प्राण देना भी मैं आवश्यक नही समझता।"

"तो ?" अगद के साथ-साथ अन्य वानरो ने भी जिज्ञासा से तार की ओर देखा।

"मेरा प्रस्ताव है," तार ने उत्तर दिया, "कि हम लोग मय दानव के उस प्रासाद मे लौट जाएं। उस प्रासाद पर अधिकार जमाने से हमें रोकने

वाला कोई नहीं है। प्रासाद की संरक्षिका उस वृद्धा तापसी के कुटुम्ब में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो हमसे युद्ध कर सके। उनके पास कोई शस्त्र भी मुझे नहीं दीखा। उपवास कर आत्महत्या करने की हमें क्या आवश्यकता है। उस प्रासाद में हम आपका राज्याभिषेक करेंगे और आपकी प्रजा बनकर रहेंगे। वहां न अन्न की कमी होगी, न जल की और न फलों की। यदि आवश्यक होगा, तो प्रजा भी इकट्ठी कर ली जाएगी। उस नगरी की रक्षा तनिक भी कठिन नहीं है। एक तो वहां हमें कोई खोज ही नहीं पाएगा; और यदि खोज भी लेगा तो उन गुफाओं और पर्वत-श्रेणियों के भीतर हमसे युद्ध नहीं कर पाएगा।"

तार की बात सुनकर हनुमान अत्यन्त विचलित हो उठे। तार का तो यह मत था ही, अन्य लोग भी उससे सहमत प्रतीत हो रहे थे। कोई भी उसका विरोध नहीं कर रहा था। प्राणों के भय से इन लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। इन्हें इस समय न राक्षसों का अत्याचार स्मरण रह गया है, न अपने अभियान का लक्ष्य। ये लोग सर्वथा भूल गये हैं कि इन्हीं के भरोसे, किष्किंधा में सुग्रीव अपना वचन पूरा करने का विश्वास लिये बैठे हैं। राम और लक्ष्मण इन्हीं की सूचनाओं के आधार पर, राक्षसों से युद्ध कर, न केवल सीता का उद्धार, वरन राक्षसी आतंक के सार्वभौम अंधकार को नष्ट करने की तैयारी कर रहे हैं...और ये चचल-चित्त मूर्ख वानर, अपनी सारी बुद्धि अपने कर्तव्य से भागने के लिए व्यय कर रहे हैं।...इतना ही नहीं, अपनी जडता के कारण जिस विषैली राजनीति को ये जन्म दे रहे हैं—उसके परिणाम के प्रति पूर्णतः अनभिज्ञ बैठे हैं ..किसी ने ठीक ही इस जाति को 'वानर' नाम दिया है।...सीता का अन्वेषण और राक्षसों के विरुद्ध युद्ध की क्या बात, ये तो पारस्परिक आंतरिक कलह से किष्किंधा के वानर-राज्य का भी ध्वंस करेंगे...

...अंगद के मन में सुग्रीव की ओर से अनेक आशकाएं हैं। सुग्रीव ने तारा से विवाह कर, भयंकर भूल की है। अंगद के मन में तभी से सुग्रीव के विरोध का शूल चुभ गया है। वयस्क पुत्र, किसी भी अन्य पुरुष से अपनी माता का दांपत्य संबंध स्वीकार नहीं कर पाता। सुग्रीव लाख अंगद को अपना पुत्र मानें; किंतु अंगद उन्हें अपने पिता के रूप में कैसे स्वीकार करेगा...

बात परस्पर सबधों तक रहती तो विशेष संकट नहीं था, पर तार तो उसे राजनीति में घसीट रहा है। वह यहा अंगद का राज्याभिषेक कर, एक अन्य वानर-राज्य की नीव डाल रहा है। निश्चित रूप से इससे अंगद और सुग्रीव के मन मे छिपी आशंकाएं तल के ऊपर आ जाएंगी और वे खुलकर शत्रुता का रूप ले लेंगी। दोनो पक्ष स्वय को शक्तिशाली बनाना चाहेंगे। सुग्रीव की शक्ति और कैसे बढ़ सकती है—पर असिगुल्म तथा उसके साथी अपनी वाहिनियों के साथ अगद के पक्ष में हो जाएगे। वाली का पुत्र होने के नाते लोगों को अगद किष्किधा का न्याय-संगत राजा लगेगा। अगद को जन-सामान्य की सहानुभूति जीतने में समय ही कितना लगेगा...और फिर युद्ध हुआ तो विजयी चाहे अंगद हो अथवा सुग्रीव—वानर-राज्य की शक्ति ध्वस्त हो जाएगी। तब राक्षसो का नाश बहुत दूर की बात हो जाएगी; राक्षसों से किष्किधा को बचाना भी संभव होगा क्या?...

थोड़ी देर हनुमान अपने मन में नीति निर्धारित करते रहे; फिर धैर्यपूर्वक बोले, "युवराज! आप दल के नायक है। आप अपनी इच्छानुसार जो उचित समझें, निश्चय कर सकते है। पर एक बात मेरी भी सुन लें।"

अंगद ने अपनी हताश आखें हनुमान की ओर फेरी।

"आज ये लोग आपको वानरराज के विरुद्ध भडकाकर, आपका उनसे विरोध करा, आपके राज्याभिषेक का प्रलोभन दे रहे हैं।" हनुमान शब्दों को चबा-चबाकर बोले, "इनकी चचलता क्या इसी से सिद्ध नहीं है कि ये लोग अपने राजा को दिया गया वचन भूलकर नये राज्य की स्थापना का स्वप्न देख रहे है। कल, जब इन लोगों को अपनी पत्नी, सतानो तथा परिवार के अन्य सदस्यो की याद आयेगी तो क्या इनकी चंचलता पुन: नहीं उभरेगी? इनके अपराध के कारण जब वानरराज सुग्रीव इनके परिवारों को अधकूप में डलवा देंगे, तो ये लोग न केवल आपको छोड़कर भाग जाएगे; वरन वानरराज के पास जाकर आप पर राजद्रोह का आरोप सिद्ध कर उसका दड देने के लिए उनकी सेनाओं को मार्ग बताते हुए स्वय यहां तक ले आएगे।...इतना ही नहीं, युवराज! ये लोग आपको प्रासादों के पीछे छिपे रहने की कायरता सिखा रहे हैं। यह मत समझिए कि आप यहां छिपकर बैठ जाएगे, तो सुरक्षित हो जाएंगे।

राम और लक्ष्मण के वाण इन प्राचीरों के खड-खंड कर देंगे ..और तब देवी जानकी का अन्वेषण त्याग, मार्ग मे छिपकर बैठ जाने का परिणाम सामने आयेगा। अब भी यदि आप यही चाहते हैं, तो क्षमा कीजियेगा, मैं, नील, तात जाम्बवान तथा महाकपि सुहोत्र आपका साथ नही दे पाएंगे, क्योंकि मैं नही समझता कि इस दल के साथ हमें भेजकर वानरराज ने हमारे वध का षड्यत्र रचा है। मैं समझता हू कि हमें अपना योग्य तथा सामर्थ्यवान साथी समझकर उन्होंने हमें एक आवश्यक और भरोसे का कार्य सौंपा है।"

हनुमान ने नील, सुहोत्र तथा जाम्बवान की ओर देखा। वे लोग उनसे सहमत प्रतीत हो रहे थे।

अगद ने कोई उत्तर नही दिया। वे कुछ सोचते हुए मौन बैठे रहे। हनुमान की बात सुनकर तार भी कुछ चिंतित दिखायी पड़ने लगे थे।

हनुमान को यह अवसर उपयुक्त जंचा—लोहा गर्म था, यदि दो-एक घन और पीट दिये जाए, तो बात बन जाएगी।

"और युवराज! सफल या असफल—हम जब किष्किंधा पहुचेंगे, तो मैं नही समझता कि आपको वानरराज से भयभीत होने का कोई कारण है। आपके अतिरिक्त उनका कोई पुत्र नही है। वे आपसे कितना स्नेह करते हैं। आपकी माता साम्राज्ञी तारा कहा करती थी कि आप सम्राट वाली के इतने निकट कभी नही रहे, जितने तब युवराज सुग्रीव के निकट थे। वानरराज आपकी माता का प्रत्येक प्रिय करने को सदा तत्पर रहते हैं। मैं तो समझ ही नहीं पा रहा कि आपके मन मे ये आशकाए ही क्यों है?"

"हनुमान ठीक कहते है!" अंगद का स्वर सामान्य नही था, यदि "मैं किष्किंधा लौटा तो क्रूर राजा सुग्रीव के हाथों मारा जाऊंगा, और यदि मय दानव के उस परित्यक्त प्रासाद में शरण लेने गया, तो राम और लक्ष्मण के वाणो से अपने पिता के समान मारा जाऊंगा। मै इन दोनों को अपने लिए अपमानजनक समझता हू।" सहसा अगद के स्वर मे आवेश की मात्रा बढ गयी, जैसे वे अपने आपे मे नही रहे, "मैं प्रतिज्ञापूर्वक आप लोगों को कह रहा हू कि दल के नायक के रूप में मैं आप लोगो को आपके कर्तव्य से मुक्त कर रहा हू तथा स्वय मरणात उपवास आरंभ कर रहा हूं।"

इससे पूर्व कि कोई कुछ कहता, अगद अपने स्थान से उठ खड़े हुए। वे द्रुत गति से चलकर कुछ दूर तक जल के भीतर चले गये। समुद्र का जल अजलि में लेकर आचमन किया और लौटकर दक्षिणाभिमुख होकर अपने प्राण देने के लिए पद्मासन लगाकर बैठ गये।

सब ओर नि.स्तब्धता छा गयी, जैसे सबके मन में मृत्यु का आतक प्रत्यक्ष होकर जा बैठा हो।

सबसे पहले तार ने मौन तोड़ा, "मैं भी युवराज के साथ प्रायोपवेशन कर रहा हू। आमरण उपवास।"

देखते-देखते अनेक वानर उसी प्रकार शिला पर बैठते चले गये।

हनुमान को लगा, यदि यही क्रम चला तो उनका धैर्य भी डोल जाएगा।

७

बड़ी देर से संपाति निष्क्रिय पड़े थे। वे स्वयं ही समझ नही पा रहे थे कि वे अचेत हैं या सचेत। बीच-बीच में लंबे अंतराल के लिए या तो वे सो जाते थे, या सज्ञा-शून्य हो जाते थे। कभी वे पूर्णतः सवेदनाशून्य हो जाते और कभी लगता कि उनकी आत्मा उनके शरीर से निकलकर जाने कहां-कहां उड़ती चलती है। नये लोक, नये लोग, नयी भाषा, नये-नये रीति-रिवाज। ऐसे लोक तो न उन्होंने देखे, न सुने, फिर यह सब क्या है?...

ये सब उनके दुर्बल मन की कल्पनाएं थी, या सत्य ही उनके प्राण निकल रहे थे...ये प्राण भी इस शरीर के साथ पिशाच के समान चिपक गये थे—न रहते थे, न निकलते थे। यह जीवन भी कोई जीवन है—न जीवितों में, न मृतकों में...पेट था कि भूख-भूख चिल्लाता था और शरीर मे इतनी शक्ति नही थी कि उठकर अपने लिए खाद्य का कोई प्रबंध कर सकता। पता नही, भगवान उन्हें किस पाप का दड दे रहा था...

उसी अर्द्ध-चेतनावस्था में निकट ही कही कुछ लोगों के वाद-विवाद के स्वर उनके कानो में पड़े थे। पता नही, वस्तुत: कोई था, या यह भी उनके मरते हुए मस्तिष्क से उनकी इंद्रियों का विरोध था...कैसे-कैसे स्वर उनके कानों में आ रहे थे, जैसे कोई प्रतिज्ञापूर्वक प्रायोपवेशन करने बैठा हो... संपाति अपने अर्द्ध-चेतन मस्तिष्क से हंसे—वे निराहार मरने को बाध्य थे, तो उन्हें अन्य लोग भी प्रायोपवेशन करते सुनाई पड़ते हैं...

"कौन है रे यहा, जो प्रायोपवेशन कर रहा है ?" वे पड़े-पड़े चिल्लाए, "यदि मर ही रहे हो तो मेरे निकट आकर मरो, ताकि तुम्हें खाकर मैं जी उठू ।"

"आप कौन है, आर्य ? क्या आप नर-भक्षी है ?" उन्हें नीचे की शिलाओं से एक भीरु-सा स्वर सुनाई दिया।

...अरे, यहा तो वस्तुत: कोई है...उनकी चेतना की लौ जाग उठी। बोले, "नर-भक्षी तो नही हूं, किंतु भूख से मर रहा हूं। सोचा, तुम्हे अपना शरीर नही चाहिए, तो मेरा ही भला करते जाओ।"

नीचे का वार्तालाप बंद हो गया, जैसे वे लोग सोच में पड़ गये हों।

"अच्छा, किसी को नही खाऊंगा, भाई !" संपाति ने हसने का प्रयत्न किया, "तुम लोग हो कौन ? मुझे तनिक नीचे तो उतारो।"

नीचे कुछ हलचल हुई और दो-तीन लोग उनके निकट आए। उन्होंने सहारा देकर संपाति को नीचे उतारा।

"आप कौन है, आर्य ?"

"एक वृद्ध, जो अपने शरीर की असमर्थता के कारण अपना भोजन नही जुटा पा रहा और भूख से मर रहा है। शरीर निरोग है, इसलिए मर नही रहा; और ऊर्जा नही है, इसलिए जी नहीं रहा।"

"आप कुछ खाएंगे ?" अंगद ने पूछा।

"है कुछ तुम्हारे पास ?"

"कुछ फल और थोड़ा-सा जल।"

"खिला दो।"

अंगद अपना स्थान छोड़कर उठ गये और वृद्ध के मुख में थोड़ा-सा जल टपकाने के पश्चात छील-छीलकर फल खिलाने लगे। ये फल तथा

जल वे लोग अपने साथ स्वयंप्रभा के प्रासाद से ले आए थे।

यदि वह गुफा न मिल गयी होती, अथवा भीगे हुए वे चक्रवाक पक्षी दिखायी न पड जाते—अगद सोच रहे थे—तो उनकी तथा उनके साथियों की भी कदाचित यही दशा होती...वृद्धावस्था भी कैसा अभिशाप है ! कैसा दड है यह ! शरीर मे प्राण तो हों, पर प्राण-शक्ति न हो, तो जीवन ऐसे ही यातनामय हो जाता है।

"आपका कोई पुत्र नही है, आर्य ?"

"पुत्र तो है।" सपाति बोले, "किंतु पुत्र कम है, कलंक अधिक है। न होता, तो मैं मान लेता कि मेरा कोई नही है और शांति से मर जाता। पर वह है..." जल पी लेने और कुछ खाद्य-पदार्थ पेट में चले जाने से उनके शरीर में कुछ ऊर्जा आ गयी थी, "शरीर चलता नही, वत्स ! पर मेरा मस्तिष्क अब भी बहुत दौड़ता है। इसीलिए पुत्र की कायरता और स्वार्थ-लोलुपता—दोनों से ही बहुत पीड़ित हूं।"

अंगद ने चौंककर देखा—वृद्ध उन्हे ही तो नही सुना रहा।...यदि वे किष्किधा नही लौटे तो अपनी वृद्धावस्था में सुग्रीव उन्हे भी इसी प्रकार नही कोसेंगे क्या ?

"आपका परिचय, तात ?"

संपाति सभलकर बैठ गये, "पहले अपना परिचय कहो, वत्स ! नही तो कहोगे कि वृद्ध अत्यन्त वाचाल है—अपनी ही कहता है, दूसरों की सुनता ही नही।"

अंगद मुसकराए। वृद्ध उनसे अत्यन्त गोपनीय प्रश्न पूछ रहे थे; किंतु अब गोपनीयता का क्या प्रयोजन। जो व्यक्ति प्रायोपवेशन कर, प्राण देने को दृढ़-प्रतिज्ञ हो—उसे अब गोपनीयता-अगोपनीयता से क्या...

अंगद ने निर्द्वंद्व भाव से अपना और अपने साथियों का परिचय दिया और अपने अभियान का लक्ष्य भी बता दिया।

"जानकी का हरण कहां से हुआ, वत्स ?" इन नामों तथा घटनाओं से विशेष अपरिचय प्रकट नहीं किया।

"पचवटी से, आर्य !"

"पंचवटी !" संपाति कुछ याद करते हुए-से बोले, "जटायु भी तो इसी

स्थान के आस-पास कही रहता था।"

"आर्य जटायु !" हनुमान अनायास ही बोल पड़े, "आप आर्य जटायु को जानते हैं क्या ?"

"तुम भी उन्हें जानते हो क्या ?" सपाति मुसकराए।

"आर्य जटायु और राम का पक्ष एक ही था। उन्होंने राक्षसो के विरुद्ध युद्ध किया था और अनेक घाव खाए थे। अंततः उन्होंने सीता-हरण के समय, रावण से लड़ते हुए अपने प्राण दे दिये। उन्होंने..."

"जटायु मारा गया ?" सपाति का स्वर भर्रा आया।

"हा, आर्य ! रावण ने उनका वध कर दिया।"

"रावण ! दुष्ट रावण ! धिक्कार है तुझ पर, सुपार्श्व ! धिक्कार है !"

सहसा ही सपाति का सारा व्यक्तित्व जैसे बदल गया। वार्धक्य की उस दीनता के स्थान पर, एक प्रकार का आहत आक्रोश जागा। जीवन के प्रति उदासीनता के भाव पर गहरी आसक्ति का रग छा गया, जैसे उनका कुछ बहुमूल्य जीवन-संघर्ष के दाव पर लगा हो।

सारा वानर दल चकित होकर सपाति को देख रहा था...क्षण भर मे ही इस मृतप्राय दीन वृद्ध के भीतर से ये अग्नि-स्फुलिंग कहा से जल उठे ?

"क्या बात है, आर्य ?" हनुमान ने साहस कर पूछा।

"वत्स !" आक्रोश के अवरोह के पश्चात, संपाति की आंखों में पीड़ा के अश्रु भर आये, "जटायु मेरा छोटा भाई था। मैं उस वीर का अभागा बड़ा भाई हूं।"

किसी ने कोई उत्तर नही दिया; सब के सब अवाक् खड़े रह गये।

"मैं बड़ा अभागा हू, वत्स !" थोड़ी देर के पश्चात संपाति स्वय ही बोले, "धन्य है मेरा वह वीर भाई। मेरा तो सारा जीवन ही व्यर्थ चला गया।" वे रुककर थोड़ी देर सिसकते रहे, "जनस्थान मे ही हमारी जाति की भी कुछ बस्तिया थीं पुत्र ! एक छोटा-सा राज्य भी था। हमारी गृध्र जाति शरीर से हृष्ट-पुष्ट थी, और भावना से शूरवीर मानी जाती थी। मैंने और जटायु ने देवासुर-सग्राम मे दशरथ के पक्ष से युद्ध भी किया था; किंतु हम क्रमशः वृद्ध होते गये, जनस्थान के राक्षस बल पकड़ते गये और हमारी जाति हतवीर्य होती गयी। राक्षसों के बल के सम्मुख स्वय को सर्वथा

जल वे लोग अपने साथ स्वयंप्रभा के प्रासाद से ले आए थे।

यदि वह गुफा न मिल गयी होती, अथवा भीगे हुए वे चक्रवाक पक्षी दिखायी न पड़ जाते—अंगद सोच रहे थे—तो उनकी तथा उनके साथियों की भी कदाचित यही दशा होती...वृद्धावस्था भी कैसा अभिशाप है ! कैसा दंड है यह ! शरीर मे प्राण तो हों, पर प्राण-शक्ति न हो, तो जीवन ऐसे ही यातनामय हो जाता है।

"आपका कोई पुत्र नही है, आर्य ?"

"पुत्र तो है।" संपाति बोले, "किंतु पुत्र कम है, कलंक अधिक है। न होता, तो मैं मान लेता कि मेरा कोई नही है और शांति से मर जाता। पर वह है..." जल पी लेने और कुछ खाद्य-पदार्थ पेट में चले जाने से उनके शरीर में कुछ ऊर्जा आ गयी थी, "शरीर चलता नही, वत्स ! पर मेरा मस्तिष्क अब भी बहुत दौड़ता है। इसीलिए पुत्र की कायरता और स्वार्थ-लोलुपता—दोनों से ही बहुत पीड़ित हूं।"

अंगद ने चौंककर देखा—वृद्ध उन्हें ही तो नही सुना रहा।...यदि वे किष्किंधा नही लौटे तो अपनी वृद्धावस्था में सुग्रीव उन्हें भी इसी प्रकार नही कोसेंगे क्या ?

"आपका परिचय, तात ?"

संपाति संभलकर बैठ गये, "पहले अपना परिचय कहो, वत्स ! नहीं तो कहोगे कि वृद्ध अत्यन्त वाचाल है—अपनी ही कहता है, दूसरों की सुनता ही नही।"

अंगद मुसकराए। वृद्ध उनसे अत्यन्त गोपनीय प्रश्न पूछ रहे थे; किंतु अब गोपनीयता का क्या प्रयोजन। जो व्यक्ति प्रायोपवेशन कर, प्राण देने को दृढ़-प्रतिज्ञ हो—उसे अब गोपनीयता-अगोपनीयता से क्या...

अंगद ने निर्द्वन्द्व भाव से अपना और अपने साथियों का परिचय दिया और अपने अभियान का लक्ष्य भी बता दिया।

"जानकी का हरण कहा से हुआ, वत्स ?" इन नामों तथा घटनाओं से विशेष अपरिचय प्रकट नही किया।

"पंचवटी से, आर्य !"

"पंचवटी !" संपाति कुछ याद करते हुए-से बोले, "जटायु भी तो इसी

स्थान के आस-पास कहीं रहता था।"

"आर्य जटायु !" हनुमान अनायास ही बोल पड़े, "आप आर्य जटायु को जानते हैं क्या ?"

"तुम भी उसे जानते हो क्या ?" संपाति मुसकराए।

"आर्य जटायु और राम का पक्ष एक ही था। उन्होंने राक्षसों के विरुद्ध युद्ध किया था और अनेक घाव खाए थे। अंततः उन्होंने सीता-हरण के समय, रावण से लड़ते हुए अपने प्राण दे दिये। उन्होंने..."

"जटायु मारा गया ?" संपाति का स्वर भर्रा आया।

"हां, आर्य ! रावण ने उनका वध कर दिया।"

"रावण ! दुष्ट रावण ! धिक्कार है तुझ पर, सुपार्श्व ! धिक्कार है !"

सहसा ही संपाति का सारा व्यक्तित्व जैसे बदल गया। वार्धक्य की उस दीनता के स्थान पर, एक प्रकार का आहत आक्रोश जागा। जीवन के प्रति उदासीनता के भाव पर गहरी आसक्ति का रंग छा गया, जैसे उनका कुछ बहुमूल्य जीवन-संघर्ष के दांव पर लगा हो।

सारा वानर दल चकित होकर संपाति को देख रहा था...क्षण भर में ही इस मृतप्राय दीन वृद्ध के भीतर से ये अग्नि-स्फुलिंग कहां से जल उठे ?

"क्या बात है, आर्य ?" हनुमान ने साहस कर पूछा।

"वत्स !" आक्रोश के अवरोह के पश्चात्, संपाति की आंखों में पीड़ा के अश्रु भर आये, "जटायु मेरा छोटा भाई था। मैं उस वीर का अभागा बड़ा भाई हूं।"

किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया; सब के सब अवाक् खड़े रह गये।

"मैं बड़ा अभागा हूं, वत्स !" थोड़ी देर के पश्चात् संपाति स्वयं ही बोले, "धन्य है मेरा वह वीर भाई। मेरा तो सारा जीवन ही व्यर्थ चला गया।" वे रुककर थोड़ी देर सिसकते रहे, "जनस्थान में ही हमारी जाति की भी कुछ बस्तियां थीं पुत्र ! एक छोटा-सा राज्य भी था। हमारी गृध्र जाति शरीर से हृष्ट-पुष्ट थी, और भावना से शूरवीर मानी जाती थी। मैंने और जटायु ने देवासुर-संग्राम में दशरथ के पक्ष से युद्ध भी किया था; किंतु हम क्रमशः वृद्ध होते गये, जनस्थान के राक्षस बल पकड़ते गये और हमारी जाति हतवीर्य होती गयी। राक्षसों के बल के सम्मुख स्वयं को सर्वथा

असमर्थ था, मैंने वहां से हट जाने का प्रस्ताव जटायु के सम्मुख रखा था। वह मुझसे छोटा था; उसके शरीर में सामर्थ्य भी था और लगता है, जिजीविषा भी मुझसे कहीं अधिक थी। वह मुझसे सहमत नहीं हुआ। वह किसी-न-किसी रूप में राक्षसों के विरुद्ध संघर्ष चलाये रखने के पक्ष में था। मैं अभागा उसको छोड़कर, इधर सागर-तट पर चला आया। यहां अपेक्षाकृत शांति थी। यद्यपि यह स्थान राक्षसों के केंद्र लंका के पर्याप्त निकट है—किंतु यहां जनसंख्या नहीं के समान है। दूर-दूर कहीं कोई आश्रम अथवा पुरवा-टोला है। आस-पास फलों के कुछ वृक्ष हैं। समुद्र-तट पर मछली मिल ही जाती है। अपना पेट भरता रहा और जीवन का शेष समय किसी-न-किसी प्रकार नष्ट करता रहा। मेरे एकमात्र पुत्र ने भी कुछ दूरी पर अपना आश्रम बना रखा है।" उन्होंने रुककर दम लिया, "जब तक मैं सक्षम था, अपनी आवश्यकता से अधिक अर्जित करता था और अपने पुत्र को कुछ लाभ पहुंचा सकता था, तब तक सुपार्श्व मेरे ही साथ रहा। किंतु, जब स्थिति ऐसी हो गयी कि मैं उसके लाभ के लिए कुछ भी करने में असमर्थ हो गया, तो वह तपस्या करने के बहाने मुझसे अलग हो गया और अपना आश्रम बनाकर बैठ गया। यह कैसी तपस्या है, वत्स ! मैं आज तक नहीं समझ सका—जो स्वार्थ साधती है, और अपने कर्तव्य से आंखें चुराती है। पर वह ऐसा ही तपस्वी है..." वृद्ध संपाति कुछ श्रम और कुछ आवेश से हांफ-से गये थे।

हनुमान ने उनकी पीठ पर हाथ फेरकर उन्हें कुछ आराम देने का प्रयत्न किया। अंगद ने उनके मुख से जल का पात्र लगाया। उन्होंने दो-तीन घूंट पानी पिया, कुछ गहरी सांसें लीं और पुनः बोले, "वत्स ! मुझे अपने पुत्र का व्यवहार बहुत अपमानजनक लगा। तब मैं ऐसा असमर्थ भी नहीं था। सोचा, अपने भर को तो फिर भी कुछ-न-कुछ कर ही लूंगा। ऐसा तो अपाहिज नहीं हो गया हूं। पुत्र की इच्छा के विरुद्ध, क्यों उस पर भार बनकर रहूं ? यद्यपि मुझमें अकेला, स्वतंत्र रूप से रहने का सामर्थ्य नहीं था, तो भी अपने आहत स्वाभिमान के कारण मैं पुत्र से अलग रहा; और किसी प्रकार कच्चे-पक्के फल तथा कभी कच्ची और कभी भुनी हुई मछलियां खाकर पिशाचों के समान जीवित रहा।" संपाति पुनः रुके, "फिर एक

समय ऐसा आया, पुत्र ! कि मैं कुछ भी करने में सर्वथा असमर्थ हो गया। मन तो नहीं मानता था; किंतु शरीर पूरी तरह हार गया था। किंतु, यह जठराग्नि तब भी मुझे जलाये जा रही थी। लगता था अंतड़िया जल जाएंगी। तब सोचा, किसी से निवेदन करूं कि इस अपग वृद्ध के मुख में भी दो कौर डाल जाया करे। किससे निवेदन करता ! यहा था ही कौन ! तब मैं भी तुम्हारे समान प्रायोपवेशन का सकल्प कर, सागर-तट की शिलाओं पर लेट गया था, पुत्र ! किसी ने जाकर मेरे उस पुत्र सुपार्श्व को सूचना दे दी कि मैं यहा पडा-पडा मर रहा हू। जाने उसके मन मे कोई सुविचार जागा या जाने कोई स्वार्थ ही हो—उसने सोचा हो कि मरते हुए पिता की सेवा कर थोड़ा पुण्य अथवा थोड़ा-सा यश ही कमा ले। वह आया और मुझे अपने साथ अपने आश्रम मे ले गया।...किंतु मैं रोगी तो था नहीं, भूख से ही मर रहा था। खाने को मिला तो फिर से जी उठा। यद्यपि काम कोई नही कर सकता था, किंतु मेरा मस्तिष्क पूरे चैतन्य से सब कुछ सोचता था और जठराग्नि पूरी दाहकता के साथ जलाती थी। मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ होता, मुझे बुरा लगता तो मेरी जिह्वा चल निकलती। मैं सुपार्श्व पर भी टीका-टिप्पणी करने से स्वय को नहीं रोक पाता था। .. थोड़ा जल दो।" वे रुक गये।

जल पीकर सपाति पुन: बोले, "तब मैंने जाना कि मेरा पुत्र तो यह सोचकर मुझे अपने आश्रम लाया था कि मैं दो-चार दिन ही जीवित हूं—किसी प्रकार वह समय वह मेरे साथ काट लेगा और फिर मेरी अत्येष्टि कर अपने पितृ-ऋण से मुक्ति पा लेगा। किंतु मैं तो जी उठा था और निकट भविष्य में मेरे मरने की कोई संभावना नहीं थी। अनिश्चित काल के इस बोझ से वह घबरा उठा। मेरे प्रति उसके व्यवहार में रूक्षता और उपेक्षा होने लगी।...मेरी बात समझ रहे हो न, पुत्र ?" उन्होंने पूछा और उत्तर की प्रतीक्षा में रुक गये।

"हा, तात ! समझ रहे हैं।" अंगद और हनुमान प्राय. साथ-साथ ही बोले।

"एक दिन सुपार्श्व बाहर गया—कदाचित भोजन का ही प्रबंध करने गया हो।" संपाति बोले, "उसे लौटने में बहुत विलब हो गया; पीछे से भूख

के मारे मेरी अंतड़िया टूटने लगी. .मैंने कहा न, मेरा शरीर जितना असमर्थ था, मेरी भूख उतनी ही प्रबल थी। कभी-कभी तो जिह्वा की तृष्णा औचित्य का भी उल्लंघन कर जाती थी। वृद्धावस्था मे यदि इद्रिया सक्रिय हों, तो उन पर नियंत्रण पाना कठिन होता है, पुत्र !...तो उस दिन भूख से मै अत्यंत व्याकुल हो उठा। बड़ी देर के पश्चात जब सुपार्श्व कुटिया मे लौटा तो मैंने उसे डांटा कि वह अपने वृद्ध पिता का तनिक भी ध्यान नही रखता। मुझे भूख से बिलबिलाता छोड, स्वयं कहां-कहा मनोरंजनार्थ भ्रमण करता रहता है।...उसका उत्तर मेरी बात से भी अधिक कठोर था। उसने कहा कि वह मेरी इन असगत बातो से तग आ गया है। मुझे अपनी मर्यादा मे रहना चाहिए। ..और फिर उसने बताया कि वह भोजन की ही खोज मे उस दिन महेन्द्र गिरि तक चला गया था। वह जब पके फलों के वृक्षों की खोज मे इधर-उधर भटक रहा था तो उसने एक असाधारण दृश्य देखा। उसने देखा कि प्रौढ वय का एक असाधारण बलशाली श्यामवर्ण राजपुरुप एक गौरवर्णा, अत्यंत असाधारण सुदरी युवती स्त्री को बलात् अपने कंधे पर लादे लिये जा रहा था। वह जलमार्ग से आया था और अब आगे जाने के लिए सुदरी को निकट खड़े अपने रथ की ओर ले जा रहा था। वह सुंदरी अपनी सामर्थ्य भर उस पुरुष की पकड़ से मुक्त होने के लिए संघर्ष कर रही थी और सहायता के लिए अनवरत पुकार रही थी। वह बार-बार दाशरथि राम और सौमित्र लक्ष्मण का आह्वान कर रही थी...।"

"देवी वैदेही ?" हनुमान के मुख से अनायास ही निकल गया।

"हा, वत्स ! यह तो मैं आज ही समझ पाया हू।" सपाति बोले, "और वह पुरुष रावण था, जिसके खड्ग से अभी कदाचित मेरे भाई जटायु का रक्त सूख भी न पाया हो...।" उन्होंने रुककर अपने अश्रु पोछे, "पर तब मैं यह नही समझ पाया था। फिर भी मैंने सुपार्श्व से पूछा था कि उसने उस सुदरी की सहायता क्यो नही की ! तो जानते हो, उसने क्या उत्तर दिया ?"

"क्या ?"

"उसने कहा कि वह उस पुरुष का मार्ग रोककर खड़ा हो गया था;

किंतु उस पुरुष ने अत्यत दीन भाव से उससे मार्ग छोड़ देने का अनुरोध किया और कहा कि उसने सुपार्श्व की कोई हानि नही की है, अत. सुपार्श्व मार्ग से हट जाए।"

"और वह मार्ग से हट गया ?"

"हा ! उसका कहना था कि यदि कोई व्यक्ति इतनी दीनता और शालीनता से प्रार्थना करे तो उससे युद्ध कैसे किया जा सकता है ?"

"वह व्यक्ति चाहे कितना ही बडा अनर्थ क्यो न कर रहा हो ?"

"यही प्रश्न मैंने भी अपने युवक पुत्र से किया था, किंतु वह बार-बार उस पुरुष के अत्याचार से हटकर, उसके शिष्टाचार की बात करने लगता था।" सपाति बोले, "पर वास्तविक बात तो मैं आज समझा हू, पुत्र ! उसने कदापि रावण का मार्ग नही रोका होगा। जो व्यक्ति अपने पिता के प्रति अपने कर्तव्य का बोझ उठाने को तैयार नही है, वह एक अपरिचित-अनजान युवती के प्रति अपने कर्तव्य को क्या समझेगा। उसने रावण का भयकर रूप, क्रूर मुख और घातक शस्त्रो को देखा होगा और भय से पीला पड़कर किसी झाडी में छिप गया होगा; या सभव है, सज्ञाशून्य होकर कही गिर पड़ा हो और वही पड़ा रह गया हो। इसी मे उसे इतना विलब हो गया था।" सपाति पुनः कुछ सोचते हुए रुक गये, "उस दिन मैंने यह सब नहीं समझा था, नही तो अपनी उस अवस्था मे भी कदाचित् मैं इतना निष्क्रिय न रहता। किंतु, फिर भी मैंने अपने उस कपूत को इस प्रमाद के लिए बहुत ताड़ना दी और कहा कि मै ऐसे कायर पुत्र का मुख भी नही देखना चाहता. .।" सपाति अप्राकृतिक ढग से हसे, "वह मेरी ताड़ना से लज्जित नही हुआ, न उसने अपनी भूल स्वीकार की। उसने भी मेरे ही स्वर मे कहा कि वह मेरे-जैसे वाचाल और पंगु वृद्ध से तग आ गया है, जो न अपना सामर्थ्य समझता है, न अपनी मर्यादा। मैंने उसी रोष मे उससे कहा कि यदि ऐसी ही बात है तो वह अपने इस वृद्ध पिता को अपनी इस कुटिया मे निकालकर समुद्र-तट की किसी शिला पर डाल क्यो नहीं आता। लगता है कि वह तो मुझसे मुक्ति पाने को किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा-भर कर रहा था। उसने मेरी आज्ञा का शत-प्रतिशत पालन किया और स्वय अपने कधे पर उठाकर अपने आश्रम से इतनी दूर, इस शिला पर डाल

गया, जहां से उसके आश्रम तक, मुझ मुमुर्षु का चीत्कार भी न जा सके।... और मैं यहां पड़ा हुआ अपने इन प्राणों को कोसता रहा कि ये लोलुप इस असमर्थ शरीर से क्यों चिपके है। क्यों नहीं इसे ये इस यातना से मुक्त कर देते।" सहसा संपाति के चेहरे पर कोई पुराना तेज जागा, "पर आज समझ गया हूं कि पिछले चार महीनों से ये प्राण इस शरीर से इस प्रकार मरते-जीते क्यों चिपके है...वस्तुत अभी इन प्राणों को इस शरीर से कुछ काम लेना है।" उन्होंने रुककर वानर-दल के एक-एक सदस्य को बारी-बारी देखा, "मुझमें इतना सामर्थ्य नहीं, पुत्रो ! कि तुम्हारे साथ सागर पार कर, लंका में जाकर पापी रावण का अपने इन हाथों से वध कर अपने भाई की हत्या का प्रतिशोध ले सकूं। पर तुम्हें यह निश्चित सूचना अवश्य दे सकता हूं कि सीता का हरण रावण ने ही किया है और वह उसे लेकर लंका में ही गया है। तुम लोग यदि सागर पार करने का पराक्रम कर सको तो लंका में सीता को अवश्य पा सकोगे।" संपाति रुककर पुनः कुछ सोचने लगे।

"क्या बात है, तात ?" हनुमान ने तनिक विचलित स्वर में पूछा।

"कुछ नहीं, पुत्र ! सोच रहा था कि तुम लोग सागर कैसे पार करोगे ?"

"राक्षस इसे कैसे पार करते हैं, आर्य ?" अंगद ने प्रश्न किया।

"उनकी अपनी परिवहन व्यवस्था है। उनके जलपत्तन है। उनकी नौकाएं और जलपोत चलते है।" संपाति बोले, "किंतु तुम उनमें यात्रा नहीं कर सकते। उन्हें तनिक भी संदेह हो जाने पर वे तुम्हारा वध कर देंगे। तुम्हें तो किसी निर्जन तट से तैरकर समुद्र पार करना पड़ेगा, जहां तुम पर किसी की दृष्टि न पड़े। यदि लंका में किसी को तनिक-सा संदेह हो गया कि सीता का अन्वेषण करने के लिए कोई व्यक्ति लंका की ओर आया भी है, तो सीता का संधान पाना असंभव हो जायेगा। राक्षसों की शासन-व्यवस्था तथा शक्ति को कदाचित् तुम नहीं जानते।...तुम सब लोग तो नहीं जा सकोगे। सबका जाना उचित भी नहीं है। यदि एक या दो व्यक्ति जा सको तो बहुत अच्छा है।" वे क्षण-भर के लिए रुके, "तुम्हें एक स्थान मैं बता सकता हूं। यहां से दक्षिण में थोड़ी दूर पर एक उपयुक्त

स्थान है। वहा से सागर-सतरण मे अनेक बाधाए हैं। मार्ग मे मैनाक पर्वत है, स्थान-स्थान पर जल-मग्न शिलाए है, भयकर जल-जतु और सर्प है— किंतु इन्ही सब बाधाओ के कारण वहा राक्षसों का आवागमन नही है और वह स्थान सर्वथा निर्जन है। तुममे सामर्थ्य, शक्ति और साहस हो तो अपने अभियान पर आगे बढो, नही तो सुपार्श्व के पड़ोस मे एक-एक कुटिया तुम भी डाल लो।" अपनी बात समाप्त करते ही सपाति ने आश्चर्यजनक ढग से अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। वे बिना किसी का सहारा लिये, अपने ही बल पर अपने पैरो पर उठकर खड़े हो गये।

"आप. ." हनुमान ने कुछ कहना चाहा।

"इतना सब जान और सुनकर मैं निष्क्रिय मर जाने के लिए यहा पडा नही रह सकता, वत्स।" सपाति बोले, "मेरा मनोबल जाग उठा है; और तुम्हारे दिये भोजन से मेरे शरीर में कुछ जान भी आ गयी है। मैं जा रहा हूं, जहा तक यह शरीर ले जाए। सुपार्श्व से तो मुझे कोई आशा नहीं है, किंतु गृध्र जाति के अन्य युवको को टेरूगा और यथासभव रावण के विरुद्ध युद्ध के लिए उन्हे प्रेरित करूगा। प्रयत्न करूगा कि जब भी कभी कोई सेना रावण से लडने जाए, उसमे कुछ सैनिक गृध्र जाति के भी हों।" संपाति ने डगमगाते हुए दो पग धरे और बोले, "अच्छा, अब मुझे विदा दो। भगवान तुम्हें सफल करें।"

वे उत्तर पाने के लिए नही रुके, न ही उन्होंने पलटकर पीछे देखा; वे अपने डगमगाते पगो से आगे बढते चले गये।

सपाति के चले जाने के पश्चात कुछ समय तक नीरवता छायी रही—जैसे प्रत्येक व्यक्ति मन-ही-मन कुछ सोच रहा हो। किंतु अब पहले जैसा हताशा का वातावरण एकदम नही था, जो सपाति के आने से पूर्व था, और न ही कोई पुन. प्रायोपवेशन के लिए प्रतिज्ञापूर्वक बैठने का संकल्प दिखा रहा था।

दूर जाते हुए वृद्ध सपाति के डगमगाते शरीर को अगद तब तक देखते रहे, जब तक कि वह आखो से ओझल ही नही हो गया। उन्हे लग रहा था कि सपाति का इस प्रकार सब कुछ कह जाना मात्र सयोग नहीं था।

है कि वैदेही लंका में ही है। अगद लका मे जाएंगे तो उन्हें खोज ही निकालेंगे—रावण उन्हे कही भी छिपाकर क्यों न रखे...। ऐसी निश्चित सफलता भी क्या कभी किसी को पुकारती है ?...राम और सुग्रीव ने भी यही कहा था कि दक्षिण दिशा मे ही और विशेषकर लका में ही सीता को छिपाकर रखने की सभावना है, तभी तो सुग्रीव ने हनुमान, तार, जाम्बवान और नील के होते हुए भी अगद को इस दल का नायक बनाया। वैसी निश्चित सफलता उन्होने अगद के हाथ मे रख दी थी और अंगद थे कि सुग्रीव के प्रेम और अपने प्रति उनके पक्षपात को नही समझ सके...वाह रे अगद ! तुमने सुग्रीव को अपना शत्रु समझा...

अगद ने अपने साथियो की ओर देखा, "क्या सोचा है, मित्रो ?"

"इतना सोच लिया है कि अब प्रायोपवेशन नही करना होगा।" जाम्बवान दृढ़ और स्पष्ट स्वर मे बोले, "जब सीता का लंका मे होना निश्चित है तो हम थोड़ा पौरुष कर, उनका अन्वेषण करने के स्थान पर अपने प्राण क्यों दें ! सीता का अन्वेषण, हम सबके प्राणो की सुरक्षा का निश्चित प्रमाण है। हमें वही करना होगा। चलो, उठो। हम दक्षिण दिशा मे उस स्थान को ढूढें, जिसके निकट महेन्द्र गिरि है, जिसका सकेत आर्य सपाति कर गये हैं।"

पूरे दल में से किसी ने भी जाम्बवान के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया। स्वय जाम्बवान को आश्चर्य हो रहा था कि सपाति के साथ वार्तालाप के पश्चात सारा-का-सारा दल इतना उत्साही कैसे हो गया था।. . अगद, जो प्रायोपवेशन कर, अपने प्राण देने पर तुले हुए थे, इस समय सहर्ष सबसे आगे-आगे चल रहे थे।

सागर-तट पर उस स्थान को खोजने मे उन्हें तनिक भी कठिनाई नही हुई, जिसकी चर्चा संपाति कर गये थे। सामने कुछ दूरी पर महेन्द्र पर्वत था और दूर तक अथाह सागर फैला हुआ था। वह समुद्र कही तो तरगहीन एव शांत होने के कारण सोया हुआ-सा जान पड़ता था। अन्यत्र, जहां छोटी-छोटी लहरें उठ रही थी, क्रीड़ा करता-सा प्रतीत होता था। कुछ दूरी पर जहा उत्ताल तरगें उठती थी, और जलराशियों के पर्वतों-के-पर्वत उठा-

उठाकर एक-दूसरे पर पटक, उन्हें पीसने का प्रयत्न करता हुआ भयंकर दिखायी पड़ता था।

अंगद ने देखा—आधे से अधिक वानरों का उत्साह समुद्र के स्वरूप को देखते ही फेन के समान बैठ गया था और वे सागर पार कर लंका पहुंचने के अभियान के प्रति, उत्सुक प्रतीत नहीं हो रहे थे। वे लोग इधर-उधर छिटककर, आकाश-पाताल, सागर अथवा क्षितिज को देखते हुए विभिन्न शिलाओं पर जा बैठे थे...किंतु अंगद का उत्साह इस बार तनिक भी क्षीण नहीं हुआ। उनकी अन्यमनस्कता से अंगद को क्या लेना-देना। सारे दल को तो लंका जाना नहीं था। संपाति की बात ठीक थी। एक या दो लोगों को ही जाना था। और कोई नहीं जायेगा, तो अंगद तो तैयार हैं ही...

सागर का भली प्रकार निरीक्षण हो चुका तो अंगद पुनः अपने साथियों से संबोधित हुए, "अब हम निर्णय कर लें कि कौन-कौन सागर-संतरण कर लंका पहुंचकर, देवी वैदेही का समाचार लायेगा। कौन है, जिसका पराक्रम हमारे प्राणों का रक्षा-कवच बनेगा और जिसके संबल से हम सब किष्किंधा में, अपने परिवारों से जा मिलेंगे?"

अंगद अपनी बात समाप्त कर आश्चर्य से अपने साथियों को देख रहे थे। किसी ने भी स्वेच्छा से स्वयं को इस कार्य के लिए प्रस्तुत नहीं किया था। यहां तक कि हनुमान भी, किष्किंधा के तैराकों के सिरमौर, जो अब *तक इतने आशावादी और उत्साही लग रहे थे, इस समय अनमने-से हुए,* दूर एक शिला पर बैठे, सागर की गहराइयों में जाने क्या झांक रहे थे।

अंगद ने थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा की; किंतु जब मौन लंबा हो गया और किसी ने आगे बढ़कर चुनौती स्वीकार नहीं की, तो वे पुनः बोले, "दल के नायक के रूप में, वैसे भी मेरा कर्तव्य है कि किसी अन्य साथी से अपेक्षा करने से पूर्व मैं स्वयं उस कार्य के लिए प्रस्तुत रहूं। इसलिए मैं ही सागर-संतरण कर लंका जाऊंगा और देवी वैदेही का अन्वेषण कर लौटूंगा। आप लोग मेरे आने तक यहीं मेरी प्रतीक्षा करें...।"

अंगद के प्रस्ताव को सुनते ही जाम्बवान चौंके—अंगद सम्राट के पुत्र और युवराज हैं। उनके बल-विक्रम तथा समझदारी में जाम्बवान को कोई संदेह नहीं; किंतु दुर्घटना किसी के भी साथ हो सकती है। इतना लंबा

सागर है, अंगद कहीं थककर हार गए; सागर में असंख्य जल-जंतु हैं—उनमें से अनेक शक्तिशाली और घातक भी हैं। यदि किसी ने अंगद का आखेट कर लिया तो? लंका में भी वे अपने असंख्य शत्रुओं में अकेले होंगे। तनिक-सी असावधानी से वे किसी संकट में पड़ सकते हैं ..ऐसे में किष्किंधा पहुंचकर वे लोग सम्राट और साम्राज्ञी को क्या उत्तर देंगे कि वे लोग युवराज की बलि देकर स्वयं सुरक्षित लौट आए हैं ..ऐसे में सम्राट उन लोगों को क्षमा कर देंगे क्या?

और अंगद के उत्साह का क्या भरोसा है। अभी थोड़ी देर पहले तक वे हताश मन स्थिति में प्रायोपवेशन करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे। इस समय उनका उत्साह सागर की लहरों के समान आरोह पर है, लंका में किसी भी समय यह उत्साह अवरोह की स्थिति में आ गया तो उन्हें लंका, किष्किंधा से अधिक सुरक्षित लगने लगेगी; रावण उन्हें वाली के मित्र के रूप में सुग्रीव से अधिक प्रिय लगने लगेगा ..नहीं! अंगद को भेजना उचित नहीं है ..

"युवराज!" जाम्बवान अत्यन्त स्नेह और सम्मान से बोले, "हमें आपके सामर्थ्य और पराक्रम पर पूरा भरोसा है। नायक के रूप में आपका दायित्व-बोध भी श्लाघ्य है। आप जाएंगे तो निश्चय ही कार्य पूर्ण कर, सफलकाम होकर लौटेंगे। किंतु आप हमारे नायक हैं। आप चले गए तो पीछे हम सब असंगठित तृणों के समान परिस्थितियों के वात्याचक्र में उड़ जाएंगे। दल के नेतृत्व के लिए उसे दिशा प्रदान करने के लिए नायक के रूप में आपका यहां रहना अत्यन्त आवश्यक है। नायक अन्य लोगों को अभियान पर भेजता है, स्वयं अभियान पर नहीं जाता। आपकी सुरक्षा हमारी सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है; अतः आप स्वयं न जाकर किसी और व्यक्ति को भेजें।"

अंगद ने जाम्बवान की बात पर विचार किया और बोले, "मैंने तो पहले ही पूछा था कि जाने को कौन प्रस्तुत है!"

जाम्बवान ने दूर बैठे हनुमान को संबोधित किया, "केसरीकुमार! तुम क्यों इतनी दूर जाकर अन्यमनस्क-से बैठ गये हो, जैसे तुम में सागर-संतरण की योग्यता न हो। मेरा दृढ़ मत है कि तुम दस बार इस सागर

को तैर कर, लका जाकर लौट सकते हो। मैं तो यह भी समझता हूं कि वानरराज सुग्रीव ने तुम्हे विशेष रूप से तुम्हारी योग्यता के कारण ही इस दल मे रखा है।"

हनुमान अपने स्थान से उठकर आए और जाम्बवान के निकट खड़े हो गए, "आप आदेश दें, तात जाम्बवान ! मैं योग्य होऊं, न होऊं—प्रयत्न अवश्य करूगा।"

"तुम न केवल सागर-संतरण मे समर्थ हो।" जाम्बवान का स्वर पूर्णतः प्रशसात्मक था, "तुम लंका में पहुंचकर अपनी रक्षा, सीता के अन्वेषण तथा अकस्मात उत्पन्न किसी भी विपत्ति का सामना करने तथा सफलतापूर्वक उसमें से बच निकलने मे भी समर्थ हो। तुम्हे ही लंका जाना चाहिए।"

"मैं प्रस्तुत हूं, ऋक्षराज !" हनुमान ने सहज रूप में स्वीकार कर लिया।

"तो तुम्ही जाओ, हनुमान !" अंगद ने हनुमान को मुग्ध दृष्टि से देखा, "तुम्ही हमारे रक्षा-कवच बनो। सीता का अन्वेषण कर सफलकाम हो लौटो। जब तक तुम लौटकर यहां नही आओगे, हम पंजों के बल खड़े होकर तुम्हारी बाट देखेंगे।"

"आशा है मैं आपको निराश नही करूंगा, युवराज !"

"जाने से पूर्व कुछ खा लो हनुमान !" शरगुल्म ने धीरे से कहा, "अन्यथा बीच सागर में भूख सताएगी।"

इस मैत्रीपूर्ण सुझाव पर हनुमान मुसकराए...भोजन की असुविधा ने कितना विचलित कर दिया है इन लोगो को !

"खाकर तैरना असुविधाजनक होगा, मित्र !"

शरगुल्म ने कोई उत्तर नही दिया।

हनुमान ने अपनी गदा, अंगद के सम्मुख भूमि पर रख दी। अपने वस्त्र कसे और दल के सभी सदस्यो से विदा लेकर समुद्र की ओर मुड़ गये।

सहसा अंगद ने उन्हें पुकारा, "केसरीकुमार !"

हनुमान रुक गये—कहीं अंगद के मन में कोई नया विचार तो नहीं आया ?

अगद निकट आए,"चल तो दिये, हनुमान ! पर यदि देवी वैदेही मिल गयी तो उन्हे इस बात का क्या प्रमाण दोगे कि तुम आर्य राम के ही दूत हो ?"

हनुमान असमजस में पड गये।

"लो !" अंगद ने अपनी हथेली उनके सम्मुख फैला दी। हथेली पर राम की दी हुई गवद घास की मुद्रिका थी। "इसे सभालकर ले जाना। अन्यथा जानकी तुम्हारे वचनों का विश्वास तो नही ही करेंगी, उल्टे तुम्हें कपटी तथा धूर्त समझकर दुत्कार भी दें तो कोई वड़ी बात नही।"

हनुमान ने सावधानी से मुद्रिका उठा ली। उसे भली प्रकार एक वस्त्र मे लपेटा और कमर में खोंस लिया।

"मैं भले ही कही खो जाऊ, यह मुद्रिका नही खोएगी।" हनुमान मुसकरा रहे थे।

वे पुनः मुड़े और अगद उन्हे देखते ही रह गये—किस सहजता से जा रहे है हनुमान, जैसे किसी दैनिक कार्य के लिए जा रहे हो। इतना महत्त्वपूर्ण तथा जोखिम का काम है; और इस व्यक्ति के चेहरे पर न तनिक-सी उत्तेजना है, न उद्विग्नता। जाने किस मिट्टी का वना है यह हनुमान।

८

हनुमान एक ऊंची शिला पर खडे थे। बीच आकाश में सूर्य चमक रहा था। सामने शिला के पगो से टकराता हुआ, वैदूर्य मणि के रंग का सागर का जल था। शिला पानी से कोई पांच हाथ ऊची थी; किंतु पानी कितना गहरा था ? कहीं ऐसा न हो कि पानी उथला हो और ऊपर से कूदने पर चोट आ जाए। किंतु अन्य उपाय भी कोई नहीं था। कूदना तो होगा ही।

हनुमान के शरीर पर उत्तरीय नहीं था। बहुत आवश्यक होने पर ही वे उत्तरीय लेते थे, अन्यथा काम-काज मे बाधा मानकर, उससे मुक्त ही

रहते थे। धोती को यद्यपि उन्होंने कस रखा था; किंतु तैरने में कदाचित वह विघ्नकारक हो, सोचकर उन्होंने उसे घुटनों से भी ऊपर समेटकर, कमर से भली प्रकार कस लिया। हाथ से टटोलकर देखा—राम की दी हुई मुद्रिका सुरक्षित थी।

मुड़कर उन्होंने अपने साथियों की दिशा में हाथ हिलाकर अपने जाने का संकेत किया और जल में छलांग लगा दी। पानी जोर से उछला और हनुमान को उसने अपने भीतर छिपा लिया। कुछ क्षणों के पश्चात दस हाथ आगे जाकर हनुमान जल से ऊपर उभरे। उनकी गर्दन और कंधे पानी के ऊपर दीख रहे थे और लंबी-लंबी भुजाओं से पानी को परे धकेलते हुए वे धनुष से छूटे बाण के समान लपके जा रहे थे।

जल बहुत ठंडा नहीं था। गहरा भी बहुत अधिक नहीं था; किंतु व्यक्ति को डुबो देने भर को पर्याप्त था। यहां पानी में तरंगें नहीं थीं—जल जैसे सोया हुआ-सा हो।...सौ हाथ तक जाते-जाते ही एक बात हनुमान के मन में स्पष्ट हो गयी—यहां कोई बड़ा और घातक जल-जंतु नहीं था, जिससे गंभीर रूप में आहत होने अथवा प्राण गंवाने का संकट हो, पानी के नीचे बिछी छोटी-बड़ी अनेक शिलाओं, छोटे-मोटे टूहों तथा पहाड़ियों के कारण, यह स्थान बहुत सुरक्षित भी नहीं था। इस प्रकार के जल में, अत्यन्त सावधान रहकर चलने की आवश्यकता थी, अन्यथा जल को धकेलने के लिए फेंका गया हाथ अथवा पैर, अपने ही वेग से पूरे बलपूर्वक किसी शिला से टकराकर, आहत हो सकता था। सागर का यह क्षेत्र, कदाचित इन्हीं जलमग्न शिलाओं के कारण, परिवहन के लिए सुविधाजनक नहीं था। अनुपयोगी समझकर ही, राक्षसों ने इस ओर अपना आवागमन नहीं रखा होगा। तभी तो यह क्षेत्र निर्जन है। संपाति इस तथ्य से परिचित थे—इसीलिए उन्होंने यहां से यात्रा करने का निर्देश किया होगा।

क्रमशः शिलाओं के ऊंचे उठते जाने के कारण जल उथला होता गया। कदाचित महेन्द्र पर्वत का क्षेत्र आरंभ हो गया था। जल्दी ही हनुमान अपने पैरों को शिलाओं का स्पर्श करते हुए पाने लगे। जल की गहराई बहुत कम जानकर, उन्होंने तैरना अनावश्यक समझ, शिला पर पैर टिका, खड़े होने का प्रयास किया ही था कि वे फिसलकर गिर पड़े। यदि वे

इतने सावधान न रहे होते तो वे उन ऊबड़-खाबड़ और स्थान-स्थान से नुकीली शिलाओं पर बडे बेढब ढंग से गिरते और कदाचित कोई-न-कोई बडा घाव अवश्य लगता...किंतु उन्होंने अभी पूरी तरह अपना बोझ पैरो पर नही डाला था, इसलिए पुन तैरने की मुद्रा में आ गये। ..हनुमान समझ नही पा रहे थे कि अपनी स्थिति पर वे हसें या शोक मनाए। वहा शिलाओं के ऊपर दो हाथ भी पानी नहीं था, जहां वे तैरने का प्रयत्न कर रहे थे। काई जमी, फिसलन भरी उन शिलाओं पर पैर रखकर वे खड़े नही हो सकते थे, और दो हाथ गहरे जल मे वे खुलकर हाथ-पैर भी नहीं चला सकते थे।

पद्रह-बीस हाथ की दूरी हनुमान ने बडी जोखिमपूर्ण स्थिति में पार की। उनकी इच्छा हो रही थी कि किसी प्रकार वे महेन्द्र पर्वत के मुख्य भाग के निकट पहुंच जाएं और किसी वृक्ष की झुकी हुई डाली, अथवा ठोस चट्टान के सहारे सूखे क्षेत्र पर उतरें। किंतु पंद्रह-बीस हाथों की उस दूरी को पार करने मे ही युग बीत गये।...महेन्द्र पर्वत पर पैर पडते ही उन्हे लगा, जैसे वे किसी असाधारण जोखिम को पार कर आए हों।

उन्होंने तत्काल स्वय को सभाला। अभी तो यात्रा का आरंभ मात्र था। और यह संकट कोई इतना बडा सकट भी नहीं था। अभी तो सागर का मुख्य भाग आरभ भी नही हुआ था और उन्हे एक लबा मार्ग पार करना था। वे इतनी-सी बात से घबरा जाएगे, तो आगे क्या करेंगे। इन सकटों का तो अभ्यस्त होना ही पड़ेगा।

महेन्द्र गिरि, सागर के बीच में उठा हुआ एक पर्वत-खड था और पर्याप्त हरा-भरा था। वनस्पति तथा अन्य जीव-जंतुओ को देखते हुए लगता था कि यह पर्वत-खंड असाधारण रूप से उपजाऊ क्षेत्र था। विभिन्न प्रकार के विशाल वृक्षो के बीच स्थान-स्थान पर धूप मे लेटकर सुस्ताते हुए मगर, कछुए तथा सर्पों की इतनी बडी सख्या हनुमान के लिए आश्चर्य का विषय थी। यदि वे आरंभ से ही सावधान न रहे होते, तो किसी सोये हुए मगर को सूखी भूमि समझकर, उस पर पाव रख देने की भूल की कुछ अधिक ही संभावना थी। छोटे-बड़े सर्पों की तो जैसे वह क्रीड़ा भूमि ही थी। सहज और उन्मुक्त रूप से विचरण करते उन सर्पों को देखकर लगता था कि

उनकी पशु-बुद्धि में जैसे अपने किसी शत्रु की संभावना ही नही थी। वे सारे जीव-जंतु अपने बीच आए इस दीर्घाकार हृष्ट-पुष्ट नवागंतुक के कारण तनिक भी विचलित नही थे। हनुमान के पैर से ठोकर खाकर कोई कंकड़-पत्थर उनके अधिक निकट चला जाता अथवा उनके शरीर से छू जाता तो वे सिर उठाकर एक बार इधर-उधर देख अवश्य लेते थे। किंतु, शत्रुता के भाव से हनुमान पर आक्रमण करने की बात उनमे से किसी ने नहीं सोची .. कदाचित मानव से अपनी शत्रुता का संबंध उन्हें अभी ज्ञात नही था।

हनुमान भी इस स्थिति से संतुष्ट थे...मगर तथा सर्पों का विचलित न होना ही उनके लिए श्रेयस्कर था। यदि वे विचलित हो जाते तो मार्ग में एक अनावश्यक बाधा खड़ी हो जाती; जिसका अर्थ था समय का अपव्यय और अतिरिक्त जोखिम ! उचित यही था कि वे इन जीवों से कतराकर निकल जाते और समय रहते कम-से-कम त्रिकूट पर्वत पर पहुंच जाते। अंधकार के पश्चात सागर में रहना हितकर नही था।

महेन्द्र गिरि को हनुमान ने शीघ्रतापूर्वक पार किया और उसके दक्षिण खंड पर आकर खड़े हो गये।...पानी से निकले इतनी देर हो चुकी थी कि शरीर पर का जल सूख गया था और उसके नमक का प्रभाव शरीर के विभिन्न अंगों पर एक हल्की-सी जकड़न के रूप में प्रकट हो रहा था; किंतु वहां न तो कहीं स्वच्छ जल उपलब्ध था कि हनुमान अपने शरीर को धो लेते, न इतना समय ही था कि वे जल खोजने निकलते। फिर उसका लाभ भी क्या था—क्षण भर में तो पुनः उन्हें खारे सागर मे छलांग लगा देनी थी।

अब फिर उनके सम्मुख वही लहराता सागर था और मन में उसे पार कर जाने की चुनौती ! इस बार हनुमान ने छलाग लगायी तो उन्हे लगा कि यहां का जल कुछ अधिक ताजा तथा स्वच्छ था। कदाचित यह भाग एक बृहत् क्षेत्र का अंग था और यहां का पानी, पिछले भाग के समान स्थिर नही था। इस जल में गति थी, किंतु वह उनके मार्ग की बाधक नही थी। हल्की-हल्की लहरें उन्हें आगे बढ़ने मे सहायता ही दे रही थी। लगता था कि अनुकूल दिशा में चलकर वायु उनकी सहायता कर रही

थी। जल को हटाकर आगे बढ़ने के लिए उतना श्रम नही करना पड रहा था। सूर्य का आतप भी अब प्रखर नहीं था। लगता था, आकाश पर तीसरे प्रहर का तापरहित सूर्य चमक रहा है; सूर्य तथा जल का तापमान मिलकर शरीर को एक प्रकार का गुनगुनापन ही दे रहे थे। हनुमान को लग रहा था कि यदि इतने कम श्रम से इतनी सुविधापूर्वक तैरा जा सकता है तो वे कई दिनों तक लगातार तैरते ही जा सकते है।

किंतु इस सुगमता ने बहुत दूर तक उनका साथ नही दिया। आधा प्रहर बीतते-बीतते ही, जल कुछ ठडा होने लगा और जल के भीतर जीव-जंतु तैरते दिखायी देने लगे। हनुमान समझ नही सके कि सहसा ही जल-जंतुओ की सख्या इतनी बढ कैसे गयी। क्या उनके जन्म तथा विकास के लिए यह जल-क्षेत्र पिछले जल-क्षेत्र से अधिक अनुकूल था ?

उनके हाथों के थपेड़ो से झटके जाते हुए जल के साथ अनेक छोटे-छोटे जीव, बलात् पीछे की ओर धकेले जाते हुए वे स्वय देख रहे थे। छोटी मछलिया तो जल में होती हुई इस अपरिचित हलचल के कारण स्वत ही उनसे विपरीत दिशाओ मे मुड़ जाती थी। पानी के स्पदन जैसी, हल्की लहरो को दूर-दूर से सूघकर ही जैसे उन्हे अपने लिए किसी सकट का संकेत मिल जाता था।...किंतु अनेक धृष्ट जतु भी उनके आस-पास मडरा रहे थे और हनुमान निरतर सचेत थे कि उनमे से कोई भी किसी भी क्षण उनके अत्यन्त निकट आ सकता है, उनके शरीर को छू सकता है, उनसे लिपट सकता है। और इतनी बड़ी सख्या मे से यह पहचानना अत्यन्त कठिन था कि उनमे से कौन-सा जतु मनुष्य के लिए घातक हो सकता है और कौन-सा सर्वथा निरीह था। नये प्रकार के जतुओं को पहचानना तो दूर—यहा पहचानी हुई वस्तुओं मे भेद कर पाना कठिन हो रहा था। विषैले तथा विषहीन सर्पो मे भेद कर पाना तो पृथक, सर्पों तथा मत्स्यों का अंतर मालूम नहीं हो रहा था। मछलिया अपनी नवीनता, विचित्रता और कभी-कभी अपनी दुर्मुखता के कारण सर्प मालूम होने लगती थी और सर्प अपनी सरलता तथा निरीहता के कारण मछली जैसे लगते थे। या कौन जाने, वे जतु सर्प अथवा मत्स्य मे से कुछ भी न हों, पृथ्वी के समान, जल मे भी असख्य प्रकार, जातियों तथा वर्गों के प्राणी होंगे—उन्हे केवल मत्स्य

तथा सर्प—दो ही वर्गों में विभाजित करना तो असंभव था।...सागर-तट के भूगोल, वनस्पति तथा जीव-जंतुओं में तो हनुमान ने प्रायः रुचि ली थी और उनके विषय में जानने का प्रयत्न भी किया था। उन्होंने बहुधा सोचा था कि समुद्र-तट के विषय में विभिन्न दृष्टिकोणों तथा आयामों से सोचना तथा उनका अध्ययन करना लाभदायक हो सकता है। अनेक वानर-यूथ, सागर की नाक पर रहते थे; सागर-तट की सपदा का ज्ञान उनके लिए लाभदायक हो सकता है। किंतु, सागर के भीतर के भूगोल, वनस्पति तथा प्राणीशास्त्र के विषय मे उन्होंने न कभी सोचा था, न जाना था। कदाचित उसका एक कारण अधिकाश आर्य आश्रमो का सागर से असंपर्क था। जबू द्वीप के आर्य प्रायः भूमि से ही बंध गये थे। आर्यावर्त्त के आर्यों का तो सागर से और भी कम संपर्क था। वे अपने आस-पास की नदियों में तो फिर भी रुचि लेते थे, किंतु सागर से अपनी भौतिक दूरी के कारण सागर उनके लिए प्राय. अपरिचित ही था। उन्हे सागर के भीतर की संपत्ति से कोई विशेष प्रयोजन नही था। हनुमान तथा उनके साथियों ने भी ज्ञान की दिशाएं इन्ही आश्रमों से ही ग्रहण की थी; अत. उनकी भी इस दिशा मे विशेष गति नही थी।

सहसा उन्होंने देखा कि उनसे पांच-छह हाथों की दूरी पर सर्प जैसे अनेक जतुओं का एक भयंकर गुजलक, जल के ऊपरी तल पर निश्चित सोया पड़ा था। या, कदाचित वह गुंजलक सोया हुआ नही था, मात्र निष्क्रिय पड़ा था। अनेक जंतु परस्पर उलझे हुए गुंजलक मारे पड़े थे; या वह एक ही जंतु था जिसके शरीर से असंख्य शिराएं निकलकर परस्पर गुथी हुई थी—यह समझना भी हनुमान के लिए कठिन था। उन्हे अपने लिए सुरक्षित मार्ग यही लगा कि वे उससे कतराकर निकल जाएं। किंतु, इतना निकट जाकर कतराना शायद सभव नही था...हनुमान ने सास रोकी और जल के भीतर डुबकी लगा दी।

वे अधिक देर तक जल के भीतर नही रह सके। भीतर का संसार उनके लिए और भी अधिक अपरिचित था। जल के भीतर जिसे उन्होंने जड़ वस्तु समझकर हाथ लगाया था, उसने अपनी समाधि तोड़, हाथ-पैर निकाल, चलना आरंभ कर दिया। वैसे भी जल के भीतर अधिक देर

तक बने रहने का उन्हें अधिक अभ्यास नहीं था, ऊपर तो आना ही था। किंतु ऊपर आने से पहले जो कुछ उन्होंने देखा, वह अद्‌भुत था। यदि उन्होंने उस अनोखे गुंजलक से बचने के लिए डुबकी न लगाई होती, तो कदाचित सामने आने वाले एक भयंकर संकट की ओर उनका ध्यान न गया होता और वे सिर के बल उससे टकरा गये होते, उनके सम्मुख एक विराट जलमग्न पर्वत था। उन्हें ठीक याद नहीं था, किंतु कहीं-न-कहीं उन्होंने इस पर्वत के विषय में सुना अवश्य था। यह अवश्य ही मैनाक पर्वत होगा—एक पूरी-की-पूरी पर्वत-श्रेणी, जो अपने पूरे विस्तार, समस्त शृंगों, वनस्पति तथा जीव-जंतुओं के साथ जलमग्न थी। जल के ऊपर तैरते हुए हनुमान यह कल्पना तक नहीं कर सकते थे कि जल के भीतर इतना बड़ा समग्र पर्वत किसी अहंकारमुक्त व्यक्ति के समान इस प्रकार स्वयं को छिपाये हुए होगा। यह तो अच्छा हुआ कि उस गुंजलक से बचने के लिए, उन्होंने जल में डुबकी लगा दी थी.. किंतु मैनाक पर्वत, उस जंतु के समान एक सामान्य-सा गुंजलक नहीं था, जिससे वे कतराकर निकल जाते, या जिससे बचने के लिए जल की सतह की दृष्टि से कुछ नीचे या ऊपर हो जाते। एक पूरा पर्वत उनका मार्ग रोके खड़ा था, उसकी जड़ें सागर की थाह से भी नीचे तक गयी हुई थीं। उसके शृंग यद्यपि जल के भीतर थे, किंतु निर्भीक होकर अपना सिर ऊपर उठाये हुए थे। योजनों तक फैली उसकी श्रेणियां, कहीं से भी वायु के निकलने भर को भी स्थान देती दिखायी नहीं पड़ती थीं। सारे सागर को अवरुद्ध किये खड़ा वह मैनाक, हनुमान का भी मार्ग रोके खड़ा था।

हनुमान ने क्रमशः ऊपर उठना आरंभ किया—ऊपर...और ऊपर! किंतु मैनाक पर्वत तो जैसे मायावी था। जल के प्रत्येक थपेड़े के साथ, प्रत्येक हल्की लहर के साथ लगता था कि मैनाक का कोई-न-कोई शृंग जैसे ऊपर उठ रहा हो। वह पर्वत तो जैसे जीवित प्राणी था, प्राणवत्ता तथा चेतना से युक्त। और इस समय वह हनुमान से शत्रुता साधे बैठा था —जैसे लुका-छिपी खेल रहा हो। वे जिस दिशा और मार्ग से आगे बढ़ना चाहते थे, वह जैसे उछलकर वहीं खड़ा हो जाता था—दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे, दिक्‌संधियों में...वह तो प्राचीर थी पूरी-की-पूरी, पवन-संचार को

भी रोक देने वाली।...या मैनाक कह रहा था, "आ, मुझ पर विश्राम कर ले ! रुक जा ! थम जा।" पर जलमग्न पर्वत पर कोई क्या विश्राम करेगा —जिस पर न कोई बैठ सके, न खडा हो सके; न चल सके, न थम सके। कैसी विडबना थी ! हनुमान परेशान हो उठे...

मैनाक के ऊचे-ऊचे जलमग्न शृगों पर दीर्घाकार सर्प विश्राम कर रहे थे। इतने बड़े सर्प इस यात्रा मे उन्हें अभी तक दिखायी नही दिये थे। तैरते हुए हनुमान किसी शृंग से छू भी गये तो शायद पत्थर से होने वाले आघात से बच भी निकलें; किंतु कोई सर्प उनसे लिपट गया तो हनुमान के लिए अग-सचालन भी कठिन हो जाएगा। नाग-पाश में बांधकर समुद्र में डाल दिये गये व्यक्ति के समान निष्क्रिय-निःस्पद डूबते जाने के सिवाय उनके सामने कोई उपाय नही रह जाएगा।

किंतु हनुमान रुक नही सकते थे, दम साधकर पूर्व अर्जित वेग के साथ वे बहते-से चले गये। गति बहुत धीमी हो गयी थी और बैल के सीगो के समान उठे हुए मैनाक के शृगो के आधा हाथ ऊपर से हनुमान जैसे सरकते हुए निकल गये। एकदम ही थम न जाएं, इसलिए हाथ-पैर हिलाते ही दो-एक स्थानो पर उनके पैर, ऊपर उठने में जल से होड करते हुए शृंग से छू गये। सम्मोहन की-सी अवस्था में हनुमान ने सास तक रोक ली।...अगले ही क्षण उन्होंने देखा—शृंग को छू जाने पर भी वे आगे बढ आए थे और अब मैनाक उनके सम्मुख मानो घुटने टेक रहा था। उसके शृंग क्रमश: अधिक-से-अधिक नीचे होते जा रहे थे...

यद्यपि मैनाक पीछे छूट गया था, किंतु पर्वत से जा टकराने की दुष्कल्पना हनुमान के मस्तिष्क से जैसे चिपक गयी थी। कितनी ही देर तक स्वच्छ और साफ-सुथरे जल मे भी उन्हे बड़ी-बड़ी पर्वताकार शिलाएं तैरती हुई आभासित होती रही। लगता था, या तो वे परस्पर टकराकर जल मे बवंडर उत्पन्न कर देंगी, या फिर वे सीधी आकर उन्ही से टकरा जाएंगी। कही-कही सागर-गर्भ में से पर्वत-शृंग ऐसे उगते हुए दिखायी देते, जैसे भूमि मे से नारियल अथवा ताड़ के पेड उगते हैं—सीधे, गोल और तने हुए। वे स्वय समझ नही पा रहे थे कि यह मैनाक का ही इतना भयावह प्रभाव उनके मस्तिष्क पर पड़ा था; शरीर की थकान के कारण उनकी

आखो के सम्मुख शून्य मे से नयी सृष्टि उत्पन्न हो रही थी; अथवा जल पर खेलती हुई सूर्य-रश्मियों का यह कोई माया-जाल अथवा मृग-मरीचिका थी। जो कुछ भी था, उनके लिए अच्छा नही था—मन और शरीर, दोनों ही ऐसी कल्पनाओं से थर्रा जाते थे।

मैनाक का शिला-ससार पीछे छूट गया था, किंतु उसकी जीव-सृष्टि वही समाप्त नही हुई थी। या फिर अब बडे जतुओं का क्षेत्र ही आरभ हो गया था। मैनाक के शृंगो पर सर्प जैसे जो दीर्घाकार जतु हनुमान ने देखे थे, वैसे अनेक जंतु अब उनके आस-पास क्रीड़ा करते दिखायी दे रहे थे। या तो वे अपने भीतर के किसी सुख मे इतने आत्मलीन थे कि अपने परिवेश की घटनाओं मे कोई आकर्षण दिखायी नही देता था, या हनुमान का वहा होना, उनके हाथ-पैरो से फेंके गये जल की धाराए अथवा उनके कारण सागर मे उत्पन्न हलचल इतनी नगण्य बात थी कि उनकी ओर उनका ध्यान खिचता ही नही था.. हनुमान सोच रहे थे...या फिर यह भी संभव है कि ये जतु अन्य जीवों की ओर केवल अपनी भूख के कारण ही आकृष्ट होते थे और इस समय वे भूखे नहीं थे। हनुमान को लग रहा था, जैसे वे किसी साफ़-सुथरे पथ से निकले जा रहे हों, और ये जतु उस पथ के दोनो ओर लगे वृक्षों के समान अचंचल सृष्टि हो, पथिक के प्रति उदासीन !

पर थोडी ही दूर जाकर एक पर्वताकार सर्प, उन्हे ठीक अपने सामने इस प्रकार पडा मिला, जैसे कोई वृक्ष उखड़कर, टूटकर अथवा कटकर पथ के बीचो-बीच आ पड़ा हो। उसके कारण उनका मार्ग अवरुद्ध हो गया लगता था। इतना ही नही कि वह सर्पाकार जतु असाधारण रूप से दीर्घकाय था, जैसे मैनाक ही पुन: सर्प का शरीर धारण कर उनका मार्ग रोककर पड़ गया हो—उसने हनुमान को देख भी लिया था और वह उनकी ओर से उदासीन भी नही रहा था।...हनुमान को लगा, अभी-अभी वे सोच रहे थे कि कदाचित ये सर्प भूखे नहीं हैं, और अभी ही यह भयंकर जल-दानव अपनी भूख जताने को उनके सम्मुख आ बैठा था।

उनका मस्तिष्क बड़ी तीव्रता से सोच रहा था। वे उसके निकट जाना नही चाहते थे; किंतु यदि वह उनकी ओर बढ़ा तो ?उसका आकार ऐसा नही

था, जिसे बिना किसी शस्त्र के प्रहार के, आक्रमण करने से विमुख किया जा सके। ऐसे समय में गदा उनके पास होती, तो...पर गदा लेकर इतना लबा सतरण-मार्ग. .इस समय तो गदा नही है...

सर्प ने वर्तुलाकार एक ऐंठन-सी ली और हनुमान के ठीक सामने आकर मानो उन्हें निगलने के लिए अपना मुख खोल दिया। हनुमान स्तब्ध रह गये यह नागमाता सुरसा के आकार का विराट सर्प भूखा ही नही, आक्रामक भी था...यह तो युद्ध के लिए चुनौती दे रहा था ..वे बचकर निकल जाना चाहें तो क्या वह निकल जाने देगा ?...

हनुमान ने आगे चलने के स्थान पर, बायी ओर बढना आरभ कर दिया। किंतु वह सर्प अपने स्थान पर ही टिका नही रहा, उसने सायास अपनी सक्रियता बायी ओर फेर दी, और दो ही क्षणो मे वह पुन हनुमान के मम्मुख पहले के ही समान अपना मुख खोले खडा था।...हनुमान की चिता कुछ बढी.. इतने बडे सर्प से युद्ध के लिए शस्त्र न हो. और युद्ध किये बिना वह जाने न दे; तो क्या हनुमान को सर्प की ही इच्छा पूरी करनी होगी ?...लंका पहुंचकर देवी वैदेही की खोज करने के स्थान पर इस जल-दानव के पेट मे समाकर उसकी भूख मिटानी होगी ?...

हनुमान ने पुनः अपनी दिशा बदली—इस बार वे जल्दी-जल्दी दाहिनी ओर बढ रहे थे...सर्प ने भी क्षण भर के निरीक्षण से उनकी दिशा पहचान, पहले जैसा ही वर्तुलाकार चक्कर लिया और वह पुनः आकर उनके सम्मुख खड़ा हो गया। इस बार उसने अपना मुख फाडा तो हनुमान को लगा कि वह मानो उस क्षेत्र के सारे जल के साथ ही उनको निगल जाने के लिए तत्पर बैठा है...हनुमान वापस लौटे...किंतु सर्प को भी अपनी ओर बढ़ते देख, उन्हें अपनी भूल का भान हुआ। दाए और बाएं चलने से सर्प इन दिशाओं में मुडने के स्थान पर एक लंबा वर्तुलाकार चक्कर काटता था और सामने जाकर खडा हो जाता था। उसमें उसे थोडा-सा समय लगता था, किंतु पीछे लौटने पर तो उसे केवल सीधे बढ़ना पड़ता था। जो उसके लिए तनिक भी कष्टसाध्य नहीं था।.. अब यदि हनुमान स्वयं आगे बढते तो उसके और भी निकट पहुंच जाते...वे पुनः बायी ओर मुड़े...

सर्प-दैत्य ने वैसे ही वर्तुलाकार चक्कर लिया और मुख फाडकर सामने खडा हो गया।

हनुमान के मन में एक विचार कौंधा. .यह सर्प सुविधा से केवल आगे बढ़ सकता था, वह भी क्षिप्र गति से नही, मथर गति से। दाए-बाए मुडने मे उसे असुविधा होती थी। पीछे पलटना तो उसके लिए और भी कठिन था...फिर वह स्वय आगे बढकर दश करने, प्रहार करने अथवा निगलने का प्रयत्न नही करता था। वह ठीक सामने आकर मुह खोलकर बैठ जाता था कि शिकार जल-प्रवाह के साथ-साथ स्वतः उसके मुख में चला जाए...यह तो बडा धैर्यवान आखेटक था।

हनुमान बार-बार अपने तैरने की दिशा बदल रहे थे। वे थोडी दूर तक बायी ओर बढते, और सर्प जब वर्तुलाकार चलकर सामने खडे होने की तैयारी कर रहा होता, तो वे दायी ओर मुड जाते, सर्प पुन अपनी समाधि भग कर अपनी प्रक्रिया दुहराता ..हनुमान के मन मे यह तथ्य अत्यन्त स्पष्ट हो चुका था कि इस बुद्धिहीन जल-दैत्य से वे केवल अपनी स्फूर्ति के ही कारण बच पाएगे। युद्ध का प्रश्न नही था, युद्ध का प्रयत्न करते ही वे उसके मुख में समा जाते, अथवा वह उन्हे अपने लबे शरीर मे लपेटकर दो-चार ऐठनो मे उनके शरीर की सारी हड्डिया तोड़ देता। सीधे-सीधे तैरते हुए भी उसमे बच निकलने का कोई मार्ग उन्हे दिखायी नही देता था—क्योंकि वह आखेट के लिए तत्पर बैठा था।.. स्फूर्ति ही हनुमान की रक्षा का साधन हो सकती थी।

हनुमान ने थोडा जोखिम उठाने का निर्णय किया; अन्यथा कदाचित उन्हे भी स्वय को थका-थकाकर, अतत. हारकर, स्वय को उस नाग-माता सुरसा की कृपा पर छोड देना पड़ता...

उन्होने तीन-चार बार अपनी दिशाए बदलकर उस दैत्य को भी उतने ही वर्तुलाकार चक्कर लगवा दिये। अधिक चक्कर लगाने से उसकी गति और भी मथर होती दिखायी पडी। फिर एक बार हनुमान दायी दिशा मे बढते ही चले गये। लगा कि सर्प निश्चित है कि इस बार वे अपनी दिशा नही बदलेंगे और निरतर उसी एक दिशा में ही बढ़ते जाएगे। उसने भी एक बड़ा-सा वर्तुलाकार चक्कर लिया और ठीक सामने जाकर बैठ गया।

उसने अपना विराट मुख फाड़ा और प्रचुर मात्रा में जल निगल गया। फिर उसने अपनी आंखें बंद कर लीं और निगला हुआ वह सारा जल उगलने लगा, जैसे कोई फव्वारा चला रहा हो।... हनुमान को यही उपयुक्त समय लगा—सर्प की मुद्रा से यही आभास मिल रहा था कि इस बार वह निश्चिंत होकर बैठ गया था और अब कदाचित जल्दी नहीं हिलेगा। हनुमान सीधे बढ़ते चले गये। जल-दैत्य की खुली आंखों ने हनुमान को अपनी ओर बढ़ते देखा। उसने तृप्ति की मुद्रा में अपनी आंखें भींची और मुख को और भी अधिक फाड़ दिया।...हनुमान धनुष से छूटे बाण के समान उसके खुले मुख के निकट से होते हुए, उसके पार निकल गये...

सर्प थोड़ी देर तक तो अपनी ध्यान-मुद्रा में मुख फाड़े बैठा, हनुमान को अपने मुख में समा जाने की प्रतीक्षा करता रहा; किंतु जब उसकी अपेक्षा से अधिक विलंब हो गया तो उसने अपनी आंखें खोलीं और इधर-उधर देखा। कहीं कुछ दिखायी नहीं दिया तो उसने जैसे कुछ सोचते-सोचते टहलते हुए-से एक वैसा ही वर्तुलाकार चक्कर लिया और दूर निकल गये हनुमान को देखा।

हनुमान भी थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात पलटकर उसकी ओर देख रहे थे। उसके चक्कर काट लेने पर उनकी स्थिति संकटपूर्ण हो गयी थी। अब यदि वह सीधा आगे बढ़ता तो दो-चार क्षणों में वह फिर उनके निकट पहुंच सकता था; किंतु सर्प ने दूर जाते हुए हनुमान को उदास आंखों से देखा, और अपनी आंखें पुन: बंद कर लीं।

हनुमान की जान में जान आयी। उन्हें लगा कि वे जैसे उस सर्प के मुख में से होकर निकले हैं; और यदि सर्प अपनी ही इच्छा से संतुष्ट होकर न बैठा जाता, तो जाने अभी उन्हें और कितना पीड़ित और व्याकुल होना पड़ता। अंततः परिणाम क्या होता—यह भी क्या कहा जा सकता है। यहां न उनकी शारीरिक शक्ति ही सार्थक लग रही थी, न उनकी वीरता ही उनके काम आती—यह तो धैर्य और विवेक ही था, जिसने उन्हें बचा लिया था...या शायद संयोग भी...

किंतु अभी भी जल-दानवों का वह भयंकर क्षेत्र समाप्त नहीं हुआ था। हनुमान अभी बहुत दूर नहीं गये थे कि उन्हें पुन: एक और वैसा ही

सक्रिय और तत्पर जल-जंतु दिखायी पड़ा। किंतु, न तो वह सर्प था, न पिछले सर्प जैसा विराटकाय ही था। उसकी मुखाकृति बता रही थी कि वह सर्प नहीं था। किंतु वह क्या था—हनुमान समझ नहीं पा रहे थे। उसका मुख विकट चौड़ा और भयंकर था—जैसे प्रकृति ने जीवका विद्रूप प्रस्तुत किया हो। उसकी आखों में तीव्र और मुखर घृणा और हिंसा को देखकर कोई भी समझ सकता था कि वह आक्रामक मुद्रा में था और भक्षण के लिए व्यग्र हो इधर-उधर भटक रहा था। न तो उसकी गति मंथर थी और न उसे मुड़ने और उलटने-पलटने में कोई विशेष असुविधा प्रतीत हो रही थी। उसकी स्फूर्ति देखते ही हनुमान समझ गये थे कि उससे भिड़न्त अनिवार्य है। वैसे भी पिछले इतने सारे श्रमसाध्य व्यायाम और इस लबी तैराकी के पश्चात उनमे धैर्य कुछ कम रह गया था और मन में उग्रता आ रही थी।...यदि उस सिंहिका ने आक्रमण किया तो फिर हनुमान स्वय को रोक नहीं पाएंगे।

कदाचित वह सिंहिका भी अपने मन में आक्रमण की ही योजना बना रही थी। जिस प्रकार हनुमान के लिए वह एक नये प्रकार का अद्भुत जतु थी, जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, उसी प्रकार उसके लिए भी हनुमान एक नये प्रकार के आखेट थे, जिसे उसने पहले कभी नहीं खाया था। भूख से व्याकुल उस जल-राक्षसी को इतना बड़ा जीव अनायास ही भक्षणार्थ मिल रहा था। अत्यन्त घातक तथा हिंस्र बना देने वाली उसकी भूख का समाधान उसके सामने था। ऐसा अवसर चूक जाना उचित नहीं था।

सिंहिका झपटकर हनुमान के सम्मुख आ गयी। उसकी गति और स्फूर्ति को देखते हुए, हनुमान के मन मे अपनी गति की मंथरता तथा थकावट दोनों ही अत्यन्त मुखर होकर उभरी और साथ ही खीझ का भी उन्होंने अनुभव किया...अधिक सोचने-समझने अथवा बचाव पद्धति का अन्वेषण करने का समय नहीं था। सिंहिका निरतर उनके निकट आ रही थी...*अगले ही क्षण उसने अपना मुख फाड़ा और उन पर झपट पड़ी।*

एक क्षण के लिए तो हनुमान को लगा, जैसे उसने उन्हें पकड ही लिया है और उनकी गति सर्वथा अवरुद्ध हो गयी है। उन्होंने अपने सहज

बचाव के लिए, उसके शरीर के मध्य भाग पर अपनी खुली हथेली का भरपूर प्रहार किया...सिंहिका को उस आघात ने कुछ पीड़ा पहुंचाई और वह उन्हें छोड़कर पलट भी गयी; किंतु हनुमान स्वयं अनुभव कर रहे थे कि इस प्रकार का युद्ध उनके लिए अधिक हितकर नहीं था।...जल के भीतर उन्हें अपनी शक्ति तथा संतुलन को—स्वयं को डूबने से बचाने के लिए प्रेरित किये रखना पड़ता था। फिर जो आघात उन्होंने किया था, उसका आधे से अधिक प्रहारक बल तो स्वयं जल ने सहन कर, सोख कर दिया था। उससे इस जल-राक्षसी को कितनी चोट लगी होगी? ऐसी पीड़ा से भला इतना बड़ा जंतु क्या विचलित होगा। उसके लिए तो कोई निर्णायक प्रहार होना चाहिए। और ऐसा प्रहार पानी के भीतर कैसे होगा?...

तभी सिंहिका पुनः हनुमान पर झपटी। उसने अपना मुख और भी विकरालता से खोल रखा था, मानो मुख फाड़ने के ही आकार-प्रकार से वह उन्हें डरा देना चाहती हो...सहसा हनुमान के मन में एक विचार आया। जोखिम तो अवश्य था, किंतु दांव चल गया तो इस जल-राक्षसी से पूर्ण मुक्ति मिल जाएगी...

हनुमान स्वयं ही उसकी ओर बढ़े। उन्होंने अपने हाथ-पैर समेटकर, मंडूकाकार हो स्वयं को लघु बना लिया और जल के साथ-साथ स्वयं ही सिंहिका के मुख में प्रवेश कर गये...अब स्फूर्ति और शक्ति—दोनों का ही परीक्षण था। इस बात को कदाचित सिंहिका ने भी समझ लिया था। उसने तत्काल अपना मुख बंद करने का प्रयत्न किया और हनुमान उतनी ही त्वरा से पलटे; बाहर की ओर चेहरा कर अपने हाथ-पैर खोले तथा अपने पूर्ण आकार में आने का प्रयत्न किया। सिंहिका, अपने दोनों जबड़ों को दबाकर हनुमान को पीस देने के प्रयत्न में थी और हनुमान सीधे खड़े हो, अपने हाथ-पैरों को अकड़ाकर, उसके जबड़ों को चीर देना चाहते थे...स्फूर्ति की परीक्षा में हनुमान जीत चुके थे, अब शक्ति-परीक्षण था—यदि सिंहिका अपना मुख बंद करने में सफल हो जाती तो हनुमान उसके बंद मुख में भोजन के एक कड़े ग्रास के रूप में स्वतः चबाए जाते; और यदि हनुमान अपने हाथ-पैरों को सीधा कर, उनको पूरी दूरी तक अकड़ाकर तनाने में

मफल हो जाते तो सिंहिका का मुख, बीच से चीरकर, दो भागो मे बंट जाता ..

एक क्षण के लिए हनुमान को लगा कि सिंहिका के जबडों का बल उन पर भारी पड रहा है...कदाचित वे अपने हाथ और अधिक फैला तो नही पाएगे, उसके पहाड़ जैसे जबडे के दबाव मे उनकी भुजाएं झुककर, सिमट भी सकती है...ऐसी सभावना का विचार-मात्र ही उन्हे ऐसा विचलित कर गया, जैसे ब्रह्माड ही चूर-चूर हो रहा हो...हनुमान ने अपने हाथों के नख सिंहिका के ऊपरी जबड़े में धसा दिये और अपने दाहिने पैर से उसके कठ पर भीषण प्रहार किया। इस आकस्मिक आघात से सिंहिका भी विचलित हो गयी। उसके जबड़ों का दवाव कुछ ढीला पड़ा...हनुमान के लिए इतना ही समय पर्याप्त था। उनके हाथ-पैर अकडकर पूरी लबाई तक फैल गये।

सिंहिका का शरीर ढीला पड़ गया...उसके दोनों जबड़ों के बीच की हड्डिया कड़कड़ा गयी और मांस के फटते ही रक्त की धारा बह निकली।

हनुमान तत्काल बाहर निकले और उस जल-राक्षसी के रक्त से लाल होते हुए पानी को पार करते हुए, क्षिप्र गति से आगे बढ़ गये।

यान्त्रिक ढग से तैरते हुए जब उस भयावह राक्षसी से पर्याप्त दूर निकल गये और उसके पुनः झपट पडने की संभावना जब उनके मन से पूर्णतः निकल गयी, तो मन में उल्लास भरे उनकी आखों ने अपने आस-पास के दृश्य को देखा। सहसा ही जल-जन्तु कही विलीन हो गये थे। जल के बहाव का दवाव बहुत क्षीण हो गया था, जैसे वे पुनः सोये हुए जल के क्षेत्र मे प्रवेश कर रहे हो। उन्होंने दृष्टि को सामने फेंका—सामने कुछ दूरी पर अनेक वृक्षो के झुड-के-झुड दिखायी पड रहे थे, जैसे कोई वन-श्रेणी खड़ी हो।

तो क्या यात्रा सपन्न हुई ?

हनुमान का मन अत्यन्त हल्का हो आया। उन्होंने प्रायः असंभव कार्य को सभव कर दिखाया था।...वे जब चले थे, तो ऊपर से कुछ भी कहते, उनका मन पूरे विश्वास से यह नही कह पा रहा था कि वे सफलकाम होगे ...किंतु अब घटनाएं सिद्ध कर रही थी कि सागर-सतरण मे वे सफल हुए

थे...सामने वन-श्रेणी थी, उसके पीछे त्रिकूट पर्वत था और उस पर लंका बसी हुई थी।

हनुमान ने धरती पर पैर रखा तो उनका शरीर थककर चूर-चूर हो चुका था; किंतु मन मे इतना उल्लास था कि जैसे दस बार इस सागर को पार कर जाएंगे, तो भी नही थकेंगे। उन्होंने अपने मन का उल्लास समेटा और एक वृक्ष के तने से टिक कर, सुस्ताने के लिए पैर फैला दिये। अपनी फैली हुई टांगों पर उनकी दृष्टि पड़ी और फिर वही दृष्टि ऊपर की ओर यात्रा करती हुई अपनी धोती, पेट, वक्ष और भुजाओं से कंधों तक का निरीक्षण कर गयी। सारे शरीर पर सागर के खारे पानी का नमक जमा हुआ था और शरीर पर एक विचित्र प्रकार की भुरभुरी-सी सफ़ेदी छायी हुई थी। धोती तो जाने सागर के किन-किन तत्त्वों से कौन-कौन-सा रंग ग्रहण कर चुकी थी...

उन्होंने अपने हाथों से मलकर, कुछ रगड़कर, शरीर से सागर का क्षार उतारने का प्रयत्न किया। सूखा नमक भुरभुराकर गिरा भी; किंतु इतने से शरीर स्वच्छ तो नही हो सकता था। उसके लिए तो आवश्यक था कि वे किसी स्थान पर ठहरकर निर्मल जल से अच्छी प्रकार स्नान करते ...पर ठहरने का समय किसके पास था...सध्या ढल रही थी...

हनुमान उठकर खड़े हो गये।

इतनी लबी जल-यात्रा के पश्चात पृथ्वी पर पैर जैसे सीधे नहीं पड़ रहे थे। तलुवे कठोर भूमि का स्पर्श भूल गये थे और टांगों को शरीर का बोझ उठाने का अभ्यास नही रह गया था। हनुमान मुसकराए—कैसा होता है यह मनुष्य का शरीर भी।

रेतीली भूमि से वे कुछ अधिक कठोर भूमि पर आ गये। वृक्ष पीछे छूट गये और खुला मैदान आ गया। उसके पश्चात कुछ ऊंची भूमि आरंभ हो गयी थी...कदाचित इसी को त्रिकूट पर्वत कहा जाता हो...उसके ऊपर बने अनेक ऊंचे-ऊंचे भवन दिखायी पड़ रहे थे...पथ आए और फिर नगर का परकोटा भी दिखायी देने लगा।

प्रदोष काल था और मुख्य द्वार से अनेक लोग नगर में प्रवेश कर रहे

थे। भीड़ मे अनेक प्रकार के लोग थे, और जाने वे कहां से आ रहे थे।

हनुमान ने एकांत स्थान ढूंढकर अपनी भुजाओं के अगद तथा गले का कंठहार उतारकर अपनी धोती में खोंस लिये। अब उनके शरीर पर कोई आभूषण नही था। विशिष्ट वस्त्र तो कोई था ही नहीं। घुटनों से ऊपर तक की बंधी हुई, मैली-कुचैली-सी नाना-वर्णा धोती थी, जिसका मूल रग खोज पाना अब सभव नही था।

भीड़ के पीछे-पीछे हनुमान भी चल पडे। तोरण के पश्चात अनेक मार्ग आरंभ हो जाते थे और वे अनेक छोटे-छोटे द्वारों के भीतर चले जाते थे। हनुमान उन फाटकों के निकट से चलते गये। प्रत्येक फाटक पर सशस्त्र प्रहरी खड़े थे और वे विभिन्न लोगों से विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछ रहे थे। हनुमान उन फाटकों को पीछे छोड़ते गये। अंतिम फाटक को झाककर देखा। लगा, वहां कोई नही है। न कोई प्रवेश करने वाला और न कोई पूछताछ करने वाला। उन्होंने सिर झुकाया और चुपचाप प्रवेश कर गये।

किंतु वह फाटक भी सर्वथा अरक्षित नही था। कदाचित वह विशिष्ट जनों के प्रवेश के लिए था, अतः सर्वसाधारण वहां भीड़ लगाये नही खड़े थे।

हनुमान के प्रवेश करते ही किसी ने उन्हें टोक दिया, "ऐ, कहा जा रहा है?"

हनुमान ने गर्दन उठाकर देखा—प्रहरी। किंतु शायद वह पुरुष नही था, स्त्री थी। स्त्री प्रहरी। तो लका मे स्त्रियां भी प्रहरियों का काम करती हैं!

"आंखे फाड़कर मेरी ओर क्या देख रहा है?" वह पुनः बोली, "मैं पूछ रही हूं, कहा जा रहा है?"

"लंका में?"

"क्या काम है?"

"घूमने-फिरने आया हूं।" हनुमान ने बात बनायी, "सुना है लका में ऊंचे-ऊंचे प्रासाद तथा लंबे-चौड़े पथ हैं। उन्हे ही देखने आया हूं। देखकर लौट जाऊंगा।"

"देखकर लौट नहीं जाएगा तो क्या उन्हें साथ ले जाएगा।" वह

बोली, "तू सैलानी है ?"

"हां !" हनुमान ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

प्रहरी ने घूरकर हनुमान को ऊपर से नीचे तक देखा, "तू सैलानी है। तेरे-जैसे लोग कब से घूमने-फिरने के लिए लंका में आने लगे ? तेरा बाप उरपुर का नगर-श्रेष्ठि है क्या, जो तू भ्रमण करने चला आया ? हूं ? कौन है तू ? कहां से आया है ?"

हनुमान चिंतित हो गये ..यह अति साधारण व्यक्ति का वेश उपयुक्त नहीं था। वे क्या जानते थे, कि लंका-प्रवेश में यही वेश बाधक बन जाएगा।...यदि इसने अपने सहायक बुला लिये और उन्होंने उनका निरीक्षण किया तो उनके अंगदों तथा कंठहार के साथ-साथ, राम की मुद्रिका भी पकड़ी जाएगी...यदि पहचान लिये गये तो संकट उपस्थित हो जाएगा...न पहचाने गये तो स्वर्ण-आभूषणों की चोरी के आरोप में धर लिये जा सकते हैं...राम की मुद्रिका ही छिन गयी तो सीता को विश्वास दिलाना ही कठिन हो जाएगा। सब किया-धरा बेकार चला जाएगा...

"कौन है तू ?" स्त्री ने पुनः धमकाकर पूछा, "धूर्त ! मुझे धोखा देना चाहता है—नगर-रक्षिका, लंका-राक्षसी को। दिन भर में तेरे जैसे यहां सहस्रों आते हैं। बोल, कौन है तू ?"

और लंका-राक्षसी ने अपने पौरुषपूर्ण हाथ का भरपूर वार हनुमान के मुख पर किया।

हनुमान कुछ विचलित हुए। यह थी तो स्त्री; किंतु प्रहरी-कर्म कर रही थी और शरीर से बलवान थी। वह इसी प्रकार प्रहार करती रही, अथवा उसके सहायक आ गये तो ?

इससे पूर्व कि लंका दूसरा प्रहार करती, हनुमान ने झपटकर उसकी भुजा पकड़ी और उसे ऐंठते चले गये।

लंका ने कराहकर सिसकी भरी—उसकी भुजा में कदाचित पीड़ा होने लगी थी, "क्या कर रहा है रे, देहाती ?" वह धीरे से बोली, "तुझे नगर में प्रवेश करना है तो जा चला जा। तेरे जैसे कितने ही कंगले यहां रोटियां कमाने आते हैं...मेरी बांह क्यों तोड़ रहा है !"

हनुमान कुछ नहीं बोले। उन्होंने उसकी बांह कुछ और ऐंठ दी।

"अरे, छोड़ भी, मूर्ख !" वह फिर कराही।

"किसी को पुकारोगी तो नहीं ?"

"नहीं ! मुझे अपनी आजीविका खोनी है क्या ? वे लोग पहले ही मेरी पदोन्नति नहीं कर रहे कि स्त्रियों से प्रहरी-कर्म नहीं होता। अपनी असमर्थता जताकर क्या मिलेगा मुझे ? ..छोड मुझे और भाग !"

हनुमान ने उसे जोर का धक्का दिया और पूरी शक्ति से नगर की ओर भागे...कुछ दूर निकल गये तो थककर एक वृक्ष के पीछे छिप गये। झाककर देखा—उनके धक्के से लका भूमि पर गिर पड़ी थी। वह चुपचाप उठी और अस्फुट-सा कुछ बड़बड़ाती हुई हाथ-पैर झाड़कर अपने स्थान पर बैठ गयी। उसने किसी को पुकारने अथवा सूचना देने की आवश्यकता नहीं समझी।

हनुमान निश्चित होकर नगर की ओर मुड गये।